

सूरसागर शब्दावली

[एक सांस्कृतिक अध्ययन]

डा० निर्मला सक्सेना,
एम० ए० डी फ़िल्म०

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

इलाहाबाद

प्रकाशक
हिन्दुस्तानी एकेडेमी
दिल्ली

प्रथमावृत्ति १ ७, १९९२
मूल्य १९) ५०

मुद्रक
आर्य समाज दिल्ली

पापा मग्गी
को

प्रकाशकीय

‘मकल-शरीरमणि महाकवि सुरदास के गीत और पद सुरसागर’ के नाम से संग्रहीत है। यह ग्रन्थ अत्यन्तप्रसिद्ध है। सुरदास हिन्दी भाषा और साहित्य के व्यापार-स्थलों में है। हिन्दी साहित्य के आदि पुग से मिश्रसमाज हिन्दी के इस धूर्त की भाषा और भाव-व्यवस्था पर विमल-मलल तथा विचार-विमल करता या रहा है। किमुपी लेखिका ने सुरसागर में महाकवि द्वारा प्रयुक्त शब्दा समूहों का सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अध्ययन की यह विद्या सर्वथा नवीन है। हिन्दी के वर्तमान महत्वपूर्ण काल में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हिन्दी की प्रमुख निबन्धों का सांगोपास और वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाय। महा-कवि सुरदास की रचना-साधना मजबूती है और लोकोत्तर मान्य के प्रमेय है। अपने समय में कवि ने भाषामिथ्या के लिए जब तथा इतर भाषाओं के श्रित शब्दों का प्रयोग किया था उनके सम्बन्ध सहित अध्ययन को कवि की रचना को प्रकाश करने में और भाषा को गौरव देने में निरवय ही सहायक होगी चाहिए। इस दृष्टि से डाक्टर निमला शक्तेना का यह कार्य महत्वपूर्ण अथवा रसावलीय है।

डाक्टर निमला शक्तेना ने बड़े अध्ययनसे सुरसागर के रचना शब्दों का अध्ययन कर उनका अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति से किया है। शब्द शब्द का प्रयोग जब सर्वत्र और समकालीन रचनाओं में या उससे पुराने साहित्य में शब्द-विशेष का प्रयोग आदि सभी आवश्यक तथ्य इस ग्रन्थ में निहित है। हमारा विश्वास है कि इस अभिनव अध्ययन को विद्वान और साधारण पाठक समान रूप से अपभोषी पावेंगे। साथ ही हमारा यह भी विश्वास है कि डाक्टर निमला शक्तेना के इस विद्वत्पूर्ण कार्य से स्फूर्ति लेकर अन्य लेखकों हिन्दी के महाकवियों की रचनाओं पर अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। हमें यह ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए है।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
दिल्ली

विद्या मारकर
सम्पादक कोषाध्यक्ष

प्राक्कथन

यह ग्रन्थ वास्तव में बीसिस के रूप में लिखा गया था जिस पर प्रयाग विश्वविद्यालय १९५८ में मुझे डी. क्रिस्. की उपाधि प्रदान की थी। उसी बीसिस का यह संशोधित और रिब्रिटिड रूप है। एम. ए. करने के कुछ बरस पश्चात् १९५३ में मैंने शोध काय के लिए रसागर की शम्भाबती को अध्ययन का विषय चुना था। सूरसागर की समस्त शम्भाबती को कही बीसिस की सीमा में बाँटना असम्भव समझ कर अपने निर्रेलक डा. बीरेन्द्र वर्मा की म्मति तथा आदेश के अनुसार केवल संज्ञा-शब्दों का सांस्कृतिक दृष्टि से विवेचन करने का मैंने निश्चय किया था।

परन्तु इस ग्रन्थ की विरोधता सूरसागर में प्रयुक्त समयग १७ संज्ञा शब्दों के सांस्कृतिक विवेचन से है। इस दृष्टि से सूरसागर की शम्भाबती पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। प्रस्तुत अध्ययन समाप्त करने के बाद डा. प्रेमनाथराय टंडन का 'सर की माया' टीपिक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था जिसका छठा अध्याय सांस्कृतिक नामावली से संबंधित है। डा. टंडन के दृष्टि संघ का एक प्रसंग होने के कारण उसमें सांस्कृतिक शब्दों के उदाहरणस्वरूप कुछ मुनिर्वा मान भी गई हैं तथा इनके साधारण महत्त्व पर कुछ प्रकाश डाला गया है। विषय साम्य के कारण 'सर की माया' के इस अध्याय के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ का आंशिक साम्य बिल्कुल पड़ सकता है, किन्तु वास्तव में सूरसागर के समस्त सांस्कृतिक संज्ञा शब्दों को लेकर उनका विस्तृत वर्गीकरण तथा अध्ययन प्रस्तुत ग्रन्थ की विरोधता है। शम्भाबती की व्याख्या के साक-साधन शब्दों के मूल द्वारा प्रयोग पर विशेष प्रकाश डालने के उद्देश्य से प्राचीन काल में सूर के समकालीन कवियों लिखपठता तुमसी तथा नामसी के काव्यों में तथा वर्तमान समय में ब्रजप्रदेश में प्रयुक्त इन शब्दों के रूपों से तुलना करने की भी यथार्थमय चेष्टा की गई है।

प्राचीनकालीन शब्दों के रूपों को समझने के लिए डा. बाबुरेवशरत घटवाल के ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों 'ईडिया एव गोन टु पाखिन तथा 'हृयचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन' से विशेष सहामता सी गई है। डा. अग्रनाथ द्वारा व्याख्या सहित प्रकाशित पद्यावत तथा डा. देवकीर्णन श्रीवास्तव लिखित 'तुमसीरास की माया' कर्मरा' नामसी तथा तुमसी द्वारा व्यवहृत शम्भाबती पर प्रकाश डालने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए। तुलनात्मक धर्मों में इन ग्रन्थों का उपयोग निरंतर किया गया है। वर्तमान समय में ब्रजभाषामापी कृत्यक बर की सांस्कृतिक शम्भाबती का ज्ञान प्राप्त करने के लिए डा. अम्बाप्रसाद मुनन के ग्रन्थ 'हृयक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शम्भाबती' से भी विशेष सहायता मिली है। सूरदास की समकालीन स्थिति पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थ भाषाओं के ग्रन्थों में 'धाईने चक्रवर्ती तथा बनिधर धीर भगुपी के भाषा-विवरणों से सहायता सी गई है। शम्भाबती का संकलन नामसी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूरदासर (प्रथम संस्करण संवत् २ ५ वि.) से किया गया था। शब्दों के घाये हो गई संख्याएँ वही संस्करण की पूर्ण संख्या की सीमा हैं।

इस ग्रन्थ की दृष्टियों से मैं अपरिचित नहीं हूँ। शम्भाबती की संख्या बढ़ जाने के

कारण शब्दों का पूर्ण ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक विश्लेषण करना संभव नहीं हो सका। यदि भविष्य में इस अध्ययन को प्रसरण करने का अवसर मिल सका तो मेरी इच्छा अध्ययन के इस पहलू पर विशेष ध्यान देने की है। वास्तव में शब्दों के ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन के लिए शैक्षणिकीन व्यापक और गंभीर अध्ययन तथा मनन की आवश्यकता होती है।

प्रथम विश्वविद्यालय से हिन्दी विभाग में लयमय दो वर्ष (१९५३-५५) डी० फ़िल्म के नियमित विद्यार्थी के रूप में डा० धीरेन्द्र वर्मा के निर्वहन में मैंने शब्दों का संज्ञा तथा विषय से संबंधित साहित्य-का अध्ययन किया था। इसके उपरान्त विशेष परिस्थितियों के कारण मुझे प्रथम छोड़ना पड़ा और कार्य पर्याप्त मात्रा में नहीं हो सका। डा० वर्मा के निरंतर प्रोत्साहन एवं प्रेरणा के बिना यह कार्य कदाचित् सम्पन्न ही रह जाता। उनके बार-बार प्रोत्साहित करने के फलस्वरूप १९५७ से मैंने इस शब्दावली का विस्तृत अध्ययन फिर प्रारम्भ किया और अंत में उसे प्रस्तुत अध्ययन का रूप देने में सफल हो सकी। डा० वर्मा की गुण-रूप में पाता उनके विद्यार्थी अपना परम शीघ्र मानते हैं, बिशु में पिता और गुण दोनों वर्गों में उनको पाकर गौरवान्वित हैं। पिता का और साथ ही मित्र के समान है और जीवन के हर क्षेत्र में सह-निर्देशन करते रहे हैं। उनसे मैंने क्या पाया है यह मेरे लिए शब्दों में बताना असम्भव है।

डा० बाबुदेव शरण्य प्रबन्धन के शब्दों के अध्ययन से मुझे जो निरंतर प्रेरणा और सहायता मिली उससे लिए मैं अत्यधिक आभारी हूँ। हिन्दी एस्टीमेट पाठ्यक्रम के आवरेक्टर डा० विश्वनाथ प्रसाद भी मेरे इस अध्ययन की उपरान्त की रूपरेखा ध्यानेपूर्वक देखकर अनेक उपयोगी सुझाव दिए। अंत में श्री बर्ष शब्दानुक्रमिका उन्हीं के सपरामर्श का परिणाम है। अंत की भाषिक तथा सांस्कृतिक शब्दावली के अध्ययन में डा० शैलान्यास गुप्त के अत्यंत महत्वपूर्ण सत्य परामर्श और बलम सपरामर्श से मुझे बहुत सहायता मिली। अपने इन समस्त गुरुजनों के प्रति मैं सादर आभार प्रकट करती हूँ।

अंत में मैं उन अन्य समस्त विद्वानों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्तव्य समझती हूँ। जिनके शब्दों से मैंने इस अध्ययन में सहायता ली है। इन कृतिओं का सम्पूर्ण व्यवधान किया गया है। इस ग्रंथ का प्रकाशन हिमुरताजी एन्ड्स की प्रकाशिकियों की रूपरेखा से ही रहा है। इसके लिए मैं इस संस्था के सहायक श्री डा० सत्यजित तिवारी तथा अन्य प्रकाशिकों की कृतज्ञ हूँ।

संगम

मार्च १९६१

निर्मला सक्सेना

विषय-सूचा

पृष्ठ

प्राक्कथन	..	७
विषय-सूची	८
सहायक-ग्रंथों की सूची	१२
संकेत-सूची	१५

खंड १—वस्त्राभूषणों के नाम [पृ० १—७२]

अध्याय

१	वस्त्र के पर्यायवाची शब्द	१
२	वस्त्रों की सामग्री तथा बनावट	३
३	वस्त्रों के रंग तथा रीपाई	११
४	धोड़ने तथा बिछाने के वस्त्र	१८
५	स्त्रियों का पहनावा	२१
६	पुरुषों का पहनावा	२६
७	बच्चों का पहनावा	३२
८	स्त्रियों के आभूषण	३४
९	पुरुषों के आभूषण	..	४६
१०	बच्चों के आभूषण	५५
११	स्त्रियों की शृंगार तथा प्रसाधन सामग्री	..	६१

खंड २—खाद्य तथा पेय पदार्थ [पृ० ७३—१२६]

१	भोजन संबंधी साधारण शब्द	७५
२	सनाक और तेल	७८
३	मसाले	८४
४	फल सेवा तरकारी	८८
५	छाई खादि तथा कुछ धीरे उसके अन्य रूप	१३
६	पकवान—मिठाई तथा नमकीन	...	११२
७	भोजन की अन्य सामग्रियाँ अथवा व्यंजन	११८
८	पेय पदार्थ	१२५
९	ताम्बूस अथवा पान	१२६
१०	भोजन करने का ढंग	...	१२८

खंड ३—स्नानवाचक शब्द तथा धातु विभाजन [पृ० १३१—१५२]

१	कण्ठकृता से संबंधित शब्दावली	१३१
२	रामकृता से संबंधित शब्दावली	१४२

अध्याय

पृष्ठ

३	प्रथम स्वानुवाचक शब्द	१४५
४	पौराणिक कल्पित स्वान	१५
५	काल विभाजन तथा ग्रह नक्षत्रादि	१५१

खण्ड ४—व्यापार, व्यवसाय, कृषि, ग्राम-अर्थघ

तथा नग, धातु, सिक्के [पृ० १५३—१८१]

१	व्यापार धीर वाणिज्य	१५३
२	व्यवसाय तथा कृषि	१५६
३	ग्राम-प्रबन्ध तथा कृषि	१६०
४	नग धातु तथा सिक्के	१७३
५	प्रसिद्ध पौराणिक मूर्तियाँ	१७७

खण्ड ५—राजदरबार, शासन-व्यवस्था तथा युद्ध [पृ० १८३—२०१]

१	राजा राजदरबार तथा मन्त्र	१८५
२	शासन व्यवस्था	१८२
३	युद्ध तथा शस्त्रास्त्र	१८४

खण्ड ६—सामाजिक संगठन, संस्कार तथा त्यौहार [पृ० २०२—२३०]

१	वर्तमान-व्यवस्था तथा जातियाँ	२५
२	सती-प्रथा	२०८
३	संस्कार, पृथक्कम तथा धार्मिक धर्म	२०८
४	त्यौहार	२२६

खण्ड ७—धर्म तथा दर्शन [पृ० २३१—२५७]

१	धार्मिक तथा धार्मिक सम्प्रदाय	२३३
२	योग भाग से संबंधित शब्द	२४
३	धार्मिक कृत्य	२४५
४	धर्मविश्वास	२४२
५	धर्म सांप्रदायिक शब्द	२४६

खण्ड ८—साहित्य, संगीत तथा नृत्य [पृ० २५६—२८३]

१	साहित्यिक कथ	२६१
२	वाद्य-यन्त्र	२६७
३	संगीत संबंधी पारिभाषिक शब्दावली	२७८
४	राग रागिनियाँ	२७६
५	नोकरगीत	२८
६	नृत्य	२८३

खण्ड ९—पशु-पक्षी [पृ० २८५—३१४]

१	पशु पक्षी	२८७
२	वातानु पक्षी	२८८
३	बृहद् ईने बाने वातानु	२८९

सम्पाय

४	सवारी के लिए उपयोगी पशु	५४८
५.	बल में रहने वाले जानवर	२६६
६	द्वय तथा अग्न्य रैवमे वाले जानवर	३
७	कोट पठक	१ ३
८.	पक्षी	३ १
९.	कल्पित पौराणिक पशु-पक्षी	३१३
	खंड १०—इष्ट, लता तथा पुष्प [पृ० ३१५—३३१]	
१	वृक्षों के सूक्ष्म साधारण शब्द	३१७
२	पुष्पों के नाम	३१८
३	पुष्प-वृक्ष	३२५
४	फलों के वृक्ष	३२७
५.	अग्न्य वृक्षों के नाम	३२८
६	अग्न्य लता आदि	३२९
७	कल्पित पौराणिक वृक्ष	३३
	खंड ११—गृहस्थों की उपयोगी वस्तुएँ [पृ० ३३३—३५३]	
१	साधारण पात्रों के नाम	३३५
२	भोजन करने के पात्र	३३६
३	अग्न्य पात्र	३४
४	अग्न्य छोटी वस्तुएँ	३४१
५.	बैठने तथा सोने के उपकरण	३५
	खंड १२—मनोविनोद तथा वाहन [पृ० ३५५—३६७]	
१	मनोविनोद के साधन	३५७
२	वाहन	३६४
३	दूरी के साधन	३६७
	सम्मानकमण्डिता	३६९

अध्याय	पृष्ठ
१ धर्म स्थानवाचक शब्द	१४५
४ पौराणिक कल्पित स्थान	१५
५ काम विमाञ्जन तथा ग्रह गणनादि	१५१

खंड ४—व्यापार, व्यवसाय, कृषि, ग्राम-प्रबंध
तथा नग, धातु, सिक्के [पृ० १५३—१८१]

१ व्यापार और वाणिज्य	१५३
२ व्यवसाय तथा कृषि	१५६
३ ग्राम प्रबंध तथा कृषि	१६८
४ नग धातु तथा सिक्के	१७३
५ प्रतिष्ठ पौराणिक मण्डप	१७७

खंड ५—राजदरबार, शासन-व्यवस्था तथा युद्ध [पृ० १८३—२०१]

१ राजा राजदरबार तथा मन्त्र	१८५
२ शासन व्यवस्था	१८२
३ युद्ध तथा शरणागति	१८४

खंड ६—सामाजिक संगठन, संस्कार तथा स्वीकार [पृ० २०१—२३०]

१ वर्ण-व्यवस्था तथा जाति	२०५
२ सती-प्रथा	२०८
३ संस्कार, वृद्धकर्म तथा प्राथम धर्म	२०८
४ स्वीकार	२२६

खंड ७—धर्म तथा दर्शन [पृ० २३१—२५७]

१ दार्शनिक तथा धार्मिक सभ्यता	२३३
२ मोक्ष मार्ग से संबंधित शब्द	२४
३ धार्मिक कृत्य	२४५
४ धर्मविस्वास	२४२
५ धर्म सामाजिक शब्द	२४६

खंड ८—साहित्य, संगीत तथा नृत्य [पृ० २५६—२८३]

१ साहित्यिक शब्द	२६१
२ वाद्य-यन्त्र	२६७
३ सगीत संबंधी पारिभाषिक शब्दावली	२७८
४ रूप चरित्र	२७६
५ लोकगीत	२८
६ नृत्य	२८२

खंड ९—पशु-पक्षी [पृ० २८५—३१४]

१ पक्षी पशु	२८७
२ पशु पक्षी	२८८
३ पशु देने वाले जाति	२८२

अध्याय

पृष्ठ

४	सबारी के लिए उपयोगी पशु	२६३
५.	जल में रहने वाले जानवर	२६६
६	सर्व तथा अन्य रेंगने वाले जानवर	३
७	कीट पतंग	१ ३
८.	पक्षी	३ १
९	कल्पित पौराणिक पशु-पक्षी	३१३

खंड १०—बृच, सप्ता तथा पुष्प [पृ० २१५—३३१]

१	बृचादि के सूचक साधारण लक्षण	३१७
२	पुष्पों के नाम	३२८
३	पुष्प-बृच	३२५
४	फलों के बृच	३२७
५	अन्य बृचों के नाम	३२८
६	भ्रातृ सप्ता आदि	३२९
७	कल्पित पौराणिक बृच	३३

खंड ११—गृहस्थी की उपयोगी वस्तुएँ [पृ० ३३३—३५३]

१	साधारण पात्री के नाम	३३५
२	भोजन करने के पात्र	३३९
३	अन्य पात्र	३४
४	अन्य छोटी वस्तुएँ	३४१
५.	बैठने तथा सोने के उपकरण	३५

खंड १२—मनोविनोद तथा वाहन [पृ० ३५५—३६७]

१	मनोविनोद के साधन	३५७
२	वाहन	३६४
३	दूरी के साधन	३६७

सम्मानात्मक

३६९

सहायक-ग्रंथों की सूची

क मुख्य-ग्रन्थ

सूचना—ग्रन्थों के आवश्यक उचित कोष्ठक में दिए गए हैं ।

प्रष्टज्ञाप और कलाग्र सम्यग्वाय (भाग १ २)	डा दीनदयालु मुण्ड
भास्ति प्रकबरी (भास्ति म)	हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग २ ४ वि । भाषान्तरकार तथा संपादक श्री रामलाल पांडेय विद्या मंदिर कानपुर, सन् १९३५ ई । श्री बुद्धी दास 'राय' ब्रज साहित्य मंडल मयुरा सं २ १३वि । श्री चम्पाप्रसाद मुसम हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद ।
प्रष्टज्ञाप के वाच-दत्त (प्रष्टज्ञाप)	डा रामकृष्णार बर्मा
कृष्णक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली [प्रलीकड़ चेर की बोली के म बार पर] (इ बी०)	साहित्य मयन लिमिटेड प्रयाग १९३७ । डा हरिहर प्रसाद
कबीर का रहस्यवाद	राजकमल प्रकाशन चित्तूर १९५३ । डा देवकी लंनन श्रीवास्तव
ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली (प्रा क)	लखनऊ विरविद्यालय स २ १४ वि । डा मोतीचन्द्र
मुसवीबास की भाषा (पु भा)	घारही मठार प्रयाग प्र स २ ७ वि । डा सत्येन्द्र
प्राचीन भारतीय ब्रह्मसूत्रा (प्रा भा वे)	ब्रज साहित्य मंडल मयुरा प्रथम संस्करण वार्धस्त्रीय पूर्विका सं २ ४ । डा सत्येन्द्र
ब्रज की लोक कहानियाँ	ब्रजसाहित्य मंडल मयुरा सूर भवन्ती २ १५
ब्रज लोक संस्कृति	डा सत्येन्द्र
ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन	श्री विरभीलाल मठ
भारतीय विनम्रता का विकास	मस्की कला कुटीर, बाबियाबाद १९५७ ई
सूर की भाषा	डा प्रेमनाथयश टंडन हिंदी साहित्य मठार, लखनऊ, १९५७ ई ।

सुर-निर्णय

संगीत शास्त्र (भाग १)

संस्कृत साहित्य की क्यारेखा

हृदयचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन
(हृदय सां घ)

हिंदुओं के ज्ञत पर्व और त्यौहार

श्री द्वारिका प्रसाद पाटील तथा श्री प्रभुदयाल मीठम
अग्रवाल प्रेस मथुरा प्रथम सं० श्रीकृष्णचण्माष्टमी
१ ६ वि० ।

श्री महेश नारायण सक्सेना ।

पं चन्द्रसेखर पांडेय तथा श्री शक्ति कुमार नानुराम
श्याम साहित्य निकेतन १९५४ ई ।

डा बासुदेव शरद अग्रवाल

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् सम्मेलन भवन प्रथम
सं वि सं २ १ ।

श्री रामप्रताप त्रिपाठी

किताब मंडल इलाहाबाद १९५७ ई० ।

लु काव्य-ग्रन्थ

रामचन्द्र शुक्ल अग्रवालकी जवाहरलाल

काशी नागरी प्रचारिणी सभा १९२ ई ।

डा बासुदेव शरद अग्रवाल

साहित्य सदन बिरसाबि झाँसी १ १२ वि ।

श्री ब्रह्मचर शास्त्रा १९५३ ई ।

श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार,

नीता प्रेस बोरसपुर १ १ सं ।

नीता प्रेस बोरसपुर, १ ११ सं ।

ग कोश

श्री रामचन्द्र वर्मा

हिंदी साहित्य कूटीर, बनारस ।

श्री रामाशुनर दास ना प्र सभा काशी ।

चतुर्वेदी द्वारका-प्रसाद शर्मा

रामनारायण माल इलाहाबाद ।

श्री रामचन्द्र वर्मा

घ पत्र-पत्रिकाएँ

पारिवर्तन-मासवीर्य १ ८ संक ३

‘बस हिंदी शब्दों की गिरावट’

डा बासुदेव शरद अग्रवाल ।

वैज-व्येष्ट २ ११ संक १

‘भाषीय प्रतिष्ठान क्षेत्र में आभूषणों का महत्त्व’

डा विद्याभूषण मिश्र ।

तुमसी-बंभासी बूखण खंड

(तु सं०)

पद्मावत मूल और संजीवनी टीका

(प सं टी)

मेघदूतम् (कामिदास विरचित)

श्री रामचरित मानस

(मानस)

श्रीमद्भगवद् गीता

(गीता)

प्रामाणिक हिंदी कोश

हिंदी शब्दसागर

संस्कृत शब्दार्थ कोस्तुम

जर्न-हिंदी कोश

हिंदी-प्रगुलीमन

(हि प्रगु)

धारिक-भानसीर्य २० ७ संक ३

'हिंदी के सिमाई संवदी शब्द और उनकी व्युत्पत्ति'
डा हरिहर प्रसाद गुप्त ।

पीप-पत्रागुन २०१ संक ४

'कुल बाणीक शब्दों की व्युत्पत्ति'
डा हरिहर प्रसाद गुप्त ।

अक्तुबर-दिसम्बर १९५७ संक ४

'संस्कारों से संबंधित शब्दावली'
डा भम्मा प्रसाद सुमन ।

ड अग्रेसी-ग्रन्थ

A History of Sanskrit literature, Sri B N Das Gupta,
Classical Period (Vol. 1) and Sri S K. Da,

University of Calcutta, 1947

Am I Akbari

Abul Fasl translated from

Vol 1

Persian by H Blochmann

1873-94

(बाहि)

Glorious of India on Indian
Culture and Civilization.

Dr P K Acharya,

Jay Shanker Brothers, 1952,

(ओरीज प्राइ इंडिया)

India As Known to Panini

Dr V S Agrawal

[A Study of the Cultural
Material in the Ashta-
dhyayi]

Printed by J K Sastri, Alla-

habad Law Journal Press, 1953

(इंडिया ऐंड लेस दू पाकिनि)

Life And Conditions of the Kunwar Muhammad Ashraf -
People of Hindustan

(1200-1500 A. D)

Mainly based on Islamic
Sources

(मथुरा)

Mathura, A District

F S Growse M. A. 1874

Memor (Part I)

Printed at the North Western

(मथुरा)

Provinces, Govt Press

Stories De Mogor or Mogal
India (1663-1708) Vol. 1-4

Niccolao Manucci Venetian, 17

Translated with introduction
by W Irvine London

(मगूबी)

John Murray 1907

Studies in Mughal Printings. Dr Kaumudi.

(कीमुदी)

The Court Life of the Great
Mughals (1556-1707)
Mainly based on Persian and
European Sources

Sri M. A. Ansari

(प्रस्ताव)

F Bernier

Travels In the Mogul Empire,
(1666-1668 A. D)

A revised and improved edi-
tion based upon J Brook's
translation by A. Constable,
W A. Constable And Com-
pany

(बर्नियर)

संकेत-सूची

अ	--	अंग्रेजी
प्र	---	परासी
अध्या	--	अध्याय
क	---	कद
दु	---	दुर्घ
देश	--	देश
परि	---	परिशिष्ट
पु	--	पृष्ठ
प्र	---	प्रकरण
प्र	--	प्रारंभ
भा	---	भाग
श्लो	--	श्लोक
सं	--	संस्कृत

सूचना—पुस्तकों के संक्षिप्त नाम सहायक-शब्दों की धृषी में दिए गए हैं ।

खण्ड १

तस्त्रामूषणों के नाम

१ वस्त्र के पर्यायवाची शब्द

१—वस्त्र के अर्थ में सूरसागर में कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं। ये शब्द या तो साधारणतया अनेक प्रकार के परिधियों के लिए आये हैं अथवा किसी वस्त्र विशेष को ओर संकेत करते हैं। वस्त्र (१८६ ६५३) [सं वसनं] तथा अम्बर (६४२ २४७ ३६) [सं अम्बरं] शब्द सूरसागर के अधिकांश पदों में वस्त्र के साधारण अर्थ में आये हैं वसन-वसन की चित्त न करे। विस्त्रंभर सब वस्त्र की मरै। (३६६)। कृष्णवर्मोत्सव पर मंद हाथ वस्त्र-वस्त्र के परिधान रत्नामूष्य आदि बान करने का उल्लेख अनेक पदों में है —

‘तत्र अम्बर और मंयाह, सारी सुरंघ चुनी।

ते बीनी बजुनि बुलाह बैसी पाहि कनी।

अथवा— सर मनि-माना पहिराह, वसन विचिष विसे।

ई बान-मान-परिधान पूरण काम किये। (६४२)

अथवा— ‘इक पहिले ही आसा लाने बहुत विनिमि तैं साए,

ते पहिरे कंचन-मनि भूपन माना वसन धनूप।’ (६५३)

तथा— ‘है बाढ़िनि कंचन-मनि-मुक्ता माना वसन धनूप। (६५५)

वसन स्वर बानिका राधा के परिधान वर्णन में भी प्रयुक्त हुआ है —

‘नील वसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि क्लवि मङ्गलोरी’ (१८६)।

प्रथम स्कंध के शीपवी-वस्त्र-हूरख प्रसंग में ‘वसन’ तथा ‘अम्बर’ शीपवी की सारी के लिये आये हैं^१ —

‘बुसासन जब गहरी शीपवी तब विहि वसन बढावी’ (३२)

‘अम्बर बहुत शीपवी राखी पलटि अंघ-मुठ नाई’ (३३)

‘सकल समा में पीठि बुसासन अम्बर बानि गहरी’ (२४७)।

इन्द्र के वस्त्रों में बराबर पीत वसन तथा पीताम्बर का उल्लेख किया गया है। यह कहीं तो अश्वोवस्त्र कहीं अश्वरीय के लिये आये हैं। कहीं-कहीं ‘वसन’ विधाने वाले वस्त्र

१—मानस, बाल, १६३, ‘हाटक जेनु वसन मनि रूप कियन्ह कई बीनु’—राम के वस्त्र पर बान।

मानस, बाल, ३१६, ‘मनि वसन भूपन भूरि बारहि, नारि भंगल पाछी’—राम-विवाह के अवसर पर।

२—मानस, बाल, ३१६ ‘किकि कंड कुति स्यामल भोगा, लड़ित विनिरक वसन सुरपा’—राम कम वर्णन।

३—मानस, बाल, ३२८ ‘परत पाँवों वसन धनूपा’।

के धर्ष में धाया है—यही थोड़ी ज़ात बन गई शेज की बसतन, वहीं निवारिष्ठ में हूँ बूँद धाँह नाम की। (२१३४)।

२—थोड़े ही स्थानों में एक शब्द परिधान (६४२) [छं परिधानम्—वस्त्र धारण करना] मिलता है। यथा नामक वस्त्र के नीचे पहना जाने वाला एक वस्त्र 'परिधानी यम्' भी था। वृत्तरा उत्प्रेक्षणीय शब्द कापरा^१ (६५८, २१३) [छं कर्पटः कर्पटम्] है—'काढ़ी कोरे कापरा (घब) काढ़ी भी के मीन। जाति-पाति पहिराई के (सब) कटी लड़ी की चार। (६५८)।

अथवा—'कापर बान पहिरि तुम धाए,

बबटु बु मिनि उगही पै बीये जिनि तुम रोऊन पंथ पठाए (२१३)।

'कर्पट' २ प्रायः कपड़े की चीर या पेवंध नये पुराने कपड़े को कहते थे। मेरठ रंग के वस्त्र को भी कभी-कभी कर्पट कहते थे किन्तु वर्तमान काल में कपड़ा शब्द वस्त्र मात्र के धर्ष में प्रयुक्त होने लगा है।

कोरा (६५८) [छं कुमार]^२ बिना बुने नये वस्त्र या मिट्टी के बरतन को कहते हैं। यह प्रायः ऐसे नये सूटी वस्त्र के लिए धाया है जिसमें बिना बुने एक मटमैसापन होता है। इस प्रकार कोरा शब्द एक सीमित धर्ष में कपड़े या मिट्टी के बरतन के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने लगा। सूरसागर में भी कोरा शब्द इसी धर्ष में धाया है 'काढ़ी कोरे कपरा (६५८)। मेरठ की बोझी में धाया भी 'कोरा पिठ' कपड़ा के धर्ष में बोला जाता है। नये वस्त्र के लिए नये शब्द के अतिरिक्त नूतन या नव भी धाया है—'उन पहिरे नूतन चीर (६५२)। चीर उतारि वस्त्र नव^३ पहिरी। (११९६)।

३—पाश्चिमासीन चीर (१४७ ६४२) [छं चीर] शब्द भी सूरसागर में अनेक बार प्रयुक्त किया गया है। पत्र शब्द प्रायः छारी या चोटी के धर्ष में अधिक धाया है। प्रथम स्कंध के जौनरी-बीर-हरण प्रबंध में बहु छारी के धर्ष में ही मिलता है—'एक चीर लुटी मेरे पर, सो इन हारन बझी। इन बगरीछ / राखि रहि धबसर प्रकट पुकारि कह्यो। (२४७)

अथवा—'मजिठ-हैठ प्रह्लास उवाच्यो जौपकि-बीर बझ्यो। (९)।

वस्त्र स्कन्ध में कृष्ण-वस्त्रोत्पन्न तथा धन्य प्रशंसा में भी चीर कही-कही छारी या झोझी का धर्ष देता है—'नव किछोरी मुखि हूँ हूँ गहति बसुरा पाइ। करि मबिपल पोसिका पहिरे धनुषन चीर। (१४४)

या—'उन पहिरे नूतन चीर, काबर नैन बिये।

कसि कंचुकि तिलक ललाट लोहित झर दिये। (१४२)

अथवा—'एकनि को वीरान धमपंथ एकनि की पहिरावठ चीर।^४

एकनि को गुपन पाटम्बर एकनि की बु बैत नव झीर। (६४२)।

—कृष्ण तथा वस्त्राभ मक्कल के लिए माता यशोदा ॥ भक्त रहि है—

१—य सं ध्या ९७६।१ 'रतनतेनि कहुँ कपरा धाये'।

२—सूर्य सां धा पु १३

३—हिन्दी सम्प्रदायर के अनुसार 'कोरा' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत 'किल' से है।

उत्तर में भी कोरा का धर्ष लगा अथवा बाझता मिलता है।

४—वीरता धा २, वस्तुतः २२—'नवानि गुह्यति नरोत्तरास्ति।'।

५—मानस, बाल ६४७—'करहि निधानरि भनि गन चीर'।

मानस भांगत, मात न मानत भेद्यत बसोबा बगनी तीर
बगनी पनि समुक्त संकर्मन सीधत कान्ह बसो सीर-सीर । (७७६)
हृष्ट के लिए उखाड़ना लेकर घोषिया यशोदा के पास जाती हैं—

‘छूटी चुरी बोधि भरि क्यार्न फटे नीर बिछाई मात (६५) ।
हिंदोबा सीर्यक पयो में भी यह सख प्राप्त इसी धर्म में प्रयुक्त हुआ है—

‘पहिले नीर सुरंग छापी, बुह-बुह चुनरि बहुरंगनी
नील संध्या सात बोली कसि केसरि धंग सुरंगनी’ (१४५०)
या— ‘सब पहिलि चुनि-चुनि नीर बुहि बुहि चुनरी बहुरंग
कटि नील संध्या सात बोली उबटि केसरि धंग’ (१४५८)

तथा ‘नील-बाह बसुन-तीर बब सनना सुमय नीर, पहिले धंग निमिष नीर
नव सत सब सावे । (१४५७)।

४—यस्त्र^१ सख बी छूटछापर में छाया है—‘नीर उबारि बस्त्र नव पहिरी येह
देहरी पव तव बीबी । (१२६६) ।

नीर-इरक प्रसंग में ब्राह्मण उपर्युक्त तथी सख बस्त्र के साधारण धर्म में प्रयुक्त
किये गए हैं—

‘अंबर धिये मम भाए (१४१९)
‘अंबर बीन्हे परमानंद’ (१४१) ।
‘बसन नूपन सखनि पहिले’ (१४११)
‘सो यस्त्र हार सब पानहु’ (१४ ३)
‘मेरे कहीं छाह पहिरी पट’ (१४ ५)
‘नूपन नीर तहाँ कसु नाहि’ (१४०३)
‘बोली नीर हार निरुप (१४१७) ।

इन पद्यों में भी नीर तथा पत्र प्राप्त छापी की नीर संकेत करते हैं ।

कनके सीते समय यदि छिछुलन-सी पड़ जाती है तो उसके बिने फोन सख छाया है ।
मोम पकी चिताई दीप-युक्त मानते हैं । सूर के ‘मोम सख छोट या बोप के साधारण धर्म
में प्रयुक्त किया है—

१—मानस, बाल०, ३१५, ‘पहिले बरन बरन बर नीर’ । राम-बिबाह के प्रसंग पर
जिब्रा प्रमेक प्रकार की तुल्यता काहियों पढ़ने हुए थीं ।

मानस, अयोध्या०, १६५, ‘किन्तु आपस नूपन बसन, तल तले रसुबीर ।

विलयज हरण न हृदय कसु, पहिले बस्त्र नीर ।’

य सं० व्या० ‘बहे बाह भव बंदन नीक’ (१६८३)

‘चुनि पहिले तम बंदन नीक’ (१६८३)

‘पहिले सुरंग नीर पनि सीना’ (१६८५)

‘पटुबन्धु बानि नीर सब छोरे’ (१६८१)

छाईन की लूनी में सोने के काम के बच्चों में नीर का उल्लेख है । बायली के भी ‘मोति
साप भी छाये सोने बर्णन किया है ।

१—अधू, सं २, गुरु ४७, मंत्र ६ ‘बसा पुत्राय मातरी वपस्ति’ ।

कीर्ण तुम पावन प्रभु नहीं के कसु मो में भोनी' (११६) ।

५—सूर के प्रतिरिक्त जायती तथा तुलसीदास ने भी प्रायः ये सभी शब्द प्रयुक्त किये हैं और इन्हीं शब्दों में । घावकल इतने से कुछ शब्द जैसे 'बगन' परिधान तथा 'घंवर बोस-बाल में साधारणतया प्रयुक्त नहीं होते हैं । इनका स्थान प्रमुख रूप से 'करड़ा' शब्द ने ले लिया है । 'बस्त्र' भी सुनने में आता है । और शब्द 'बन रहा है' किन्तु विस्तृत मिश्र शब्द में । घावकल किसी कपड़े की लम्बी किन्तु पतली पट्टी को ही और कहते हैं । कुछ लोग करड़ा फाड़न के लिए 'बीरमा' शब्द भी काम में लाते हैं । वास्तव में और शब्द पुराने साहित्य में भी बिना सिले कम चौड़े पर लम्बे बस्त्रों के रूप में ही प्रयुक्त होता था जैसे छाड़ी घोड़ी मोड़ी या पमड़ी । यही शब्दों के कवचक रूप शब्द कपड़े की पतली पट्टी के लिए आने लगा है । मलीयक 'बेन' में 'बबर' 'बबरंग बीरा' एक प्रकार की चादर को कहते हैं जिसमें कई रंगों की धारियाँ होती हैं । यही की जनपदी बोनी में बर के बस्त्रों में एक सात रंग की पट्टी को भी 'बीरा' कहते हैं ।^१ कपड़े के लिए जनपदी बोनी में एक अन्य शब्द 'लता' [सं लतक] भी प्रयुक्त होता है तथा कभी-कभी पहले आने वाले विविध बस्त्रों के लिए 'बपक लता' ।

२-बस्त्रों की सामग्री तथा वनावट

६—सूरदास के कुछ श्लोकों से ही पदों से बस्त्रों के साथ उनकी वनावट के संबंध में भी पता चलता है । इनमें से कुछ नाम अत्यन्त प्राचीन हैं जैसे दुकूल तथा पट ।

दुकूल^२ (१५५६ १२५५) [सं दुकूल] शब्द प्रथम रूप से शीपरी-बस्त्रहरण शीर्षक पदों में एक दो स्त्रियों में धारा है—

जैसे दुकूल कोट घंवर जी सभा माँझ पति राखी' (१७)

दशम स्कन्ध में दुकूल के बस्त्रों की शोभा-वर्णन में भी दुकूल मिलता है—

'स्वाम-वैह दुकूल-गुणि मिलि लसति तुलसी-नाम' (१२५५) ।

१—क जी , प्र १६, अध्याय १

२—क जी , प्र १२, अध्याय ११

३—क जी , प्र ११, अध्याय १

४—हर्ष सां प्र , पृ ७६, ७७—बाल ने जो छः प्रकार के बस्त्र बताये हैं उनमें

दुकूल भी एक है । अमरकोश में लीम व दुकूल एक ही शब्द में आये हैं किन्तु बाल ने दोनों में भेद बताया है । समझता हूँ कि दोनों पीछों की छल के रेशों से बने होते थे । बाल ने 'दुकूल' तथा 'दुपूल' शब्द प्रयुक्त किये हैं । यह प्रायः मुकुन्द 'अतरी बंगाल' से आता था जिससे मोटी, उत्तरीय, चादर, बिनाछ धादि बनाये जाते थे । सावित्री तथा सरस्वती के बस्त्रों में दुकूल वस्त्र का प्रयोग है । दुपूल तथा दुकूल वस्त्र के अन्तर के संबंध में अनुमान है कि पहला महीन व दूसरा मोटा होता होगा । 'दुकूल' शब्द की व्युत्पत्ति संदिग्ध है । संभवतः यह धादिम या देव्य भाषा के 'दूल' कपड़ा से आया है जिससे कौत्तिक 'हि कोली' बना है । बोहरी चादर या बाल के रूप में बिकने के कारण 'दुकूल' या 'दुपूल' नाम पड़ गया होगा ।

पुस्तकाल में दुकूल अत्यन्त प्रिय वस्त्र था । इसमें है इतदुकूल वस्त्र-निर्मल कला का उत्कृष्ट उदाहरण था । बाल ने हर्ष के बस्त्रों में प्रयोग किया है ।

५—दु जी , गीता ७, 'बलकल विमल दुकूल मनोहर' ।

हिबोसा शीर्षक पत्रों में कई स्थाणों पर राधा-कृष्ण के नीसे तथा पोसे कुकूम वस्त्रों का उल्लेख है—

‘कनक मुर कुमिठ कंठन किकिनी मजकार ।
तहं कुंवरि मृपमानु के संय सोहं नंदकुमार ।
नील पीठ दुकूल स्यामल नीर धंय विकार ।
मनहं नीतन मन-मटा मै ठवित तरल-मकार । (१४५६)

मथवा— नीर स्यामल धंग मिलि बोठ भए एकहि मांति

नील पीठ दुकूल मुति बन बामिनी कुरि-मांति (१४५९) ।

दुकूल वस्त्र पोशों की छात के रेशे से बना अत्यन्त सुभाषम झीमसी रेशमी वस्त्र होता था—
सूरसागर के उल्लेखों से अनुमान होता है कि यह राज्य पहले हिन्द के रेशमी वस्त्र के प्रथ में ही प्रयुक्त हुआ है । शीवरी तथा कृष्ण-राधा संबंधी वस्त्रों के वर्णन में प्राचीन नाम देना स्वाभाविक ही है । सूरसागर में पीसे व मोसे रंगों के दुकूल का बिक्रि माया है जब कि प्राचीन साहित्य में पहले दुकूल का उल्लेख अधिक है^१ । वर्तमान काल में दुकूल शहर लोग मूल से गये हैं ।

७—दूसरा उल्लेखनीय शब्द पट (१४७४ १४५७ १२४२) [सं पटः] है । यह शब्द अनेक पत्रों में प्रयुक्त हुआ है । शीवरी वस्त्र-हरण प्रसंग में वस्त्र के अन्त्य परमिवाची शब्दों के अतिरिक्त ‘पट’ भी माया है—

‘सुमिरठ नाम रुपव-सनया की पट’ अनेक । बिस्तारपी’ (१७)

या—‘सुमिरठ पट की कोट बड़यो तब दुकूल सागर सबरी’ । (१६) ।

कृष्ण तथा राधा के वस्त्रों में नीसे या पीठ-पट का पहने भी बिक्रि किया जा चुका है—‘बा पट पीठ की फहराति (२७६) ।

या—नव नील-तन-वनस्याम । नव पीठपट धनिराम’ (१२४२)

तथा—नील पीठ पट बन बामिनी की नीर’ (१४५७) ।

पट के अतिरिक्त पटंबर (१५१६ ६४१) [सं पट + धंबर] पटंबर-धंबर (११६ ६५४) तथा पाटि-पटम्बर (४९) शब्द प्रथम स्कन्ध में मिलन तथा वस्त्र स्कन्ध के कृष्ण-बालोत्सव संबंधी पत्रों में विशेष रूप से मिलते हैं—‘पाटम्बर अम्बर तबि मूरि पटिपट’ (१६६) तथा ‘तुम्हरे मन सबहि विनार किकिनि मुर पट पटंबर मागो मिये किरे पटवार’ (४९) ।

१—मा० भा० है, पृ १४७ व्याख्यान की टीका में ‘श्रीरक्षिपय विविष्ट कल्पितिक’ दिया गया है किन्तु निघोच ७, (पृ० ४६७) में दूसरी व्याख्या है ‘दुगुत्तो कन्धो तस्त बापो वैतु उदुत्तो दुदुरन्धति धारिण्य तस्य बाव मूतो मूतो ताहे कन्धति दुगुत्तो’, अर्थात् दुकूल वस्त्र की छात के रेशे पानी में डूट कर धसग कर लेते हैं और उनसे मूल काट कर बनाते हैं । यही व्याख्या ठीक लगती है । ऐसा लगना है कि लोग ठीक धर्म मूल कर प्रत्येक महीने सुने बख को दुकूल कहते लगे ।

२—मा० भा० है, पृ १४

मा० भा० है, पृ १०

हर्ष सा० अ, पृ १५

पुनः-अग्न्य पर मंत्र पठ-पाठस्मर भी दान करते हैं—

‘एकनि कीं भूषण पाटंघर, एकनि कीं पु वेत नग हीर (६४३)

अथवा—‘हीरा उल्ल-पटंघर हंसकी सींहे ब्रज के भूप’ (६५६)

या —‘ममि मामिक पाटंघर घांघर लेत न बनत विगुति’ (६५४) ।

छात्री के पट का भी उल्लेख किया गया है—‘कचुकि श्रीनि श्रीनि पट छात्री चंदन छरस सुखं’ (४४३३) ।

यहाँ पट के प्रतिरिक्त ‘श्रीनि’ शब्द की ओर भी ध्यान जाता है । पदमावत में भी ‘श्रीनि’ का उल्लेख है (पहिले सुरंग बीर बनि श्रीना—३३६।२) ।

हिंदोसा शीर्षक कुछ पदों में रसीन या पांच रंग के पाट की डोरी का वर्णन है—

‘पंचरंग पाट कमक मिमि डोरी धविही धुवर बनावनी’ (३४६) ।

अथवा—‘पंच रंग बर पाट-यवित्रा विष विष फीटा गोहनी

नाचति सखी संगीत परस्पर पहिरि पवित्रा सोहनी

तथा—‘पंचरंग-बरन पाट की डोरी धविहीं सींच बनाई’ ।

पाट या पट शब्द बरन-बंड के धर्म में आते रहे हैं । ‘पट्ट’ शब्द अत्यन्त प्राचीन है तथा रेशम का घोटक था^२ । सूरसागर की उपर्युक्त पंक्तियों में पट या पाट शब्द रेशमी बस्त्र का ही पर्यायवाची आत होता है । इन्द्र राधा तथा द्वीपदी के बस्त्रों में रेशमी बस्त्रों का उल्लेख अधिक स्वाभाविक है । अरर के साथ प्रयुक्त होने के कारण व सूती तथा रेशमी बस्त्रों में भी संभवत आत किया गया है । ‘पंच रंग’ पाट की डोरी के लिए अथ पदों में ‘बहुरंग रेशम बरहू’ प्रयुक्त किया गया है अतः ‘पंचरंग पाट’ का धर्म भी पांचरंग के रेशम से बनी डोरी अधिक उपयुक्त होगा ।

कुछ स्वतंत्र पर पट शब्द साधारण बस्त्र बंड के लिये भी लिया जा सकता है—

१—हर्ष सां अ , पृ २३—हृष के बस्त्रों में भी वास्तुवि के केंद्रुल के समान अत्यन्त मृदुल इकेत केन जैसे अजरवास का उल्लेख है । बाण ने इसके लिये ‘मन्वापु क’ शब्द भी प्रयुक्त किया है । बाण ने धान्य विशेषण ‘अकडेररम्मावर्मअमेत’, ‘मि-स्वातहार्य’ तथा ‘स्पष्टानुमेम’ दिये हैं । (पृ ७६) अंग्रेजी में इसी को ‘किंग डू परी’ भी कहते हैं । सुगत काल में इनको ‘बाफू-हवा’ विशेषण देते थे (पृ ७६) ।

२—आ भा के , पृ २९, २७, २८, २९—जैनार्थ जगद्गुरु प्रसि में ‘पुनवार’ रेशमी बस्त्र विनये बाली ध्यक्षि के लिये आया है (पृ २९) । आचार्य सुत्र में (२।३।१।४) भी पट्ट शब्द रेशम का बोधक है । (पृ २७) महाभारत के समाप्ति में (२।४७।२२) बाह्मीक तथा भीम के बने कीटज तथा बहुत बस्त्रों का उल्लेख है । वात्सीकि रामायण में (३।१८।३) राम-वर्चन प्रताप में काम व पट्ट के पांचके विछाने का उल्लेख है । भीम-पट्ट का धर्म भीम का बना रेशमी कपड़ा था (पृ २८) ।

पृ ६३, दिव्यावतल (पृ ३१६) में रेशमी बस्त्र के लिए पट्टपट्ट कभीन, कीसेय तथा भीत-पट्ट धर्म आये हैं । (पृ १४८) आचार्य टीका में (२३, १, ३) ‘पट्ट लूज निष्पाजनि’ व्याख्या है । हर्ष सां अ , पृ ७८—जैनग्रन्थ के अनुयोगद्वार सुत्र में कीटज बस्त्र पांच प्रकार के बताये गये हैं—पट्ट, मलय, धस्तुन, भीमाधुव तथा किमिरत । पट्ट ॥ पाट-संज्ञक रेशम तथा किमिरत से सुनहरे रंग के रूखा रेशम का अनुमान होता है । पृ ६८, १२३, पट्ट धर्म सुत्र के धर्म में भी आया है, जैसे शीर्षपट्ट ।

‘पट कुक्षिं दुरवम शिखं वेषत ताके संयुज धाये (हो) (७)

या—‘दुपट मुठा पट हीन करण की कुसासन धमिमानी’ (२५०)

तथा—‘मुमिरत नाम दुपट लगमा की पट अनेक विस्तारपी (२७) ।

सुरसागर में पट के ये दोनों धन बहुत स्पष्ट रूप से प्रमाण प्रदान नहीं जा सकते हैं। धातुकृत पट खरब वस्त्र के धर्म में आता है या फिर धातुकर मुंबट या पर्से के धर्म में प्रयुक्त होता है।

८—‘कहीं-कहीं रेशमी साड़ी या बोली के लिए पटौले या पटौरी (२५६ २१११)

[य पटुक्क पत्रोली] खरब कृष्ण तथा राधा के वस्त्रों में मिल जाते हैं —

‘बाई’ भीठ मंदनवन से डकि लह पोत पटोले (२५६)

या—‘धन मरमरी पनारी राजति छवि निरखत रीकः ठाड़े हरि (२१११) ।

होमी प्रसंग में भी एक ही पौछवि ललित पटोलनि’ धाया है।

गुजराती पटोल वस्त्र धातु भी प्रसिद्ध है। पाटन के पटोलों में रंजित सूत की बुनाई है। भी ‘माठे’ [धं भक्ति] बनाते हैं। पटोल के मूल म धं ‘पटुक्क’ खरब है इसका तथा ‘दुकूल’ का कम एक ही है। पटोर [धं पत्रोली] रेशम की खोरस्वामी ने कीड़ों की लाल से बना बताया है। गुप्तकाल में पत्रोली को जोमरी मानते थे तथा यह एक प्रकार का मुठा रेशम होता था। पद्मावत तथा मानस में भी ‘पटारी’ रेशमी सारी या बोली का उल्लेख आया है।

९—सुरसागर में प्रयुक्त धन्य चत्वेष्टनीय शब्द रंसस (६५६, १४४६) [अध्वरेशम] है। यह प्रायः पालमे तथा द्वितीये की खोरी के विशेष रूप में धाया है—

‘पंवरम रंसम मगाठ हीरा मोतिनि मगाठ’ (६५६)

तथा—‘बहुंरम रंसम-बकल होत राय भ्रमोर’ (१४४६) ।

धातुकृत प्रंवेष्टी शब्द सिक्क के अतिरिक्त रेशम शब्द सबसे बड़ा प्रयुक्त होता है। छारसी उद्गम होने के कारण स्पष्ट ही है कि यह शब्द मुसलमानी संस्कृति के साथ आया होगा।

कुछ पर्से में तनमुख (४४१५) [तन + मुख] नामक वस्त्र का उल्लेख हुआ है। तन मुख धम्मवत धातु का फूलदार कपड़ा होता था। प्रायः इन सभी स्वरों में गोपियों के श्रु गान के प्रसंग पर तनमुख की सारी किसी धन्य वस्त्र की सारी के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। धातु प्रकम्पनी में सुठी कपड़ों की सूची में तनमुख का नाम है। एक बाल का मुख्य बार रुपये से पौछ मोहर तक बाँ। गोपियाँ उद्गम से कहती हैं —

१—हर्ष सां ध , पृ ७४

२—हर्ष सां ध , पृ १७

३—हर्ष सां ध , पृ ७७—‘लहुक्कपटविपनेपु कृमितालोलीकृतं पत्रोलीम्’—
लीरस्वामी, ‘पत्रोली धौतकीधनं बहुमूर्धनं गृहायनम्’—प्रमदलोचन ।

४—य सां ध्या , १४५१ ‘बहुनावति नह पहरि पटोरी’ १८५१२ ‘मैं खोरी संत
‘पहरि पटोरी’ १८५१२ ‘लहरि पटोरी’ (१८५११)—नामक भारी रेशमी कपड़ा साड़ी में बर
पस वाली कम्पा के लिए भेजते थे। प्रबन्धों में ये शब्द धातु भी प्रयुक्त होते हैं।

या जा है , पृ १४५—मुसलमानी में बरतोर के बने बज बहुत प्रचलित थे। कर्ण
ते यह ‘पटोल’ नामक बज लगता है।

मानस, बाल , १२६—‘कम्बल बसन विविध पटोरे ।’

‘ह्रीं हं तरल तरवीना नार्के भव तनमुख की घाटी’ (४४३५)।

बीपियों के बहि-बाग राख हिबोला होसी घाबि प्रसंगों के श्रृंगार-संबंधों परों में ही प्रायः छन्दोबध मिलता है :—

‘मुचली भोग सिंगार संभारति’।

* * * *

‘सुश्रवटिका कटि जंहुया रंग एत तनमुख की घाटी।

सूर ब्यासि बहि बेंचन निकरी, पय मूपुर-मुनि घाटी (२११६)।

भक्ति के उपकरणों में बस्त्रकला (३३३) [च० बस्त्रक] का छन्दोबध स्वाभाविक है। बस्त्रक बस्त्र वृक्ष की छान से बनते थे तथा प्राचीन काल में साधु मुनि तथा ब्राह्मण वर्ग के लोगों में प्रचलित था। बौद्ध सिद्धियों को बस्त्रक पहनने की अनुमति न थी। अमरकोश में बस्त्रों के चार प्रकार मिलते हैं^१। ब्राह्मण के रेशे से निर्मित बस्त्र बस्त्र नाम से विखित है। अतएव सूरदासर में भी भक्ति-संबंधी परों में बस्त्रक का छन्दोबध स्वाभाविक ही है—‘असन-काज प्रभु बन-फल करे। तुपा हैत बन करला भरे। पात्र-स्नान हाथ हरि बीन्हे। बसन काज बस्त्रक प्रभु कीन्हे। (३३३)।

तबय स्त्रोत्र में भी बनबासी एत का प्रयानुसार रेशमी तथा बहुमुख्य बस्त्रों का त्याग कर बस्त्रक बस्त्र धरणा हुम-वर्म (४८१) धारण करना उचित ही है—‘हृद विरक्त सिर बटा भरे, हुमवर्म बसन सब याव’—४८२।

१ —बस्त्रों की बनावट के सम्बन्ध में कमलाचार या ब्रह्मेन्द्र की तरह के बस्त्र का बोध भी एक पर हाथ होता है। तिरु कण्ठ के ‘अमुनि’ की बनावट ऐसी ही बताई गई है—‘धनीयै अमुनि तामे कचन सगा (३५७)। तुलसी ने ‘बरकसी’ शब्द इसी धर्म में प्रयुक्त किया है।^२ सोने चांदी के ठाठों के बस्त्र बनाने की कला प्राचीन भारत में भी थी। प्रायः सभी वर्गों में इस प्रकार के बस्त्र प्रचलित हैं तथा बनावट इनके बुने जाने का प्रमाण केन्द्र है। सर्वत्र से ये बस्त्र भारत से विदेशों में जाते रहे हैं।

सूरदासर में कुछ स्पष्ट प्रसंगों में सूत्र (२३८, ४६) का निर्देश भी है। यह बीपक के बाब प्रायः प्राया है—‘यह बीपक बन तेन तून तिम सुत ब्यासा घवि घोर’ (४६) धरना ‘तेन-तून-पावक-मुट भरि भरि न बिना प्रकासत’ (३३६)। इसके घटिरिक्त सेमर (१२, १३६) [चं शास्त्रमः शास्त्रमिति] की घोर भी व्याग जाता है—‘अब सुफल बाढ़ि क्या सेमर की बाढ’ (१३६)। सेमर की बह के धर्म में भी तून का प्रयोग हुआ है—‘सेमर पूब सुरंग घति निरखत मुखित होत बन मूप। परसत बाँच तून उबरत मुख परत कुच के मूप। इस प्रकार अधिकतर मिथ्या सांसारिक धारणियों का उदाहरण सेमर की बह से दिया गया है। ब्रह्मचर्य प्रबंध में तून के साथ सन (४४९) [चं शब्द] का छन्दोबध भी है—‘सन पर सूय नीर पाटम्बर, ली संगूर बंभाए। तेन-तून पावक-मुट भरिके बेहत नही बरी।

तून तथा सन शब्द प्राचीन हैं। बौद्ध साहित्य में ‘सनी’ बस्त्र का उल्लेख है ही।^३

१—प्रा भा० वे, पृ ३१, (महाभारत मा० भा० ३)

२—प्रा भा वे, पृ १४४

३—तुलसी, बीता ४९ ‘सस्त जंगली खीनी शमिति की खनि धीनी,
सुंदर बरन सिर पनिया बरकसी।’

४—प्रा भा वे० पृ ३१

उसके बाद भी निधन होय उस की कनी चोटियाँ पहणते थे । धादि धाकरी में उन पटसन से रस्तियाँ बनाने का विधि है ।^१ तुम के धर्म में धाक धाधारण्य 'रई' राज्य बोला जाता है, जो सेमस तथा कपास दोनों के लिए ही धाया है । घूर ने भी धाकरी (१४७१) द्वारा रई राज्य भी तुम के धर्म में प्रयुक्त किया है — 'अग्नि उड़ी छिपित नैन संय फर पूँ' यही धाकरी' (१४७१) । काठिकी छत्रन में पटसन या कुमसन नामक पोशा लगाते हैं । इसी के ऊपरी रेशे से सब तैयार किया जाता है । तुमसी ने भी बस्त्र तथा मूब के धर्म का उल्लेख मानस में किया है ।^२ पद्मावत में भी 'पाट' राज्य रेशम के धर्म में धाया है ।^३ बस्त्र बनाने वालों के लिए पटबन्ध या पटुबन्ध [सं० पटुबाय] राज्य भी धाये हैं ।^४

३—वस्त्रों के रंग तथा रंगाई

११—सूरदासर में स्त्री पुरुषों के वस्त्रों के साब-साब बराबर उनके रंगों का निर्देश भी किया गया है । सारी का कुसुमी रंग उस समय का प्रिय रंग माना जाता है—'मूलन धाई रंग हिरारै । पंचरंग बरन कुसुमी सारी कबुकि सीँधी बोरै' (१४५६) अथवा 'नख-सिख धनि सिंगार बज-जुबरी तनु बंझिया कुसुमी बोरी की ।' (१४६०) । कृष्ण के राजा-रूप बखन में भी इस राज्य का उल्लेख धाया है—'स्याम धंग कुसुमी नई सारी' (१४९७) अथवा 'स्याम धंग कुसुमी नई सारी कस गुंज की भाँति इत नागरि नीलाबर पहिरे बनु धामिनि बत काँति ।' (२७०१) तथा 'साँवरे छन कुसुमी सारी ।' (२७८१) ।

उपर्युक्त पद्याओं में इस रंग की तुलना मुवा फल अथवा धामिनि से होने के कारण इसके सही बरख का भी अनुमान हो जाता है । कुसुम पुष्प के पीचे का नाम कर है जिनम असमृ भसग साक तथा पीचे दो बरखों के फूल आते हैं । इनसे ही रंग भी तैयार होता है । बर्षा ऋतु में पद्मावती में भी इस रंग का बोला पढ़न मिया था ।^५

१२—सूरदास प्रसिद्ध उल्लिखित रंग नीला है । नीलाम्बर सारी के अनेक उल्लेख हैं । बसराम 'रवा तथा कोपियों के वस्त्र धाव' इस रंग के बताए गए हैं—'नील बसन धामिनि बनी' (१४८५) अथवा 'उत गिरिपर नीलाम्बर सारी बूँज भोट निहारै' (२७७) । सारी की किनार धाव' नाम बताई गई है—'खाल किनि की सारी' (१११२) । किनि का धर्म किनार है । सारी पाँच रंगों की भी रंभी जाती थी—'धंग पंचरंग सारि' (१६९१) अथवा 'पंचरंग सारी बहुत विवाई' (१५२८) । धावकल सतरंगी सारी या इंधनपुपी भाँति की सारी रमन की प्रथा बस रही है । आसही ने साव रंगों का उल्लेख किया है । घूर ने बलमान का रंग पंचरंग

१—धादि धा, पृ १५१

२—मानस, अयोध्या०, १५५ 'पितु प्रापस भुवन बसन तात तजे रघुवीर ।

जिसमय हरपु न हृदय कछु पहिरे बस्त्र बोर ।'

३—य सं ध्या० १२११ 'बुद्धे बिसि नेहुवा श्री धनसुई । कथि पाट मरी सुनि बई ।'

४—य सं ध्या १८१४ 'भस पटबन्धु करबार सँवारे'

१२११, 'पञ्चमू भीर धानि सब धोरे' ।

५—य सं ध्या ११७७ 'हरियर सुमि कुसुमी बोला' ।

६—'इको रवतताया पीत कृष्णो हरितमेव च ।'

७—य सं ध्या० १२१५ 'सातुँ रंग को बिब बिबेरे' १५१२ 'सातुँ रंग तो सातुँ रंभी' ।

छतरंभी बताया है जो इंद्रधनुष के समान सोमा देता था—की बगमास लाल डर राजहि की सुपति बन बाब' (२६७६) अथवा 'इंद्रधनु गहि बन-बाम बहु सुम के' (२६७६) ।

१३—अनेक रंगों का मिश्रण भी कई पदों में है—'बुद्धि बुद्धि बृतरि बहुरंगनौ' (१४४८) या 'रंग रंग बहु भाति के गोपनि पहिराए' (१६६०) । बृहती रंगने की कला के संबंध में बताया जा चुका है । 'बुद्धिबुद्ध अथवा बहुबहु' (११२६)—'नीलाम्बर धोले ही घाए, घति बहुबहु नयो' सम्ब बटक रंग के बोधक हैं । इसको मात्र बोला [च० बोधा—बोध + क] रंग भी कहते हैं ।

कृष्ण के बहुनामकल सम्बन्धी पदों में उनके नखरंगी रूप तथा रंग-मय होने का विशेष अनेक पदों में है—'घानु बनी नखरंग पिवाटी अथवा 'घानु बने नखरंग छबीले (१२६१ २२६४) तथा 'अंग अंग रंग बरि घाए हो । (१२७५) । कृष्ण जगमोक्ष पर गहन के सम्बन्ध में भी कवि ने यही कहा है—'लाहन बोलहु नखरंगी' (६५८) ।

१४—छाटी के धन्व रंगों में लाल या सुरंग भी उल्लेखनीय है—'पहिरै नीर सुरंग छाटी' छाटी सुरंग मिलि तथा छाटी सुरंग छुड़ी' (६४६) । गोपियों का उमाना लाल मुगिया के फुंड से लेकर अत्यन्त सुन्दर बिज बोधा गया है—

भुवा मंथित रोरी रंग सेंदुर मांग छुड़ी

उर अंगन सङ्गत न जानि छाटी सुरंग छुड़ी

मनु लाल-मुनयनि पोंति पिबत छोरि बनी (६४२)२ ।

छाटी लाल तथा पीली दोनों रंगों काठी भी—'पीठ अकन सन नीर (१५११) नीलाम्बर पाटंबर छाटी सेत पीठ चुनटी अकलाए' (१४ २) । इसी प्रकार कंबुकी लङ्गा तथा धोड़नी के रंग प्रायः लाल तथा पीले ही बताये गये हैं—'नील लङ्गा लाल बोली (१८५)३ अथवा 'छाटी सुरंग मिलि नील लङ्गा सोम कंबुकि लाल' (१४५६) । बोड़े ही स्वर्णों में अंगिया तथा अपरना का रंग स्वेत बताया गया है—'स्वेत अंगिया अंग' (१४४६) तथा 'पहिरै छाटी चुनटी सेत अपरना सोले हो' (४४) । अंगिया का रंग लाल पीला अथवा कुसुमी भी रंगा जाता था—'छाटी पीठी अंगिया पहिरै, नव तन भूमक छाटी' (१४६१) 'कंबुकि कुसुम सुरंग' (१४८६) नीलाम्बर कंबुकि सुरंग तनु' (१४६) । शिवजी अंगिया दो रंगों की भी पहनती थी—'अंगिया नील मांझी छाटी' (१६७१) 'लाल बोली नील लङ्गा' (१७८६) । अंगता के कुछ बिजों में कई रंगों की अथवा चुन्डीदार कंबुक विहित है । कभी पीठ का रंग कटई व सामने का लाल है ।

१५—कृष्ण तथा बगवाम के कर्णों में कमल पीले तथा नीले रंगों का अधिकतम रूप से उल्लेख है । कृष्ण के परम्परगत पहनावे में पीताम्बर है अथ इसके अनेक उल्लेख स्वाभाविक हैं—'बाळबी कही स्वाम पुकार्यी । नीलाम्बर कर ऐंथि लियो हरि, मनु बाहर ठे अंग

१—य छ व्या १२६१५ 'सुरंग नीर लल तिलज बोपी ।'

२—य छ व्या १२६१७ 'पहुँलि पहिरि सुरंग लल बोला ।'

३—य छ व्या १२७१६, ७ 'सबे सुकय पडुमिती लाली, पल फूल सुन्दर लल रली 'करहि कुरेरे सुरंग रंगीनी, धी बोधा अवन लल बोली ।'

४—य छ व्या १२६०१२, ३, 'बरन बरन छाटी पहिराई—रायसुनी पिबर हुति छुटी ।

५—य छ व्या , १२६१२ 'छु दिया नीर कमलिया रली' ।

६—मुलती, मागध ११७ 'पियर अपरना कांलातोली पीठ चुनीत अनोहर बोली ।'

सु० बी , गीता०, १ ३ 'अमित चुनटी पीठ पिछोरी' ।

उवाच्यो' (१०७) 'पीताम्बर कर्हं मयी तुम्हारी कीर्णो जियो मही (३१३४)

अथवा— सीनैगो पियरो पट धाबत हूँ मेहरा (३१३५)

तथा पीठ बरन लखि पीठ बसम उर, पीठ भागु अंग सारि' (३१६७)। पीठ पट का उपमान प्राय उक्ति है—'उक्ति किषी पटपीठ' (२६७५)।

उषा तथा कृष्ण के बस्त्रों में भी नीले तथा पीले रंगों का ही मिश्रण है—'नील पीठ मुकुट स्यामल नीर अंग विकार' 'नीर स्याम मिलि नील पीठ छवि' (३४५)। 'नै कारी कामरी लड़ाई (२६०८) कामरी का रंग अथवा कामा बताया गया है। जमकी पाय में लावक या महाउर का रंग जगने का चमेल धनेक बार है—'सिबिम पाव बस्तार की जावक रंग मोने' (३१३) 'लटपटी पाय महाउर पागी (३२३३)। शिशु कृष्ण की चौतनी का रंग प्राय सात बताया गया है—'सिर नाम चौतनी' (७७)। 'पीठ भगुनिया' (७२५, ७५०) के साथ एक जगह भगुली जिन विभिन्न (७३६) भी बताई गई है।

१६—कहीं-कहीं धनेक रंगों के नाम एक साथ दिये गये हैं—'पहिरै बसन धनेक बरन उन मोल धरन छित पीठ (३४८७)। अथवा— जये बसन धामूपन पहिरत धरन छेत पाटंबर कोरी' (३५२३) पर २५३ म धनेक रंगों के नामों की सूची-सी मिल जाती है—

'स्याम-रंग रांभी बज गारी। नीर रंग सब रीन्हें डारी ॥
कुसुम-रंग मुक्कन पितु माता। हरित रंग मणिनी बर भ्राता ॥
बिना चारि में सब मिटि बही। स्याम रंग अबरामस रही ॥
उज्जवल रंग गोपिका गारी। स्याम रंग बिरिबर के भारी ॥
स्यामहि में सब रंग बसेरी। प्रगट बहार किं कह मेरी ॥
धरन छेत छित मुन्बर तारे। पीठ रंग पीताम्बर बारे ॥
नागा रंग स्याम मुलकारी। सूर स्याम-रंग बोप कुमारी ॥

इन पंक्तियों में यह संकेत भी है कि छत्रे तथा कामा मूल रंग हैं तथा कामे रंग पर वृष्ट रंग नहीं बन सकता। सुरसगर में इस प्रकार एक-एक रंग के कई-कई पर्यायवाची शब्द भी मिलते हैं जैसे मात के लुक्क मूहा सुही मास राता^१ धरन, लाहित [य० मघन स रक्त धरन लोहित] छत्रे के लिए छित^२ उज्जवल नीर तथा बजस [सं० श्वेत उज्जवल नीर, बजस] कामे के लिये काट स्यामल स्याम कृष्ण [सं० स्यामल स्याम काम कृष्ण] तथा पीसे के लिये पियरा पीठ [सं० पीठ] तथा हूरे के लिए हरा तथा हरित [सं० हरित] आदि।

१७—रंगों के बर्ण भी जगह-जगह उपमा या रूपक द्वारा स्पष्ट किये गये हैं। प्राय नीला रंग बादल के बर्ण का बताया गया है—'स्याम तनु धन नील मागी या मागी मज बल्लर पर कामिनी की कसा (२६५१)। पीला बर्ण कामिनि या स्वर्ण का बखित है—'कनक बरन तनु पीठ निघोरी' (२१४८)। छत्रे रंग का बर्ण जूना बक-पक्षि आदि से मिलाया गया है—

१—य सं ध्या, ३२६१६ 'जिमबा डोरिमा बी बीबरी। स्याम सेत पियरी हरी'।

२—४५५ 'बरन बरन पहिरै सब सारो'।

३—य सं ध्या, ३२६११ 'विद्यावन राता'।

४—य सं ध्या, ३३६१६ 'सेत विद्यावन लीर सुपेरी'।

‘हृदय चतु रंग’ (२५२७) अथवा—‘महीं बग पाति बर मोति-माला’ (२६७६)। सफेद वस्तुओं व वस्त्रों और काम मनुष्यों के समान निम्नलिखित हैं —

‘कुंठ वसन’ (२५५) ‘बाहिम वसन’ (२६६५) ‘वसन की वृत्ति तक्षित मानी’ (२५४) अथवा ‘अधर बिजुम’ (२४४१)।

१८—इस रंगों के प्रतिरिक्त फग या होची सीपक पर्वों में त्रिज वस्तुओं अथवा फूलों आदि से रंग बनाये जाते थे उनके नाम भी दिये गये हैं। इस अनेक प्रकार के फूलों तथा बाहुओं से रंग बनाये जाते थे—

‘हावनि से भरि भरि पिचकारी नाना रंग नुमन बोरी की’ (१४६)

या—बहु विधि सुमन अनेक रंग आवि उत्तम भाँति धरे (१४७१)

तथा—‘बूरि बाहु रंग बट धरे’ (१५१२)।

फूलों के रंगों में टेसू (१४६२) [छं किशुक] केसरि (१४६७) [छं केसरम्, केसरम्] कुम्कुमा (१४७२) [छं कुकुमम्] कुन्नुम (१४६८) [छं कुन्नुम] अथवा कुन्नुम [छं कुन्नुम] के रंग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—‘टेसू-कुन्नुम निबोह के रंगमीनी आभिमि’ (१४८६) या ‘टेसू कुन्नुम निबोह की’ (री) यस केसरि की रंग (१४६२) ‘कनक-कनक केसरि धरि स्याई आरि बियो हरि पर बोरी की’ (१४६) तथा ‘कनक कनक कुम्कुम धरि सीम्ही, कस्तूरी तामें बसि बोरी’ (१५१६)।

१९—टेसू [छं किशुक] अथवा पलाश वृक्ष के महीने में होती के समय में फूलता है। इसका पीले वर्ण का रंग होती में होता जाता है। इसके फूल एक साथ खिलते हैं तो ऐसा लगता है मानो वन में आक-सी लम बई है। मुरसावर म टेसू के रंग का उल्लेख है—‘हारस बग रतनारे बेखिमठ चहुँ विधि टेसू फूले’ (१४७२)। आसपी ने भी टेसू फूलने का वर्णन किया है।^१ भादने भकवरी में भी केसू या टेसू के सर्वांग में लिखा गया है।^२ पलाश के वृक्ष से अनेक उपयोगी वस्तुएँ भी बनती हैं जैसे पतली बंछियों से छायादार कच्चा काम से रस्सी और काबक तथा पत्ते से बोने। इस वृक्ष से गोंध भी प्राप्त होती है। उपवन-संस्कार में ब्रह्मचारी का वंछ मल-पात्र आदि भी बनते हैं। पाण्डिनि ने आषाढ़ या पलाश का उल्लेख किया है जो उपवन में काम आता था।^३ सूरसागर में बोने बनने का उल्लेख है—‘बीना-पलाश के’ (१८८६)। साहित्य में पलाश से संबंधित अनेक उपमायें व रूपक मिलते हैं।

२ — बुररा पीला केसर का है। इससे भी रंग बनाते थे। इसका रंग सजाई लिए हुए पीला या सोने के समान होता है। सूरसागर में इसके रंग का वर्ण बताया गया है—‘बरत केसर’ (१४८६) या ‘फल गुंजा की भाँति’ ‘अनु आभिमि’ (२७७१)। उसको केसरिया रंग कहते हैं। पद्मावत में भी ‘कुन्नुह-बानी’ (केसरिया) ‘कुन्नुम फूल’ तथा ‘केसर’ श्रौतवरण उल्लेख मिलते हैं।^४ भादने भकवरी से आषाढ (केसर) के बसाने तथा बुनने आदि

१—य त ध्या, १५३।३ ‘नील संबीठ टेसू वन रता’।

२—भादने भ पृ १८३

३—इंद्रिया एजु नोन दु पाणिनि, ध्या ३, पृ १३२

४—य त ध्या, २८३।१ ‘किरा धरयमा कु कु हु-बली’

१२७। ‘कुन्नुम फूल वस’

१२६। ‘सोन बरत वस केसर’।

की उस समय की प्रचलित विधियों का ज्ञान होता है।^१ इसका पीछा बभ्रुवाँ बगह पर सगाते हैं जो बाड़े में फूलता है। प्रत्येक फूल में तीन केसर होते हैं। केसर चुगने का ही काम कठिन होता है। चीनपर के पास के गाँव पमपुर में सबसे अधिक केसर उगाने का निर्देश धारिने प्रकबरी में है। धात्र भी स्पेन फारस तथा चीन में केसर होती है किन्तु कारमीर की सबसे अच्छी मानी गयी है। केसर का उपयोग वैद्यक शास्त्र में बड़ा ही तरह भी है। इसकी सुगंध तथा रंग अत्यन्त चित्ताकर्षक होते हैं अतः मोठे पकवानों में भी कामते हैं। कुमकुमा (१५१९) रंगों के पाठद्वार से भरी हुई जास की गेंब होती थी जो किसी व्यक्ति विरोध की घोर ऐक कर मारते थे। शरीर से टकरा कर इसके रंग बिखर जाते थे। होनी शीर्षक इन पदों में कुमकुमा का उल्लेख अनेक बार हुआ है।

फुलेस रंग (१४६) [सं पुष्पतेस—पुष्पएल—फूलएल—फुलाएल—फुलेस] का उल्लेख भी है—‘कनक-कमल कोटिक कर लीन्हें भरि फुलेस रंग घोरी की। चढ़ों में सुगन्धित ठेस भरकर रंग बोल सेते थे जो फुलेस रंग कल्लाता था। रंग मञ्जीठी (४११) [सं० मञ्जिठ] का निर्देश भी है जो इसकी छात से बनता है।

२१—इन फूलों के रंगों के अतिरिक्त अन्य नाम ‘बोवा (१४६१) चंदन (१५१०) [सं चंदन] अगद (१४६१) [सं अगद-ऊर सकड़ी] अरगजा (१४६१) [सं० अगद] कपूर (१५५) [सं० कर्पूर कर्पूर] अदिर (१४७२) [सं अदीर] गुलाब (१४५६) [सं गुस्ताब] तथा चंदन (१४८५) [सं बंभनीया] आदि प्रायः सभी एक साथ होनी शीर्षक पदों में मिल जाते हैं—

‘बोवा चंदन अगद अरगजा अदिरति नगर यसी’ (१४६१)

‘बोवा चंदन अदिर कुमकुमा अदिरति भरि पिचकारी’ (१४७२)

अथवा—‘पिच प्यारी सेलैं कमल-तीर। भरि केसर कुमकुम अगद अदीर। (१४७४)

‘असि मृग मग चंदन अगद गुलाल। रंजनीने अरगज बरन माल।

तथा—‘बोवा चंदन अगद कुमकुमा सोही माट भरे। (१५१५)।

२२—चंदन अगद तथा कपूर वृक्षों से प्राप्त होता है। धारिने प्रकबरी में इनके बारे में लिखा गया है। अच्युतकृष्ण ने सदल (चंदन) क संबंध में लिखा है कि यह चीन से भारत में लाया गया था। यह भास खेडर व पीला तीन रंग का होता है। धात्रकम बहिष भारत में कुर्ब हैदराबाद करनाटक तथा नीलगिरि पर अधिक होता है। मलयबिरि का चंदन विरोध रूप से प्रसिद्ध है—‘मलय चंदन लेप कीन्हें (२४५६)। चंदन से हथ ठेस तथा कलाने की बूज बनाते हैं तथा इसकी सकड़ी से भी अनेक वस्तुएँ बनायी हैं। चंदन अपनी सुगन्धि के लिये विरोध रूप से प्रसिद्ध है तथा शीतल^२ होने के कारण सोम पानी में घिस कर शरीर पर

१—धारिने अ, पृ १७६

धारिने अ, पृ १६९—एक सैर केसर का मुख्य बारह से बाइस रुपये तक तथा कमबी केसर का एक रुपये से तीन सोहर तक था। कारमीरो केसर साठ से बारह रुपये तक मिलती थी।

२—धारिने अ, पृ १७३—चंदन का प्रति जल मुख्य बस्तीस से पैंतीस रुपये तक था (पृ० १६२)।

३—य स० व्या, ‘चंदन विरिच सुहाई छोहा’ ३३३।४ ‘चंदन अरवि लाव नित केर’ ३३३।५

बनाते थे। इसकी सुगन्धि तथा शीतलता के कारण बृष पर सर्पों के लिपटे रहने का उल्लेख साहित्य में बहुत आया है।

घाँसि प्रकबरी में प्रमद के बारे में बताया गया है तथा उसके भेद भी दिये गये हैं^१। यह एक बृष की बड़ ऊँच (धमर) होती है। इसको मुबरात से खाने तथा उस समय वर्षाने में पैदा होने का विश्वास भी है। इसकी सुगन्धि के कारण लोग इसे जलाते थे और बरन में खपाते थे तथा खाने के काम भी आता था। आक्कल धमर के बृष अधिकतर घासम बंसात खसिया तथा मरवान की पहाड़ियों तथा घूटान में पाये जाते हैं। सिमहट में प्रमद का इन बनता है और मरास तथा बंबई में प्रचलती।

२३—ठीसठ बृष कपूर का है जो घाँसि प्रकबरी में हिन्द महासागर तथा चीन का बताया गया है^२। मकड़ी के धमर कपूर नामक की इसी के समान ब बाहर मोर की तरह दिखायी देता है। छाछ करने से ही इसका रंग सफेद हो जाता है। कपूर के प्रत्येक भेद तथा बनाने की विधि भी दी गई है। मुनाम में कपूर को ठंडा ब हिन्दुस्तान में पर्व मानते हैं। चीमसेनी कपूर का उल्लेख भी है^३। आक्कल कई बृषों से कपूर निकालते हैं जो अधिकतर बारचीनी हिस्स के हैं। प्रवाल बृष बारचीनी और कपूरी बेहराबूम ब नीलमिरी पर मिलते हैं। कलकत्ते तथा सहरनपूर के कमी बागों में भी कुछ बृष हैं। बारचीनी बीनानी (जिसका पत्ता टेम्पाठ ब आम घलबीनी कहलाती है) से भी कपूर बनता है। यह बहिषी भारत बंका तथा बरमा में अधिक होता है। मुनाम तथा बोलियों में बरास बृष से कपूर बनाते हैं। चीन ब जापान में भी कपूर बनाया जाता है। कपूर की सुगन्धि भी अच्छी होती है। घाँसि प्रकबरी में बोवा बनाने की विधि भी दी गई है^४। यह धमर की लकड़ी है बनाते हैं। एक छेर धमर से दो से पन्द्रह ठोसे तक बोवा निकल आता है। धरमबा भी मेव बोवा बनकटा मेहमा मुनाम बरन तथा कपूर घाँसि के मिश्रण से बना सुगन्धित द्रव्य है। घाँसि प्रकबरी में इसके बनाने की विधि लिखित है तथा गरमी में शरीर में लगाने का उल्लेख है^५। बरन बरन मुनाम घाँसि के छूले बूरे से प्रकटा इन सभी सुगन्धित पदार्थों का रंग में मिला कर होनी खेतने का ही बरबर धूरसावर में वर्णन है। एक तो इनमें से कुछ द्रव्य शीतल होते हैं बूते सुगन्धित होने के कारण मक्खर बाव होते हैं—

मुममर घाँसि बवावि कुम्कुम केसरि मिलि मिलि मणि बोरी' (१४८९)

'बरन कपूर बूर केसरि मरासरी' (१५५)

'कलक कलस कुमकुम धरि लीली कस्तूरी तामि बसि बोरी' (१५२९)

'मव केसरि धरमबा बोरी' (१४९०)

कुम्कुम बरन धरमबा बोरी' (१५१८) ।

२४—उपपुंक्त पंक्तियों में उल्लिखित मुगमम (१४५६ १४९९) [यं मुममर] तथा सासक बवावि (१४८९) मृग तथा बरमिलाव नामक पशुओं से प्राप्त सुगन्धित द्रव्य हैं। मुगमर या कस्तूरी (फ्रा मुरक) मृग की नाभि से प्राप्त होता है। घाँसि प्रकबरी में सुगन्धियों की

१—घाँसि घ , पृ १७१

२— " " पृ १९८

३—प घं घा , ११९।४ 'कपूरीनबसेना' ।

४—घाँसि घ पृ १७१

५—घाँसि घ०, पृ १९

सूची में कस्तूरी तथा शाख या बबबर का विसृष्ट वर्णन है^१। हिन्दी में इसी को बबबि कहते हैं। यह इन्ध्र गुब्बिलाख या मुरकबिलाख नामक जवसे के समान पशु से प्राप्त होता है। मुमाभा से इसके साने का उल्लेख भी है। यह अफ्रीका में भी होता है। इसी प्रकार की तीसरी वस्तु बंदन (३५१९ ३४८५) [सं० बंदनीया] भी है। इसे मोरोचन भी कहते हैं जो गाम से प्राप्त होता है तथा इसका बड़ा पीसा होता है। इसी शीर्षक अनेक पदों में बदन की बर्णों है—‘कोट बंदन मांडी’ (३५१९) बुका बंदन सति (३४२५) तथा ‘बदन बदन ऊपर सीधे’ (३५१४)। इसी को संभवतः हरिताल कहते हैं जिससे पीसा रंग बनाया जाता था।

२५—इसके अतिरिक्त होसी में अयार (३५१) [अ] तथा गुजाख (३४५६) [अ गुस्ताल] बालने की धमी तक प्रया है। अवीर तो अवरक के बूँद से बनता है तथा गुताल भी आल रंग का बूँद सा होता है। अवीर के रंग भी बताये गये हैं—बुका घुरंग अवीर घड़ावठ (३४८८) तथा ‘बरन पचासक अवरि संबारे’ (३५१)। रोरी ‘बंदन बंदन रोरी केसरि मूमन बोरी’ (३५३५) [सं० रोचनी] भी आल रंग का बूँद होता है। होसी के अवरक के अतिरिक्त इन्ध्र-बालोखन पर भी कवि ने यह विष लीका है—‘बोका बंदन अवरि गलिनि छिरकावन र’ (३४९)^२। सूरसागर में होसी के इन नैसर्गिक रंगों में आल तथा पीसे रंग विशेष रूप से मिलते हैं—‘पीठ अरुन रंग नाए सिर र’ (३५१०)।

अबबा—‘उन पटपीठ किये रंगरउते इन कंबुकी पीठ रंग बोरी’ (३४८९)

‘सौंके भट्ठो कनोर आल रंग बोरी’ (३४८४)

‘कुसुम-बरन रंग बोरी’ (३४६८)।

केसर तथा किंतुक के रंग बनाने के कारण इनके वर्ण भी आल तथा पीसे होता वृथित ही है।

२६—रंग में भीगने का माद भी अनेक प्रकार के रंगों में प्रकट किया गया है—

‘खेतव है अति रसमसे रंगमीने हो’ (३४८१)

‘रंगमीनी आलनि’ (३४८५) ‘रंगरांभी आलनि’ (३४८५)

अति सोहित दृग रंगमैगे खेतव बने दोठ रंगमीने (३५१९) अर्थात् रंग कौन के हो नात’ (३१७०) ‘स्याम-रंग-रसपागी’ (२५२७) तथा ‘उन पट-पीठ किये रंगरउते’ इन कंबुकी पीठ रंग बोरी’ (३४८९)। इन वस्तुओं द्वारा सूर के माया पाणिग्रह की धीर स्वतः ध्यान बना जाता है।

सूरसागर से इसी पुराणों के तत्कालीन प्रादेशिक ग्राम रंग आल नीला तथा पीसे काट होते हैं। यह रंग उस समय सरलता से तैयार हो जाते थे। काले हरे तथा सज्ज का उल्लेख बहुत कम स्थानों में है। मिश्रित रंगों जैसे बैंगनी तथा रंगों के इसके वर्ण जैसे आधमाती गुलाबी पामी आदि नाम भी नहीं मिलते हैं। अतः से दृष्टिगत तक गाँवों में आल भी नीले तथा आल रंग के परिवान अधिक दिखाई देते हैं। कुमायू प्रदेश में अवरक पहाड़ी स्त्रियाँ अधिकतरकालें संहने पहने दिखाई पड़ती हैं। जो ये अवरक रंग सोनों को अधिक अच्छे लपते हैं किंतु गाँवों में इनके अधिक पहनने का कारण यह भी है कि इन रंगों में रस नहीं जमरता है। पुराण में

१—आदिने अ, प १९५—१७ अहलज्जुल ने एक तोला कस्तूरी का मूल्य एक से साढ़े चार रुपए तक बताया है।

२—सु० सं, गीता ११, ‘बोचिन्ह कु कुम कोच, अवरका, अवर, अवीर उड़ाई’।

३—सु० सं० टी०, ४९६१ ‘मयेठ रंग रता’।

रंगीन बीली पहना छोड़ दिया है। बिछाई के अक्षर पर अक्षर प्रायः हर को पीली बीली पहननी पड़ती है।

४—ओढ़ने तथा बिछाने के वस्त्र

२७—सुरसाबर में ओढ़ने तथा बिछाने के काम में प्राये बाली बीड़े से शब्द मिल जाते हैं। इनमें से सर्वप्रथम उत्प्रेक्षणीय शब्द कामरि, कमरी या कांवरि (१०७१ १ ८५, ४४३३) [सं० कम्बल-कम्बली-कामरी-कांवरि] है। कम्बल के परिधानों में कमरी का विशेष स्थान है। मोक्षारस-मसंख में कम्बल के कंबे पर पड़ी कामरि का अनेक बार वर्णन हुआ है—‘सोई हरि कांवे कामरि, काज किय, नांगे पाहनि, पाहनि टहन करै’ (१७१) अथवा ‘सुरसास कांवे कामरिया और लकुटिया कर काँ’ (२१३२) तथा ‘हाथ लकुट कामरि कांवे पर’ (४२३६)। कम्बल के छापी जाल बाल भी बल जाते समय अपनी-अपनी कमरी ले जाना नहीं मूलतः—

‘जाल मंडली में हैंते मोहन बट की जाँह, दुपहर बेरिया छलानि संग नीने’
एक दूध कम एक म्भारि बबेना बैठ निज निज कामरी के दासगनि कीने। (१०८५)
कामरी का रंग प्रायः कासा बताया गया है—

‘कान्ह कांवे कामरिया काटी लकुट सिधे कर बेरै हों’ (१७)

अथवा—‘तुम कमरी के ओढ़नहारे, पाटवर नहि जायत।

सूर स्वाम कारे तन ऊपर कारी कामरि आवत। (२१३५)।

काली कमरी से संबंधित मुहावरों का भी अनेक पदों में प्रयोग किया गया है—

‘सुरसास काटी कमरी पे चढ़त न दूखो रंग’ (३३२)

अथवा—‘बीये रंग बात नहि कैयेहुँ ज्यों काटी कमरी’ (४१४४)।

बल्लभ संवराव ने कमरी ईश्वर की शक्ति-स्वरूपा बिद्या माया की प्रतीक मानी गई है। सुरसाबर में भी कई स्थलों में इसका उल्लेख मिलता है। इस दृष्टि से यह (२१३३) बहुत महत्वपूर्ण है—

‘यह कमरी कमरी करि जानति।

बाके झिल्ली बुझि हृदय में सो विलसी अनुमानति ॥

या कमरी के एक रोम पर, बारी बीर पटवर।

सो कमरी तुम निबति गोपी को तिहुँ लोक अरंवर ॥

कमरी के बल असुर संहारे, कमरिहिैं तैं सब भोग।

जाति पाँति कमरी सब मेरी सुर सबै बह बोध ॥

एक और पद (२१३४) की ध्यान देने योग्य है—‘बलि धनि कामरी मोहन स्वामी।
कंबल शब्द वैदिकप्रणीत है^१ तथा बहुत समय तक ऊनी वस्त्रों के साधारण वर्ण में जाता रहा था। तुलसी तथा ज्ञानपी ने भी कंबल का उल्लेख किया है^२। आचक्रत बतपरी बीली में कंबर वा ‘कम्बर’ कहते हैं। सुरसाबर में भी कंबर शब्द कहीं-कहीं प्रयुक्त किया गया है—
‘बीबी कान्ह कांवे की कंबर’ (२६ ६)।

१—भा भा वे, पृ १, अक्षर (१४१।६६)

२—तुलसी, मानस, बाल ३५६—‘कम्बल बल्लभ विविध पटोरे।’

ब ल ध्या, १९२।६ ‘जेते ओढ़न कांवरि कांवा’।

२८—कुण्ड के बन्नीतुष पर पानुर परि० ७ [पा बादर] बाग देने का उल्लेख है—काहुँ की बाबर बई हो काहुँ बीनी कोर'। बोसी में 'बाबरा' या 'बर' कहते हैं। यह शब्द प्रायः मोड़ने तथा बिछाने दोनों प्रकार के बरों का बोधक है। मोड़ने वाली बाबर की संबाई बीबाई शान से अधिक होती है। शान बेहतर क्रिस्म के गर्म कपड़े का तथा प्रायः कड़ा हुआ होता है। बो पर्व की बाबर को बेहतर कहते हैं। यहाँ मोड़ने वाली बाबर की घोर संकेत प्राप्त होता है।

कुछ पदों में गूदरि (१९९) का उल्लेख है—'पाटम्बर धम्मर तत्रि गूदरि पहिरण'। फटे पुराने बरों से मोड़ने या बिछाने का जो बन्ध बनाते हैं उसे 'गूदरि' या गूदरी कहते हैं। पुराने कपड़ों तथा कपड़ों की कठरन धादि को गूदर कहते हैं। कवि ने नीर पुरातन (४३११) बाट इस नाम को स्पष्ट किया है—पहिरि मेखला नीर पुरातन छिरि छिरि केरि सिपाए। (४३११)। ऊपर की पंक्ति में पाटम्बर-धम्मर छोड़ कर 'गूदरि' धारण करने से यही धर्म स्पष्ट होता है। भ्रमरगीत के बोग संवेची पदों में गूदरि तथा कंवा (४४१९) का उल्लेख अनेक बार किया गया है। योग के श्रम्य उपकरणों में इनका भी स्थान है। यह दोनों पुराने बरों से बनाये गये साधारण बन्ध हैं अतः साधारण सुखों की घोर से विमुख योगी तथा मोनितियों के विवेक इनका उपयोग सर्वत्र ही है किन्तु भला राधा तथा मोलियाँ कैसे धारण कर सकती हैं—

'सिबो सेस्ती भयमडब कंवा कहि धनि काके वर परगौ' (४३२७)

अथवा—कंचुकि मीनि मीनि पट घारी बरन सरस सुखर

धब कंवा एके घति गूदरी क्यों उपवी मति मर' (४४३२)।

उनकी विरह-व्यथा ही स्वतः योग है—

'विरह भयम बड़ाई वीठी सहज कंवा नीर

हृदय सिंगी डेर मुरली नीम कपूर हाव' ४३९२।

बापसी ने भी रत्नसेन के योगी रूप में कंवा का उल्लेख किया है। प्रायः सभी विद्वानों में ही पुरानी मोलियों की कई पत्तें मिलाकर कपरी बनायी हैं जो प्रायः विस्तर पर बरी के समान बिछाने के काम आती है। वे छोटे बाग कर उसमें कूट पतियों धादि बनाकर प्राकृतिक रूप देने का यत्न करती हैं। साधु सग्याही धादि कपरी मोड़ते भी हैं। सूरसागर में मोड़ने या पहनने के उल्लेख ही हैं। पुराने बरन के विवेक सूरसागर में खीरन १४१ [सं० बीर] अथवा पुरातन (४३११) शब्द कई स्थानों में मिलते हैं—'खीरन पट कुनीन तन बारि'। बापसी ने इसी के लिये विरहपट शब्द प्रयुक्त किया है [विरहपट अथवा सं नीर-कुट्ट (काटना घेरना)] [मूरवास भी ने चुरकुट्ट (१४७) शब्द चुर-चुर करने के धर्म में प्रयुक्त किया है। हनु गोबर्धन के संवेच में अपना योग प्रकट करते हैं—'बच-बातनि करी चुरकुट्ट डैड धरति मिलाइ। (१४७)।

२९—सामु योगी धादि मृगधर्म (४१२३ ४१५९) [सं० मृगधर्म] या स्वचामुगा (४३ ८) भी काम में लाते थे। मोलियाँ जटन की योग शिक्षा से पर्याप्त शिक्षित थीं—'बचन हुसह लागत धनि तेरे प्यी पजरे पर नीम मृगी मुझ भस्म स्वचामुग धब धबधारन पीम' (४३ ८) अथवा 'मुझ भस्म विपान स्वचामुग बज जुबतिन नहि भीप' (४१२३)।

१—प० सं० टी०, १९९११ 'कंवा पहिरि डंड कर मरु'।

२०९१७ 'काहुँ कंवा विरहपट लावा। विरहपट रत्ना बरन सोझावा'।

२—प० सं० टी०, २०९१७ 'काहुँ कंवा विरहपट लावा'।

मृगचर्म का पर्यायवाची शब्द भृगुह्याता (४१५६) भी मिलता है—‘ऊनो कई सूयी घब सेनी केटी मसम बनाई सोलह सहस्र सुदरी काँई भृगुह्याता कई पाई । (४१५६) तथा ‘घरि घासन भृगुह्याता’ (४१५६) ।

शिव-संबंधी पद्यों में भी मृग-चर्म का उल्लेख है—

‘जमा कीं घाँड़ि घब बारि भृगचर्म कीं बाइकीं निकट रहे रूज कोई (४१७) ।

वैदिक काल से ही चमड़े व जानों का उपयोग विधानों तथा घोड़ने के लिए होता आया है । मृगचर्म पवित्र माना जाता था और यज्ञादि के अवसर पर विशेष रूप से उपयोग में आता था । छात्र तथा योगी भृगचर्म घोड़ते भी थे । आख भी भृगचर्म पवित्र माना जाता है तथा दार्मिक कृत्यों में विशेष रूप से काम में आता है । मानस में तो मृगचर्म संबंधी प्रसंग महत्त्वपूर्ण हैं ही । रत्नदेन के यौवी रूप में जायसी ने बचछाला का उल्लेख किया है^१ ।

१०—‘बटाई के समान विधानों की वस्तुओं में कुत्तासन (१४१) [छं० कुत्तासन] तथा कुत्त-साचरी^२ (५६५) [छं० कुत्त] भी उल्लेखनीय शब्द हैं—

‘कुत्त-आत्सन है ठिगहिं किययी (१४१)

अथवा—‘नाठो मानि समर घायर सौं कुत्त-साचरी पर्यी’ (५६६)

अथवा ‘कुत्त-साचरी बैठि एक घासन बासर तीनि किताय’ (५६५) ।

कुत्त [छं० कुत्त] एक प्रकार की भूँडवार बात होती है । इसकी लम्बी तथा फली पत्तियों से ही घासन बनाये जाते हैं । इसकी एक दूसरी किस्म बाम [छं० बर्मा] कहलाती है जिससे पितरों का तर्पण करते हैं । हाथ में कुत्त लेकर स्नान करने का उल्लेख घूरसागर में भी है—

‘साक्यन है सबै अथाप भूत भवे कुत्त शरी’ (१२२) ।

विवाह-हस्तकार में कच्चावान भी कुत्तोहक से लेते हैं । इसका उल्लेख तुलसीदास ने किया है^३ । कुत्त का घासन मृगचर्म के समान ही पवित्र माना जाता था तथा यज्ञादि के अवसर पर बिछाते थे । पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी यज्ञ के उपकरणों में कुत्त बात का उल्लेख है तथा पवित्र बताया गई है^४ ।

आदिष्य सरकार में सबसे ही सर्वप्रथम अर्घ्यासन अथवासन [छं० अर्घ्यासन] देने की प्रथा रही है । घूरसागर में कई स्थलों में इसका उल्लेख किया गया है, विशेषकर किसी मुनि पंडित आदि के आश्रम पर—

‘महूर भवन चिहिराज बए ।

१—भास्कर, धारण्य २७ ‘सीता परम बहिर धृव देखा । प्रम-संग सुमनोहर देवा । सुमनु देव रघु नीर कृपाळा । एहि धृव करि अति सुंदरछाळा । सत्यसंग गाँ बधि करि एही । आननु बर्मा कहति बेदेही । तब रघुपति आनत सब कारण । उठे हरति सुर कानु संचारण ।’

प स टी १२९।३, ६ ‘कर उपपात काँय बध छाळा’ ।

२—तु प्रं, पीता, ४ ३६ ‘कुत्त-साचरी बैठि रघुपति की हेतु अजनी जानी’ ।

३—तु छं० आनली, १६३ ‘अग्नि जाति भित्तैस कुत्तोवक लीन्है कयसाज विधान संकल्प कीन्है’ ।

४—हैदिया एनू गीन ६ पाणिनि, अष्टाध्याय ६, ४ ३७१

वरन बोद्ध वरमोदक सीम्ही धरबासन करि हित मए । (७०३)

प्रभा—'ता यह रिपि अगिरा सिपाए

मर्बासन है तिनि बैठाए । (४१६) ।

इस प्रभा पर तुलसीदास भी के काव्य से भी प्रकाश पड़ता है^१ । आससी ने कहीं-कहीं आसन या सिंहासन के लिए पाट शब्द प्रयुक्त किया है ।^२

५—स्त्रियों का पहनावा

११—राधा और गोपियों के वस्त्राभूषणों के वर्णन संबंधी पंक्तों द्वारा उस समय के पहनावे का पता चलता है । यह पहनावा प्रमुख रूप से परिचामी उत्तर प्रदेश को ग्रामीण स्त्रियों का था । वस्त्रों के संबंध में विशेष रूप से बलमस्कन्ध पूर्वार्द्ध के रासर्वाध्यायी बलक्रीड़ा पन इट-सीला बान-सीला उप-वर्णन बान-सीला भूसन बसंत-सीला शार्पक पंक्तों में विशेष उल्लेख मिलते हैं । इसमें तीन वस्त्र प्रमुख हैं—घोड़नी कंचुकी तथा लंहवा । प्रमद-गीत के पदों में गोपियाँ 'कंचा न पहनने का सन्देश करती हैं' (४११२) क्योंकि यह उपस्तिथियाँ पहनती थीं । कुछ पदों (११६१ २०६१) में एक साथ अनेक वस्त्राभूषणों के नाम मिलते हैं । घोड़नी (७१४) और लंहनिया (१११२) लंहने के साथ सिर पर धोड़ी बांधी थी । कृष्ण के पहनावे में भी घोड़नी का वर्णन है—'साज डिपलि की सारी ठाकी पीठ लंहनिया कीनी' (१११२) अथवा 'पीठ लंहनिया कहीं बिसाटी' (१११२) । भावकन भी सिर पर घोड़ने के वस्त्र को घोड़नी कहते हैं । यह पांच हाथ लम्बी तथा तीन हाथ चौड़ी होती है ।^३ यह शब्द 'घोड़न से संबंधित है—[सं० उपलब्ध प्रा० भाषेच्छा]'' । चूनरी (४४) तथा चूनरि (परि० ११२) का उल्लेख अनेक पदों में किया गया है—'बुद्धबुद्ध चूनरि बहुरंगनी' (१४५) अथवा 'नवी पिठावर, नई चूनरी नई नई बुद्धि भीखति मोरी' (११ ३) । विलय शीघ्रक पदों में माया संबंधी एक पद में 'राठी चूनरी' (४४) का निर्देश है । चूनरी में एक विशेष प्रकार की रंगाई होती थी । राजस्वान मुजरात, पंचांग तथा विशेष रूप से छापानेर में भावकन को ऐसी रंगाई होती है । इसमें कपड़ा बाँध-बाँध कर रंगा जाता है अतएव इसे बाँधनू की रंगाई भी कहते हैं । धन्य-धन्य भाँठ की चूनरी कमपुर में 'भाँठ मत्स्या कहलाती है तथा मेरठ में 'भाँठ-भैंसीली' । इसके लिए संस्कृत शब्द 'मक्ति' था । ईशचनुप की भाँठ की चूनरी भी बनती है । चूनरी इसके व बायीं छुट की बनती है । हर्षचरित में इसी के लिए 'पुलक-बंध' तथा 'मक्ति' शब्द आए हैं । बाँधनू की रंगाई का यह उल्लेख प्राचीनतम है ।^४ एक धन्य प्राचीन शब्द 'पुट्टक' भी संभवतः इसी रंगाई का बोधक

१—मानस, भाग , ११६ 'अरघु वेद आसन बठाए' ।

२—य छ टी ३३६ 'तहाँ पाट राधा सुल्लानी' ।

३—क भी , अ ११, अध्या २—हैमचन्द्र ने घोड़ना के लिये बेसी नाम-माला (१११३३) में 'घोड़हल' शब्द लिखा है ।

४—हि अनु , धातिवन मार्ग-गीर्ण २ अ ३—'हिन्वी के तिताई संबंधी धन्य और उनकी वृष्टतति ।

५—हर्ष सां ध , पृ० २३, ७३-७४ 'बहुविधमतिनिर्मासुबनुरपुताउपीरपुप ग्रिबप्यमानेर्बद्ध इव'

विचित्ररूपक तथा कालध्वज में यह शब्द संहार के धर्म में बोला जाता है किन्तु तद्गीत इत्यादि कोम ह्यपरक तथा साक्षात्कार में मोक्षणी के धर्म में १९ परमावत में करिया के लिये फारी शब्द प्रामा है १९

३३—स्त्रियों का लीचरा बन्ध 'चोला' (२१७२) [१० चोली] 'अंगिया' (३४४८) [३ अंगिया] प्रथमा कंचुकी (१३६२) [३ कंचुका कंचुकी कंचुकि] वा १ 'नील संहारा नाम चोली (३४५०) 'अंगिया नील (१६७१) 'कचलि कंचुकि बंद' (३ ६८) आदि वर्णन अनेक पदों में मिले हैं। चोली में प्रायः अंगिया के समान बंध नहीं होते हैं। दोनों धोर से बड़े कपड़े को लीचकर बीच लते हैं प्रथमा छोटी डाली जाती है। अंगिया में बार बंध होते हैं धोर पेट व पीठ लुनी रखी है। सूरसावर में भी बंध या चोली का उल्लेख है—'कचलि कंचुकी बंद' (३ ६८) 'दनी चोली की चोरी' (३४८८)। अंगिया की सजावट भी बताई गई है जैसे 'कटाच की अंगिया' (२१५८) तथा 'बहु नय बरे बराक अंगिया' (२ ६३)। कुछ स्थानों में इसके अलग-अलग भागों के नाम भी मिलते हैं—अंगिया नील मांडनी एतौ (१६७१) प्रथमा 'नील कंचुकी मांडनि माल' (१७६८)। अंगिया के सामने टके हुए तिकोने साज को [३ मंडन सजावट] मांडनी या लहर कहते हैं। अंतरीटा घबमोकि की धतुर महामय पाते (हो) (४४) में अंतरीटा शब्द प्रामा है। अंतरीटा [३ अंतरीटा] अंगिया के सामने लोबे किनारे पर लटकती पट्टी होती है। यह इस तरह बोलते हैं कि पेट बंध जाता है। इसका लोबे का भाग नामि ठक सटकता रहता है। इसे 'बाट' भी कहते हैं १०

३४—वज्रप्रदेश में प्रचलित ऊपर के पहनावे के धविरिक्त सारी (६४२ २११९ १६९१ १४१२) [३ हाटिका हाटक] शब्द बहुत बार प्रामा है। सारी के साथ कंचुकी का उल्लेख प्रायः मिलता है। संहार के साथ भी सारी का उल्लेख बहुत से पदों में है—'पविन बेहरि, माल संहारा घंग पंचरंग सारि' (१६६२) वा 'धुर बाटिका कटि संहारा रंग लनलनलुकी की सारी' (२११६)। इन स्थानों में सजावट सारी शब्द मोक्षणी के धर्म में प्रयुक्त हुआ है। प्रायः भी राजस्त्राल में संहार के साथ मोक्षणी वाले बस्त्र को सारी वा 'हाड़ी' कहते हैं। इसकी लम्बाई चौड़ाई मोक्षणी के धर्म से होती है अर्थात् सारी बंध के स्थान पर बार गज। मूर ने सारी के रंगों कुर्चुमी (३४५६) 'पंचरंगी' (१६६१) आदि के साथ-साथ किनारे का भी वर्णन कई पदों

१—ठ जी० प्र० ११, अध्या ३

२—प० लं टी ३२६।९—फारी या करिया एक विषय प्रकार का लहवा वा जो सामने की धोर सिता नहीं रहता वा। इसमें सामने 'कचका' नामक पट्टी लट जाती थी। कुछ जैन तथा राजस्थानी जिलों में यह बंध पहने हुए जियां चिमित हैं। पट्टी के दोनों धोर लुने छार छूटे रहते हैं। प्रायः लड़कियां तथा नई ब्रह्म की जियां ही करिया पहनती हैं। बुद्धिलयली तथा ब्रह्मनाया में करिया मोक्षणी को कहते हैं।

३—हर्ष लं प्र, पृ ५६—पानेश्वर की जियां कंचुका पहनती थी। तत्काल एही प्रतापि में हर्षों के धामे के बाव चोली या कुर्चा पहनने को प्रया धारम हर्ष थी। यहिप्रदाया की सुवाई में चोली पहने ली-श्रुतियां मिली हैं।

४—ठ जी० प्र० ११ अध्या० २

५—मा मा वे पृ ३७ सारी को लट्ट वा सटक कहते हैं—बाटक (४११) ३, २६९ अतिवर्ण साटको—जाटक (३२४, ३, पृ० ३३)।

में (१३११ १३१२ १३१३) किया है जैसे 'सात दिन की छारी'। टिप्पणी प्रकट किनारे का रंग प्रायः सात ही बताया गया है। कुछ पर्वों में तनसुख की छारी का उल्लेख है—'तनसुख की छारी' (१३१३ ४४३५)।^१ तनसुख संभवतः तंजेब या थड़ी की तरह का बड़िया फुलदार फुफड़ा होता था। बत्तों की बनावट के प्रदर्शन में इसके सम्बन्ध में बताया जा चुका है। कुछ पर्वों में 'मूमक सारी' का उल्लेख है—'मूमक सारी तन गोरीही' (१४१२)। मूमक छारी या थोड़ीनी में सोने ज़री के मूमकों या मोठी के पुष्पों की कठार इस तरह लगाते हैं कि वह माने पर आए। 'बूनरी सारी' (२ ३५) का उल्लेख भी है। यह सारी राजस्थान की बांगली रंगई में रंगी जाती थी। बूनरी से किनारे सात बाकी पीलो भी होते हैं। उड़िया (३४६) तथा पटोरी (२३११) छारियाँ भी उल्लेखनीय हैं। उड़िया [हिन्दी बाँही-रेबा] ज़ड़ोदार प्रकट ऐसी छारी को कहते हैं जिसमें बीच की सज्जाई में गोटा टाककर रेबाएँ बनाई जाती हैं। पटोरी के संबंध में बताया जा चुका है। पत्ते के कोने को खूँट कहा गया है—'पीसाम्बर पहि कूँट बूनरी हँसि-हँसि गांठि बुवाई' (३४६७)। अंचल (२०५५) अंचल (३ ७३) [च चंचल] छारी के सामने का भाग है—'चंचल चंचल गरि'।^२ प्रकट घर उड़त चंचल चरि मुख तथा उड़त चंचल सटकी बेनी हपट सटके मोर' (३४६६)।

३५—प्रत्येक बत्तों में सूजन (१६७२) उल्लेखनीय शब्द है। यह एक दो पर्वों में ही मिलता है। इससे स्पष्ट है कि शब्दप्रवेश के हिन्दू वर्ग में इसे पहचानने की प्रथा अधिक न थी। 'सूजन बंजन बाणि नारायंब विरगौ पर छवि भारी' (१६७२) प्रकट 'नारायंबन सूजन बंजन' (१७६८) का उल्लेख है। हर्षचरित में तीन प्रकार के पाषाणों—स्वस्थान सिंगा धीर सतुला के नाम मिलते हैं। पाषाणों की तन मोहरी में पिक्की कसी रहती थी।^३ पाषाण का घाम रिवाच (प्र सती ई पू०) शकों के समय से इस देश में जुमा धीर गुप्त राजाओं ने सैनिक-बर्तों में रखा। इती की पाषाणा (अ० पाषाणा) भी कहते हैं। तन मोहरी का पाषाणा प्रसीकरी पाषाणा कहलाता है च [स्वस्थान-सुस्थान-सुजन-सुजना]। गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार—'संपुटक बाँधी की रक्षा के लिये एक विशेष बस्तु होता है। कोई-कोई टीकाकार इसे सुजना या सुजन कहते हैं। पाषाणे के लिए प्रायःकल भी सुजना [च० सुजन] शब्द मिलता है।^४ सूजन के घाम घाल दिने योग्य हुंकार शब्द नारायंब (१६७२) [का बंज] धारा है। बौद्धकाल में इसी के लिये शकबंज शब्द मिलता है।^५ नारायंब [का कमरबंज] नेत्रों में डाला जाता है। बोलियों में इसे 'बारबन' 'बरिबन' प्रकट 'हजारबन' भी कहते हैं।^६ कमरबंज प्रायःकल कई प्रकार के बने हैं—'बुनिया बटौना फुलगा, भन्नुया तथा नाबला। सुरसाघर में यह विस्तार नहीं मिलते हैं।

१—'तनसुख की सारी गड़ी'—हरिवाच

'तनसुख की रंग सात'—केसवदास

२—प्रकट को पत्ता (च पल्लव-पल्लव-पल्लव) भी कहते हैं किन्तु सुरसाघर में प्रयुक्त नहीं किया गया है। संस्कृत साहित्य में 'पल्लव' शब्द अधिक प्रयुक्त हुआ है।

३—हर्ष साँ अ, पृ १४७

४—मा ना वे, पृ ३४

५—मा ना वे, पृ ३४

६—हि अनु, धार्मिक मार्गदीर्घ २ ७७, अंक ३ 'हिन्दी के शिवाईत बंजी अन्न तथा उनसी व्युत्पत्ति।'

७—ह० बी, प्र ११, प्राम्या २

१६—अनेक वर्षों में घूँघट (१७६८, १९७६) [सं. अथर्ववेद] का उल्लेख है। यह मैत्र-संबंधी तथा रास पंचाध्यायी शीर्षक ग्रंथों में अधिक प्रयुक्त हुआ है। कृष्ण-व्रत के कारण गोपियों ने सोक-तज्ज्वा सूचक घूँघट छोड़ दिया—

‘नाथ कइो तब घूँघट छोड़्यो, लोक लाज सब फटक पछोर्यो (१२७३) अथवा ‘घोट न रहत बर घूँघटवारी’ (१८८६)। हिंदी में भी घूँघट का निर्देश है—‘हंसि हाथ भग्न कटाक्ष घूँघट धरत लेति सङ्गारि (१४५६)। कृष्ण के रूप के प्यासे तथा तथा गोपियों के तेज घूँघट की छाड़ नहीं मानते—

‘मेरे माई सोयी नैन भये ।.. ..

रहत न घूँघट घोट भवन में पसक कपाट धर । (१६१६)

अथवा ‘मनु घूँघट पट में धुरि बैठ्यो पाएँ रति-पति ही को’ (२६२)

तथा ‘है घूँघट-पट घोट नील हंसि कुँवरि मुख मोरे । (१६५)

घोर ‘सब छिपनी हरि-मुख हैरे ।

घूँघट-घोट-घट-घोट करै सबि हाथ न हाथनि मेरे (२२७१)

घूँघट का वर्तमान परे नामा रूप मुसलमानों के साथ आया था। प्राचीन काल का प्रचलित इस रूप में नहीं था।^१ मालती के वल में हृषिकेश में भी अथर्ववेद का उल्लेख है। बाह्य में देहादी स्त्रियों के वर्णन में ही घूँघट का उल्लेख किया है। मुसलमानों से रचा के लिए इसका प्रचार बढ़ा। सामीप्य रूप की हिन्दू स्त्रियाँ मुसलमान स्त्रियों के समान मुर्का या अथर्व कपड़े का पर्दा (Veil) काम में नहीं लाती थीं। बाहर के व्यक्तियों के सामने अपनी छाड़ी का पर्दा खींचकर हो मुख ढाँक लेती थीं।^२ मुरसागर में भी ऐसे ही अथर्ववेद का वर्णन मिलता है। तुलसीदास ने एक स्थान में बिनाह के अथर्व पर प्रचलित घूँघट की प्रथा का संकेत किया है।^३

सुरदास जी के समकालीन कवियों तुलसी तथा बायसी ने भी प्रायः इन सब वस्त्रों का उल्लेख किया है। तुलसी द्वारा स्त्रियों के पहनावे में प्रयुक्त प्रमुख वस्त्र चुनरी, सारी, तथा पिछोरी हैं।^४ तुलसी ने बस्त्राभूषणों का वर्णन सुर के समान विस्तार से नहीं किया है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में सैहवा तथा सोनरी पहनने की प्रथा अधिक न थी। यों बायसी ने पद्मावती-शृङ्गार-वर्णन धारि प्रसंगों में सारी के साथ लहरपटोर नामक सौन्दर्य कपड़िया तथा कंचुकी का उल्लेख भी किया है। ‘चंदन बीर’ या ‘बीना’ के साथ-साथ रेंपाई तथा छपाई के भी विस्तार दिये गए हैं।^५

१—हर्ष सां. अ. ५. २३ ‘श्रीलागुं कजासिकयेव निद्वार्यवना’

२—अथर्ववेद, ५. १४४, मनुस्मृति, भाग १, ५. ६२

३—सं. ०. ५०, बरह, १५—‘का घूँघट सुख नृपह नवला नारि ?
बाँध सरग पर सोहत पति अगुहारि ।’

४—“ ” धोला, ५. ३३६ ‘राजनि राम जलसी खोले ।.....

मगलमग सोठ, मग मनोहर प्रबलि चुनरी पीत पिछोरी ।’

५—य सं. टी. ५, बर ३२७

६—य सं. टी. ५, बर ३२६ ‘पटुबहु बीरि आनि लब छोरे’

६—पुरुषों का पहनावा

१७—सूरसागर में कृष्ण के कम-बर्तन से सम्बन्धित वस्त्र स्वर्ण के धनेक पशों में उनके बस्त्रों का विस्तृत वर्णन है । राम वनराम, लम्ब तथा मोप प्रादि के वस्त्रों के सम्बन्ध भी यहाँ द्योतित हैं । कृष्ण के वस्त्रों में कवि ने प्रधानतया से उनके परम्परागत वस्त्राभूषणों का वर्णन किया है जैसे—पीताम्बर कुंडल मोरमुकुट प्रादि । फिर भी कृष्ण के वस्त्रित वस्त्रों तथा धर्म स्वरूपों के कुछ सम्बन्धों से हम सूरसागीन वन प्रवेश में प्रचलित ग्रामीण वर्ग के पहनावे का अनुमान प्रकरय लगा सकते हैं । यह लोग मोटी पटका तथा कुपट्टा पहनते थे । कभी-कभी बामा या डीसा कुर्ता भी पहना जाता था । फिर पर पगड़ी या टोपी धीर पैर में जूते होते थे ।

१८—कृष्ण के वस्त्रों में मोटी के लिये काछनी (१ ७) [काछ लमाकर मोटी पहनाता, सं कछा से] लम्ब बहुत से स्वरूपों में प्रयुक्त हुआ है—‘काछनी कटि पीठ कुटि कमर-केसर बंड’ (१०७) ‘कटि कछनी किकिनि-जुनि बाधति’ (२ ७) तथा सुयम कटिकाछनी राजति वल्लभ केसरि-बंड (१२५१) । काछनी की दोनों लार्में पीछे घुसती जाती हैं । यह प्राचीन बांध एक का गुन्टदार पहनावा भी होता है जो प्रायः रामसीता या मूर्तियों के मूर्तार में पहनाते हैं । ‘काछा’ [सं कछा = कमरबन्ध] साधुओं के संबोध की भी आते हैं ।^१ हर्षचरित में ‘कछा’ का सम्बन्ध हुआ है ।^२

कृष्ण के परम्परा से आये हुए पहनावे में पीताम्बर (१२४१ २ २) [सं] पीठ-पट (१२४६ १२६४) [सं] तथा पीठ-वसन (२ ७) [सं] सम्बन्धीय हैं । कृष्ण के कम-बर्तन शीर्षक पशों में पीली मोटी तथा पीला कुपट्टा दो प्रमुख स्वर माने जा सकते हैं । पट, वसन तथा अम्बर शब्दों की व्याख्या स्वर के पर्यायवाची शब्दों के सिद्धिसे में की गई है । यह शब्द कुछ पशों में मोटो के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—‘पीताम्बर कटि-पट जनि मुन्दर’^३ (१२४१) ‘कनक मेखला कनि पीताम्बर’ (१२८६) पहिरि सिम्बर बरन पाँचरी बज-बीजनि मैं जात (१२८६) तथा कटि उट सुयम पीठ-पट राजत प्रहसुत बैस बनावत’ (१२६४) और ‘कटि-पट पीठ-वसन सुबेस’ (१२५१) । कुछ पशों में उत्तरीय या कुपट्टे के अर्थ में मिलते हैं जैसे—‘कटि कछनी किकिनि जुनि बाधति बरन-वसत मुर रर लाये । आस मंडसी मध्य स्याम वन पीठ-वसन बामनिहि लबाये । (१ ७) बरबा—‘उक्ति किशो पीठ-पट (२६७५) ‘की बामनि कीधति बहू विधि की सुयम पीठ-पट केरनि’ (२६७६) ‘मोर-मुकुट कुंडल बबामा पीताम्बर पहरावै’ (२ २) तथा ‘रोहिनि सुत बसुमति सुत की धवि गौर स्याम हरि-हलधर-गाथ । नीलांबर, पीताम्बर छोड़े यह सोमा कछु कछी न बाता (१८३१) । इन पशों में स्वर पहरावे का सम्बन्ध है अतः उत्तरीय ही होना चाहिए । वनराम के उत्तरीय का रंग पीला (पीताम्बर) न होकर नीला (नीलांबर) है यह ध्यान देने की बात है ।

१९—मोटी (१६ २) [सं] बोलिका-बोलिया-बोली-मोटी] का सम्बन्ध कृष्ण सम्बन्धी पशों में कम है, किन्तु लम्ब के वस्त्रों में कई पशों में मिलता है । गोविंदा कृष्ण के ममुरा जाने

१—हि अनु , ‘कुछ सिलाई संबंधी शब्द तथा उनकी व्युत्पत्ति’

२—हर्ष सा ध , पृ २१, ‘कल्याणिकशितपल्लव’ ।

३—मानस, बालकाण्ड, २३३ ‘किहरि कटि पट नीत धर लुपमा सीत निबान ।

देखि जानुहुत लुपमहि निजरा सखिन्हु स्याम ।’

” ” २४४ ‘कटि तुनीर पीतपट बाधे’ ।

” ” २१२ ‘पीत वसन परिकर कटि भाषा’

के बा' र्थ्य करती है— बलि घर भात हाथ करि लेते सी कुंजमि में जात । सब सुनियत है
 बोली पहिरे, बड़े करारों न्हात । (४४४५) । नन्द बमुना में स्नान के लिए गए तो बबल उन्हें
 नाच कर से बाते हैं । इस प्रसंग में बोली शब्द प्रयुक्त हुआ है—‘यह कहित नन्द मये बमुना
 टट । छे बोली-भररी बिभि कर्मट’ (१६ २) व ‘बोली भररी टट पी परि (१६ २) । बोली को
 बनवरी बोली में ‘भाबरी’ भी कहते हैं ।^१ ‘बीत शब्द का धर्म कपड़ा’ है । धावकम बोली
 एक नाम की धरवा हो नाय की पहनी जाती है । ‘ऊँ’ संगाने की भी कई बिबियाँ प्रचलित हैं
 जैसे किसान काम के समय बुझंगी कंटिया बंधाव बांधते हैं ।^२ लपेट के लिए ‘पेँ’ शब्द भी
 धाया है—‘ऊँ’ कचे धबीर भोरी को या ऊँट गुमान कराइ के (३४६२) । धावकम इस
 धोबकम के लिये बोली शब्द ही प्रचलित है ।^३ पारबात्य प्रभाव से समाज के कुछ वर्गों में यह
 पहनावा लट्ठा या रूखा है और उसका स्थान मुसलमानी पहनावे पाजामे तथा पस्चिमी पहनावे
 पैट ने ले लिया है । फिर भी बंवास बहिषी भारत प्रावि भागों में बोली ही अधिक पहनी जाती
 है । प्राचीन काल के पहनावे में पारबात्य प्रभाव का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है और बोली उनके
 पहनावे का प्रमुख अंग है ।

४ —कंचे पर बालने बाले बरन-बराह के लिए सूरसागर में कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं—
 दुपटि (परि० ७) [छं वि-पट]—‘काहु को बीनी दुपटि हो बरि करि पीरे छोर’^४ (परि
 ७) । कुम्ह के बरनों में ‘दुपटि’ शब्द प्रायः प्रयुक्त नहीं हुआ है । उनके बरनों में पीताम्बर, पीत-
 पट तथा पीतवसन के प्रतिरिक्त उत्तरीय के धर्म में लड़निया (१३११ १३१२) [भोडड] शब्द
 ही अधिकतर वर्णों में मिलता है—‘पीत लड़निया कहाँ बिछारी’ (१३११) अथवा ‘सान
 बिपनि की सारी ताकी पीत लड़निया कीन्ही (१३१२) । इसी अर्थ में एक नया शब्द पामरी
 (२ ७५) प्रयुक्त हुआ है —

भोले पीरी पामरी (छे) पहिरे लाल निचोल ।

भीहै कंट फटीलिया (माहि) मोल लियो बिनु मोल । (२ ७५)

पामरी शब्द बहुत कम प्रयुक्त किया गया है । निचोल (२ ७५) [छं निचोल] का
 अर्थ धोड़नी या चादर है किन्तु यहाँ संभवतः बोली अथवा लरीर के ऊपरी भाग के किसी बरन
 के धर्म में लिया जा सकता है ।

स्त्री-मुकुट दोनों उपरना या उपरना (६२६ १६८६ ३१ २) [छं उपरि + धावरख]
 धोड़ते थे क्योंकि बिनाय वर्णों में माया-वर्णन में तथा टाका के बरनों में सस्वेख होने के साथ ही
 हृष्य के बरनों में भी धाया है—‘बलि उपरना निरिबर लाल’ (१६८६) व ‘उपरि पसी उर
 है उपरना लख-लख बिनु गुन माल’ (३१ २) अथवा ‘उपरना मुरली लई’ (३५२०) । उपरना

१—हू जी , प्र ११, अध्या १

२—” ” ” ” या तु तु० चान्दियाँ भारतीय धावमाया और
 हिंदी पृ ११

३—हू जी , प्र ११, अध्या १

४—अपरकोण में धोने के लिये ‘अंगरीय’ ‘अर्धतप्याल’, ‘परिधाय’ तथा ‘अपीमुक्त’
 प्रादि पर्वण मिलते हैं । इनके अर्थों में क्या भेद थे, यह स्पष्ट नहीं है ।

५—लंका में छोर के लिए ‘बन्ना’ शब्द है— ‘रामा पत्रलेन कनकमालाधारी’
 हर्ष रत्नावली नाटिका, निर्णय सागर प्रस ५ स पृ ६२

हय० शा० रा , पृ ७४ ‘अवयवगतलम्’, पृ ६५ ‘मलाकुलकम्’

बस्त्रों के ऊपर बाहर की तरह धोखे से । हर्षचरित में भी राजाओं के बस्त्रों में 'आम्बायनक' नामक हुलकी बाहर का वर्तन है । मथुरा संग्रहालय में सूर्य तथा उनके धनुषर की मूर्तियाँ बाहर धोखे हुए हैं । यमराज के मिति चित्रों में भी बाहर चित्रित की गई है । बाहर धोखे की प्रथा छायावती पद्मावती से धाई बी ।^१

कुम्भ के बस्त्रों में पिछोरी (२ १ ४९४) [छं पञ्च + पट्ट] भी धोखे वाली बस्त्र के धर्म में आया है—'राजत्रि पीठ पिछोरी मुरली बजाई गीरी' (२ २३) । यही शब्द नवन स्तंभ में राम-लक्ष्मण आदि भाइयों के बस्त्रों में पीठी के धर्म में प्रयुक्त हुआ है—'कटि-उठ पीठ पिछोरी बाजे काक्यपञ्च धरे सीध' (४९४) । भावकल भी किसानों के जाड़े में धोखे की वही बाधर की 'पिछोरी' कहते हैं ।^२

४१—पटुका (परि ७) [छं पट्ट घबचा पट्टिका] का उत्प्रेषण बहुत कम है तथा कुम्भ संबंधी बस्त्रों में नहीं मिलता है । ग्रन्थ स्मरणों में आया है जैसे कुम्भ-बन्धोत्सव पर—'काहू को पटुका दियी हो' । हर्षचरित में राजाओं के बस्त्रों के वर्तन में 'हस्त' शब्द का उत्प्रेषण है । 'हस्त' का धर्म पट्टिका जोर किया है ।^३ पटुका बांधने की प्रथा भारत में शकों द्वारा आई तथा गुप्तकाल में भी चलती रही । बौद्ध तथा जैन साहित्य में स्त्रियों भी पटके [कमरबन्ध] के समान बस्त्र कमर में कलारमक डंग से बांधती थी । यह पटके बाँध के रेशे चर्मपट्ट, ऊनी कट्टी बटे हुए नील बस्त्र आदि के बनते थे ।^४ भावकल पटके को 'कैट' या 'कमरकैट' भी कहते हैं ।^५ मुरखानर में भी 'कैट' (१५३) वही धर्म में मिलता है—'बापा को कटि कैट बांधी' (१५३) । उत्तर प्रदेश के बाँधों में 'कैट' बांधने की प्रथा अब भी चल रही है । लहरों में भी बिनाह के धधधर पर धर की कमर में पटुका बांधना पढ़ता है ।

प्रथम स्तंभ में राजा के वैराग्य लेने के चित्रचित्रों में कुपीन [छं कीपीन] बस्त्र का चित्रण भी है—'वीरनपट कुपीन वन जादि, जम्बी मुरखरीसीध सचादि । ग्रह संस्थासिद्धों के पहनने की बीर घबचा संगोटी होती है । प्राचीन काल से ही-छात्र संस्थावती इस प्रकार का बस्त्र पहनते आये हैं ।

४२—सिने हुए कस्त्रों में बग्गा, झुगा तथा जोखना शब्द मिलते हैं । बग्गा तथा झुगा नामक कुम्भ के बस्त्रों में आये हैं जिन इन शब्दों का विशेषण उक्त स्थान पर ही किया गया है । 'जोखना' (१५३) [छं नील-बीजा बस्त्र] भी विनय पत्रों में ही मिलता है । कुम्भ के बस्त्रों में सिने कपड़ों का उल्लेख नहीं नहीं है । इसका वही कारण हो सकता है कि सूर ने कुम्भ की प्रभावशाल्य से परम्परागत बस्त्राभूषणों से ही सुसज्जित किया है । उस समय के प्रचलित सिने कपड़ों—नीलगा कच्चा धादि का उन्होंने ग्रन्थ स्थलों पर उल्लेख मात्र कर दिया है जैसे—'कम-श्लोक को पहिदि नीलगा कठ विधय की माध' (१५३) । हर्षचरित में 'नील जोलक' नामक कोट राजाओं के बस्त्रों में आया है । यह एक तरह का ऊँचा कोट था जो नील से शकों द्वारा भारत में लाया गया था ।^६ पद्मावती से 'नीला' शब्द उल्लेख के धर्म में प्रयुक्त हुआ है—'तारा रंगर

१—हर्ष सां प्र, पृ १३३

२—क० बी, प्र ११, अध्याय १—कबीर ने पिछोरी के लिए 'पछेवड़ा' नाम प्रयुक्त किया है ।

३—हर्ष सां प्र, पृ १५४

४—प्रा भा० के, पृ ३६

५—क० बी, प्र ११, अध्याय १

६—हर्ष० सां प्र०, पृ १३१, १३२

पहिर भम बोना' (१८४१)^१। धावकल साधु-मुक्ता बो डीना सा लम्बा कुर्ता पहनते हैं उसे भी 'बोना' कहते हैं।

परि ७ में^२ काहु की पट्टा बियो हो काहु कुसह कबाह' में 'कबा' शब्द निवारणीय है। यों ही 'कबा' नामक बस्त्र धकवर तथा बहामीर के समय में प्रत्ययिक प्रचलित था। बाद में धकवरी में भी इसके बारे में किया गया है कि यह एक तरह का कड़े का कोट-नुमा बस्त्र था। मनुची^३ ने भी कबा का उल्लेख किया है कि एक लम्बा खुला हुआ गाउन होता था। उस समय के पहनावे का प्रभाव रंग होने पर भी सुरसाध ने इसका उल्लेख बहुत कम किया है। होभी प्रसंग में वागो (१५२०) का नाम भी आया है—'नाना रंग गये रंगि बाये। इसकी व्याख्या बस्त्रों के बस्त्रों में है। एक स्थल में 'मरगवे लन के बागे (१४४४) भी वर्णित है।

४१—पाग, पागा (६४९ ५५८ १६८३ ११०३) धक्का पागिया (१९७८) तथा पालारी (परि ७) [उ पटका] पगड़ी के धर्म में मिलते हैं। नवम कर्म के राजस-मंडोवरी संसार में मंडोवरी राजस से कहती है—'सुन वसननि मै मिलि दसकबर कंडनि मैलि पया' (५५८)। पगड़ी बदलने की प्रथा मिथवा की सोचक थी। कृष्ण ने बस्त्रों में 'पाग' के रंग तथा बांधने के ढंग का वर्णन मिलता है—'रोकि रहत गहि गली संधरी टट्टी पाघत पाग' (६४९) धक्का 'बलि कुंठल बलि पाग छटपटी (१६८६)। कृष्ण पूजों में धर्मरुत पाय भी पहनते थे—'पूजनि सी नाम पाग लटकि खी नाम नाग सो खवि लखि सानुराग टरवि न मनत' (१६६३)। कृष्ण की पाग प्रमत्त सास रंग की बताई गई है। गुल्ल पर्वों में बावक का रंग लय जाने का भी उल्लेख है—'बालक सी कंह वाग रंवाई रंगरेबनि कौन मिलि बाला (११०३) धक्का 'सुर रै' छटपटी पाग पर बावक की खवि नाम (११ ३)। इस विषय पर्याप्त में मनुष्य के ग्रहकार का सुधार बिज है —

'कबहुँक कृषि सभा मै बैदयो मूँछनि ताब दिखायो।

टेढ़ी बाल पाग सिर टेढ़ी टेढ़ी-टेढ़ी बायो। (१ १)

पाग छोटी पगड़ी को कहते थे। इसे प्रायः हिन्दू या राजपूत पहनते थे। राजपूतों की पगड़ी हथिखी ढंग की पगड़ी से संभवतः आई थी।^४ पगड़ी (उपखीय) भारत के प्राचीनकालीन पहनावे में भी थी। तिब्बती भी कभी-कभी उपखीय पहनती थी। प्रपर्ववेद (१३२११) में उपखीय का सर्वप्रथम उल्लेख है। पगड़ी बांधने तथा धर्मरुत करने के ढंग में बराबर परिवर्तन होते रहे हैं। धर्म में 'पांडर उपखीय' का उल्लेख है।^५ मुगल बादशाह भी मोटियों तथा बहुमुख्य रंगों से धर्मरुत पगड़ी पहनते थे। बनिबर ने भी इसका उल्लेख किया है। पगड़ी को धावकल स्वाग्र या साग्र मुहासता मुहासता [सं० मुण्डनासक] तथा हिमामा [प्र इमामा]^६ भी

१—य सं टी, पृ १७५

२—परि० ७ में बस्त्रों के कुछ ऐसे नाम एक साथ दिये गये हैं जो सुरसाध में, बहुत कम आए हैं या नहीं मिलते हैं जैसे कबा, पटका तथा कुपटि। परि० १ के १२ संविषय समझे गए हैं।

३—मनुची, पृ ३४

४—कौसुरी, पृ ५३

५—हर्ष० तां प्र०, पृ ४४

६—क० भी०, प्र ११, अध्याय १

कहते हैं। प्रायस्क भी राजस्थान पंजाब तथा दक्षिण में साक्षात् बाँवने की प्रथा चल रही है। उत्तर प्रदेश के पौनों में प्रचुर साक्षात् दिखाई पड़ जाता है। यहाँ की गर्म जू से बचने में इस पहनावे से बहुत सहायता मिलती है। साँके की लपेट को भी फेंट पेंच या बंधन कहते हैं—'बाँवत फेंटे पाव सँवारी' (१५२) 'सटपट पेंच सँवारी' (२६५४) तथा 'सटपटी सिरपेंच छूटे बंधन लागे' (१२६१)।

परि ७ में कुलह कहा है। वास्तव कृष्य के पहनावे में कुलही राज्य बरबर प्रमुख हुआ है। कुलह (परि ७) [छा कुलाह] शर्कों द्वारा भारत में छाई थी। साँके के प्रचुरियों तथा प्रजाता के मिलि विप्रो में कुलाहुना टोपी मिलती है। संस्कृत 'सोम' ईरानी 'कुलह' का व्युत्पन्न था।^१

४४—सूरसागर में जूते के पर्यायवाची राज्य पाँवरी (१६६१) पनहियाँ (४६१) [स पवनदा पवनघी] घोर पञ्चपाण (४८२) [स पञ्चपाण] मिलते हैं—पहिरि फिटबर, चरन पाँवरी, बज बीचिनि री घात' (१६६१)। नवम स्कंध में राम भद्रमण धादि भाइयों की शरमीड़ा शीर्षक पदों में—'बेसत फिरत कमकमय धांगल पहिरे मास पनहियाँ (४६१) तथा बरबर-विनाय शीर्षक पदों में—'किन रज बड़ दुसह बुज मारण विन पद जान बही बोज घात' (४८२) वर्णन है। कृष्य के कम-वर्णन में जूते का उल्लेख कम किया गया है। एक तो कृष्य के समुच्च रूप के परम्परागत पहनावे में जूते का स्थान नहीं है तथा गाँव के बाहिर ग्वासा धादि नर्व के मोल जूते कम पहनते होंगे। आज भी निर्बलता के कारण यह वर्ण जूते कम ही पहन पाता है। परमानत में भी खड़ाई प्रथा पाबुका के धर्म में 'पाँवरि' राज्य मिलता है—'पाँवरि पाँव सीन्हा सिर घात' (१२११७) प्रथा 'पाँवरि सङ्ग बेहु पग पैरी' (खड़ाई उतार कर पनही पहनो)। पर्याय में 'पाँवरि' पाँव के धर्म में भी मिलता है।^२ सूरसागर के कृष्य संबंधी उल्लेखों में पाँवरि पाबुका के धर्म में ही धार्य है। नवम स्कंध में राम के 'पञ्चपाण' तथा 'पनहियाँ' जूते के धर्म में धार्य है। कृष्य की पाबुका के लिए खराक (४४४५) शहर भी कहीं-कहीं धार्य है—'धम सुनिमल है बोरी पहिरे बही खराकें न्यास'।

४५—सूरसागर द्वारा वज्राचों में प्रचलित सिरोपाव (१२ ४ २५५७) [सिर + पाँव] बेकर सम्मानित करने की प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है। कंस ने बाहूर को सिरोपाव बेकर नन्दपुत्र को बुलाने भेजा—'बहि बजास को सीन है सिरोपाव मगायी अपने कर सी करि दिवी, सुकलक-सुत सीन्ही' (१५५७)। कंस द्वारा नन्द को भी सिरोपाव^३ दिया गया—'बिबो सिरपाव

१—हर्ष साँ घ, पृ १३३

प सँ टी, ४६६१४ 'बेबा जोलि राग सौ मड़े'

२—मा भा वि पृ १७६—महाभारत में जूते के लिये जपलह, पाबुका, पाव बेष्टनिका घोर संक्षुल राज्य घात हैं। संक्षुल भारतीय लुंडा जूते से सम्बन्धित हो सकता है।

पृ २—यसुर्व में 'जपानह' राज्य का सर्वप्रथम उल्लेख है।

३—प सँ ग्या २७६१२ पैरी—पनही जूता (प्रचुरी)

४—प सँ टी, १६७१६ 'पाँवरि हीउ बही धोहि पावा'

(स पावपङ्क-पावपङ्क-पाँवड़-पाँवड़ा)

५—विवाह के प्रसंग पर बिये जाने वाले पाँव नव 'पहिरावली' कहलाते हैं। प्रचुर बेर १११२३ में भी पंचवर्णों का उल्लेख है—'पंच टवगा पंचनवागि नवा पंचास्ने केनव' कामधुमा प्रचलित

नृपराज ने महार की (१२ ५)। चिरपाव से जैसा कि हाथ से ही पता चलता है कि चिर से पर तक की पूरी पोसाक होती है। इसमें पाय घंगा कुफ्ठा पाजामा तथा चटका होता है। पहिरावर्ति (१५१७) का काग प्रसंग में उल्लेख है—‘रंग रंग पहिरावर्ति बई’ (१५१७) अथवा तथा शृंगार वर्णन में मनहुं बेति पहिरावर्ति घंग’ (२८ १)। यह भी चिरपाव का ही वर्ण होता है। श्राव कल भी यह प्रथा चल रही है।

कुच्छ गाय बनाने के लिये जाते थे तो लकुट^२ (२ २४ २०५८) [नं लकुट लकुट] श्री अपने साथ रखते थे। कंचन-लकुट का उल्लेख चोबदारख दीपक पत्रों में है—‘मापी बाह कलक-लकुटी छै, पंख संहारि बतावै’ (२ ५८) अथवा—

‘जट धरि डेह लकुट तब वैही।

ही हूँ बने महार की बेटी तुम ही नहीं बरही ॥

मेरो कलक लकुटिया बैरी मैं धरि वैहीं भीर। (२ २४)

तथा ‘कटि कसमी कर लकुट मनोहर चोबदारख बने मन अनुमानि (१८१३)।

श्राव भी शायीय पुरुष बाहर जाते समय हाथ में एक लड़ी बरख रखते हैं। आने भी श्राव बनाने के लिये जाते समय छोटा-सा बरख लिये रहते हैं। लकुट छोटे बरख के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। लव अपने गांव के ‘महार से भीर कियु के समुख कन कुच्छ के रूप बखन में बिरोप बैभव तथा सभवा सुखक वस्तुओं का स्वाग-स्वाग पर वर्णन किया गया है। इसी को ध्यान में रखकर सायब कवि ने लकुट कलक की बताई है। गीतार्जुन-भारख प्रसंग में शोच आलों के लकुट रखने का चिह्न भी है—

स्वाम कछु नहि मुवा पिछानी आलनि कियो सईया।

लकुटनि टैंक सबनि मिनि राख्यो भव बाबा नवरैया। (१५८३)

माया नदी के वर्णन में—‘माया नदी लकुटि कर सोनहे कोटिक नाच नचामी (४२) हाथ गटियों के लकुट लेकर नृत्य करने की ओर संकेत है।

सुखनात्मक

४६—सुर के समान तुमसी ने बेनामपुखों का वर्णन नहीं किया है। राम कुच्छ तथा अन्य बेनामपुखों के समुख रूप वर्णन में उन्होंने उनके परम्परागत वस्त्रों में पीत वसन तथा पीताम्बर का उल्लेख किया है।

तुमसी ने बिबाह के अवसर पर बर-बन्धु की सज्जा का संक्षिप्त वर्णन अवश्य किया है। बर के वस्त्रों में पीत घोड़ी कटिसूत्र पीत बनेठ, मुद्रिका पिपर सपरता कुंडल रिलक तथा कुसहन की बेनामपुख में जूनी तथा पीत पिछोरी का उल्लेख है। राम की सोमा का सुन्दर वर्णन है—

(१) ‘पीत पुनीत मनोहर बोटी हरत बाल रचिबामिनि बोटी।

कल किकिनि कटिसूत्र मनोहर बाहु बिसास बिमूयन सुन्दर।

पीत बनेठ महाछनि देई करमुद्रिका चोरि चित सेई।

छोहित ब्याह साज सब साजे कर चायत मूख उर राजे।

पिपर सपरता काँचासोटी दुई बाँबरहि सब मनि मोटी।

१—य सं डी, ४८८।१ ‘पान सोनह राणी पहिरावा

२—क० बी०, प्र ४ अथवा २—संवेद्य होने पर वजुसाता (सार) में जाते समय किसान लव की बेंटी बनाकर हाथ में ले लेते हैं उसे भी ‘लकुटी’ कहते हैं।

हैं और इसका आकार गोल होता है। आसक्त भी बच्चे इस प्रकार की टोपी पहनते हैं।^१ तनी रूपरे की बोहरी छिनी पतली-सी पट्टी को कहते हैं। सूर में भी 'तनी' शब्द प्रयुक्त किया है—
'तनी बोनी की टोरी' (३४८८)।

टोपी के चर्च में एक बुराब शब्द कुलही (७२६ ७७८) तथा कुलहिया (७५०) [अ कुलाह] भी मिलता है—

'कुलही लसति छिर स्यामसुन्दर के बहुविधि सुरंग बनाई।

मागो मयमल ऊपर राजत मयमा धनुष बजाई। (७२६)

या 'छिर कुलही पय पहिरि पैरनी तहाँ जातु बई नन्द बसा ऐ' (७७२)

या 'छोछ कुलहिया जीतनियां (७५०)

कुलही कुलाह के आकार की छोटे बच्चों की टोपी होती है। इसमें चार ठोड़ी होने पर 'जीतनियां' कुलहिया (७५०) कहते होंगे। बच्चों की टोपी कई रंगों की भी बनाते होंगे इसी सिद्धे श्याम कृष्ण के शरीर पर रङ्ग-विरङ्गी टोपी की उपमा बाबलों के ऊपर इन्द्रधनुष से दी गई है।^२

८—स्त्रियों के आभूषण

५०—सूरसागर में राजा तथा गोपियों के आभूषणों का अनेक पर्वों में विस्तार से वर्णन किया गया है। यह विशेषतः कृष्ण के मधुर-ममल से पड़ने के संयोग प्रेम संबंधी पर्वों में है। कुछ पर्वों में (१६९१ २०२३ २१५८ २११६ १४५) केवल आभूषणों के नामों की मात्र सूची दी गई है। इनमें से कुछ प्राचीन तथा कुछ विदेशी नाम हैं। भस्कार-शस्त्रियों ने स्त्रियों के बाह्य आभूषण माने हैं—शीतकूल टीका बासी बेसर रंठमी, हार, बानुबंद झुड़ी कंवल संभूटी किन्किणी तथा मूपुर। बायसी ने इसका उल्लेख पद्मावत में कई स्थानों पर किया है।^३ बीरे-बीरे अनेक प्रकार के आभूषण प्रणमित हो गए। सूरसागर में भी इन बाह्य आभूषणों के प्रतिरिक्त अन्य बहुत से नाम मिलते हैं।

सूरदास भी ने आभूषणों के लिए प्रचलित आभूषण (१२४६) [छं आभूषण], भूषण (१६५५) [छं भूषण], आभरण (१८२) [छं आभरण] तथा अभरण (१६९५) पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त किये हैं जैसे—'रवि आभरण सिंगार अंग सजि क्यौं रतिपति सजनी' (२८२) अङ्ग अभरण उलटि धाने (१६२५) 'अंग अंग आभूषण (२६४४) तथा 'जब देखें उलटें मूपन' (१६५५)। कहीं-कहीं गहना (परि ८) [छं गहनाक गहनाक गहना] शब्द भी प्रयुक्त हुआ है—'गहनों अंगक नकायी। बायसी तथा तुलसी ने भी शब्द यही शब्द प्रयुक्त

१—मानस, बालकाण्ड को २४३ 'घोल जीतनी सिरन्हि सुहाई। तुमुमटनी बिच बीच बनाई।

२—तु य पीता, पृ २६२ 'सावर तुमुनि बिलोकि—सुनिन अपनियां ३१ सूरसागर के 'आवर सजित बिलोकि—सुनिन अपनियां' में बहुत साम्य है। एक नये शब्द 'नयकनियां' के प्रतिरिक्त बहामुयालों की विस्तृत एक ही सम्भावनी है।

३—य छं क्या, २६६।३-४ 'पुनि कानन्ह कु डल पहिरेई ..

बाह्य अभरण यह बचाने, ते पहिरे चरही सत्त्वाने।

किये हैं।^१ धावकन गहना तथा खबर [का] के अतिरिक्त बोलियों में 'माम' या 'बीब' शब्द भी बोले जाते हैं। ऊपर के वर्णों से शरीर के प्रत्येक वर्ण पर खबर पहनने की प्रथा की घोर भी संकेत किया गया है—'धन धन धामुपन' (२६४४) अथवा 'धन-धन धामुपन की धवि काई होइ बखान (१ ६४)।

खबर प्रायः गोरी छोले-बाँधी के या बड़ाऊ बनाए जाते हैं। सूरसागर में छोले या मोठी के अथवा रत्नचटित धावरणों के उल्लेख ही प्रमुख रूप से किये गए हैं। इस प्रकार के खबर बहुमुख्य न सुन्दर होते हैं। सूरसागर में अधिकतर धामुपणों के नाम ही दिए गए हैं किन्तु कहीं कहीं धामुपण विशेष की बनावट के बारे में भी बताया गया है जैसा कि धाने धामुपणों की व्याख्या में बताया जायगा। कहीं-कहीं साधारण तथा सजी धामुपणों के बारे में भी बताया गया है, जैसे—'सूरसागर कनक के धमरन से अगारिन पहराई (६१४) अथवा अनिमय भूपन मंगरी (१४५) तथा 'कनक खचित अनिमय धामुपन। अनिमय या अनि भूपन (१४२ १६७१) का उल्लेख अनेक बार हुआ है—'अनिमय भूपन पट धन छाई (परि १ ८) अथवा 'ननु कंठ नागा अनिमयन' (१६७१)। जैसे हुए पहनों के लिये खराइ (१२११) खराऊ (२ ६१) या रत्न अतिव (२०५८) भी कहा गया है। कहीं-कहीं बड़ाऊ खबर से उपमा भी दी गयी है—'स्वाम तनु बन गोम माती चङ्गिउ तनु लुङ्गमारि। मनी धरकट कनक मंजुव लक्ष्मी काम सँवारि' (२६ ७)। कामती से भी बड़ाऊ खबरों का वर्णन किया है।^२

५१—मांग के ऊपर पहनने का एक धामुपण मांगपाटी [धं बक्ष्य-या मय-मांग] होता है—'मांग पाटी लुमय (१६९)। अंगार तथा प्रसावन के विलसित में मांग मोठी से धरने का उल्लेख किया गया है। अस्तक पर पहनने के तीन बार धावरणों के नाम सूरसागर में दिये गये हैं—'चंदक चट्रिका (२ ५७ ७१५) [धं चट्रिका], बेंदी (२४६९) [धं बिजु] सीसफूल [२११९] [धं शोप + फूल] तथा टीकी (२१५८) [धं नितक]। मांग पर लटकता हुआ चंदकधार धामुपण चंदक कहलाता है। यह एक गूँ बला से बाँध के ऊपर लटका लिया जाता है। चंदक या चंदवा बाँधी का भी बताते हैं तथा अन्य प्रकार के भी। इसमें तीन गूँ बलाएँ होती हैं। बीच वाली में बाँध के धाकर की पत्तियाँ लगी होती हैं जो धाव के ऊपर घाटी हैं। दोप दोनों कानों के ऊपर लटकती रहती हैं जिनमें मुमके लगे होते हैं। पनपट लीला, २ ५७ में चंदक की उपमा महावत से भी गयी है—

'चंदक मनहूँ महावत मुख पर'। वाक्य कृष्ण की 'चट्रिका यात्रिक' (७१५) का उल्लेख किया जा चुका है।

बेंदी या टीका चंदकार होता है तथा एक गूँ बला से बँधा हुआ मांगे पर लटकता है—य सं ध्या ११ 'बाँध मूरज धन गहने'।

मानस, बालकाण्ड २४८ 'भूषण सकल सुवैत लहाने धन-धन. तबि लज्जित बनाये।'।

२—य सं ध्या २६७, 'पहिरि जराऊ ठाढ़ि मी बरनि न धावे भाज'।

३१६१५, 'कवन करी बड़ो नग मोती।

बरमा ली बेंधा जनु मोती।

४४ ५६, 'कवन करी रत्न नग बना।

कहाँ पठारन लोह न पना।'।

३—या सं, २ १३८

रहता है। इसे प्रायः नगीं से बड़ा हुमा बनाते हैं घोर किनारे मोतियों की झलर होती है। बेंदी या बिंदी बांदी की भी बनाते हैं। इसका दूसरा नाम बेना भी है। सूरसागर में नव इसकेचने होने का वर्णन है—'घोरे भाग बिहु लेंदुर पर टीका मर्यो बराठ' (१११६) तथा 'बराठ की टीकी' (११५८) का 'बराठ बिब बराठ की बेंदी (११५५)। सीसफूल का धामर कूब के समान पीन होता है। इसको बोर बोरला या बोरिया कहते हैं। राधा नग [का नगीं नपीन] से बड़ा सीसफूल पहनती है—'सीसफूल प्रति मसत नव मर्यो ता पर छेस सीसमनि बारठा' (१२०७)। सादा सीसफूल भी पहना जाता था—'कबहू राखवि सीसफूल बटकाई की' (१२०८)। भूना भूतसे समय माये का सीसफूल भी टाटक के साथ ध्यान धारकित करता है—'मो सीसफूल समीन छरिचन तिसक सुंदर माव' (१५५६)। श्री (१५५६) का 'सिटी' भी माये की टिकुनी या बेंदी नामक धामपद को कहते हैं। परि ७ में 'काहुं बीन्ही बोर' का उल्लेख है। बोर या बौर माये के एक धामपद की भी कहते हैं। नागपति पहनने का उल्लेख भी है—'मनि-नाग सीस बरि' (१२१६)। धामकम राखवान बुनपठ एवं मय्यमवेस में बोर पहने हुए स्त्रियां दिखायी देती हैं। विवाह के अवसर पर प्रायः बन्धु की बेंदी या टीका पहनाने की प्रथा अभी भी रही है। इसको सोमामयुचक भी मानते हैं। सूरसागर में भी बह संकेत है—'सीसफूल मनि-नाग सीस बरि मनु तुहाज को सब लगामी (१२२६)। मोहनचोबड़ो की सुबाई में छिर पर बांधने की इस-बाण्ड ईंच लंबी होने की पंक्तिवां ही मिली है। सिन्धु-सम्पदा के इस धामरथ से मिलता-जुलता धामरथ 'पाव' धाम भी बहिष्ठी-पूर्वी पंजाब में पहना जाता है। हर्षचरित में छिर के कुछ इसी प्रकार के धामरथ बालपाठ तथा मस्तक की बटुला-तिलक मखि का उल्लेख है। गुप्तकालीन स्त्री मूर्तियों के मस्तक पर यह मखि देखी जा सकती है।^{१२}

५२—काल के धामपदों में कु डल (१७६६) [ल] धामरथ प्राचीन है जिसे स्त्री तथा पुरुष दोनों ही समान का है पहनते थे।^{१३} कुडल का जो यह प्रिय धर्मकर था ही सब की स्त्रियां भी इसे पहनती थीं। राधा के कानों में सुव या बिबली के समान देवीत्वनाम कुंडलों का वर्णन कई जगह है—

'कुंडल कममसाठ मलकठ प्रति बकाचीन गैग न ठहराय' (१७६६)

जबमनि कुंडल रजि लम ज्योती' (१५१६)

१—ब लं ध्या, ४७१।७ 'सिटी जो रतन माप बेसार।

जानहुं गर्जन द्रष्टि निति तारा।'

२—हर्ष लं ध्या, पृ २३, १२३, १७ 'ललाटलास्य सीमन्तमुन्नी बटुला-तिलक मखि'

१—" " " पृ ४७, 'कु डलमखिकुटिलकोटिबालपीला' (हर्ष चरित)

साजना लुनि की ली के कानों में द्वितीया के चर के समान बलापन का कु डल था।

४—ब लं ध्या, ११, 'कु डल कमल रचे छमियारे'

४७६, 'मनि कु डल कमकहि छति लोने।

बनु कीया लीकहि हुं कोने।

हुं विरि जाव तुरज कमकाही।

नलातह जरे निरखि नहि जाही।'

पश्चिमदिष्ट कुंडल के संबंध में भी पता चलता है—'मनि कुंडल टाटक विनीत' (१७१८)। टाटक तथा कुंडल की दोनों धार्मिकीय भी—

'कुंडल संय टाटक एक मए कुणम कपोलनि मर्दि' (१७५९)।
कान के इय हुसरे धामुपख टाटक (१९२९ १७७८) [सं टाटक] तरिकौ का धामुपख सबकी प्रायः नयी पथों में निर्देश हुआ है। इससे यही सिद्ध होता है कि सब समय का यह ग्रिय तथा अधिक प्रचलित धामुपख था। यह फूल के आकार का पोल रोनोंबार टॉप्स होता है, प्रत्येक इसकी उपमा कई जगह तक से दी गई है—

'नक तरयोना' (१२१२) धक्का की मनमय-रक-नक कि तरिवन रवा पथित सह-धाव।
अथन रूप की रैडट पंक्ति का चल धुमय समाव ॥ (१ ६१)
कोपियों तथा टाटा के टाटक का वखन अनेक स्वयों पर किया गया है—

'सवन तरिवन-धवि को कवि कई निवारि' (१९४५)
धुम अवगति तरस लरीन शैली विविध मुही' (१४२)
बनिराम प्रसंग से हल्का हाट धामुपख धीनने के सिमलिते म भी निर्देश है—

'नकनेरि सुठिला तरिवन की' (२ १३) तथा 'मोरी बपरि एहे सब बन न नयी कान की तरिकी'। (२१ ५) मुरली ध्वनि से वेमुच हो बब की सिर्वा जलते टाटक पहन मेरी है—
सवन टाटक ललते सवाये'। (१९२९) बहाक टाटक का जलने भी है—'सवन मनि टाटक मंजुल' (२७५२) या तरिवन जवन रान मनि मूयित'। (२०१९) मोसम जहे टाटक का वखन भी किया गया है—'टाटक मंड पर, रतनमटिग मनि नीली' (१७७८) कहीं कहीं धार्यय धुमर जलने का हाट बखन है—

'धुमय सवन तरिवन मनि मूयित इहि उपमा नहि पार मनु कान विवि छे बनाए, कारन नंदकुमार।' (२११९)
धामरुल इसे तरकी कहते हैं। धामील सिर्वा धक्कर पहनती है। इसकी धुंधी मोटी होने के कारण कान का धेर लुब बड़ा किया जाता है। बुकी पर प्रायः टाड़ का पत्ता लपेट लिया जाता है। पहले समयय इसे टाड़ के पत्ते से बनाते होंगे धवः इसका यह नाम पड़ गया होगा। धान में लाल की तरकी भी पहनी जाती है।

इसका एक धव्य नाम बीरे (१२२९) या बीरे (१४४९) या किसका आकार भी बक का धुय-धति के समान बढाया गया है तथा सीने का रतनमटिग—'कानि की बीरे धति राजवि मनु मदन रन बक बड़ावी' (१२९९)
धक्का—'कनक धटिग बराह बीरे कविमु उपमा पाह
धूर लवि धी एक बब मै जमै मागी पाह।

५१—कोड़े से ही स्वयों में धवयें (१२१) [सं धवयें] का जलने भी है—
विनि टाकत धवयें'। यह वाली के समान कान का एक धामरुल है। बाध ने धूर के धामरुलों में 'धवधवयें' का जलने किया है जिसे संययत कुंडल के ऊपर पहनते थे।
करन-कूस (१८ ७ २८०८) [सं कय + कुल] का जलने भी टाटक के समान ही धनेक बार किया गया है। यह करन कुल (एक छोटा सफेद फूल) की धनुइति पर बनाया जाता है। कयकुल भी बब की सिर्वा का धिय धामरुल ज्ञात होता है—'करनकुल कर लिये संवार्यति

(२८०७) या 'मानो कर्णकृत चारा की' (१२९८) भाग्यकत धामीक बोली में इन्हे 'कर्मकृत' भी कहते हैं। कर्म-कर्म कर्णकृत के बीच में छोटा गड़ कर भी बताते हैं। बापसी ने भी नाक के कर्णकृत का उल्लेख किया है।^१

कान के घेब में पड़ने वाले बाले प्रायः धाम्पत्यों में खुटिआ, खुटिआ (२ ६३) (१९११) तथा खुंमि या खुंमी (२ ५७, १९७९) भी थे। 'खुटिआ' नामक चारा के मुक्ता यदि खिंचे बैठ प्रयत्न मयो घन मध्य हैं मनु खनि मज्जत समेत में जड़ाऊ खुटिआ का बल्य है। बायसी ने संभवतः इसी के लिए 'खुं' या 'खुटी' नाम दिये हैं जिसका प्रचार बीच के समान होता था।^२ ज्योतिरीरवर ठाकुर ने 'खुटी' नामक धाम्पत्य का उल्लेख नाविका के वस्तुकारों में किया है (बखरलाकर पृ. ४) तथा उसे 'खुंती' नाम भी दिया है (पृ. १४६)। 'खुं' या 'खुं' लक्षण की अनुकूलि पर बताते थे। सूरदासर में उसके प्रचार की घोर संकेत है—'खुंमि कपल-कृत खुंति यो मनुई मुख-वर्ति रक्ती' (२८ २) 'ज्योतिरि हार बलात्मक मानो खुंती बत मलकावै' (२०५७)। बड़ाऊ 'खुं' भी बखित है—'खुं' कपल कपी है (१९७९)।

५४—कान का प्रायः धाम्पत्य मूमक मूमका (१५८, १७६८) भी था। यह कान से नीचे लटकता रहता है और इसे खली कपोरी की अनुकूलि पर बताते हैं। इसमें किनारे मोड़ी की मलकर होती है और बीच में मटकन। यह कर्णकृत के साथ भी पहना जाता है। उल्लेख प्रसंग में कान के हिनते हुए मूमकों का वर्णन है—'अंचल अंचल मूमका' (१७९८) 'अंचल बलन मूमका' 'अंचल अंचल है महु कप' (१९७५)। कुछ कान पर भी दाईं की नेप में देने का उल्लेख है—'ताज टका अंच मूमका (बहु) छापी दाइ की नेप'। इस धाम्पत्य के प्रायः उल्लेख नहीं हैं। तपता है ताड़क तथा कर्णकृत पहनने की प्रायः प्रथा थी। धाम्पत्य गाँवों में प्रचलित कान के धाम्पत्यों में तरकी कर्मकृत ऐरन (Barring से) बापी या बाली बीच, हार तथा बिराबा प्रायः के नाम मिले जा सकते हैं तथा छापरों में प्रचलित चारू-छारू के टाँच बाली तथा हारिष के। सूरदासीन प्रचलित धाम्पत्यों में मोड़ी की बाली का प्रमुख स्थान था किन्तु न जाने क्यों सूरदासर में इसका उल्लेख नहीं है। बायस ने उपरिष्ठ में बालिका कल्प प्रमुख किया है।^३ तथा कालिका विरह 'बाली' आया है।^४ पदपुस्तक में भी 'बाली' शब्द मिलता है।

५५—नाक के प्रमुख धाम्पत्यों में मधुनी नाव, (१९४५, १७४६, १ ३३) [चं० नाव-नाव-नाव-नाव], नैसरि, नकनैसरि (६९ २ ६३, १५१९) [चं० इपल-नैसरि]

१—य० अ० व्या० ४२।१३, 'कर्मकृत पङ्क्ति उजियारा'

२—" , ११०।४ 'खिंचि पर खूट बीच बूझ बारी। बूझ अंच बूझी खूट बेंतारे।' ४७६।७ 'खूट बूझ अंच तराई खुटी। बालुं परहि कपल भी दूरी।'

३—य० अ० व्या०, पृ० १०७।४

४—" " ११।१३ 'पङ्क्ति छु मी माल बाली।'

बालुं बारी कपल भी छीपी।'

५—इसमें भी पृ०, पृ० १३ 'बहुलकलामुकारिणीनि' तिसुमिमुखावि कल्पितेन बालिका वृत्तेन।'

१, १—हि० धनु, प्रायः प्रचलित नाव-नाव-नाव २० अ०, पृ० ३

'बत हिन्दी प्रयोगों की निर्दिष्ट'—डा० बामुर्देवसरल-बामुर्देव

१—य० अ० व्या० १६५।६, 'बाली दाइ लाली दूरी'

उषा बुलाक (परि ११) [एकी बुलाक] का निर्देश है। इनमें सब से अधिक बेसर^१ या नक्सेसर का बर्णन है—'मुमग बेसरि निरुनि काम भावी (११६)। बेसर झाकार में छोटी नभ के समान होती है किन्तु नाक के बीच के क्षेत्र में बुलाक के समान पहनी जाती है। इसमें मोटी माथिकय या भुंके पड़े होते हैं बिनाक केवल सूरसागर के अनेक पदों में है—'गावा मुलवा पोत' (२२१६) 'बेसरि के मुलवा मणिनि (१२११) 'गावा की बेसरि मणि राजसि सामे लम अन्नमोष (१४७५) उषा 'बेसरि बनी मुमग गावा पर मुलवा परम सुहार (१२२८)। कड़ी-कड़ी धानकारों द्वारा पर्यन्त सुन्दर चित्र छोटा गया है—'बकिठ मणि, अपन मणि सोबन बेसरि रस मुकुटाहम छावो गानी। मुपनि धमी भावन जरि, पियत न बन्नी दुई करकामो (११२६)। बेसर न सबमोदी भी लगाए जाते थे—'नक्सेसरि लटकै धममोनी' (१५१६)। उषा तथा सखियों के बेसर धीनने के प्रसंग से संक्षिप्त अनेक पद (२५७१-२५७४) हैं। 'बेसरि सोनधि ही बकामहि बाहु न चरहि बनी' (२५७४)। यद्यपि की नाक की बेसर का संस्कार भी है—'लटकति बेसरि बननि की (१६)। इसके बाद लक्ष्मी का बर्णन किया गया है—'गावा नभ धरिहीं धनि राजति अन्नपनि बीरा-रंय' (२६४५)। लक्ष्मी बुलाक पर चढ़ी की तरह पठने होने के कारण से या खोजनी बताते हैं जिसमें मोटी व भुंके पड़े रहते हैं। यह नाक के एक तरफ क्षेत्र में पहनी जाती है तथा एक ओर कपोल पर पड़ी भावर एक लटकती रहती है—

'गावा नभ-मुकुटा के भारहि, रह्यो धवरलट बाह।
धाड़िस-कल मुक लेव बन्नी नहि कनक छंद रह्यो बाह। (२११९)
उषा—'गावा-नभ-मुकुटा बिबावर प्रतिविम्बि अन्नमूष।
बीज्यो कनक-भास मुक सुन्दर करक-बीज नहि भूष। (१६१)

धाकल लक्ष्मी पहनने की प्रथा कम ही मानी है। किन्तु बुलाक प्रवेश के पहाड़ी पहनावे में नाक की बड़ी ही लक्ष्मी का प्रमुख स्थान प्राप्त थी है। अन्य स्थानों में बिबाह के अवसर पर प्रायः सभी को लक्ष्मी पहनाई जाती है। लक्ष्मी अत्यन्त उषा खोजनी शीलों प्रकार की बनती है। कभी कभी इसका आकार हल्का होता है कि मार संभालने के लिए कमाल के मोटे या मोटी की बड़ी से बंध कर एक ओर कपोल पर झल कर बाह में बांध देते हैं। पठन काल से पहले भारतीय बुलाक पहनी जाती है। इसका अनेक प्रायः छिपु रूप के धारणों में ही अधिक है। हिन्दू काल में नाक में धारण पहनने की प्रथा नहीं थी। मुसलमानी संस्कृति के सम्पर्क में आने के बाद ही नाक में धारण पहनने की प्रथा लक्ष्मी में ही धारण के धारणों में ही अधिक है। हिन्दू पहनने की प्रथा नहीं है। पारश्वर्य प्रभाव से भारत में भी लक्ष्मी में नाक धारण की प्रथा कम होती जा रही है। स्त्रियाँ नाक में जल पहनती थीं जो संभव या पून के आकार की या छोटे धादि की बड़ी छोटी कील की।

११—गावा के धामुपणों की संख्या सबसे अधिक है। सर्व प्रथम मास (१७) [सं
१—सं " व्या, ११६, 'बेसरि टूटी'
२—" " ११६ 'परी नाक कोह सुमह न पारा
३—सं " व्या ११६, १४
४—" " ११६, १४
५—" " ११६ 'बुनि नासिक भल कुल धमोला'

माला] वा हार (११३)^१ [सं० हार] ही कई प्रकार के बताए गये हैं। पुरुषों के धामूषणों में मोठी [सं० मुक्ता] की माला का प्रमुख स्थान है उसी प्रकार यह स्त्रियों में भी प्रिय थी— 'मुमन मोतिन हार' (११६१) अथवा 'हर मुक्ता की माल' (११७३) वा 'विभु-सर कंठ भीमाल मोतिन बबि' (१६६)। बबि-बाल प्रसंग में कृष्ण द्वारा मोठी की माला तोड़ कर मोती बिखेर देने का विषय अनेक पदों में है— 'हरि तोरी मोतिनि की माला' (२१४६) वा 'हार तोरि बिबराह बियो' (२१ २)। मोती की माला की उपमा प्रायः सुरसरी से दी गयी है— 'मुक्तामाल दृष्टि सौ लालत जनु सुरसरी अयोगति सीनी' (१६११)। केवल एक जड़ की मुक्ताबलि (१५१६) [मुक्ताबली] वा मोतिन सर (१६११) भी पढ़नी बाती थी— 'मनु सति मोतिन सर सीनी' (२६११) वा 'कंठ कपोत मुक्ताबलि हार। जनु गुप गिरि बिच सुरसरि बार' (१५१६)। बबि बाल प्रसंग में मोती की जड़ का अनेक पदों में उल्लेख मिलता है (२१५१ २१५२ २१५७) — मोतिनि सर तोरयो' (२१ ४) काहे को मोतिन सर तोरी हम पीठाम्बर सै' (२१५५)। द्विदोसा सीपक पदों में भी अल्प धाग्रहों के साथ मोती के हार का वर्णन है— 'मनिमम मूयन कंठ मुक्ताबलि कोटि धरन न बाबनी' (१४२)। हाथी के मस्तक से एक प्रकार के मोती निकलने की कल्पना है जिसे गजमोहित कहते हैं। इस प्रकार के मोतियों की माला का भी उल्लेख है— 'कंठसिरी सर पबिक बिप्राकृत पत्रमोतिनि के हार' (१२२८)।

५७—राधा का कृष्ण से मिलने के लिए धपना मोती का कंठ तोड़ने का सुन्दर प्रसंग है। कई पदों में (२५८५ २५८५) माला खूँने के बहाने राधा का बर से बाला धीरे धीरे की इस सापरबाही के लिए माँ की कृपणाहट व अंग का कमारक विनय है— 'बाहु छड़ी मोतिसिरी गवाई'। तबहीं ओ बर पैठन पैहीं सब ऐसी बंग घाई' (२५८)। 'हार बिना स्थायै लड़की बर तहि पैठन सै' (२५८३)।

मोतिसिरी वा मुतिसिरी [सं० मोलिक + सी] मोती का कंठ होता था। इसी प्रसंग में मुतिसिरी के नौसर (२५८३) एवं बहुमूल्य होने का उल्लेख भी है— 'नौसर हार प्रमोद बरे की देख न मेरी माई' (२५८७)।

अथवा— 'इक इक मन सत सत धामिनि की लाल टका है स्थाई' (२५८)।

वा — 'बाक टका की हानि करी तैं सो सब तोरी सै' (२५९१)

बबि-बाल प्रसंग में मोती के नी जड़ के हार अथवा नौसरि हार (२१ ५) का उल्लेख भी है— 'मैं कठ तोर्यो हार नौसरि की'।

मोती के हार के प्रतिरिक्त सीमे की या बड़ाठ माला पहनने की प्रथा भी थी। तिरु कृष्ण की बार काठने के नेत्र में बाई कंजन हार (११४) के स्थान पर यशोध के नखें में पड़े मनिमज अटित हार (६१३) के लिए भगवती है—

'मनिमज अटित हार धीमा की नई धानु हौ सै' (६१३)

अथवा कंजन हार बिये नहि मानति तुझी मनोबी बाई' (६१४)

तथा 'कड़ी रोहिनी परम अनर्कित हार-रतन तैं बाई' (६१६)

राधा तथा पौषियों के धामूषणों में भी मोती तथा माखिष्य के हार का वर्णन मिलता है— 'मानिक मोती हार रंग की' (२०८३)।

१—तु घ, भीताबली, घ १४२ 'सुगुल बीच सुकुमारि लारि इक राजति मिलि सिपार।

ईश्वरीय, हाटक, सुकुतापनि जनु पहिरे नहि हार।'

अथवा—‘मानिक मध्य पास चहुँ मोठी-पंगति भनक विनुर

रेखीं जनु तम-तट तारागन ऊगल येरूयी सूर’ (१ ३९) ।

५८—बैसा कि नाम से हो अनुमान होता है सुखरी (१३९१ ३२०५) [सं० ३+ यष्टि] तथा तिखरी (२ ६३) [सं० ३+ यष्टि] दो या तीन लक्ष की माता को कहते हैं । यह मोठी के प्रतिरिक्त सोने के बानों से भी बनती है । सोने के पत्तों को गुड़ कर भी तिलरी बनाई जाती है । इस को स्थियाँ बुलरी व तिसरी भी पहनती थीं—कंठभी बुलरी बिदाबति चिबुक स्यामल बिद’ (१३९१) अथवा ‘कंठसिरी बुलरी तिलरी उर’ (२ ६३) । कहीं-कहीं स्पष्ट कर दिया गया है कि यह मोठी की है—‘मोठिनि की बुलरी (३२०५) । गले में एक साथ कई प्रकार के हार पहनने की प्रथा भी थी—‘कंठसिरी बुलरी तिसरी सर धीर हार हक मौसरि की (२१५८) ।

ऊपर के पद्यांशों में कंठभी या कंठसिरी नाम आये हैं । यह पने का कंठा होता है जो पने में बिपटा हुआ-सा पहना जाता है । यह सोने का अथवा बड़ाक दोनों प्रकार का होता है । आजकल इसे कंठा या कठी कहते और वे प्रायः मोठी के या सोने के बड़े-बड़े अस्त्राकार बानों को पोढ़ कर बनाते हैं । बायसी ने भी पद्मावती के आभरणों में मोठी की माता तथा कंठभी के नाम दिये हैं ।^१

सुरसागर में हीरे के हार का भी उल्लेख है जो माणिक्य मोठी के हार से भी मूल्यवान होता है—‘बीच-बीच हीरा जगे (न ब) लाल-नरे की हार’ (१५८) ।

५९—बड़ाक लटकन लगी हुई सोने की सफरी (१५७१) [सं० ३+ यष्टि] का उल्लेख भी है—‘सफरी-ननक रतन मुखामय लटकन चितहि चुरावै (१५७१) ।

सोने या चांदी की गले में पहनने की बन्धीर को सफरी कहते हैं । आजकल इस प्रकार के बड़ाक लटकन (Londant) के साथ बारीक चैन पहनने की प्रथा बहुत है । लटकन किसी भी चीज से लटकती वस्तु को कहते हैं । यह लय बेसर कलगी या बाजूबन्द सभी में होती है—‘मुखन मुवा ललित लटकन बर मनहुँ मिली अमिपुत्र सुशायो ।

पीठा के प्रायः आभूषणों में हमेशा (२ ६३, २०५५) [सं० ३+ यष्टि] लोकी (२१५८) [सं० ३+ यष्टि] तथा खगवारी (परि० ८) [विश०] से । सिक्कों अथवा उस आकार के टुकड़ों को पोढ़ कर हमेशा बनाते हैं । पहले इसे अक्षर्य या खयों से बनाते थे ‘कंठ हमेशा सजावत है (२०५५) या ‘मुनि पदा प्रब लोहि न परैहीं । धीर हार लोकी हमेशा प्रब तेरे कंठ न गैहीं’ (२५६९) । प्रायः कल्लेखों में हमेशा के आकार प्रायिके संबंध में कुछ नहीं बताया गया है । ठीक एक चन्द्राक्षर आभूषण होता है जो गले से लगा हुआ पहना जाता है । इसमें एक लोकी सी पट्टी ली होती है, जिसके नीचे थेंबुक लगे होते हैं । यह सोने तथा चांदी दोनों की बनाते हैं । मुखमाल स्त्रियाँ अक्सर चांदी की पहनती हैं । मुखमाल लोग अपने बच्चों को इसी प्रकार का लाबीज पहनाते हैं जो किसी मित्र को पूरा करने के लिए पहनाया जाता है । कभी-कभी मुखमाल स्त्रियाँ भी ऐसा लाबीज पहन लेती हैं । सुरसागर में ठीक का बहुत कम उल्लेख है और है भी तो आभरण के लिए—‘एते पर है लोकी’ (२१५८) । सुरसागर में लंबायों का उल्लेख भी बहुत ही कम है—‘रतन बटिख लंबायी पर की अनुमति है पहिरायी (परि० ८) । लंबायी को आजकल हंसुनी कहते हैं ।

१—य सं० ३+ यष्टि, १११, ‘कंठसिरी, मुखमाल माता सोई धनरन पीव ।’

२—१, ‘लरे सुरे हिय हार लपेटी सुरसरि जनु कामिनी लेटी ।’

३—य सं० ३+ यष्टि २६६ ‘हीर हार नय लाल अयोसा ।’

पद्यावत में भी 'होम' शब्द प्रयुक्त हुआ है।^१ यह धातुकल सोने या चाँदी तथा भरतुन धनका जोखती बोलों प्रकार की बगार्ह जाती है। यह भी टीक के समान ही वैसे से बना हुआ चोत्राकार धामरख है किन्तु यह मोला होता है चिपटा नहीं। उपयुक्त पंक्ति में यह रत्नजटित बताया गया है।

६ —कनक्षेत्रन शीर्षक क एक पत्र (७६८) में बहोला के गले की मुकुमुकी का उल्लेख आया है—'चमुमणि की मुकुमुकी सु उर की' (७६८)। मुकुमुकी में परक के आकार का धामरख हृदय पर सटफटा रहता था। इमोतिर इसका नाम मुकुमुकी पड़ा। मम्मकासीन साहित्य में इसके दयाँय 'उरखसी धीर 'जुगनी' मिलते हैं। मुकुमुकी के पर्यायवाची नाम पदिक (१२२८) [सं परक] या सुगुनू सूरसागर में भी है। हमेल के बीच में नीचे एक चौकीर टुकड़ा पड़ा रहता है जिसे चौकी (२१५८, १२२६) [सं चतुष्क] कहते हैं। हृदय पर पड़ी हुई चौकी बहुत बार वर्णित है—'हृदय चौकी चमकि बैठी सुमग मोठिन हार' (१६६१) या 'चौकी चमकति उर मायी (१७६२)। अचिकांत स्त्रियों में पड़ी हुई सोने की चौकी का उल्लेख है—

'मणि भरित की चौकी' (२१५८) चौकी पर मग बस्यी बनावी' (१२२६) या चौकी हेम चंद्रमणि मायी रत्नग बराह खचाह' (१६ ३)।

चंद्र या चंद्रकान्त मणि एक प्रसिद्ध मणि की जिसके बारे में कृष्ण के धामरखों में भी उल्लेख किया जा चुका है। यह एक सफेद पत्थर होता था जिस पर चन्द्रमा की किरछें पड़ने से पानी की बूँदें टपकने लगती थीं। आइनेअकबरी में भी इसका उल्लेख है।^२ हमेल में बीच का टुकड़ा पान के आकार का भी होता है धीरे तब उसे पकवा कहते हैं।^३

९१—ऊपर के प्रीठा संभवी धामरखों के उल्लेखों से स्पष्ट ही है कि यने में एक छान कई प्रकार के प्रामूख्यों के पहनने की प्रथा थी। मोती की माला भारत का प्राचीन धामरख है। हर्षयुग में मोती की एकावली बहुत पहनी जाती थी। कालिदास तथा बाण ने इसके अनेक बार उल्लेख किये हैं तथा गुप्तकालीन मूर्ति व चित्रकला में मध्य में इन्द्रनील सहित मोती की माला का बहुत चित्रण हुआ है।^४ गुंगकालीन मूर्तिकला में इस प्रकार का कंठा देखा जा सकता है। पाणिनि ने देवेदेक नामक जिस धामरख का उल्लेख किया है वह भी गुंगकालीन मूर्तियों में मिलता है तथा टीक से मिलता-जुलता है। हमेल टीक तथा मुकुमुकी धारि मुसलमानों के घाने के बार पहने जाने लगे थे। आबकल नगरों में स्त्रियाँ प्रायः मोती व रत्नजटित माला तथा सोने की बंजीर के प्रतिरिक्त भिन्न-भिन्न आकार के घानों की पुड़ी हुई माला भी पहनती हैं। इनके नाम मेघ घानों के आकार मेघ से ही है, जैसे मटरमाला बीमाला संघमाला तथा चम्पकली। प्राचीन स्त्रियों के गले में पहनने के खेरों में धमी भी हँसली हमेल टीक तथा गुधुमर नाम लिए जा सकते हैं।

९२—हाथ में जोहनी के ऊपर पहनने के प्रामूख्यों में तीन नाम उल्लेखनीय हैं—
टाङ्क (४६७८) [घञ मा टङ्क्य = टुट्ठा संघर या बलन] बहूँटा बहूँटनि (२१५८,

१—य सं घ्या, ३७४८ 'कंत कमाटी जालि के जुरा कई कि हांस'
(सं घस = कंघा, स घसालिका = हँसली)

२—घाईने घ ४४

३—घा० घ, घ १३४

४—हर्ष० लीं घ घ १६४

२०६२) [सं बाहुस्य प्रा बाहुः, स्त्री घ बहूँटी] तथा बाह्वर्षद (२११६) [प्र० बाहुस्य] टाङ्ग भन्ना बहूँटा प्रायः बाहुस्य के ऊपर पहना जाता है—'बहूँटा कर-कंकन बाह्वर्ष एते पर है ठोटी' (२१५८)।

धरणा—बहु लग जरे, कटक प्रगिया मुवा बहूँटि वसय संय को (२ ६१)। कण्ठ-विण्ड में गोपियों की कमाइयों के कमल कोहनी के ऊपर तक पहुँचने सने—कर-कंकन से मुन टाङ्ग मई (४६७८)। यह वर्गाकार धामरख बाई या तीन मोड़ का होता है। इसे धामरख प्रसीमङ्ग बेग की रूपक भाषा में 'बलडाङ्गा' या 'टङ्गा' कहते हैं। तल्लोम भाँट में यह बहूँटा ही कहा जाता है।^१ इसी प्रकार का एक बार मुवा हुमा वृत्ताकार धामरख धमल या बरप होता है जिसे प्राचीन काल में स्त्री तथा पुरुष दोनों ही पहनते थे। बापसी ने भी पद्मावती के धामरखों में टाङ्ग का उल्लेख किया है।^२

बाहुस्य चौकोर टुकड़ों को पोह कर बनवाया जाता है। इसका छुवना कोहनी तक बटकता हुमा भयल्लत धाकरक साठ होता है। एक बाहुस्य में प्रायः बीस से तीस तक टुकड़े होते हैं। इन टुकड़ों के ऊपर बूँदें सी बनाई जाती हैं। टाङ्ग तथा बाहुस्य दोनों ही प्रायः सोचने या पत्तर चढ़ाकर बनाये जाते हैं तथा सोने-चाँदी दोनों के बनते हैं। बापसी ने बाहुस्य के लिए 'बाहूँ' शब्द प्रयुक्त किया है।^३ इसी प्रकार के धन्य धामरख 'बिबायठ' तथा 'बोठान' भी हैं। सूरदासर में बाहुस्य के साथ उसके लटकते हुए फूलों के संबंध में भी बताया गया है—

‘कुच कंचुकी हार मोठिन के मुन बाह्वर्ष सोहव
काठिन चुरी करनि फूँलना बने कंन पास मति बोहव’ (२११६)

धरणा—पय पग पटक मुबनि लटकावठ फूँला करनि धनूप। (१९७५)

६१—कछाई के उस समय के प्रचलित प्रायः सभी धामरखों के नाम सूरदासर में मिल जाते हैं—‘कंकन कंगन (२८ १ ६१७ ६४२) [सं कंकण] पहुँची पहुँचिया (६४१ ७१५, १६७४) चूरा, चूरी (७ ७ १५१६, १४४४) [सं चूरा] चुरी (१७६८) तथा बल्लय (१४४६ २ ६३) [सं बल्लय]। बापक कण्ठ की रत्नमण्डित पहुँची का जल्लेख दशम स्कन्ध के प्रारंभिक पदों में है।^४ किन्तु यह व्रज-युवतियों की धामरख सूची में भी है—‘प्रयुरिणि मुंवरी पहुँची पानि (१७६८) तथा ‘लसति कर पहुँची छपाई मुकिका मति बोति (१६७४)। पहुँची में सोने या चाँदी के गोम बाने पोह कर तीन पंक्तियों में एक कपड़े पर टाँके जाते हैं। इसको बुझी से बाँध कर चूड़ी प्रादि धन्य धामरखों के धाने कलाई में पहनने की प्रथा थी।

हाथों के धामरखों में कंगन का सबसे अधिक उल्लेख हुमा है। वही मयते समय नृत्य करते समय तथा हिंडोसे पर झूमते समय कंगन बजने की सुन्दर ध्वनि का वर्णन है—

‘बनि है ममति म्यानि गरबीसी

रनक मुनक कर कंकन बाने बाहू हुलावत बीसी। (६१७)

धरणा ‘मयुर किंकिणि कंकन चुरी। जपमत मिमित ध्वनि माधुरी (१७६८)

१—क. श्री, प्र. ११, अध्याय ४

२—य. स. प्या. १६६।३. ‘बाहुँहू बाहूँ टाङ्ग सलोनी’

११२।१ ‘बाहुँ कंकन टाङ्ग सलोनी’

१—य. स. प्या., ११२।१, ‘बाहुँ कंकन टाङ्ग सलोनी’

राधा तथा कम-मुब्तियों के हाथों पड़े बंगन की सोना का बर्तन भी अनेक पवों में है—

‘कर कंकन कंचन बार मंगल साज लिये (१४२)

या—‘बहुरि फिरि राधा सजति सिंगार

कर कंकन काबर गऊसेसर, बोली टिलक मलार’ (२८ १)

हाँ भी यशोदा से नेग में हार व कंचन पाठी है—‘बीन्ही हार गरी कर कंकन मोठिनि बार भरे’ (१३५)।

कंचन एक प्रकार का लहसुआ होता है जिसमें ऊपर बाने या कंभूरे से छटे रहते हैं। यह बूझियों के घाये पहनते हैं। शायकल कंचन पहनने की काफ़ी प्रथा है। ग्रामीण बोली में इसे कंकना^१ भी कहते हैं। बामरी ने कंचन में रत्न बड़े होने का बर्णन किया है।^२ रत्न-वटिठ बेससेट की गऊरा कहते थे। सूरसागर में इसके उल्लेख कम ही हैं—

रत्न-वटिठ बजर बाबुबन्ध सोभा मुबनि भपार

कुँवा सुमा कून कूने मनु मदन बिटप की डार’ (३२२८)

मुसलमानी भामरलों में गऊरा का भी प्रमुख स्थान था। विवाह में कंकन मोचन की भी प्रथा होती है। इसका नाम भी कंचन है, किन्तु यह कनारी में मांगसिक वस्तुएँ बाँध कर बनाया जाता है। सूरसागर के नवम स्कन्ध में राम-सीता विवाह व राधा-कृष्ण के संबंध विवाह के प्रसंग में इस कंचन के भी उल्लेख मिलते हैं—

‘कर कंचन गहि छूटै (४६६)

प्रथमा—‘प्रथम व्याह विधि होइ रह्यो हो कंकन-बार विचारि

रवि रवि पवि पवि नूनि बनायो मवस निपुन ब्रज नारि’ (१६२१)।

प्रथमा—‘दुनहिनि छोरि दुनह को कंकन’ (१६२१)।

१४—एक दो पदों में कटक (१५८८) [सं कटक] का उल्लेख भी है— कटक कंचन साज। सोने के कड़े पहनने की प्रथा प्राचीन काल से है। कड़ा धन्य कि समान बीच में से जुड़ा होता है तथा प्रायः दोनों ओर मकर या सिंह प्राणि का मुख बना होता है। वहाँ से थोड़ा कर कनारी में धागे पहन लिया जाता है। बाबा ने हर्षचरित में मातंगी के एक हाथ की कनारी में पड़े सोने के ताहरमुखी कड़ों का उल्लेख किया है जिनके मुख पर पड़े बड़े हुए थे।^३ हाथ के सभी भामरलों के जोड़े दोनों हाथों में पहने जाते हैं। शायकल विदेश में तथा भारत में भी कड़ी-कहीं (बिरोपकर पंजाब या दिल्ली में) कुछ भामरण कड़ा या बेससेट एक हाथ में ही पहनने की प्रथा भी है। पद्मावत में ‘हचोड़ा’^४ [सं हस्तपाटक]^५ कठ्य हाथ के कड़े का अर्थ देता है। भारतीय हिन्दू स्त्रियों की सौभाग्य सूचक वस्तुओं, जैसे सिन्धूर विविधा, तथा टीके

१—वं सं ध्या, ४३१, ‘जो पहिरे कर कंचन जोरी।

कही तो एक एक नम जोरी।

४२४, ‘म्री दोसर कंचन कर जोरी

रत्न सावि लेहि तील करीरी।’

२—हर्ष सां ध २३ ‘मरकतमकरवैविकासनाथ मुद्रककटक’

३—प सं ध्या, ३७१२ ‘रचे हचोड़ा कपई डारी।

बिज कटन अनेव तीवारी।’

४—(सं हस्तपाटक-हस्तपाटक-हृषकड़ा-हृषकड़ा-हचोड़ा)

के पठितरिक्त कीच की रंगबिरंगी बुकियों का प्रमुख स्थान है। इनके बिना किसी भी विवाहिता स्त्री का भूङ्गार प्रभूरा माना जायगा। अतएव सूरसागर में भी अनेक बार बरी या बसय के पस्तेज स्वाभाविक ही हैं—

‘नूपुर किङ्किण केकल चुरी’ (१७८८)।

‘बारनि बरि बरि चुरी बिराजति’ (१५)।

तथा—‘भुजा बहूँटनि बसय संग की’ (२०६३)।

मानसोसा में भी चुड़ी का निर्देश है—‘हस्त-बसय पद्म नीलग धारी’ (१४४६)। बुकियों खोले की भी बतई जाती थी। ‘कमल-बसय’ (१६)। प्रायः इन्हें कीच की बुकियों के साथ मिला कर ही प्रायः स्त्रियाँ पहनती हैं। ‘कर कंकल चुगा यजवंती’ (१५१६) में हाथी-दाँत के चुड़ा का बखण है। किन्तु दृष्ट्य संबंधी पदों में तो चुड़ा हाथ धीर रीर के कङ्के के धर्म में प्राया है। हाथीदाँत की बनी बुकियों के समूह का भी जो कसाई से कोहनी तक पहनी जाती है तथा घाघे से पीछे बगलर बड़ी होती बसी जाती है चुड़ा कहते हैं। कुछ जातियों में धातुकम इसे सोमाय प्रूषक मानते हैं तथा कहीं-कहीं यह बड़ को ही पहनाया जाता है, जैसे लवियों तथा पंजाबियों में।

धातुकम हाथ के धम्य धामरलों में प्राचीन स्त्रियाँ ही अधिकतर छापी न पहनेती थी पहनती हैं। कुछ वर्ष पहले तक शहरों में भी स्त्रियाँ ये सब तरह-तरह के धामरल पहनती थीं। किन्तु यहाँ अब कोहनी के ऊपर के धामरण दिखाई ही नहीं देते हैं। कसाई में भी खोले की चुड़ी, बेसबूड़ी, कड़ा तथा कंपन धारि अधिक पहने जाते हैं।

१५—सूरसागर में सैंगुटी के कई पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त किये गये हैं—मुद्रिका (१९७१) [छ०], मुँदरी (२५७) [छ० मुद्रिका] तथा भौंगुटी (४३) [छ० संयुष्टिका] यन्-कथा में मुद्रिका के प्रसंग के पठितरिक्त बज बजे स्त्रियों की उँवको की सैंगुटी वा शोभा-बर्णन भी अनेक पदों में है—

‘करज मुद्रिका किङ्किनी कटि बाल गज गति बाल’ (१४९०)

‘कर पस्तबलि मुद्रिका लोहति’ (१९७१)

अथवा—‘भौंगुटिनि मुँदरी पणुँपी पानि’ (१७६८)

शिव दान प्रसंग में दृष्ट्य द्वारा अन्य धामूपलों के साथ सैंगुटी धीनने वा उल्लेख भी है—

‘भटकि नई कर मुद्रिका माहा मुक्ता गोम

इक मुँदरी की होइगी कान्हू तिहारी मोल’ (२२१९)

ऊपर के पद्यांशों से स्पष्ट ही है कि मुद्रिका अथवा मुँदरी शब्दों का प्रयोग ही अधिक है। सैंगुटी शब्द बहुत कम मिलता है जो धातुकम अधिक सोसा जाता है। मुँदरी समस्त-बाँधी की बनती है तथा भौंगुटी खोले की। पाणिनि ने प्रागुसीय^१ तथा बाण ने ‘उन्मिद^२’ शब्द प्रयुक्त किये हैं। कावली ने पद्मावत में सैंगुटी शब्द का अधिक प्रयोग किया है तथा प्रत्य^३ खोले की न नय बड़ी हुई बतायी है।^४ धातुकम भी बाँधी के भुपुबदार छप्पे धारी खोले की अथवा एक नय या कई मनो की सैंगुटियाँ पहनने की प्रथा है। स्त्री तथा पुंस्य दोनों ही सैंगुटी

१—ईडिया पृष्ठ नील दू पाणिनि, अध्याय ३, पृ. ६३

२—हर्ष सा० अ पृ. १२ ‘कम्पुनिमिदमिका’

३—य. ब. ध्या०, ११२।५ ‘जो पहिरे नय बरी सैंगुटी’

४—२२।१२ ‘तो नय सेई की कमल सैंगुनी’

पहनते हैं। कुछ लोग रत्नों के साथ के लिए भी धगूठी में बाँधवा कर पहनते हैं। जैसे नीलम होठ, मूंगा लहसुनिया आदि। हमने विशेषकर नीलम के संबंध में धगेक विस्वास है। मुगल काल में धंगूठे में धारसी पहनने की बहुत प्रथा थी।^१ इसमें जोटा-सा बर्षा भी लगा होता है। आश्चर्य है, कि सूरसागर में इसको स्थान नहीं दिया गया है।

१९—इन की स्थियाँ कमर में बन्ने वाली करघनी, किंकिनि (१९७२) [छ किंकिनि] या सुवर्णिका (१ ९८) [छ सुवर्णिका] पहनती थी। कटि किंकिनि छवि रोटी' (१९७२) यथवा 'वनित मूपुर वरन सुव कटि नटिका कनक तन-गौर छवि संममि उपरैग की। (१ ९८) तथा 'छत्र पंठिका कटि लहना रंग तनसुख की सारी। सूर ग्वालि यमि बेंचन निकटे पग-मूपुर-बुनि पारो। (२११६) किंकिणी सोने की भी पहनी जाती थी—'कनक किंकिनी मूपुर कसरन कूबल बास मणल (१९७३)।

छाटी को करघनी या पटके से बाँधने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। इसके लिए वैदिककालीन (शतपथ ब्राह्मण १।१।१।५) शब्द 'रसना' था। कामिनाथ ने भी यह शब्द प्रयुक्त किया है।^२ सत्ता के बोरे के धर्ष में सूरसागर में यथरव 'रसना' शब्द आया है—'सुन्दर वन प्रसिद्ध करि मासा रसना-कर छौं टार (१२ ५)। छाटी-छोटी बंठियाँ लगी हुई मेखला सुवर्णिका कलाती थी। मुगलकाल में यह काड़ी प्रचलित थी। किन्तु उससे पहले की मूर्तिकला में भी इसका चित्रण हुआ है। यथिछी जंदा तथा बय्यपेट से मिली यचीमूर्ति की कमर में यही आभरव है।^३ आभरव करघनी प्रायः लंबी-छोटी से कलाते हैं जो बीच-बीच में चौकोर छप्पों में खुड़ी होती है। यह सोने तथा चाँदी दोनों की बनती है। इसके लिए कटि मांडनी' तथा 'कणिबे' शब्द प्रचलित हैं किन्तु अधिक बोले जाने वाले शब्द 'करघनी' तथा 'तगड़ी' हैं। बागसी ने भी सुहाबनि या सुवर्णिका का उल्लेख किया है।^४

१७—तथा तथा मोपियाँ पैरों में भी बन्ने वाले मूपुर (१ ९७) [छ मूपुर] या मुँधुरू (१४८) पहनती थी। मूपुर सोने के मखिमय होते थे—

'वरन महावर मूपुर मनिमय बाबल माँठि लगी (१२१७)।

यथवा—'मनिमय मूपुर बुनिठ किंकिनी कन कंकन घनकारणी' (१४५)

तथा 'बाङ्गिनि कौं छोने की मूपुर पहती धमक बड़ावी (परि ८)

मूपुर एक मूँबला में पोह कर पैरों में पहने जाते थे—'बास गन मूँबला मूपुर नीबि नवचधि बास (१ ९७)। बन्ने वाली खोलनी लोली का मुँधुरू कह्यो है—'मुँधुरू पंठ पुमाइ, बालि मवमती हो' (१४८)। मूपुर की उपमा कामवेश के सूर्य से दी गयी है—

१—आरसी से संबंधित सुहाबरा 'हाथ कंधन की आरसी लगी' बहुत प्रसिद्ध है।

२—कामिनाथ, कुमारसम्भव, सर्ग ३, स्तोत्र १,

प्रकारि लत्पूरनिबद्धया तथा सरापमस्या रसनापुण्यसम्भवः।'

३—आ आ ने

४—रु भी, प्र ११, अध्याय ३, 'प्लाट के धनुसार इसकी व्युत्पत्ति नागरिका से आ तापडिया है।'

५—य छ व्या २६९, 'कटि सुहाबनि आभरनपूरा'

२६१।७ 'सुवर्णिका कटि कंधन लगा'

६—मामल, बात्तासुख, २३, 'कंकन किंकिनि मूपुर बुनि सुनि—

नागपुं धवन मुँधुनी बीन्ही'

‘कामिनि धाबुहि धानि रहैगो काम-कटक से कुब रंभा तर ।

बरन रनित नूपुर रन-मुरा सुनत सवन कपिहिंने धारपर ॥’ (१७९)

पैरों के ध्वज प्रमुख धामरख मोहरि (१२२८) तथा पैँजनि (१६७६) [सं पाद शिबनी] से । पैँजनि भी बुबकदार प्रायः जौरी की बनती है । रास-नृत्य प्रसंग में विशेष रूप से शरीर के बजने वाले सभी धामरखों का उल्लेख है—

‘बरन रनित नूपुर, कटि किनिनि कंकन करतात (१७५४) ।

अथवा—‘मुरयत धंज समूपन बाजत

‘कंकन चुरो किनिनी नूपुर पैँजनि बिदिया सीहरि’ (१६७९) ।

अथवा—‘नूपुर किनिनि कंकन चुरो । उपबत भिवित धनि भाचुरी’ (१७६८)

सूरसावर में बेहरि प्रायः बड़ाक हो बटाई गई है—‘मुमुल अथ बेहरि बटाव की’ (११९८) बेहरि बटियों की पट्टी से बनाते हैं । सूरसावर में भी इसकी मू लताओं की धार संकेत है—‘पम बेहरि बंजीरनि अकरयो यह उपमा कछु धारै (२५७)

बेहरि को ‘पायल’ ‘पायजेब’ या ‘रेशमपट्टी’ भी कहते हैं । धावकल दलीपदू सेब म कहीं-कहीं इसी का रमझील कहते हैं । धनूपराहर में इसे ‘पूजरी’ तथा लहरीस साशाबाद में बेहरि कहते हैं^१ । पैरों के ध्वज प्रचलित धामरख लच्छा छागल धनोसे भ्रंश तथा कड़े हैं । जामलो में पायल [सं पादपास गायबान-पायाल-पायल] तथा ‘चूरा का उल्लेख किया है^२ ।

६८—‘बिबाहिता हिन्दू मिथी पैरों की उँवमियों से बिछिये (१६७६ २७७४) तथा झंगूटे में अनबट [झंगुच्छ-झंगुच्छ-झंगुच्छ-अनबट] पहनती हैं । पहले बिछिये बड़े व बुबकदार होते थे जो चलते समय बजते थे । मिन्मिलितन पंक्ति के ‘भ्रमकनि’ शब्द से यह संकेत है—‘पम बेहरि बिछियनि की भ्रमकनि’ चलत परस्पर बाजति’ (२७७८) । बिछिये प्रायः जौरी क ही पहने जाते हैं । जौरी के धारों के ऊपर कुल मछली, मंदिर धारि बिभिन्न प्रकार के धाकार बनाये जात हैं । कमर तथा पैरों क धामरख धविचतर जौरी के ही पहने जाते हैं । सूरसावर में अनबट के भी विशेष उल्लेख नहीं मिलते हैं किन्तु पद्मावन में बटावर है^३ । धावकल अनबट पहनने की प्रथा बहुत कम हो गई है । बिबाह के अवसर पर ये अवयव बहू को पहनाये जाते हैं ।

कुच्छ के राबिका या पोपिका रूप धारण प्रसंग में भी कई पयों में अनेक धामरखों के नाम दिये गये हैं—‘प्रिया-धभूपन मांगत पुनि पुनि अपने धंग बनावन है (२७५५) अथवा—‘स्याम-तनु प्रिया भूपन बिजानै (२७६६) ।

मुरली ध्वनि से ‘धंग की मुमि बिसरो १८ ०) तथा बाकी मन बई घंटक बाह । ता किनु ताकी कछु न मुहाह । (१७६८) धारि काण्डों के फलस्वरूप शरीर में उठे या अमृत अवयवों पर धामरख धारण करने से संबंधित भी कई पद्य हैं—

‘हार लपेट्यो बरन सी ।

मनमनि पहिरे जसते तार । गिरजी पर जौरी मू मार (१७६८)

अथवा—‘करहु खिगार गवारि मुबरी बहत हंसन हरि बानी

१—हू जी प्र ११ ध ५

२—प० लं ध्या २६६ ६ ‘घौ पायल पायल नल चूरा’

३—प ल ध्या , २६६ ‘चूरा पायल अनबट बिदिया’

बब देखै धौं सलने मूपन तब तबनी मुमुक्षुमानी' (१६१४)

तथा धौं धमरन जसटि धामे रही कछु न सम्हारि ।' (१६२५)

६१—तुलसी ने भी प्रायः स्त्रियों के इन्हीं सब धामरणों के उल्लेख किये हैं। उन्होंने सूरदास जी के समान धमरन धनेक स्वरणों में इतने विस्तार से बखन नहीं किया है।^१ सूरदास में 'बद्धित प्रायः' सभी धामरण सोने मोती के रत्नबद्धि ब बहुमूल्य हैं। इस प्रकार के धामरण ब्रज की प्वाल-स्त्रियों द्वारा पहनना यों सतना स्वाभाविक नहीं है किन्तु कृष्ण की धाराधना तथा धीर गोपियों के क्य-सीर्य वर्णन में इसे उल्लिखित ही कहा जायगा।

सूरदास में कुछ पद केवल आभूषणों की सूची मात्र हैं। काव्य-कला सीर्य की दृष्टि से उनमें से कुछ का पृथक् कोई स्थान नहीं है। किन्तु इनसे ब्रज की प्वालों का विश धमरन धामने का जाता है। उनमें से कुछ पूरे पद नीचे दिये जा रहे हैं —

१—रानी ब्रज-नारि-सोया धारि ।

पगलि बेहरि जाल जहवा बंध पँच रंग सारि ॥

किंकिनी कटि, कनित कंकज कर चुरी भ्रमकार ।

हृदय नीली कमलि कैठी सुभग मोतिन हार ॥

कंठपी दुधरी बिराजति बिबुल स्यामल निर ।

सुनम बेहरि जलित माया रीति रहे नैवर्णव ॥

सबन बर ताटक की छवि धीर जलित कमल ।

मूर-अमु कच धति मय है निरखि मोहन मोल ॥ (१६६१)

२—जुवटी धग सौगार सैभारति ।

बेनी बूषि माग मोतिनि की सीसफूल सिर बारति ॥

मोरे जाल बिबु सेंदुर पर टीका बधुपी बरत ।

बदन बंध पर उकि ताप-यग माली जटित सुसाठ ॥

सुभग जवन तरिबन मनि-भूषित हृदि लपका नहि पार ।

मनहु काम विनि फँद क्वाए कारन नबकुमार ॥

माया नभ मुकुटा के भारहि, उखी धमर-तट भाइ ।

राड़िन-कन मुक सेत कधी नहि, कनक फँद रहयो बाइ ॥

धमकत-रसन धरन धमरनि तर, बिबुल किटीना ज्ञाकत ।

हुमरी मरु तिमरी मरु ठाठर सुनम हनेन बिराजत ॥

जुब बंधुकी हार मोतिन के मुख बाबूबैर सोहत ।

धारि चुरी करनि जुंझना-कन कंज पस धति सोहत ॥

बुद्धि-कटि कैहवा रंग लल ललमुख की सारी ।

सूर प्वालि बहि बैचन निकरी पय नूपुर चुनि धारी ॥ (१११६)

१—सु ध रामलला, गहपू, पृ ४

'काने कनक तारीक, बेहरि सोहह हो ।

पमसुपुता कर हार कंठमनि सोहह हो ॥

कर ककन कटि किंकिनि नूपुर बाजह हो ।

रानी के दोन्ही सारी तो अधिक बिराजह हो ॥'

३—एक द्वार मोहि कह्य विद्यावति ।

नख-सिख लीं योग-योग निहारहु ये सब कहहि बुझवति ॥
मोतिनि मास बराह की टीकी करनफूल नखनेसरि ।
कंठसिरी बुलरी तिलरी तर, घोर द्वार इक भीसरि ॥
सुभग हृदय कटाव की योगियां नयनि बरिद की बीकी ।
बहुटा कर-कंठन बानुबैल एते पर है तीक्ष्णी ।
छात्रवटिका पथ गुरुर जेहरि विधिया सब लैखी ।
सहज-द्वंद-सीमा सब न्यारी कह्य सूर ये बैसी ॥ (२१४८)

४—सहज रूप की राखि राधिका भूपन अधिक विराजे ।

मुख सौरभ समिलित सुभाषिनि कनक कटा पर छावै ॥
बंदन-विंदु धारि मिलि सोमित समिक नीर प्रयाव ।
मनहुं-बाल-रवि रस्मिनि-संकिट तिमिर कूट हूँ प्राप ॥
मानिक मध्य पाछ बहूँ मोती-रंगति फलक सिंदूर ।
रैयो कनु लम लट पापम उलस बेरयो सूर ॥
की मनमद-रस-बन्ध कि दरिबन रवा रचित सह-साव ।
झलन-कूप की रौद्र बटिका राजत सुभग समाव ॥
नाचा-नख-मुक्ता किवावर प्रतिमिवित झलमुख ।
दीप्यो कनक-मास सुक सुंदर, करक-बीज बहि नूप ॥
कहूँ लवि कहूँ भूपननि भूपित द्वंद-द्वंद के रूप ।
सूर सखत सोमा भीषति के राखि-मन भगूप ॥ (२१५१)

९—पुरुषों के आभरण

७—हृदय के उप-माधुर्य तथा शोभा संबंधी पदों में बरनों के साथ उनके प्रिय ब्रह्मसूत्रों का सस्तेख भी अनेक स्थलों में किया गया है । बरनों के समान इसमें भी कुछ तो उनके परंपरा द्वारा निश्चित ब्रह्मसूत्र हैं तथा कुछ सूर के समय में प्रचलित माने जा सकते हैं ।

हृदय बने हो कर भी पहले के समान ही कालों में कुंडल (२४४९) [च० कुंडल] पहनते थे जिसका आकार भी प्रायः पूर्ववत् मकर के समान ही था—“सुति मंडल कुंडल मकराकृत” (१२४४) अथवा “सुति कुंडल मंड-मंडल अमिक ललित कपील (१२४५)। कोहली से ऊपर पहनने के दो प्रमुख पहने थे—अंगवू (१२४६) [च० अंगवू] तथा केयूर (१२४७) [च० केयूर, केयूर] । केयूर अत्यन्त प्राचीन ब्रह्मसूत्र है । बास्मीकि^१ रामायण तथा हयवर्धित^२ में इस शब्द का सस्तेख मिलता है । स्नान के समय यहीवा उनके सभी ब्रह्मसूत्र उतार कर रख देती हैं—

‘अंग भूपननि जगनि सतारत ।

१—बास्मीकिरामायण, जिष्णिका० ‘नाहूँ आनामि केयूरे नाहूँ आनामि कुररने ।

गुरुरेत्तामिआनामि मित्यं बाधामिचमनात् ।’

२—हर्षे ली० ध०, पृ० ४९, हर्षे की बाहों में बड़ाऊ केयूर था । उनके समय आज्ञास्थलों में कुंडल (‘कुंडलमण्डितिकोडिबासवीणा’) एवं अक्षरालस्यं था ।

तुलसी शीव माता भोतिन की ली चैत्यूर मुख स्याम निहारति

कुम्हारनी छठारति कटि में त्रिपति मण्डप मण्डप मण्डप । (१११)

प्रथमा 'केशु-केशु मुख नैन विद्यावा कर केमूर केशव नय-माता । (११४१)

कोइली के ऊपर पहनने का यह आधार छौने का मंडलाकार वासिसे बरा या समस्त भी कहते हैं । इसे स्त्री तथा पुरुष दोनों ही समान रूप से पहनते थे । कलाई के धातुबन्धों में पहुँची (११५६) तथा कंकन (२८१७) के नामों से भी जाना जाता है—'एकलवित्त पहुँची कर रावति धौरी सुंदर भारी' (१२५६) तथा कर कम्म धवि । मुद्रिका (१२४१) [च] का उल्लेख कई पद्यों में हुआ है—'पल्लव हस्त मुद्रिका धावै (१२४१) । नवमस्कन्ध में इमाम-सीता प्रसंग के कई पद्यों में राम की मुद्रिका के प्रतिरिक्त एक अन्य शब्द 'मुँदरी' [च मुद्रिका] भी प्रयुक्त हुआ है—'मुँदरी दूत धरी ली धावै तब प्रतीति निया धावै (५११) । धावकन अधिक छत्र के नीचे कनिष्ठा तथा प्रनामिका में जो 'धौरी' पहनते हैं उसे प्रायः मुँदरी कहते हैं । 'मुँदरी' अथवा 'बाँदी' के तार की बनती है तथा प्रमुखी छोले की । नवमस्कन्ध में ही मुद्रा (५१२) [च] शब्द भी मिलता है—'कहौ ली राम कहौ ली लक्ष्मिन क्यों करि मुद्रा पावौ' (५१२) । मुद्रा किसी नाम की धाव या चिह्न के भी कहते हैं । गोरख-पीर-साधु मुद्रा नामक धातुबन्ध कल में पहनते हैं । यह प्रायः काँच या स्फटिक का होता है । घर में मुद्रा दूत धर्य में भी प्रयुक्त किया है—'मुद्रा भस्म विद्या लखा-मुग बज बुद्धिनि नहि भाव' (५१२१) । मुद्रिका का पर्याय 'मंगुली' (५१२) [च प्रमुद्रिका-मंगुद्रिका-मंगुली प्रमुखी] सूरसम्भार में मिलता है—'तब कर काँड़ प्रमुखी बीनही बिहि बिज लपक्यी धीर' (५१२) ।

७१—बसे के धातुबन्धों में मोटी की माता का उल्लेख सबसे अधिक है—'मुक्तामाल नंदननन धर' (१२५६) 'बल्लनननन-भोतिन-नर सीता सोमा कहत न धावै' (१०६६) तथा बिबि-बाहुन बल्लन की माता 'रावत धर पहिराये' (११५) । कृष्ण के बसे में पड़ी मोटी की बड़ी सी माता की सोमा प्रणवर्धनीय है । कवि ने सरसक पदकार वृत्त वर्धन प्रत्येक पद्यों में किया है—

'भोतिन-माल मुँदरी भावौ, केन लहारि रस-कुल ।

या—'मुक्तामाल नंदनननन-धर धर्य मुद्रा-वट भावति ।

तनु धौलध मेघ छत्रननन अति शक्ति महारति रावति । (१२५६)

प्रथमा—'नैन-नील मकरकुल मुँदल, मुख धरि सुभय मुखन ।

मुक्तामाल मिली भारी, है सुरधरि एके संभ ॥'

मोटी की माता मुखरी (१११०) [छि + नद — च बहि] या शोबड़ी भी पहनी जाती थी—'तुलसी शीव माता भोतिन की' (१११०) तुलसी सीने की धी ललाई पाई है—'केसर की लीरि, कुसुम की दाम धमिराम, कलक-कुलारि बेट पीताम्बर जोड़ी' (२०१८) ।

मोटी के हार के साथ कृष्ण धन्य प्रकार की माताओं भी पहनते थे । श्री भक्त में पावें बचने बाते थे परतः बहौ फूलों तथा मुद्रा या तुलसी की माता पहन लेना स्वाभाविक ही था—'मुद्रा

१—क भी, २ ११, प्रथमा ५

— ।

२—या ध, ३ १५

३—(ईश्या) एक नील दु पारितलि, ४ १३ । अष्टावधायी में प्रमुखी का पर्याय 'मंगुली' दिया गया है ।

रंड टट सुमग घट घट बनमासा लह कूल' (१२५५), 'नलित बर निर्मल सुतनु बनमासा' छोड़े (१२६०)। बनमासा [सं० बनमासा] बंधनी फूलों की माला को कहते हैं। यह कृष्ण का प्रिय वस्त्रकरण होने के कारण उसका एक नाम 'बनमासी' [सं० बनमासिनी] भी है। उसके प्रतिरिक्त गुंजाबनमास (१०६७) [सं० गुंजाबनमासा] मवारहार (२० २) [सं०] तथा तुलसीमास (१ ४५) [सं०] का उल्लेख भी किया गया है—

'संध्या समय योग गोचर संग बन हैं बनि ब्रज भावत ।

उर गुंजा बनमास मुकुट धर, बैंगु रसास बजावत ॥'

या—किसर की और किये, गुंजा बनमास हिये'

उपमा न कहि पावै जेही नहिनी । (२००१)

मन्ना—'बर पर मंवार-हार' (२००२) तथा 'स्वाम देह दुकूल दुति मिलि, नवति मुससी मास'^१ (१२७५) ।

मंदा की बुंधनी भी कहते हैं तथा इसकी झड़ी होती है। इसका रंग घाम के समान होता है। गुंजा एक रसी के बंधन होता है। अथवा सोना धादि लौहने में इसका उपयोग होता है। मंवार को धक या कपूर कहते हैं। मंवार गुंजाका बुंध भी होता है। इन के मंदन-कालन के पाँच प्रसिद्ध बुंधों में मंवार बुंध का स्थान है। तुलसी की बुंधबुंधार झड़ी होती है तथा वह कभी-कभी दवा की तरह काम में आती है। कुछ लोग तुलसी की पूजा करते हैं।

७२—इन सभी प्रकार की फूलों की मालाओं के प्रतिरिक्त वैजंती-मास (१४५०) [सं० वैजयंती] भी उल्लेखनीय है। वैजयंतिका ही मोती के हार को कहते हैं किन्तु वैजयंती किष्कु की माता गिरोप है। कुछ स्वर्णों में कृष्ण के हृदय पर सोमिध कौस्तुभमणि (१२४३) [सं० कौस्तुभ + मणि] का वर्णन भी किया गया है—'मत्स्य हस्त मुद्रिका धारै । कौस्तुभ मणि हृदय स्थल धारै । (१२४३)। वह समुद्र-मंथन में निकली थी तथा उसे मन्वान किष्कु अपने कक्षस्थल पर बांध कर लेते हैं। किष्कु के अवतार माने जाने के-कारण इस प्रकार के दोनों उल्लेख स्वामाधिक हैं।

कृष्ण के धामूपणों के सिनसिने में प्रसिद्ध बंरकांत मणि का उल्लेख भी मिलता है—'कटि किंकिनी बंरमणि संकुट । बंरमणि (१२४३) [सं० बंरकांत + मणि] या बंरकांत मणि तथा नृपमणि का उल्लेख प्राणिप्रकरी में भी किया गया है। उसमें लिखा है कि वह सकेर कमकटा परवर होता है जिस पर बंरना की किरणें पड़ने से पानी टपकने लगता है।^१ हृदय पर परिक भी पहना जाता था—'हृदय परिक की पाति विपति दुति' (२०३७) ।

७३—कमर के धामूपणों में सोने की या बड़ाऊ मेखला (१२५३ १२५१) [सं०] तथा किंकिनी (१२४३) [सं०] और सुत्राबली (११३०) [सं० सुत्राबलि] उल्लेखनीय हैं—'कमकमनि मेखला राजत (२००३) मन्ना 'कमक मनि मेखला राजत मुनन स्यामल रंग' (१२५१)। किसी वस्तु के मध्यभाग को धारों धोर हैं। घेरने वाली पंढलाकार चीज को मेखला कहते हैं। प्राचीनकाल से ही पीठों के ऊपर मेखला पहनने की प्रथा बनी प्रा

१—इ. बी. प्र. १२ अध्या० १३, फूलों के हार में माला के विपक्ष गुंजाई होती है। इसमें एक फूल की पंढरियाँ दूसरे से मिली रहती हैं।

२—मानव, भात का० १४३, 'कु बर मनिर्कटा कलित उरहि तुलसिका

३—साहि० अष्ट० ५० ४५

रही है। वैदिक काल में इसके लिए 'रसना' शब्द प्रयुक्त था।^१ बाण ने हर्षचरित में हर्ष द्वारा प्रबोधन के ऊपर पठने के पास मेखला पहनने का वर्णन किया है।^२ मेखला के प्रतिरिक्त बन्ने वाले कमर के घामूयक किन्किणी घोर क्षुद्रावलि है। किन्किणी में छोटे-मोटे मुँसुर होते थे तथा क्षुद्रावलि में छोटी-मोटी चटियाँ एक मेखला में लगी रहती थीं। क्षुद्रावलि मुँसुर-मुय की मूर्तिरूपा में भी मिलती है।^३ इनके संबंध में स्त्रियों के घामूयकों में भी बताया जा चुका है।

कृष्ण-संबंधी बोड़े से पत्तों में इनके पैरों के नूपुर का चित्रण भी है—

'तस्मी निरुचि हरि-प्रति धंय ।

कोट निरुचि नख बंधु मूको कोट चरन-मुग-रंय ।

कोट निरुचि नूपुर रही नकि कोट निरुचि पुग जानु । (१२५९)

सौने के बड़ाई नूपुर भी बनते थे।—रत्न कटित कंचन कल नूपुर ।

मंड-मंड गति चकत मधुर मुर ॥ (१२४३)

घावकन नामकी घोर लच्छ पुष्पों ने मेखला तथा नूपुर पहनना श्रेष्ठ किया है। स्त्रियाँ प्रचुर पहनती हैं। किन्तु पारश्चात्य प्रभाव के कलात्मक्य उनमें भी यह प्रथा छठी जा रही है।

७४—पुष्पों की शब्द सजावटों में माने पर केसर या चंदन का तिलक (१ ६४, १०७८) [सं० केसर चंदन + तिलक] प्रयुक्त था—'बन्दी तिलक, उर चंदन (१ ८४) 'पीत बदन, चंदन तिलक मोर मुकुट मुंडव फलक' (१ ७८)। ये मूय-मय का तिलक भी लगाते थे—'दीपित तिलक वधिर मूयमंड' (१४९३)। गुप्तकाल में उत्तरभारत के प्रायः सभी ब्राह्मण माने पर तिलक लगाना करते थे।^४ घावकन भी तिलक लगाने की प्रथा ब्राह्मण वर्ग में अधिक है। तिलक लड़ी या पड़ी रेखा से बनते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं जैसे—छाया (बहुत ही बूँदें)-त्रिपुंड (तीन पड़ी रेखाएँ) की (एक लड़ी पतली रेखा) तथा 'ऊर्ध्वपुंड' ध्वित्री के 'यू' के बीच में सीधी लाइन। त्रिपुंड का प्रयोग सप्तम शती में ही होने लगा था।^५ सूर के समय में प्रत्येक ब्राह्मिक सम्प्रदाय का अपना भिन्न तिलक होता था।

तिलक के अलावा चण्डस्वन तथा बड़ पर भीकेसर या चंदन की रेखाएँ खींचने की प्रथा थी। खीर (१ ७५ १२५८) [सं० सूर = रेखा खींचना] का अनेक स्थानों पर सुन्दर वर्णन है—'नामर कटि कावे खीरि केसर की किये (१०७८) अथवा 'वरस्याम रवि-तनया के उद, मय लसति चंदन की खीरी (१२६०) तथा 'स्याम मुचन की सुंदरसाई चंदन खीरि अमूमन रजति सो अति कही न आई। (१२५६)। खीरि पड़ी लड़ी एक रेखा होती है।

१—मा ना वे, पृ २९ 'सत ना १।३।१।१५.

२—हर्ष सां प्र०, पृ ४६

३—मा ना वे, पृ ७१

४—प्रवरण, भाग १, पृ २७५ २७७

५—मालव, भाग २१५ 'माल विमाल त्रिपुंड विराजा'

६—हर्ष० सां प्र०, पृ १३ 'सावित्री के माने पर नाम की त्रिपुंड रेखाय थी।

७—हृ० की, प्र १२, अध्याय १४

वस्तुनिचा तिलक—माल रंग का ध्वित्री का 'यू' U

विमाल तिलक—छोटे 'यू'

रामलक्ष्मी—छोटे 'यू' के बीच में माल लड़ी रेखा

नामक—नाक के ऊपर कुछ 'यू' या ही

८—मालव, भागसाय २१६, 'तल मगुहण सुचंदन खीरी'

तिलक तथा लीरि सयाने का रिवाज प्रायः ब्राह्मण वर्ग में अधिक है। अन्य वर्गों में मङ्ग प्रादि के अक्षर पर अक्षर्य माने पर तिलक लगाया जाता है।

४५—कुण्ड की परम्परागत रेश मूया में मुकुट [सं० मुकुट] का विशेष स्थान है। मुकुट में भी उन्हें मोर-मुकुट अत्यन्त प्रिय था। सूरसागर में मोर-मुकुट (११११) [सं० मयूर] के लिये अनेक छन्द तथा तरह-तरह के वर्णन मिलते हैं। इस संबंध में विशेष रूप से अत्येकानीय छप्पावली यह है—मोर-पक्षीवा^१ (१०७२) [सं० मयूर + पक्ष] बरखी-मुकुट (१०२२, १२५६) [सं० बहि] सिखी-सिखंड (११४, ११६६) [सं० सिल-सिखंड] सिखी-बन्धिका (२८१७) [सं० सिखिन् + बन्धिका] मयूर-बन्धिका (७७२) तथा किरिट मुकुट (६५८)। इन सर्वत्र संबंधी अनेक जग में पीठ पद तथा चेष्टा मोर मुकुट के साथ मोरमुकुट का वर्णन अक्षर्य ही किया गया है—

हुंवर स्वाम कमल बल-नीलन हुरि हुंवर के आई।

मुच मुरली तिर मोर पक्षीवा बन-बन धेनु बरही। (१७७२)

‘बरखी-मुकुट ईश-धनु मानहुँ तकि बदन-सखि सावति’ (१२५६)

‘मनिम बटिठ मनोहर मुंजक सिखी बन्धिका छीत छीं कबि’ (२८१७)

‘सिखी-सिखंड छीत, मुच मुरली बन्धी तिलक छर बंधन। (१०६४)

‘छोमिठ धुमन मयूर बन्धिका मोम मनिम तनु स्वाम’ (७७२)

तथा ‘कैट मुकुट सोमा बनी (धुम) धम बलो बनमान (६५८)

मयूर-पक्ष के बीच के छप्पे नाम की बन्धिका कहते हैं। पात्रकस रामा-कुण्ड के भूज्जार में एका की भी विशेष प्रकार का मुकुट पहनाते हैं उसे भी बन्धिका कहते हैं^२। सूरसागर में बंदिठ छत्री प्रकार के मुकुट मोर के पंखों के बने-बनाये गये हैं। किरिट मुकुट में एक आयताकार पट्टी के ऊपर नाम के आकार की एक पंक्ति ही होती है जिसका बीच का पात्र बढ़ा होता है। चर्चुन किरिट मुकुट पहनते हैं।^३ मोरबन्धी या बँदोई मुकुट में तीन मोर पक्ष कबंजी की तरह मफते हैं। प्रायः भी पंखों में कुण्ड मूर्ति के भूज्जार में नामा (ऊपर से नीचे तक के दोनों बल की प्रायः में बड़े हुए बनाये जाते हैं) पटका तथा मोर मुकुट पहनाते हैं। बड़ाछ छोले के मुकुट का अन्तेक भी है—‘मूयन मुकुट बपड बरवी’ (११६८) व ‘कनक मनि मुकुट’ (२७६६)।

मुकुट पहनने की प्रथा प्राचीन काल में थी। मुत्तकाल की मूर्तियों तथा चित्रों में मुकुट का चित्र मिलता है। वर्णन के बीचिछर के चित्रों में भी तिर पर प्रायः मुकुट ही मिलित है। मोर मुकुट से अक्षर्य कुण्ड की मोर ही व्याप्य जाता है।

कुण्ड स्थानों में कुमुमपाय^४ नामी जसस है—‘मनिम बर विमंय-सुतनु बनमाना छोई।

१—नागत बालकाण्ड, २३३ ‘मोरपंख तिर लीलत नोके। मुच्य बीच विच कुमुमकरी के।’

२—कुं जी० प्र १२ अध्या १४

३—महामाया प्रोत्पन्न बय बय्या० २, श्लोक २।१६

‘किरीटमाली कीलेयो मेजमरीक व्यासस्तपू।’ किरिट की पंक्ति ‘किरीटमान’ कहलानी है।

गौता अध्या ११ श्लो १७ में कुण्ड के विष्णु रूप में भी किरिट का उल्लेख है—‘किरीटनं गरिर्न बन्धिर्यं व
तेजोराशि सर्वतो वीरियमानम्॥’

नागत पोता ५ ३३, ‘पाल निजक, बंधन किरिट तिर, कुं बल लीत कपोतनि भी है।

अति सुखेन कुसुम-पाग कपमा को कोहू ॥ (१२९)

३६—सुरसागर में कुम्भ का रसिनागर (वरम स्क्व) तथा नटवर (२८१७) रूप प्रमुख हैं । प्रतीकित चरित से संबंधित बोहे से पर्वों में ही उनकी प्रतिष्ठित स्थिति तथा छात्र का वर्तन किया गया है । रोप सभी पर्वों में वह 'रत्नीय भोवन' मदनमोहन 'रसिक सिरोमणि' 'मदनमोहन' या 'नटवर' 'नटनागर' हैं । ब्रह्म के प्रान्त-रूप को ही प्रभावता ही नहीं है जिसने राजा तथा नौपियों को सांसारिक भ्रमण छोड़ने पर विवश कर दिया था—

वृत्रास प्रभु रसिक-सिरोमणि वातनि मुरद राधिका बोरी (१२२१)

नटवर रूप पितावर काक्षि छैस मये तुम डीलत' (२९०४)

कटि काङ्गनी चरन चौरि, स्वाम बरन सुंदर बन ऐसे नट-नागर के जैसे बाने'

(१९६२)

'रघो रास मिलि रसिकराइ सी मुखि मेई नुन ग्रामिनि । (१६६६)

'छैस' (२९ ४) [सं० छवि + ऐस] या छैसा आबकन कुस्तार्क रूप में प्रयुक्त किया जाता है । छैस-चिकनिवां बूच बने-छे पुच को कहते हैं ।

प्रत्याम्नायी^१ में पुरुषों के लिए प्रयुक्त स्थिति-सूचक विशेषण 'पुरुष-स्वाम' हस्तिना तथा 'पुरुष-सिंह' सुरसागर में रहने पर भी नहीं मिले। इसका कारण ऊपर दिया गया है । ब्रह्म के प्रान्त रूप के प्रतीक कुम्भ के लिए ऐसे विशेषण कैसे दिये जा सकते थे ?

३७—वृत्रासीरास ने अपने सभी प्रमुख पर्वों में राम लक्ष्मण आदि के रूप-वीर्य का वर्णन किया है ।^२ कुम्भ संबंधी वर्णनों में तो मीरमुकुट पीताम्बर तथा कुंडल के बिना चित्र पूरा हो ही नहीं सकता । कामदी ने भी रत्नसेन के प्रामुख्यों में 'पहिरत कुंडल कज कण्ठ' तथा 'भारतु केस मटुक सिर बेहु'^३ आदि उल्लेख किये हैं । रत्नसेन की समा में 'मुकुट बंध हैं छे सब राजा' का वर्णन किया गया है ।^४

पारशिष्ट

भीकृष्ण के रूप माधुर्य तथा बलप्राप्त्यवस्था संबंधी दो संपूर्व पर सदाहरणार्थ नीचे दिये जाते हैं—

स्वाम-हृदय बर मोलिन माभा । निचकिट भई निरखि बच-बाला ॥

अवन बके मुनि बचन रसाभा । गैत बके बरचन मंदसाभा ॥

१—ईडिमा एडु मोल हु वातामि, पृ १९२

२—मालस, सुंदर १६, 'तब बैसी मुखिका मनोहर । राम नाम अंकित अति सुंदर । अंकित मिलन सुंदरी पङ्क्तिबाली । हृदय विषाद हृदय अकुलाती ।'

मालस, भा ३६७, 'कलि किजनि कटि लून मनोहर । बाहु विताल धिनुपन सुंदर । पीत जमेत महाबलि बेई । करि मुखिका बोरि भितु मेई ।

सोहतु ब्याह सार सन लाबै । कर प्रापत प्रामुखन राबै ॥

गियर ऊपरका काँचातोली । मुहुं छाँवरनिह लगे मणि सीली

मयन कमल कल लु डल कावा । अवन सफल सीबई निपाना ॥'

३—य सं० ब्या २७६।३, ६

४—य सं० ब्या २७७।३

कन्दुकं ध्रुव तैल विद्याया । कर केयूर कंचन नग बासा ॥
 पल्लव हस्त मुद्रिका आश्रय । कोस्तुम मणि ह्रस्वस्पर्श ज्ञात्री ॥
 रोमावलि वरणि गहि आई । नागिस्पर्श की सदरताई ॥
 कटि किंकिनी ब्रह्मनि-संयुत । पीताम्बर कटि-तट घबि धनुष ॥
 झगल वन की पट्टर को है । तस्मी-मग बीरण को मो है ॥
 बानि जानु की बलि न सम्हारै । नारि-निकर मन मुद्रि विचारै ॥
 रत्न जटित कंचन कमल गुणुर । मंथ-मथ पति जगत मधुर सुर ॥
 जगल कमल-नय नख मणि-आवा । संतति मन संतत बह साया ॥
 जो बिहि धंय सु तहाँ नुमप्री । सुर स्वाध बति काहु न जानी ॥ (१२४१)
 सचन-कल्पतरु-तर मनमोहन ।

हस्तिना वरन वरन पर हीने, तनु निर्गम कोने तनु बोहिन ॥
 मणिमय जटित मनोहर कुडम सिन्धी बहिषा धीव रही कबि ॥
 मूक-मथ विलक झलक बुबराए उर कमल कहां नु बई छवि ॥
 तनु वनस्पति पीतपट खोमि ह्रस्व पत्रिक की पति विपति दुषि ॥
 तन कमल जलिन विद्यावति, बेसी प्रचरति बरे ललित पति ॥
 करन मुद्रिका कर-कंकन छवि कटि किंकिनि का गुणुर आचर ॥
 मख सिख कति बिलोकि दखी पी छवि धर जानु मथन तनु लावत ॥
 नख सिख रूप प्रभूप बिलोकि नटवर बेप धरे नु ललित पति ॥
 मन-दासि बहुमति को छोटा बरनि लई गहि सुर जलप-मति ॥ (२८३७)

१०—वच्चों के आभूषण

७८—छोटे वच्चों को भी कुछ आभूषण पहनाने का रिवाज था । जैसे के आभूषणों में कटुसा (७२, ७९१) [छं कटिका कंठ + सा - एकलङ्का हार] प्रमुख था—कटुसा कंठ वच केहरि-नख (७२) 'कटुसा कंठ मंनु नखमनिषी (७२४) या 'कंचन की कटुसा मणि मोक्षिनि निच वचनई रहनी पोह (८) (७९९) । कटुसा-वच्चों की एकलङ्का माता होयी थी । इसमें छोटे अथवा बाँधी की भीष्मियां तारों में सुँधी जाती थी । बीच-बीच में माँ के लक्ष पावीच धावि थी बूँद धिये जाते थे । उपर्युक्त पंक्तिमें मैं सुर ने इसी प्रकार के कटुसा का वर्णन किया है ।

जैसे में पत्रिक (७२४) [छं पत्रक] भी पहनाया जाता था—'पत्रिक उर हरिनख (७२४) । पत्रिक की बुकबुकी भी कहते हैं । बालक कृष्ण कभी-कभी गले में कमल की माला पहनते थे—'ललन-माख गुणन पहरि नहा कहीं बनाइ (७८८) या कंठ कमल दल मान की (७२१) ।

मोठी की माछा (७८८) [छं माछा] का जल्लेख भी कुछ पंक्तियों में है—'स्वाति-मुठ माछा विद्यावत स्वाम तन हहि घाई' (७२८) ।

७९—बहि धं पीवाल के माये की खटकन (७१७ ७१९) [छं सटन—मूलना, हिन्दी

१—तु धं, पीता०, ४ २१२—

'मूँकी करनि, पत्रिक हरिनख उर, कटुसा कंठ बंध नखमनिषी'

प्रति सुरेश कुमुद-पाव अपना की कोड़ी ॥ (१२२)

७३—सूरसागर में कृष्ण का रसिनागर (बनन स्कन्ध) तथा नटवर (२८१) का प्रमुख है। अलौकिक चरित से संबंधित बोझ से पर्वों में ही उनकी मणित शक्ति तथा छल का वर्णन किया गया है। सेप सभी पर्वों में वह 'राजीव लोचन' मदनमोहन 'रसिक विरोमणि' 'मनमोहन' या 'नटवर' 'मदनमगर' हैं। ब्रह्म के आनन्द-रूप को ही प्रधानता दी गई है जिससे तथा तथा योयियों को सांसारिक जीवन छोड़ने पर विवश कर दिया था—

नूरदास प्रभु रसिक-सिरोमणि वातनि नुरद रासिका मोरी (१२६१)
 'नटवर रैप सिंहावर काँध लैसा नये गुन बीनत' (२२ ४)
 'कटि काहनी बचन बीरि स्वाय वरन सुंदर बन ऐसे नट-नागार के वीरे बारने' (१९६६)

'रस्यो उस मिलि रसिकराइ सी मुखि यहीं गुन घामिनि। (१६६६)
 'लैस' (२९ ४) [सं० लमि + ऐल] या लैसा धातुकल कुरसारक रूप में प्रयुक्त किया जाता है। लैस-विकनियां ब्रह्म बने-ऊने पुण्य को कहते हैं।

अष्टाध्यायी में पुण्यों के लिए प्रयुक्त शक्ति-सूचक विशेषण 'पुण्य-आप्त' 'इस्तिप्त' तथा 'पुण्य-सिंह' सूरसागर में ब्रह्मे पर भी नहीं मिलेंगे। इसका कारण अगर दिया गया है। ब्रह्म के ध्यान-रूप के प्रतीक कृष्ण के लिए ऐसे विशेषण लैस देने का सकते थे?

७४—सुलसीबास ने अपने सभी प्रमुख ग्रंथों में राम लक्ष्मण याद के रूप-वीर्य का वर्णन किया है।^१ कृष्ण संबंधी वर्णनों में दो मोरमुकुट पीताम्बर तथा कुंडल के बिना बिना पूरा हो ही नहीं सकता। बायसी ने भी रत्नसेन के धाम्प्यपद्यों में 'पहिरत कुंडल कमल बरछ' तथा 'भरतु केत मटुक सिर देह' १ भावि कसेस किये हैं। रत्नसेन की तथा में मुकुट-
 बैठे सब 'उमा' का वर्णन किया गया है।^२

पारशिष्ट

भीकृष्ण के रूप माधुर्य तथा वस्त्राभूषण धर्मों की दो संपूर्व वर बहादुरवार्ध नीचे लिखते हैं—

स्वाम-हृदय वर मोहित जाता। विवक्षित यहीं निरखि ब्रह्म-वाता ॥
 लवन बके मुनि बचन रछाता। नैन बके बरछन मंदसाता ॥

१—ईशिया एम् मोन हू बरछानि, पृ १२६

२—सायत, सुंदर ११ 'तम बैसी सुत्रिका मनीहुर। राम नाम धर्मिल प्रति सुंदर।
 कलित चित्त सुंदरी पक्षिपानी। हुरत बिपार हुरत धनुषपानी।'

सायत, भा ३२७ 'कति किकलि कटि लून मनोहुर। बाहु बिताल बिदूषण सुंदर।
 पीत लनैत बहाधनि होई। कटि सुत्रिका बीरि बिनु लेई।

लौहृत व्याप्त ताज लन लावै। कर धायत धाम्प्यपद्य रावै ॥
 पियर उपरमा कोकालोसी। कुई पाँवरमिह लवै बनि मोसी

मयन कमल कमल हू उल काया। बबनु लकल लौचन निभाया ॥
 ३—प सं व्या २७६।५, ६
 ४—प० सं व्या ७७।१

कंठ-कंठ मुख गैल विद्याला । कर केनुर कंचन मय आला ॥
 पल्लव हस्त मुद्रिका भावै । कौस्तुभ मणि हृदयस्थल आवै ॥
 रोमाञ्जलि वरनि नहिं आवै । नाभिस्थल की सुहरताई ॥
 कटि किङ्किणी बंजमणि-संभुत । पीताम्बर, कटि-तट छवि सप्रभुत ।
 हृदय बंध की पटलर की है । तरुणी-मग भीरव की जो है ॥
 आनि जानु की छवि न सम्हारे । गारि-निकर मग बुद्धि बिभारे ॥
 रत्न बटित कंचन कमल गुणुर । मंद-मंद यति चलत मधुर सुर ॥
 कुचन कमल-पत्र नख मणि-आया । संतनि भग छेत्त यह नामा ॥
 जो बिहि धंय सु तहां भुजानो । दूर स्वाम बसि काहु न जानी ॥ (१२४१)

सचन-कल्पतरु-तर मनमोहन ।

दक्षिण वरल वरन पर वीणै, उनु निभय कीन्है मुहु बोहन ॥
 मनिमय बटित मनोहर कुचन सिखी बंजिका सीध रही छवि ॥
 मूक-मद तिलक अलक कुचराटी सर वनमाल कहां बु बहै छवि ॥
 उनु वनस्याम पीतपट सोनित हृदय परिक की पाति बिपति दुखि ॥
 वन वनबाव निविध विद्यावति, बंसी अबरनि धरे नमित गति ॥
 करब मुद्रिका कर-कंचन छवि कटि किङ्किनि यम गुणुर आवत ॥
 नख सिख काति बिलोकि दक्षी री छवि अर जानु मगल उनु नामत ॥
 नख सिख रूप प्रभुप बिलोकेत गटवर सेप धरे भु कस्तिय अति ॥
 कमल पति कसुमति की छोटा वरनि सकै नहिं दूर अलप-मति ॥ (१२४७)

१०—वच्चों के आभूषण

७८—छोटे वच्चों को भी कुछ आभूषण पहनाने का रिवाज था । गले के धामरखों में कटुला (७ ९, ७१९) [धं० कंठिका, कंठ + ला = एकलङ्का हार] प्रमुख था—‘कटुला कंठ बल हैरि-मख’ (७ ९) ‘कटुला कंठ बंधु गजमणिवा’ (७२४) या ‘कंचन की कटुला मणि मोविनि बिच बचनहूँ रह्यो पोह’ (री) (७१९) । कटुला/वच्चों की एकलङ्की माला होती थी । इसमें छोले अमरा बाँधी की बाँधियां छारों में लूँधी जाती थीं । बीच-बीच में बाघ के नख लगीय धादि भी लूँध लिये जाते थे । उपर्युक्त पंक्तियों में दूर ने इसी प्रकार के कटुला का वर्णन किया है ।

पक्ष में पदिक* (७२४) [धं० पदक] भी पहनाया जाता था—‘पदिक उर हरिणख’ (७२४) । पदिक को चुकचुकी भी कहते हैं । बाघक दुष्ण कभी-कभी जले में कमल की माला पहनते थे—‘असज-मास गुणल पहिरे बहा नहीं बनाई’ (७८५) या ‘कंठ कमल बल माल की’ (७२३) ।

मोटी की माला (७८५) [लं० माला] का उल्लेख भी कुछ पद्यों में है—‘स्थाति-सुव माला बिद्यावत स्वाम वन इहि भाई’ (७२८) ।

७९—कवि ने पोषाल के नाये की साटकम (७१७ ७१२) [धं० सटन—भूजना, हिन्दी

१—मु० धं, पीता, पृ २६२—

*‘नट्टी की करनि, पदिक हरिणल उर, कटुला कंठ बंधु गजमणिवा’

लटकना से] का विशेष रूप से अनेक पदों में वर्णन किया है—'लटकन लटकन ललित भात पर' प्रथमा (७१७) 'मास विज्ञान ललित लटकन मनि भात बसा के चिकुर सुहृमै' (७२२)। अनेक महिलाओं से बड़े लटकन की बर्णना भी की गई है—'बीस सैठ ग्रह वीठ लाल मनि लटकन भात खाई'। सनि नुह-बसुर बेचबुब मिलि मनु भीम सहित समुदाई' (७२६)। किसी भी धामूय में लटकते भात को लटकन कहते हैं। सिरोंच या कबंगी की भी लटकन होती है। घूर ने संभवतः इसी शब्द में 'लटकन' शब्द प्रयुक्त किया है। कुछ पदों में 'अंत्रिका' (७१५) [अं] नामक धामूय भी वर्णित है—'कटि किकिनी अंत्रिका पालिक' (७१५)। यह भाषे पर पहचान का सर्पशकार प्रामाण्य है। इसके बीच में लय तथा मित्रारे-मित्रारे मोती लटकते रहते हैं। अमर की संज्ञा में माण्डिक्य जटिल अंत्रिका का वर्णन किया गया है।

कुछ स्वरों में काल के धामूय कुंडल (७४२) [अं कुंडल] का चिह्न है। बड़े होकर भी कुण्ड कुंडल पहनते थे। लूचराभी लम्बी धतकों के साथ कुंडल की सोमा प्रविष्टीय की—'कुंडल लोल कपोल विरक्त लटकति ललित लटुरीका भू पर' (७४२)। कुण्ड के कुंडल प्राक् मकराकृत ही थे—'कुंडल कुटिल मकर कुंडल प्रह नैन विनोदनि बंध' (७२२)। मंडलाकार कुंडल पहनने की प्रथा प्राचीन भारत में थी। अकला के चित्ति चित्रों में कुंडल मिलता है। बुद्ध के चित्रों में भी प्राक् काल में मंडलाकार कुंडल चित्रित मिलता है। गुणकाल में राजपूत कर्मों में धामूय पहनते थे। धावकल राजस्थान के कुछ भाग में अक्षरय पुरवों द्वारा काल में धामूय पहनने की प्रथा चल रही है।

ब — कनकैरन शीर्षक पदों में काल के धामूय धामूयों डूँडुर (७६८) [य डूर = मोती] तथा मुरकी (७६८) [य मुरकना—मुकना] का भी उल्लेख है। 'कंचन के डूँडुर संवाद किये क्ली कदा देखलि धामूर की। ओचन परिचरि शोक गावा कनकैरन देखत बिम मुरकी (७६८)।

धावकल की छोने की 'दूर' या 'मुरकी' कनकैरन में पहनते हैं। डूँडुर धावकल की लच्छ लटकने वाली वाली होती है।^१ छोने के तार की तीन बार बसकरबार लपेट कर वाली के समान मुरकी नामक धामूय बनता है। दूर, कुंडल तथा मुरकी मिलते-जुलते धामूय हैं। कुंडल की बुड़ी दूर से बड़ी धीर पोती होती है।

नाक के पहनों में एक पर में लयनी (७२६) [अं लय-लय नाक का छेद, पन्धो की नाक का छेद जिधमें रस्सी बांधते हैं] का निर्देश भी है—'हो बलि बाळ धवीसे लाल की L नीठिन सहित नासिका नबुनी' (७२६)। पञ्चम कालमें पहले 'नब' नामक धामूय का उल्लेख भारतीय साहित्य प्रथमा कला में नहीं मिलता है^२। परि पर ११ में मुलाक [बुकी मुलाक] का उल्लेख भी है 'नाक मुलाक हरी पी'। मुलमयान किन्ना ही मुलाक अधिक पहनती है। छोने की की के धाकार का बहु धामूय नाक के बीच के छेद में पहना जाता है। यद्यपि सिरु कुण्ड के पैरों व हाथों में चूड़ा (७७) [अं चूड़ा] भी पहना देती थी—'एन म्छुकी सिर लाल नीठनी, चूरा बुद्ध कर पाव' (७७)। इस

१—क की, प्रथ ११, अध्या ४

२—पु० अं धीता० पृ २६२ 'सलित नासिका ललित ननुमिप' ११

३—य ल व्या ४ १५, 'परी नाथ कोह लुह न पाव' बरमाकत ११।४

संभवतः जाम्बती का यह नाक संवंधी उल्लेख इसके प्रकार के धातु का ही है क्योंकि लया होने के कारण यह धातु आमतौरों का प्रतिनिधित्व कर रहा है।

मृताकार धामूपय को 'कदा' भी कहते हैं। हाथों में एक धम्म धामूपय 'पहुँची' (७१५, ७१५ ७५१) [४] प्रकोष्ठः] का प्रायः इन सभी पदों में उल्लेख है—'कर पहुँची' (७१५) 'पंकज-पानि पहुँचिया राजे' (७१६)। रत्नजटित पहुँची का वर्णन भी मिलता है—'पहुँची रत्न-बराह' (७५१)। कुछ दिनों पहले तक स्त्रियाँ इस धामूपय को शौड से पहनती थीं किन्तु अब पहुँची का रिवाज छठ गया है। बच्चों के धारणों में भी इसका स्थान नहीं रहा है।

८१—पहले बच्चों को कमर में बजने वाली घुंघुक्कार किंकिनी (७१९) [४ किंकिनी] धारण पहनते थे।^१ घुर ने इसकी बजावट तथा ध्वनि का विस्तार वर्णन किया है—'कटि किंकिनि बजाह (७१९) 'कटि किंकिनि कूबे' (७५) तथा 'किंकिनी कलित कटि हाटक रत्न बटि' (७६६) और 'कनक रत्न-मनि-जटित-रचित कटि किंकिनि कुनित चोतपट तनिया' (७९४)। वर्तमान समय का प्रचलित लज्ज करधनि भी 'तनक कटि पर कनक-करधनि (८२) में प्रयुक्त हुआ है। ये सभी धामूपय सोने के तथा बहुमुख्य रत्नों से बने हुए बनाए गये हैं। इनके द्वारा हृष्य की शोभा तथा नर के वैभव का निबर्णित किया गया है।

छोटे बच्चों के पैरों में भी घुंघुक्कार धामूपय पहनाने की प्रथा भी जिससे जगतें समय सुन्दर ध्वनि होती थी—'पाइन में नूपुर' (७१५) अथवा 'नूपुर कनक ननु हंसनि-सुन रहे नोड़ है बाह बसाये' (७२२)^२ तथा 'त्यो-त्यो मोहल नाथे यो-यो रई बमर की होह (री)। तैरिये किंकिनि धुनि पय नूपुर सहज मिले मुर होह (री) (७६६)। नूपुर (७१५) [४ नूपुर] घुंघुक के धर्म में आता है। इनका प्रमुख धामूपय 'पैजनि' (पैजनियाँ) (७६० ७२४) [४० पारिजनी] है—'भुजक स्थान की पैजनियाँ असुपति सुत को बसन सिखावति धंघुरी नहि नहि होह बनियाँ' (७५)। अथवा—'भस्त्र बरन मन् जोति बयमवति कनकुन करति पाह पैजनियाँ (७२४)। ये पैर के धामूपय धारणकार बाही के ही बनते हैं। पैरों में सोने के धामूपय पहनने की प्रथा आबकल भी कम है। पैजनी घुंघुक्कार बंदीर से बनाते हैं।

८२—बच्चों के सर्वत्र में प्राचीन काल से ही कुछ धम्म-विरवास भी प्रचलित है। इनके पीछे कुछ वैज्ञानिक लक्ष्य भी हो सकते हैं। बच्चों के गले में केहरिनल (७१५) [४] या बघना, बघनियाँ (७११ ७१) [४] व्याघ्रनल पहनाने की प्रथा इनमें से एक है। शूर इसका उल्लेख करता भी नहीं, मूल है—'कटुता कंठ बघनहा नोके' (७१५)^३ 'बधिर हार हिय सोइत बघना' (७११) तथा 'वर वर हाथ दिखावति होतति बंधति गरी बघनियाँ' (७१)। बाप के नाकून कम सोने के धार और मणियों से भिन्ना कर घुंघा हार [४ हारः] बनाया जाता

१—मनूषी, पृ १६, ४ सुगत काल में बच्चों को करधनी पहनाने की प्रथा मनूषी ने की है।

२—पु० ४ पीता०, पृ २८७, 'नूपुर ननु सुनिबर कसहुंसनि रहे नोड़, हैं बाह बसाये' २३

३—पु० ४ पीता, पृ २६, 'कटि किंकिनी, पय पञ्जनि बाजः पंकज पानि पहुँचिया राजे।

कटुता कंठ बघनहा नोके। नयन-सरोज मयन-सरिता के ॥

लटकन ललत ललाट लहरी। बमकति है हे ईशुरियाँ करो ॥

१। व्याघ्रमख में बच्च [सं बच्च = हीरा] तथा प्रवास [सं] बाल कर भी मासा बनाते थे—
परम सुवैद्य कंठ कैहरिमख विच-विच बच्च-प्रवास' (७१५) अथवा 'कस्तुरा कंठ
टिब कैहरिमख बच्चप्रवास धनु जाल भयोमनि' (७१६) ।

हर्षचरित में बालक हर्ष को भी सोने में व्याघ्रमख^१ बड़ कर पहनाने का प्रसंग है। पत्ने
सुवचड मूने का टेढ़ा टुकड़ा 'मझि के बा^२ । धाज भी व्याघ्रमख काली छोरे में बांध कर कुछ
होग बच्चों को पहनाते हैं। बच्चों की प्रसिद्ध रक्षा के लिए खंजरहार (७११) [सं बंधहार]
पहनाने की प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है—'राजत खंजरहार' (७५१) । इसी प्रकार छोटा टुकड़ा
करके धाज भी माठाए अपने बच्चों को लाठीक पहना दिया करता है ।

८१—रिमू हृष्य के माथे पर गोरोचन-सिलक (७१७ ७१८) [स गोरोचना]
अथवा सुगमन्ध (७२) [सं सुगमन्ध] शोभाबमान बा—'मसि सिन्धुका सुगममध घाम'
(७२) या बदन सुखे तिलक गोरोचन मट मटकनि मधुकर-वति डोलनि' (७१८) अथवा
'बाब कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक बिये' (७१७) । गोरोचन घाम के पितासय से निकला
एक सुगन्धित घीसे रंग का द्रव्य होता है तथा सुगमम किरी-किरी हिरन की नाभि से निकली
कस्तूरी को कहते हैं । कस्तूरी की सुगन्धि तो प्रसिद्ध है ही ।

उनकी दाखों में काजल भी लथाना माठा के लिए आवश्यक बा^३—'खंजन रचित
नैन' (७१८) [सं धंजन] । धाज भी बरों में निवा बिये की बत्ती बसा कर घीर उजके अमर
किरी छोटे पात्र को रख कर उसकी कालिमा से काजल बना लेती है तथा उनमें कपूर धाबि भी
मिलाती है । उसके बाह कुक्षि से बचाने के लिए माठा-बखोबा उनके माथे पर छिठीना
(७१२) [सं कृष्टि-बंधन हि डीठ^४] मसि बिधा (७१५) [सं मसिबिधु] काजर बिधु
(७१६) [सं कज्जल बिधु] बा बखोबा (७१२) लगाता भी नहीं मूलती—

'काजर बिधु भूब ऊपर री' (७१६)

'मट मटकनि सिर बाब बखोबा' (७१२)

'मुनि-मल हृष्य मंजु मसिबिधा ललित बदन बल बासपुर्बिधा' (७१६)^५

'सिर बीतनी छिठीना बीतनी' (७१२)

'बाब बखोबा पर कुक्षित कच छमि मुक्ता ताहु मी' (७१५) धाबि ।

धाज भी छोटे बच्चों को नुरी नजर से बचाने के लिए माथे पर काली रेखा या डीका
लगाने की प्रथा दिखाई दे जाती है । बखोबा^६ ऐसी ही काली रेखा को कहते हैं ।

८२—मुंड के पहने बच्चों के बाल मुगहरे रेशम के सडान तथा बुंजराने होते हैं ।

१—येद में मोकने के लिये बाज के नालून के आकार का एक छोटा सा हथियार
'व्याघ्रमख' नामक होता था ।

२—हर्ष छां, ध, घ १५ 'हृष्टकचक्रविभक्तव्याघ्रमखपंक्तिर्महितप्रीत्यके'

३—धु घं, कविता, घ ११७, 'तुलसी नगरजय रचित धंजन नयन १
खंजन-बातक से'

४—क भी प्र ११, पृष्ठा ४

५—धु घं, बीता घ २८१, 'मुनि मल हृष्य मंजु मसि-बुधा, ललित बदन, वति
बासपुर्बिधा ।'

६—क भी प्र ११, पृष्ठा ४, मांठ तहसील में 'बखोबा' सध धाज भी
प्रचलित है ।

मूर ने शिशु कृष्ण के इन बालों का सुन्दर वर्णन किया है—'कुटिल अलक बरग की लवि धबनि पर मोड़ी (७१६) या—'नमुधारे सीत कैस है बर भुंवरबारे (७५२)।

इन प्रवेश में इन बालों को छटुरियाँ (७१४ ७२१) [सं सट्ट = धलक बाल की लट] तथा मंडूले (७१६) [हि मंड + ऊम] भी कहते हैं—

'खिटकि रही बहुत रिखि बु लटुरियाँ' (७२१)

'लटकत ललित लटुरियाँ मधि बिहु बोरोवन' (७१४)

'सर बचनही कंठ कटुला मंडूलेवार (७१६)।

कुछ पदों में बालकृष्ण के लम्बे अंग जुटसी (७८८) [सं = बटा + बूट] जैसे मंडूले बालों वाले रूप की तुलना शिव जी से की गई है—

ललित री नंदबंदन बैकु । बूरि मूसर बटा बूटसी हरि किये हर मेपु' (७८८)।

मथोबा कृष्ण तथा बलराम के इन लम्बे बालों की बुटिया (७८०) [सं बूटा] या बेनी (७१६) [सं बेनी] बूब बेठी भी—

'बेनी लटकत मधि-मुंदा मुनि-मग हर' (७१६)

अथवा 'बेवत बाठ पिरावही, भयरत थोट मारि

परत परत बुटिया गई बरजति है मारि' (७८०)।

मुंडन के पहले बाल लम्बे हो जाने पर धातुकल की लकड़ों के बाल बेठी रूप में बांध दिये जाते हैं। बीच में मांग निकाल कर दोनों ओर बालों को फट्टे में काढ़ने को काकपच्छ (४१४) [सं काकपच्छ] केश-विम्यास कहते हैं। यह बालों में कीट के परो के समान लगते हैं। हर्षचरित में बालक पंडित का केश विम्यास काकपच्छ ही है। पुष्पकाव्यीन काविकेय की मूर्तियों में भी ऐसा ही मिलता है। मूर ने नवम स्कन्ध के राम सर्वप्रथम पदों में काकपच्छ का उल्लेख किया है—'कटि-उट पीठ पिछोरी बाये काकपच्छ बरे सीध (८६४)। कृष्ण के बाल काकपच्छ रंग के नहीं लगते बल्कि हैं। रामा के पुत्र होने के कारण राम-लक्ष्मणादि के लिये ऐसा केश-विम्यास अधिक उपयुक्त था। राम के समान 'पगड़ी का उल्लेख भी कृष्ण की बेलमुपा में प्रायः नहीं किया गया है।

८८—गुलसी ने बालकों की बेल-मुपा में प्रायः इसी शब्दावली का प्रयोग किया है—'किंकिनि पैजरी कटुला लठुनी लपुनी, बचनखा लनिमा भेवुनी, कछोटी रविमा कछोटी तथा नागलनी (काग का ब्रामुपण) आदि। शिशु राम का रूप-माधुर्य देख शरीरवाचिनी दिवनी कमी सी लगी रह गई—

पग मुरुर थी पछोनी करकैनि मंमु बनी मनिमान हिये।

नवनीत कसेबर पीठ भेज-भलकै पुलकै मूप योद लिये।

अरविह सो भ्रामन रूप मरं, अनविह लोचन भूय पिये।^१

पुंछपसे कुंडल तथा कुंडल की लवि धबलनीय भी—'बुंवरारी लटै लटके मुख ऊपर गुंडल लोन कपोलनि की। निबछावरि प्राग करै गुलसी बलि जाटै लला इन बोलन की

१—ह० बी प्र० ११ अध्या० ४, धातुकल कमी कमी 'मंडूले' शब्द के लिये 'कटुला' शब्द प्रयुक्त करते हैं— लट × ऊम—कटुलल—अटल × क—अटला, लट धबल्लु बने के बाल

२—हर्ष० लो० ध, पृ ६८

३—मु० सं० कविता०, पृ० ११७ ११८

कोसस्या धांपन में राम को पैरों बलना सिखा रही है—

ललित मुठाहि सासति सनु पाये ।

कोसस्या कस कसक धमिर, माई सिखनति बलन धैयुरिबी माए ॥

कटि किकिनी पैबनी पायनि बाबति कसभुन मजुर रैमाए ।

पहुँची करनि कंठ कटुसा बन्धो कैहरिगल-मन-बारिठ बरपाए ॥

पीठ पुनीत बिबिध भैंगुसिया सोहति स्याम घरीर सोहाए ।

बैतिमां ई ई मगोहर मुख अवि धरन धरर पित लने बीराए ॥१॥

बिनुक कपोल नासिका सुंदर भाग तिलक मसिबिनु बनाए ।

राखत नयन मनु धंजनमुत बंजन कंज मीन मर नाए ।

लटकन बाब भुजुटिया टेढ़ी मेढी सुमन सुखेस सुमाए ॥२॥^१

सूर तथा तुलसी के बालक कृष्ण तथा राम के चित्र में कितनी समानता है यह देख कर आश्चर्य नहीं होता। उस समय के प्रचलित पहनावा के साथ दोनों में परंपरागत पहनावे का भी मिश्रण किया है। राम तथा कृष्ण बाल्य के बख्ताए माने जाने के कारण इनका परम्परागत पहनावा भी बहुत कुछ मिलता है। भीतावली के कुछ पदों का सूरदासर के कुछ पदों से आश्चर्यजनक साम्य है।

८९—वर्तमान कास में बच्चों को धामूपख पहनाने की प्रथा उच्च वर्ग के नागरिकों में घट-सी गई है। इस वर्ग ने परिचयी प्रवास के सर्वांग निकर कमीज पैंट, शॉक अपना लिया है। किन्तु ग्रामीण जनता ने अपना पुराना पहनावा बच्चों के लिये भी नहीं छोड़ा है। गाँवों में हाथ-पैर कमर धारि में बाँधी के धामूपख कुर्ता कमीज भज्जना तथा टोपी धारि धयी भी चल रहे हैं। बच्चे कटुला व्याघ्रनख तथा छिठीना भी दिखाई देता है। कमर में बक्सर कासे डोरे की करबनी पहना देते हैं। मुसलमानों संस्कृति के प्रसार स्वल्प पापजामा बाँधिया कमीज धीरे धीरे करबनी पहना देते हैं। सभी के बस्त्रों में समात का भी महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया है।

परिशिष्ट

बाल रूप संवेष्टी कुछ जोड़े से पदों द्वारा शिशु कृष्ण को मनमोहक सोमा तथा सच्चा का अनुमान लगाने में सरलता होगी। इनको पढ़ कर भावों में सामने एक चित्र-सा चित्र जाता है—

(१) खेलत तैर-भाँवन गोविन्द ।

निरखि-निरखि अनुमति सुख पावति बरन मनोहर हनु ।

कटि किकिनी बाँझिका मानिक लटकन सटकत भास ।

परम सुखै कंठ कैहरि-गल बिज-बिज बख प्रवास ॥

कर पहुँची पाइन मै लपुन, लन राखत पटपीठ ।

भुटुरनि बसत धमिर माई बिहुरत मुख मडित नबवीत ।

सूर बिबिध बारिण स्याम के रसना कहत न पावै ।

बास बहा धवलोक लकल मुनि जोग बिरति बिसरावै ॥ (७१५)

(२) बलत लाल पैजमि के बाह ।

पुनि-पुनि होत नयी-नयी धानव पुनि-पुनि निरखत पाह ।

छोटी बरन छोटियै किमुनी कटि किकिनी बनाह ।

उबल बन्ध-हृद कैहरि-गङ्गा पहुँची रतन बराह ।
भाल तिमक पल स्याम बखीड़ा बगनी छेति बसाह ।
तनक तान नबनीत सिधे कर सूरज बलि-बलि जाह ॥ (७८१)

- (१) छोटी-छोटी मोड़ियाँ धौनुरियाँ खनीसी छोटी
गङ्गा-खनीसी मोटी भागी जपल बल्लि पर ।
नलित धामन सेसै ठुमुकि-ठुमुकि डोलै
भुमुक-भुमुक बीलै पैजनी मुहु मुहर ॥
किकिनी कलित कटि हाटक रतन बारि,
मुहु कर-जममलि पहुँची बरिहर बर,
पियरी पिछोरी खनी घोर उपमा न खनी
बालक शायनी भागो छोड़े बारी बारि-बर ।
जर बल-जहाँ कंठ कटुता कटुसे बार,
बेनी सटकन मलि-मुंवा मुनि-मनहर ।
धंजन रंजित नैन पितरनि बित चोर
मुह-सोया पर बारी धमिल धसम-सर ।
बुदुबी बजावत नभाबति बसोबा रानी
बाल केनि नावति मझावति सुप्रेम भर ।
किलकि-किलकि हँसै हँ-हँ हँनुरियाँ नवै
सूरसाध जन बयै तीतरे बचन बर ॥ (७८६)

११-स्त्रियों की शृङ्गार तथा प्रसाधन सामग्री

८३—सूरसाधर ब्रह्मसम्पन्न पूर्वार्ध के कृष्य-वर्णोत्तम 'पलसीता बलकीड़ा तथा राधा ब मोपिका शृङ्गार-वर्णन द्वितीया ब्रह्मोत्तम और जयरानी बारि प्रमुख प्रसंगों से सूरकानीन प्रचलित प्रसाधन सामग्री पर प्रकाश पड़ता है । साहित्य में शृङ्गार के दोस्त हूँ बंध कहे गए हैं—'बबटन मज्जन मिस्त्री ह्यान मुबल्ल बिया-किम्यल धंजन मीर में छँदूर, बसुवर, मेंदुबी ठोड़ी पर तिम बगला बिबी धंगराय-सेवन धामुवख फुलों की माता तथा बाल खाना । सूरसाधर में भी नवसय (१४५) या पटवस (२११५) शृङ्गार बधाये गये हैं— 'नवसय तबे माधुरी धंज-मैम' (३२९६) अथवा 'ह्यामा नवसय सनि धकि है किनो बरसाने है धावनी (१४६) या 'सजे शृङ्गार नवसय जयमलि रई धंग-मुपन' (१६७) तथा 'पट-रस सहि सिपार करति है धंज-मैम विरलि छँवारति' (२११५) तुलसी तथा बायसी ने भी तोलह शृङ्गार का उत्सेह किया है ।^१

१—सु० पं, गीता पृ २८२ 'छोटी छोटी मोड़ियाँ—तीतरे बचन बर' उपपन्न पर से बहुत प्रसिद्ध मिलता है । ऐसा लगता है कि अन्तिम पंक्ति में 'सूरसाध' तथा 'तुलसी' शब्दों ही केवल बदल गये हैं ।

२—बालन, बालका० ३५९, 'नवसय ताजे लुंवरों'

३ स० ध्या, २३६—'मुनि तीरहु सिपार जन बाचिहुँ जोग हुसीन ।'

३ ०११ 'जल बाधु सीरहु बनि लाजे ।'

शरीर के सोमह अथवा सोमों को छानना भी धन-प्रत्यय प्रयत्न गन्ध-सिक्त-श्रृङ्गार कहलाता था जिसकी धोर सूरसागर में भी संकेत है—‘धीर त्रिया नख सिक्त सिंगार सजि तेरे सङ्ग न पूरे’ । (३ ६२) प्रयत्न ‘बहु सोमा निरलस भौंग-भौंग की रही निहारि निहारि बकि बखि नागरि मुख बाकी सुरत सिंगार बिगारि (३२२५) प्रयत्न ‘सकल सिंगार किमो बख बनिता नख-सिक्त लौ बन ठगि’ (३४७६) । शरीर के ये सोमह अथवा इस प्रकार है—‘चार बीर्य—केस उंचनी नखन श्रीवा चार मनु—बसन कुच मनाट नागि चार मरे हुए—कमोप, गिरम्व जीव तथा कलाई तथा चार पल्ले—गाक कटि पेट तथा अक्षर’ । सूर ने राधा कल्प-वर्धन के अनेक पलों में (३२२८, ३२२९ ३ ६६ ३ ६७ ३ ६४ में) इन धर्मों के सौंदर्य का वर्णन किया है । इनमें कुछ पर उत्प्रेक्षणीय हैं—‘बीरे — विराधति राधा रूप निवान (३ ६४) ‘मनो निरिबर है धारति गंगा’ (३ ७२) ‘जब नागरि हो (सकल) गुन धारि हो’ (३२३१) प्रयत्न सङ्ग रूप की उच्च राधिका भूपन अधिक विराजै (३ ६६) । पद्मावत में भी पद्मावती का रूप-वर्णन इसी आधार पर किया गया है ।^१

८८—कर्मकुल सभी प्रकार की श्रृङ्गार-सुखा का चित्रण सूरसागर में मिल जाता है । राधा तथा मोपियाँ द्वारा उबटन लगाने का वर्णन अनेक स्थानों में है—‘उबटि केसरि धर्म’ (३४४८) ‘उब बोट उबटि सखी बन्हाए’ अक्षर सिंगार सिंगारि बनाए’ (३४४६) । मुरली-ध्वनि सुन कर बेसुख मोपियाँ बिना उबटन के ही शरीर-मर्दन करने लगीं—‘धौप मरदन करिने को लानी उबटन तेज बरी’ (२६१८) । उबटन (२६१८) [उं उड्डर्तनम्] का स्थान प्राचीन काल में भी स्त्रियों की प्रसाधन-सामग्री में था । पाणिनि ने ‘उड्डर्तक’ का उल्लेख किया है ।^२ बाह्य में हर्ष-वर्धन में राज्यप्री के बिवाह के सिलसिले में उबटन उबार किने जाने का वर्णन किया है । स्त्रियाँ बनासना शोषण भी में पक्ककर धीर उचमें विसे हुए कुमकुप को मिला कर उबटन तथा मुख छेपन बना रही थीं ।^३ शाकल्य भी बिवाह के पहले इसी प्रकार की एक प्रथा ‘हस्ती बझाने’ की है । बिवाह के कई दिन पहले से ही बरनबू के उबटन लगाया जाता है । वर्तमान समय में प्रायः हस्ती छरमों व टेन से उबटन बनाते हैं । कमी-कमी धिरी-धी कसर या संतरे के धिक्के तथा बूझ धारि से भी विशेष प्रकार का उबटन बनता है । हर्ष-वर्धन में भी का उबटन का उल्लेख है, किन्तु सूरसागर में भी प्रायः के ही समान तेज के उबटन का संकेत कई स्थानों में है—‘है तेज उबटनी सान (८ १) तथा ‘तेज उबटन तेज बनाए’ (८ १) या तेज उबटनी है धारि बरि’ धारि (८ ४) । तेज लगाने से उबटन सरलता से धूट जाता है । केसर के उबटन का भी उल्लेख सूरसागर में है—‘कुम्कुम उबटि कलक उन मोरी । धौप-धौप सुगंध बड़ाह किचोरी’ प्राग्नेयकहरी में उबटन का धर्म एक प्रकार का सुगंधित साबुन दिया गया है । इनको भूप-सोधान मुनाब अक्षरदार, लावन अक्षर, बंधन कस्तूरी सेव धारि अनेक प्रकारों के मिश्रण से बनाते थे ।^४

बाकल कुम्ह सर्वधी पलों में मण्डन तथा स्नान का उत्तम उबटन के बाव ही है—

१—य सं ध्या , पृ २८८

२—य सं ध्या ४६७, ‘प्रथम केस—ये लोखी सिंगार बरनि के करहिँ बैठा लालि ।’

३—इंडिया एन्ड मोन हू पाणिनि, अध्याय ३, पृ० १३१

४—हर्ष लो ध पृ ७

५—ध्यानि ध पृ १६ , १६१

१ —बाल मुलझाने के बाद उनकी दो भागों में कर लिया जाता है। बालों के बीच की रेखा को माँव कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है—सीधी तथा टेढ़ी। सूर ने केस के बीच में सीधी माँव का उल्लेख किया है—रणी माँव घाय-भाग राय-निधि' (२८०२)। मंग (१४९७) का मंग (११९ १३२९) [सं मङ्ग—प्रा मङ्ग-माँव] लिकावने के लिए सूर सागर में पारना' शब्द प्रयुक्त किया गया है—'बेनी बूँजि माँव सिर पारी' (१४९७) यवना 'किहि कच पुरि माँव सिर पारी' (११९९)। माँव को पीसी में प्रसङ्गत करने के संबंध में भी कई पदों में बताया गया है जिसके लिए माँग भरना' धाया है—'मोसिनि माँग भरौ (१८७१) यवना मुक्ता माँग (२१२१)। गज मोतिन सुहर ससत मय' (१४९७) में गज मीनिक' का उल्लेख है। 'माँव पाटी सुपन' में माँग को पूजों का बचाने का निर्देश है। केस में फुलेख^१ [सं पुष्प + तेल—फुल्लएल—फुलेख] या मुर्राख बचाने का भी बखान है—'मीसी है फुलेखनि सौं' (२६२८) या 'माइ सुपन बनाइ समुपन' (४२८१) तथा वे कच कनक कटोरा भरि भरि मेसत तेल फुलेख' (४४११) और कृष्ण-विशेष में 'तेल-विहीन इनके केस ऐसे हो गए थे—'अलक लु हुटी मुर्चयन हु थी बट लट मनहुं गई। (४२२)। वैदिक तथा मौक्तिक संस्कृति में माँव के लिए 'सीमन्त' शब्द प्रयुक्त होता था।^२ संस्कृत में 'मङ्ग' एक प्रकार के रत्न शब्द को कहते थे। पीरे-पीरे सीमन्त में मङ्ग लवाने के कारण सीमन्त को ही माँव कहने लगे।^३ सूरसागर में दो एक स्थलों में सीमन्त शब्द भी मिलता है—'सिर सीमन्त सेंबारी' (२७१९)। पद्याक्त में प्रायः माँग शब्द ही प्रयुक्त हुआ है।^४

२१—सूरसागर में कई प्रकार के केस-विन्यास का निर्देश है। उनमें से सबसे अधिक बेनी (१२६ १६३१ १२३३) [सं बेनी] गूथने गूथने या गुहने (१२३८, १२४९ ११२६) [सं ब्रू या ब्रू] के उल्लेख हैं। बालिका राधा को भी बेनी ही प्रिय थी—बेनी पीठि स्थाति म्मन्मोरी १२६)। कृष्ण-बन्धोत्सव रास हिबोना होखी बाहि सरी प्रसनों में बज की स्त्रियों को केस-रचना पीठ पर पड़ी हुई बेनी ही है—'एक परस्पर बेनी गूथति' व 'बेनी डोलति गुहँ निठबनि' (२०५७) बेनी डोली बचाने के कई प्रकार की गुहने का बखान भी है—'बेनी सिधित गुही (१४२) निधि बेनी रणी' (१९)। बेनी में फूल गुहने की प्रथा भी थी—बेनी सुमन निठबनि डोलति (१९७९) 'किहि सिर केस कुसुम भरि बूँदे कैस मस्य बड़ाई (१११) तथा 'गुंवे सुमन रसासहि' (१९७१)। कृष्ण द्वारा राधा की बेनी नूकने का भी कुछ पदों में विवरण है—मोहन मोहिनि। रम्य विपारत बेनी ललित ललित कर नूकत सुंदर माँव सेंबारत' (१२४९) यवना — बेनी सुभन गुही अपने कर नरननि बाबक दीन्हो' (४२१६)। 'सुभन' यवना ललित विरोपक कमलाक्षर डंग से बेनी नूकने के लिए धाये है। शास्त्रिय^५ में केस या बेनी को उपमा सर्पिणी या परिकुल से भी बताया गया है, अथ सूरसागर की यह उपमा नयी नहीं है—

१—य सं ध्या, २७६, 'घोरहु बटा कुलाएल लेहु'

२—मैयकुत, उत्तरमेख, 'सीमन्त व त्वनुपपन्न यत्र भीय बबूतम् ।'

हर्ष तां प्र २४ 'जलादलात्तक सीमन्तधुम्बी बहुल सितकमलित'

३—कृ० बी प्र ११, पद्या ३

४ य० सं ध्या, १ ११ 'बरनी मांग सोत उपराही'

५—य० सं ध्या, ४६।३ 'सुहृदि नरे सुभंग विसहृते' ११३।२ 'बेनी नाप बड़ा अनु कारी ।' ३०९।९ 'बेनी बाहुनि ध्या पतरा ।'

‘पद्मवि सिर’ (२१११) मनु बेनी भुवविनि परसत सजन सुधा की धार’ (१२२८) धनवा बेनी पृथन पूल सुगंध करे बोलत हरि बोलत म सकुच हिमें । कुसुमो सारी, धनक पदक मनो ग्रहिकुल बंधन भी पूजा क्रिमें’ (१२३६) तथा— ‘ग्रहिकुल कबरो’ (५ ७) । प्रायः वाचों के तीस भाग करके बेछो गूड़ी बाठी है । प्राचीन काल में ज्योतबदी विद्योमिनी धनवा विधवा सिधायी ही संभवत एक बेछी बनानी थी ।^१ उन समय मूढ़ा वाचने की प्रथा अधिक थी । हृष हरित में मातता के केस-विन्यास में छोटे जूड़े का ही उल्लेख है ।^२ सज्जना के स्त्री-निषेधों में भी कई प्रकार के जूड़ों [सं० जूड़ा] का विषय है । गांधार तथा मयूर को मूर्तिकला में धरमर कोने से बंदी बनो तेलती है—जैसे प्रसिद्ध पक्षियों बंधा की मूर्ति में । एक धन्य पक्षियों के केस भी फोने से बाने ग्ये है तथा मोमिनी के फूलों से धरमर है । गांधारकला में सुगर केस-विन्यास सिधायी के विर लुने रत्ने के कारण बिकार देता है । उनको रोकर से भी सजाया गया है ।^३ मनुजी ने भी सिधायी के केस-विन्यास के सिधायी में जूड़े का उल्लेख किया है ।^४ मुत्तल विषयकता में हिन्दू विधायी के बाल प्रायः जूड़े में बाने हुए हैं तथा मुत्तलमल सिधायी के कूले लटकते हुए ।^५

६२—सूक्ष्मागर में जूड़े का उल्लेख नहीं है । एक दो बपह बस्मिल (१ ६३) शम्भ की धोर धनरय ग्याल जाता है—‘बस्मिल नीर धनाब (१ ६३) । तामिल देश के संस्कृत में ‘इमिड’ या ‘इमिड’ सिद्धी में बमिख’ तथा पुनामी में धमरिके’ प्राय प्राचीन नाम हैं । इन्हीं शब्दों से ‘बस्मिल की व्युत्पत्ति का अनुमान होता है । यह केस-विन्यास सम्भवत मुत्तकाल में बहिषी प्रभाव के फलस्वरूप उत्पन्न भारत में प्रचलित हुआ । धिर के ऊपर का इन प्रकारका भाटे जूड़ा धनवा के मिति चिन्तों में भी प्रकट है (१७वीं पुष्ठा का प्रेयसी-विषय) । हम्पकालीन मूर्तिकला में इसका प्रयोग नहीं है । हृष हरित में मरीचती की बेला नामक प्रसिद्धायी की केस-रचना बस्मिल ही है ।^६ पद्मावत में हवी का समानार्थ शब्द बोया [ता० श्रीपु] शब्द प्रयुक्त हुआ है । धन कलपूर्वी धनपरी बोली में माये के बाल गोलाई में काटने की भी ‘गोंगा काटना’ कहते हैं ।^७

बोड़े से पर्वों में चोना या चुन्निया (७८० ७८३) [सं० जूड़ा] शब्द मिलता है— ‘धरम परस बटिया बई (७८) धनवा ‘कान्ह पुनर महो बृहदरि बोटी’ (७८३) । धिर के पीछे पड़ी बालों की लट या पुखों की शिखा को भी बोटी कहते हैं । गुरदागर में इस धर्म में भी यह शब्द बालक कृष्ण सर्वबी बरों में प्रयुक्त हुआ है । बिबाह क धनर पर बेछियों से बने जूड़े को भी बोटी कहते हैं ।^८ यों धानवस प्रायः बोटी या चुटिया बेछी का पर्यायवाची

१—बा रामायण, धयोप्याकरण दुर्गाई १०।६ ‘एक बेछी हुई बटवा मत्तलेन क्रिमरी’ धर्मिमानप्राकृतसम् (विद्योमिनी प्राकृतसम्) ‘बछने परिपूरते बछाना नियमसामनुषी धृतेकबेलि’ मेघदूतम्, उत्तरमेघ, १६ ‘वाद्यामोपानकटिनि विपदानेकबेछी करेण’

२—हृष० धा० ध०, पृ २३

३—म मा० बे०, पृ १६, १०६

४—मनुषी, पृ १६, ४

५—कीचुकी, पृ ३६

६—हृष० मा० ध०, पृ २३

७—प स० ध्या० ११।१ ‘गोंगा धीरि दैन कीटाई’

८—पा श०, पृ० १४४

९—क जी०, प्र १३, अध्याय ३

रख्य हो गया है और सबसे अधिक बोला जाता है।

१३—बूमरी उल्लेखनीय केश-रचना पटिया पारना भी— मुझ्सी पटिया पारी बाई (४१६५)। इसमें माँग के दोनों ओर बालों को मोम से निकना करते थे। इसी पटियों को फून पतियों से अलंकृत भी करते थे जिसका उल्लेख बायसी ने भी किया है।^१ छिर के सब बासों के काट देने को 'छिर चोटना' या 'मूडना' कहते हैं। ऊपर को पंक्ति में इसी से बना डब्ब 'मुझ्सी' धाया है। इन उल्लेखों के परिचित सूरसागर में केश-विन्यास संबंधों एक ग्रन्थ महर्ष पुर्य उल्लेख कवरी (१६७३ १७५४) है। इस छम्ह का प्रयोग अनेक पदों में है—

'कवरी अति कमनीय सुमय छिर राजति थोरी बालहि' (१६७३)।

'गिरत कुनुम कवरी केसनि है (१७५४)।

तथा कवरी केश सुपन पहि राजे सो क्यों बटा बनावे (४२७४)। कवरी केश-विन्यास अत्यन्त प्राचीन है। पाणिनिष्ठ अष्टाध्यायी में भी इसका उल्लेख है। संभवतः इसमें बालों की बटें फूँलों से बूँदी जाती थी।^२ सूरसागर के उल्लेख पद्यांशों में भी कवरी के साथ बरखर सुमन का निर्देश है।

धातुकल कम उन्न की लड़कियों को प्रायः दो बेसी ही अधिक प्रिय है तथा स्त्रियाँ एक बेसी या बूझ बनाती हैं। बहिनी भारत में बूझ या बेसी को फूँलों से अलंकृत करने की प्रथा बहुत प्रचलित है। बिना फूँलों का केश-विन्यास वहाँ साधारण ही कभी दिखाई दे। वहाँ की स्त्रियों ने केश-विन्यास को कम ही बना लिया है।

१४—शृङ्गार के प्रसादनों में नेत्रों के लिये अंजन का उपयोग किया जाता रहा है। इस अर्थ में सूरसागर में दो उल्लेख धामे हैं—काजर (६४२ २८ ७) [सं कव्जल] तथा अंजन (३ ९२) [सं अंजन]। तथा तथा गोपियाँ भी प्रांज में काजल लपाना नहीं भूलतीं—'काजर नैन दियो (६४२) 'हरपन नै कवराहि सँवारत (२८ ७) अथवा 'धामु अंजन दियो राजिका नैन को' (३ ९८) तथा भात तिलक नखर बस (४४३३)। प्राचीन समय में भी काजल लगाने की प्रथा थी। पाणिनि ने 'निकटुट' पर्वत से 'नैकाकुड' अंजन धाने का उल्लेख किया है। यह पर्वत संभवतः सुमेरान पर्वत ही था जहाँ का अनुलेप सिन्ध तथा पंजाब में विकटा था। महाभारत (अथर्व पर्व ४४।१८) में भी एक पंजाबी गौरवर्णी स्त्री द्वारा विकटुट पर्वत का अंजन लगाने का उल्लेख है। पाणिनि ने एक ग्रन्थ अंजन कासकूट का भी उल्लेख किया है। यह संभवतः 'यामुन अंजन' अर्थात् यमुना के प्रवेश (बेहटाइन जिले) का था।^३ पद्मावती के शृङ्गार में भी अंजन का स्थान होना स्वाभाविक ही है।^४ धात की स्त्रियाँ तथा लम्बों द्वारा काजल लगाने की प्रथा है। यह नेत्रों का मीथ्य हो बढ़ाता ही है, धात ही सामवायक भी होता है।

१—य स ध्या, ४७१।२ 'जे पनाबलि पाटी पाटी। सी दधि चित्र विविध सँवारी।'

२४७।३, 'रति पनाबलि

२—इंदिया एव नोन हु पाणिनि ग्रन्था ३ पृ १३२

३—इंदिया एव नोन हु पाणिनि, ग्रन्था ३, पृ १३१

४—य स ध्या, २६५। 'बाँक नैन सी अंजन रेखा। अंजन जगदुँ सरर रिदु रेखा।'

२६६। 'पुनि अंजन हुँ नैन करेई'

२६ १४ 'नैन कल्ल बसु रहै न मोरे'

आत्मकस प्राम' घरों में बिये की कानिह भी भीर कपूर से साधारण कात्रम बना सेते हैं । इसी प्रकार की एक धर्म वस्तु सुरमा [छा सुरम] भी है जो नीले रंग के एक प्रसिद्ध खनिज पदार्थ के बूझ से बनाते हैं । आत्मकस बरेसी का सुरमा प्रसिद्ध है ।

२५—सुरमागर में सिखा की सज्जा में से सुर (६५२) [सं० दि०] का उल्लेख भी कई घरों में है—सेरुर मीग छुही (६५२) । विवाहिता हिन्दू स्त्रियों के लिए माँ में सिंगुर लगाना प्राचरमक है । इसको माँ में भरना कहते हैं । विवाह-मस्कार में पति द्वारा 'सिङ्गुर-दान' की प्रथा प्राच भी चल रही है जिसका उल्लेख तुलसी तथा जायसी ने भी किया है ।^१ यह एक प्रकार का लाल चूण होता है । सिङ्गुर के समान ही लाल बर्ष का ईपूर (६५८) [मं हिंमुस ईनुन-ईपूर-इगुर-ईपूर—रस छिङ्गुर] भी होता है । सुरमागर के पासना-बर्षण सज्जामें यह में इसका उल्लेख है—रंग इगुर हार मुझार (६५८) । धम्मक, पारव तथा पम्बक को बोटकर लाल रंग का ईपूर या रस-सिङ्गुर बनाते हैं । यह कृत्रिम हिंमुस है, किन्तु खनिज पदार्थ हिंमुस में भी पारव तथा पम्बक का मिस्रण होता है ।^२ पदमावत में कृत्रिम हिंमुस बनाने को बिबि की ओर संकेत है ।^३ प्राचीन काम में भी सिङ्गुर उपबोध में आता था । हर्षचरित में हर्षकर्मोत्सव के सिलसिले में 'सिङ्गुरपात्राधि' का उल्लेख है । सुरमागर में महावर के लिए दो सज्जामें आये हैं—आवक (२६७४) [सं] तथा महाउर (३२८१ ३२८२) । पैरों में लन हुए लाल महावर या आत्म की सोमा का बर्षण इन सज्जामें आये पदों में है—'नखनि रंग आवक की सोमा' (२६७२) तथा 'मागहुँ मीग महाउर बोम' (३२८१) । प्राच भी बरेनु बसवों तथा रसकर्मों में विशेष रूप से स्त्रियाँ महावर लगाती हैं । सुर ने कृष्ण कर्मोत्सव बर्षण में इस प्रथा पर प्रकाश डाला है—'नाइन बोमह मचरीणी (हो) स्वाव महावर वेव' (६५८) । विवाह के समय चू के पैरों में सेहरी तथा महावर लगाने की प्रथा प्राच भी चल रही है । कहीं-कहीं घर के पैरों में भी महावर लगाते हैं ।^४

बर्षण की स्त्रियों में महावर अधिक प्रचलित है । महावर को आमतौर [सं] धामकरी] भी कहते हैं जिसका उल्लेख बाणहट्ट हर्षचरित में भी है^५ । कानिवास ने 'साचाटम' उन्म इसी घर में प्रयुक्त किया है^६ । वर्तमान समय में सेहरी तथा महावर का स्थान एक प्रकार से मातुलों बर लगाने के रंग 'नेल रेंट' ने ले लिया है ।

२६—सुरमागर में शृङ्गार के धर्म प्रतीं टोही पर तिल बनाने तथा चूण माताओं का निर्वेष्ट भी स्वाग-स्वाग पर है—'चिनुक स्वायल बिनु' (२६६१) अथवा 'चिनुक बाव तिल चाफि बनायी' (३२३६) । बिनु के समान कामे प्राइतिक चिन्ता को 'तिल' कहते हैं । मुल क

१—तुलसी, मातल, बाभकालह, ३२५, 'राम सोय तिर सेरुर बैही'

२—सं० व्या ११ ११ 'सेरुर बरहि चड़ा सेहि नही'

३—१७१। 'कमल मीग जो सेरुर रैजा, बन बस्य राता चय रैजा ।'

४—२६६।२ 'सावि माँव बुनि सेरुर लारा'

५—सं० व्या , २०६।७

६—" " " , २६७।७

७—हर्ष० सां० अ , पृ ६६।

८—मातल बाल ३२७। 'आवक लुन यह कर्मन सुहाय'

९—हर्ष० सां० अ , पृ ७२ 'विनयतामस्त-बाहलोच'

१०—कानिवास, उत्तरवेद्य, दली० ११, 'साचाटम अरणकलन्यासयोध'

बीर बख्श पर कामे छोट तिस स विरोध के कारण सीम्बर्य की वृद्धि होती है। सूरसागर में इसका भी उल्लेख है—‘बिबु बिबु बिबु बिबी बिबाठा क्य सीब निस्कारि’ (२७१६)। प्राकृतिक बिबुओं की अनुकृति पर स्त्रियाँ काजस में बबबा भुवने से पुरबाकर तिस बना लेटी थीं। बापसी भी इन दोनों प्रकार के तिसों का बढाव करना नहीं भूखे हैं।^१ बाबकस भी कभी कभी स्त्रियाँ ऐसा करती हैं किन्तु इसकी प्रथा बहुत हो कम हो गयी है। अब शहरों में मुबना पुन ने की प्रथा नहीं रही है।

शृङ्गार का दूसरा प्रयास गले में फूलों का हार बा। कुम्ह की प्रिय मासाधों का उल्लेख किया जा चुका है। राधा तथा गोपियों द्वारा मासा पहनने का निर्देश भी हुआ है—‘तिलक सजाट सोमिह हार द्विमे’ (६४२) मुमन सुबन मास पहिणए (२४४६) कहीं-कहीं फूलों से ही शृङ्गार करने के बर्णन भी हैं—‘फूलनि मख सिख सिगार’ (१५१५) बबबा करि सिगार सब फूलनि ही की’ (३५१)। पाश्चिम के समय तक मं बसे में मासा पहनी जाती थी। ऐसे व्यक्तियों के लिए सप्टाध्यायी में मासाहारिणी या मासामारी स्मृ प्रयुक्त हुए हैं। सिखा की समाप्ति पर लौटने वाले स्नातकों का विरोध ‘अवधी’ (मासा पहनने वाला) या क्योंकि ब्रह्मचारी के लिये मासा पहनना निषिद्ध था।^२ हर्षचरित से भी महोबली तथा सायनाभूमि की स्त्री के गले में पड़ी पैरों तक लटकती लम्बी मासाधों का परिचय मिलता है।^३ हर्षकाल में सिर पर भी फूल-मासाएँ पहनी जाती थी वैसे कि हर्ष-चरित से ज्ञात होता है।^४ इस प्रकार फूल मासाएँ पहनने की प्रथा अब नहीं रही है किन्तु उत्सव संस्कारों आदि के अवसर पर फूल मासाएँ सँट करना आठिष्म-सत्कार का सूचक है।

६७—इन पलों में माने पर सिद्धक (६४२) [छं] बिबु (१९७१ १९८४) [छं बिबु] बा टीकी (२१२) [छं तिलक] कई प्रकार की बीबी से सजाने के उल्लेख हैं। इनमें से रोरी (६४२) [छं रोबन], बदन (१९७१) [छं बदन] चबन (६४२) केसरि (२१२) मृगसव (१९७१) तथा सेंदुर (१९८४) आदि उल्लेखनीय हैं—‘मुल मंथि रोरी रंवा’ (६४२) ‘बन-बिबु निरखि हरि रोके’ (१९७१) ‘बन तिलक सजाट’ (३२२८) ‘पौर सजाट सोई सेंदुर को बिब’ (१९८४) ‘सिर केसरि की टीकी’ (२१२) तथा ससिमुख तिलक बिपी मृगसव’ (१९७१)। बीस बिबी के साथ केसर या मृगसव की झाड़ी रैबाई भी लगाई जाती थी—‘केसरि-झाड़ सजाट (हो) बिब सेंदुर को बिबु’ (३२११) बबबा मास बाल सिद्धर-बिबु पर मृगसव बिपी सुवारि’ (२७१६) या ‘कुमकुम झाड़ बजत बज-बज मिनि’ (२१२१) तथा ‘ता बिब बनी झाड़ केसर की’ (२७१२)। कुम्ह-अम्बेस्वद संक्षेप पर में ब्राह्मणों का तिलक इसी प्रकार के अनेक सुगन्धित पदार्थों के मिश्रण से बनाये जाने का उल्लेख है—‘असि बज्जल बाब मेवाह, विप्रनि तिलक करे। मयि मृगसव मलय कपूर माने तिलक द्विमे’ (६४२)। तिलक के चारों ओर चूनी (चुली) या लाल के छोटे-छोटे कण बिपटाने की धोर भी सूरदास ने उक्ति किया है—‘ठाटक तिलक बुबेरा मलकठ बबित चूनी लाल’ (३४६)। क्योंकि पर वा तिलक के चारों ओर इस प्रकार चुभी बिपटाने की प्रथा समकालीन बँग स्त्री

१—य छं व्या, १ १।३ ‘तेहि कपोल बाएँ तिल पट’

४६१।६ ‘नीहि धनुक तिल काजर छोड़ी’

२—इंडिया एज मोल द पाश्चिमि, अध्या ३, पृ १११

३—हर्ष सां प्र, पृ २७, ६१ ‘परस्मिन्नसुगन्धीनि’ कंठकुसुममासामि’

४—” ” पृ ५६, ६७

विषयों में बेबी का सकती है। चायसी ने भी इसका उल्लेख किया है।^१ धाम भी विवाह के प्रसंग पर कहीं-कहीं बहुत को इस प्रकार समाने का रिवाज है।

चौद के समान गौस बिंदुकी या बिंदी का भी बखान धनेक पदों में है—‘मात बेबी बिंदु रंजु लाई’ (१९६) अथवा ‘मात बेबी-बिंदु महा धाई’। मधुरा कला में लड़ो शताब्दी का एक स्त्री मस्तक इस प्रकार की गौस टिकुनी से युक्त मिला है।^२ हृषिकेश में भी साधना मूल को स्त्री के मस्तक पर पद्मासपत्र के क्षायार्मंडल के समान लड़ी गौस टिकुनी का उल्लेख है।^३ पद्मासपत्र के शृङ्गार संबंधी पदों में भी तिलक की सोमा का वर्णन किया गया है।^४ धाकल भी भारतीय स्त्रियों को रोती या सिद्धर का टीका धरवा चमकदार टिकुनी धात्विक मिला है। इसे सौभाग्यचूषक भी मानते हैं। गौस बिंदु के अतिरिक्त लड़ी और धाड़ी रेखा या धाम प्रकार के तिलक भी कभी-कभी लगाये जाते हैं। केसर, चंदन तथा मृण्मय धादि से तिलक बनाने की प्रथा धरव धम बिंदुप नहीं रही है। माने पर टीका लगाने की प्रथा भार तीय है और बिंदुओं को स्त्रियाँ धनेक बार इसकी धोर धाकपिठ हो जाती है।

६८—स्नातोपराट शरीर पर सुगंधित द्रव्यों के लेपन की प्रथा प्राचीन भारत में बहुत थी। इसका एक कारण समभवतः यहाँ की धीप्प ऋतु है, जिसमें सुगंध-युक्त शीतल द्रव्य सुखप्रद लगते हैं। अतएव स्वाभाविक है कि सूरतगर में भी शृङ्गार संबंधी धनेक पदों में इसका उल्लेख हो। इनमें जोधा चंदन धरपका केसर कूर मृण्मय तथा धमक धादि पदार्थ प्रमुख हैं—‘चन्दन धरपका सूर केसर धरि लेजे, धंदिनि हैं बाई निरखि नैननि धुख देई’ (१९६३) तथा ‘चन्दन धमक कुमकुमा मिमिठ’ (१९२६)। अमरगौत प्रसंग में इन की स्त्रियाँ धंमराय के स्नान पर भस्म लगाने की बात समक नहीं जाती—‘चंदन धाई बिमुति बनावत’ (४१६६) अथवा ‘जोधा चंदन धीर धरपका जा मुख में हम चढी’ (४२१६) अथवा ‘मृण्मय ममन कूर कुमकुमा केसर मखियेखाब’ (४५५५)। जलश्रीश तथा होसी शीर्षक पदों में भी धंमराय का उल्लेख धाया है। बिनय संबंधी पदों में भी कहीं कहीं निर्यत है—‘कर की कड़ा धरपका लेपन (१९२) इन सभी सुगंधित पदार्थों की व्याख्या रंज संबंधी पद में की गई है।

पाणिनि ने अपने धाट्याध्यायो में कई प्रकार की मणों तथा उनके बेचने वालों का उल्लेख किया है। मणों में वेसर, शाला, गरद, उपर, मुग्गुम तथा सशिर से तथा जहाँ के अनुसार बेचने वालों के नाम भी से जैसे शालामुकी या शालामुकी। प्राचीन धमय में नगर धिन्नु प्रदेष्ट तथा चरदैन से मिल हैस एक जेजा जाता था। धाट्याध्यामी में इसके अतिरिक्त स्नापक (गाई) बरसादक परिरोधक पुनैपिका अनुलेपिका तथा बिनोपिक नाम भी मिलते हैं। बिनये धंमराय-लेपन की प्रथा का ज्ञान होता है। अथवास्त्र में भी धमा के इन लेखकों का उल्लेख किया गया है।^५ हर्षकेश के धनेक स्तलों में चंदनादि बिलेपन धमका धंमराय के उल्लेख है।^६ कपूर, कनकोल तथा लईय भी इस समय की प्रसिद्ध सुगंधों के आवश्यक अंग माने जाते हैं।

१—य सं ध्या, ४७२।४ ‘निलक संभारि जो धूनी रची’

२—हर्ष सं ध, ४ ६

३—” , ४ ६

४—य सं ध्या १ १।५ ‘नेहि ललाट वर तिलक कईठा’

५—ईदिया एन नोन ह पाणिनि, अध्याय ३ ४ १११, ११२

६—हर्ष सं ध, ४ २६, ११६, ७, ६

ये ।^१ प्राईने प्रकम्बरी में (प्राईने १) सुर्वासात्म्य विभाग के अन्तर्गत अनेक प्रकार की सुबन्धों के नाम और उनको तैयार करने की विधियाँ दी गई हैं । सम्राट् इनका अत्यन्त प्रेमी था । इनमें से कुछ उनके द्वारा प्राविष्कृत थीं तथा कुछ प्राचीन थी । फूलों के कुछ तेल भी बनाये गये जो बालों तथा शरीर पर लगाने के काम आते थे ।^२ जायसी ने भी सूर के समान ही इनका अनेक स्थानों में उल्लेख किया है ।^३ धावकन रूप अगव मुगुल चंदन प्रादि सुबन्धों की बत्तिका या बूँद बनाने की प्रथा अधिक है । शरीर पर लगाने के लिए इनके तथा फूलों के तेल या इन का उपयोग होता है जो जटुघों के अनुसार चुने जाते हैं ।

६६—शृंगार का अन्तिम प्रसादन तमोर (३२३१) [सं. राम्बुन] या बीरी (१२४६) [सं. बीटिका] था—‘सुघर सुघर कपोल हो रहे तमोर भरिपूर’ (१२३१ प्रकम्ब. बीरी मुह मरि’ (१२४६) या ‘बी बीरी अपने कर प्यारी (३४४६) । पान की पीक का भी वर्णन है—‘पीक कपोलनि तरिबन के द्विप मलमलाति मोतिनि ज्वि बोए’ (१२८१) । चेहरे पर पीक की लालिमा की मस्तक और बर्छ तथा सुन्दर लम्बा की सूचक थी अतएव साहित्य में इनका उल्लेख प्रायः मिल जाता है । जायसी ने परमावली के रूप वर्णन में पान से साल हठों तथा पीक का बछन भी किया है ।^४ पान की छोटी बीटिका में मिस्सी रख कर बनाते थे और उसको ‘बीरी’ कहते थे । सूरसागर में बीरी के उल्लेख तो हैं, किन्तु जायसी के समान मिस्सी लगे हुए बालों का पुनर् वर्णन नहीं है ।^५ मुवलकाल में स्त्रियों में मिस्सी लगाने का रिवाज बहुत था । पान को लपेट कर बनाने पर उसे बीड़ा या बीरा कहते थे । धावकन इसी को बिभीरी भी कहते हैं । प्राईने-प्रकम्बरी में बीड़ा बनाने का उद्योग भी दिया गया है । एक पान में सुपारी तथा कल्पा बूंदों में जूना लगा कर असय-असय लपेटने के बाद उसे रेशम से बाँध लेते थे । कभी-कभी उसमें कपूर फस्तूरी प्रादि डालते थे ।^६ जायसी ने पान की बीकों के बारे में भी बताया है । धावकन एक ही पान में जूना कल्पा सुपारी हलाकबी विपरिमिट और मसाला प्रादि डाल कर लींग से बीड़ा बनाते हैं । बाब में पान खाने तथा प्रातिप्य-सत्कार में पान देने की प्रथा बहुत है, किन्तु मगधों में प्राधुनिक शृंगार के प्रसादनों में पान का स्थान धोष्ठरचन (लिपस्टिक) ने ले लिया है । इस प्रकार मिस्सी लगाने की प्रथा भी नहीं रही है । पान खाने की प्रथा भारत की विशेषता है ।

१—, ॥ पृ १३

२—प्राईने अ पृ १५८-१७६

३—य सं. प्या, २६ । ३ ७ ‘काहु हाव चंदन के बीरी—
—मोतिनु मोति जाल तस मि’

४—य ॥ प्या, १११ । ‘सुंदर पीक लीक सब बैजा’

१ ६१४ ‘मए मंजीठ पालनू रंग लाने

हुसुम रंग बिर रहा न जाने’

२६६।४ ‘पुनि राता सुख जाइ तपोला’

५—य सं. प्या १ ७११ ‘बसल लीक बडे अनु हीरा’

प्री बिच बिच रंग स्थान गभीरा ।’

६—प्राईने अ पृ १५३

७—य सं. प्या ३३६।४ ‘अधर तमोर कपूर बिबेला’

३०४। ‘पान सुपारी जेर’ २६ । ‘कोई बीरा कोइ लीन्हें बीरी ।’

१ —सूरसागर में राजा तथा गोपियों के इन शृंगार संबंधी पदों के प्रतिरिक्त मुरली तथा कुण्ड के बहुमायकत्व संबंधी पदों में चलते शृंगार का वर्णन है—‘करत शृंगार चुनती मुनहीं—नैन धंजन धार धाँसहीं हरप सौं सवन टाटक समेटे सँबारे’ (१६६८) ‘तलाट महातर’ (१६६८) धक्का कहुँ बरन कहुँ बरन की छवि’ (१६६९) आदि । शृंगार के अन्य धंग वस्त्रामुपख की व्याख्या अलग अध्यायों में की जा चुकी है ।

शृंगार की सहायक वस्तुओं में मुकुट (२८ १ २८१) [छं] या वरपन (२८ ८) [छं वरप] का धारण महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसके बिना पूरा शृंगार करना संभव नहीं है । अतएव सूरसागर में भी वरप में मुकुट बेल कर शृंगार करने का निर्देश है—‘कर तें मुकुट दूर गहि धारति’ (२८ १) धक्का ‘बंद सवौ मुकुट पेकि टी बपन’ (२६११) । नेत्रों में अजन तथा माँसे पर तिलक लगाने के समय तो वरप को सहायता धरय ही लेनी पड़ती है—‘बपन से कमराहि सँवारत’ (२८ ७) धक्का कहुँ केसरि धाड़ रचति वपन हेरि (२८ ८) । शृंगार के उपरान्त राजा तथा गोपियाँ अपने ही प्रतिबिम्ब पर स्वयं मुग्ध हो उठती हैं—‘मुकुट धाँह निरखि देख की दसा मैबाई’ (२८१) तथा अपनी छवि पर आपनी तन-मन-जन धारि ।

पाखिनि ने भी शृंगार संबंधी वस्तुओं में दर्शन धारसँबादि या काटिका लख विपे हैं । इनके समय में वरप को प्रकार के होते थे—‘धक्कामुलीन (fluted) या धंमुलीन (Lobed)’ । धक्कल इसे सीसा या धाँना (ऐना) ही धक्कलत कह्यो हैं । सीसे के प्रतिरिक्त केस-विण्यास के लिये छुटरी धारयक वस्तु कंजे के धंजन में सूरसागर में नहीं बताया गया है । बाल काढ़ने का धक्कल निर्देश है—‘काड़त पुइत लुबासत जैह जाविनि सी गुहँ मोटी (७६१) ।

परिशिष्ट

सूरसागर के कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं । इनसे शृंगार करने की विधि का अनुमान धरसता से किया जा सकता है—

- (१) प्यारी धंग सिंवार किनी ।
बैनी रचो सुमय कर धपनै टीका बाल दियी ॥
मोखिनि मीन सँवारि प्रथम ह्यँ केसरि-धाड़ सवारि ।
मोचन धाँसि सवन तरिजन धाँसि को कवि कहै निवारि ॥
मासा नन सजिहीं छवि रजति, धक्कलनि बीटा-रंज ।
नवसत साँसि बीर कोसी बनि धूर विलस हरि रंग ॥ (२६४४)
- (२) मोहन मोहिनि-धंग सिंवारत ।
बैनी ससित ससित कर पूँसत गुजर मीन सँवारत ॥
सीतकूप धरि, पाटी गोंधत लूँसनि ध्वा निहारत ।
बंदन-बिंद बराह की बेंदी तापर बनी गुहारत ॥
तरिजन सवन नैन दोड़ धंजन मासा बैतरि साजत ।
बीरी मुकुट भरि बिबुध किठौया निरखि कपोलनि लाजति ॥
नन-सिख सजत सिंगार बाध सौं पावक चरणनि छोड़त ।
सूर-न्यास तिय-धंग सँवारत निरखि धायु मन मोड़त ॥ (१२४६)

१—ईशिया एज मोन दू बाखिनि, अध्याय १, पृ १३१

कुछ मृगार संबंधी पशों में सर्पकारों को हो भरमार है । एक हो पशों में सिंह तथा गोपिका की तुलना की गई है—

(३) सिंह में प्रथम सुंदरी बनी जिन ।

मुक्ता माँग धन्य गंध नहि नक्षत्र छाये धर्म स्थापन ॥

भालतिलक उज्ज्वल न होइ यह, कर्णरि प्रभिन अतिरि न सहमरुन ।

नहि विमूढि बहि-सुत न बठ बड़ यह मृगमद भवन बचित उन ।

नहि गजधर्म सु प्रसिद्ध बंधुको देखि बिचारि कही नबी मन ।

सुर सु हरि भय कृपा करि बरबस समर करत हठ ह्व मन ॥ (२७३६)

कहीं-कहीं पुरे पशों में उल्लेखार्थ दी गई है जिसमें प्रचलित प्रिय उपमानों का अनुमान हो जाता है—

(४) प्रिय मुख देखी स्थाप निहारि ।

कहि न बाह धामन की सोमा रही बिचारि बिचारि ॥

झीरीरक भूँवट हाठी करि सम्मुख बियो सवारि ।

मनो भुवाकर दुख-सिंधु है कळी कर्क पसारि ॥

मुक्ता-माँग सोत पर सोमित राखनि हहि धाकरि ।

मानो उज्ज्वल जानि नखल सति धाए करन बुहारि ॥

भाल लाल सिद्धर-बिंदु पर मयमल बियो भुवारि ।

मनो बंधूक-कुसुम ऊपर बसि कैटवी पंच पसारि ॥

बचल नैन बहूँ बिसि बितबत धुग बचल मनहारि ।

मनो परस्पर करत सराई कीर बचाई रारि ॥

बेसरि के मुक्ता में भई, बरन बिपद्यति चारि ।

भानी सुरमुख मुख भीम लनि बमकत बर भेम्हारि ॥

अवर निव दिव बसन बिपद्यत दुष्टि बामिनि बमकारि ।

बिबुध बिधु बिच बियो बिबाठा रूप सीध निबहारि ॥

छरिबन अवन रतन मनि-मूवित तिर सीमंत सँवारि ।

बनु बुध भानु दुई बिसि समए, मनो प्रिया लम हारि ॥

साल मान कुछ बीच बिपद्यति सखियनि नुही सिवारि ।

मनो नुई निमूय मग्नि पर छप कैटे जिपुहारि ॥

सम्मुख दुष्टि पर मनमोहन लज्जित भई मुकुमारि ।

भीभी खेमनि छठाइ धक मरि, धुरावत बहिहारि ॥ (२७३६)

खण्ड २

खाद्य तथा पेय पदार्थ

१ भोजन सम्वन्धो साधारण शब्द

१ १—सूरसागर के बरम एकज्ज पूर्वाह्न में कवि के आराध्य कृष्ण का कसेवा तथा व्योमार बर्णन घनेक पदों में है। कुछ पद तो केवल साध-परायों की सूची मात्र हैं। काव्य कला की दृष्टि से इनका महत्त्व न होते हुए भी सूरकासीन भोजन सामग्री पर इतने यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। इस दृष्टि से इस सम्भावनी का विशेष महत्त्व है। इसने प्रकार का भोजन बनीर्यी यन्त्रा राजाघो के ही योग्य है। यह नंद-यसोदा की स्थिति के अनुकूल न होते हुए भी बज के मंदिरों की भोग प्रथाओं का स्मरण करवाता है। धान भी वहाँ वही प्रकार विस्तृत भोग लगाने की प्रथा चल रही है। जिन पदों में कृष्ण का भिन्न एक ज्ञात बालक के रूप में है वहाँ इनका वही प्रातः सड़कर मक्खन रोटी के 'मिये मक्खना माँ का छमम-मुझकर तरह तरह के प्रसोमन देकर बूब पिलाना खादि परिवारों के नित्य प्रति के अनेक धारम्य स्वाभाविक एवं सुंदर चित्र है। ऐसे पद सूरसागर में कम नहीं हैं तथा यही वसके प्राण हैं।

सूरसागर में बार समय के खानों का वर्णन है—

(१) प्रातःकालीन कसेवा यन्त्रा कसेऊ (८२६ ८१) यन्त्रा मुखारी (२५८१) [छं मुखारिका मुख = चारम]—'दठनलि सै दुई कटी मुखारी' (१ २५) 'कमल-नील हरि करो कसेवा (८१) तथा 'जटिय त्याग कसेऊ कीरै (८२६)। ये शब्द मुख के गारत के सिमे प्रयुक्त हुए हैं। 'धम प्राय' नास्ता शब्द ही अधिक बोला जाता है यन्त्रा छत्र बर्य के नापरिकों में आय। आय शब्द छत्र में धाने की धम वस्तुओं का भी बोधक समझा जाता है। सूरसागर में कसेवे के अन्तर्गत छत्र मेवा मिठाई, दधि तथा बूब है। प्रातःकाल मक्खन-रोटी खाने का बखान भी कई पदों में है। धानकम नमरों में धान भयबा रूप के साथ मुख बबन रोटी-मक्खन खाने के बिदेसी प्रभाव की तुलना सूरसागर में बखित रोटी-मक्खन से की जा सकती है। गाँवों में धान भी कसेवे में प्रायः बूब वही मट्ठा धीर रोटी धाने की प्रथा चल रही है।

१०२—(२) दोपहर का भोजन—इसके लिये सूरसागर में भोजन (८ १, ८१६, १ १४, १८११) [छं भोजन] तथा व्योमार (१८११) [छं वीमम-भोजन करना भोग्य परार्थ या वीममकार] शब्द प्राये हैं। भोजन शब्द साध परार्थों के साधारण धर्म में प्रयुक्त हुआ है तथा दिन के पूरे खाने के धर्म में भी। गोवर्धन पूजा के प्रसंग में भोजन शब्द पहले धर्म में ही प्रयुक्त हुआ है—'भोजन सब जीई मुँह माँगे (१५१७)।' दिन के व्योमार

१—भास, भास, १९६—'बार माति भोजन विधि गाई।

एक एक विधि बरन न आई।' अर्थ, बोध्य सेहू तथा

वेद, बार प्रकार के साध परार्थ माने गए हैं।

५ सं ध्या, २११—'न पाव भोजन गने ज्वात'

इंडिया एज नोम टु पालिनि, पृ ६६१ 'भोग्याय जातय' (VII १६६);

कायायन ने भोग्य में साध एवं वेद, दोनों परार्थ माने हैं तथा भाष्य में केवल साध परार्थ (Solid), ग्रन्थ नहीं। पतञ्जलि ने पालिनि का अनुसरण किया है। पालिनि ने पाट्याध्यायी में भाष्य शब्द दोनों धर्मों में प्रयुक्त किया है।

के धर्म में भोजन में काष्ठ तथा पय पदार्थों की सम्मिश्रण होती गई है—‘भोजन वेगि स्याच्च कञ्चुमीया भूज सगी मोहि भारी घानु सवारै कञ्चु नहिं सामी सुगत हँसत महुवारी । (१२११) विनय पदों में भी यह वही धर्म में प्रयुक्त हुआ है—‘भ्यालनि के सँ भोजन कीन्हीं कुल की नाच बनाई । तथा कुम्भा प्रसंग में—‘भोजन साय सुह बाम्हन को तैसी धनकी साय’ (१७७) । भोज में छप्पन धनका बालन प्रकार के भोजन की व्याप्ति है^१ किन्तु इनकी सूची का अभी तक पता नहीं चला है । छप्पन भोज का उत्सव धनकूट उत्सव के बाद प्रतिवर्ष होता है । वर्ष में संभवतः प्रचलन छप्पन उत्सव होते हैं । इनकी सामग्री एक ही दिन समर्पित करने के कारण यह नाम पड़ गया है । इस उत्सव में कई ही प्रकार के पकवान होते हैं ।^२ सुरसागर में एक जगह सनह सी प्रकार का भोजन बताया गया है—‘सनह सी भोजन ठहै भाए’ (११४) । गोवर्धन पूजा के प्रसंग में भी अनेक प्रकार का भोजन था—‘पकवत भोजन प्रातःहिं तै सब । रवि माये तै बरकि मयौ सब । (१५२६) अकबर के भोजन में भी प्रकार का भोजन सजा रहता था । अकबरनामा से विदित होता है कि हँसत में हुमायूँ के प्रातःकालीन नारते में तीन सी तथा दोपहर के खाने में बारह सी प्रकार की तरहरी परोसी गई थी^३ । भोजन की द्वितीयों के लिये परकार^४ (२ १] शब्द प्रयाप्त है । इन विधियों के परिचित भोजन की अन्य विशेषता थी—पटरस परकार (८ १ १ १४) [छं]—‘पटरस परकार सैवाए से बरनि कसोवा बाए’ (८०१) अथवा ‘नर धनन मैं कान्ह परोगी । जघुरा स्यावै पटरस मोवै (१ १४) । भोजन अथवा काष्ठ पदार्थों के का स्वाद^५ माने गए हैं—‘मधुर, कटु अन्न तिलक कषाय तथा मज्ज । सुरसागर में इनमें से कुछ प्रधान स्वादों का निर्देश भी हुआ है—‘सारे खट्टे मीठे हैं निभि’ (१८३१) ‘खाटी कड़ी विनित्र बनाई (१८३१) ‘मधुर महेरी गोपनि प्यारी’ (१८३१) ‘सोई मधुर भाठे रस बाळी (१८३१) ‘मीठे चरपर’ (१ १४) अथवा ‘तीक्ष्ण सगो गैल भरि भाए’ (८४२) । आचकन चसपटा^६ शब्द व्याख्या बोधा जाता है । इन्हीं छं रसों के निमज्ज से और अनेक स्वाद होते हैं जैसे खट्टा और भीठमिठाकर—खनमिठ्ठा—खटमिठे सिचारे (१४३ परि०) । रस के लिए स्वाद [छं स्वाद] शब्द भी प्रयुक्त हुआ है—‘तिन सी सबै स्वाद हरि सीन्हीं’ (१८३१) । धार्मिक अकबरि (धार्मिक २६) में रसोत्पत्ति के कारण बताया गया है । छप्पता शीतलता माध्यमिक ताप धारि कारणों से ये भोज होते हैं जैसे छप्पता सूतन पचाप को ठीक स्नान को कठिना तथा मध्यम प्रकृति को जारी बनाती है

कीटिन्य ने भी इसी प्रकार दोनों अन्न लिए हैं—सात सुरा-भास्य-भोजन (अर्धप्रातः पृ २१४) तथा ‘आन्धेयु सञ्जाति’ (पृ २१२) १—२८४४ ‘पुनि बालन परकार भी भाए । ना भस देखे न कन्हू भाए ।’

१—प० सं ध्या ,

२१२।१ ‘कोह परसहिं बालन परकार’

२—प सं ध्या, २१२, (५)

३—प सं ध्या, २३ —पृ २२३ (८)

४—प सं ध्या , ५११।१, ‘सम परकार ठिरा हर केरे’

५—मानस, बाल का , ३७२ ‘छरस छबिर विजन बहु बली । एक एक रस अवनित्र मीती ।’

६—प सं ध्या, २४७ । ४ ‘अमर तेहिं रस खटपट राखा’

तथा सीतलता क्रमशः बढ़ा मुँह में समने बासा तथा कसीमा बनाती है। इसी प्रकार माध्यामिक ताल चिकना मधुर तथा स्थावरहित करता है।

११—जाना जाने के सिधे प्रायः जैसन, जैसत (१८३१ १५५२) [छं बेमनम] शब्द का प्रयोग हुआ है—‘जैसत खिचि धनिकी धनिकिया’ (१८३१)। गीजन सीमा प्रसंग में भी बार-बार जैसत शब्द ही धाया है—‘उत जैसत इत जातनि पाये। कहत स्याम भिरि जैसन जाये’ (१५५२)। धावकल प्रामीण बोली में ‘बीमना’ शब्द भी बोला जाता है। तुलसी^१ तथा जायसी^२ द्वारा व्यक्त शब्दावली में भी सूर के समान ही ‘जैसन शब्द मिलता है। इसी शब्द से बना शब्द ‘ज्यौनार सूरदासर मे प्रायः पूरे भोजन के धर्म में धाया है—‘यह ज्यौनार सुनै को पावै’ (१८३१) धयवा ‘सूरत करहु जैसनार’ (१ १३)। धावकल कभी-कभी बिबाह धावि के अवसरों पर बिरादरी के बहुत से लोगों के पंकित में बैठकर भोजन करने या वाक्य को भी ज्यौनार कह देते हैं। मानस^३ में सिब तथा राम के बिबाह पर तथा पद्मावत^४ में ‘रत्नसेन बिबाह’ में बावसाह भोज कंड में ज्यौनार का विस्तृत वर्णन मिलता है।

जाने के धर्म में रसोई (१४४) [छं रसवती] शब्द सूरदासर में भी मिल जाता है—‘पटरस ध्वंजन खांदि रसोई साय बिबुर-बर जाए धयवा ‘बहु ध्वंजन बहु भांति रसोई पटरस के परकार’ (१ १२)। धाव भी लोग ‘जाना तैयार है’ के धर्म में ‘रसोई बार है कहते हुए मिलेंगे यों सब रसोई जाना बनाने वाले स्वाम को कहते हैं।

१४—झाक (१ ७४ १ ७७ १ ७९ १ ८२-८५ १ ८२) संबंधी अनेक पद तो चारस प्रसंग में हैं। वीणहर या तीसरे पहर के समय न्वालों या किसानों के लिए बाहर मेवा जाने बासा जाना झाक कहलाता है—‘जाति-पांति सबकी हीं जानों बाहर झाक मैयाई’ (१४४) ‘सूरदास प्रभु सुनि हरपति भये बर है झाक मैयाई’। झाक में धविक्टर सहभाजन मधु, मेवा पकवान बबेना धावि ही कसीबा के समान होते थे—‘सब मासन साखो धवि भीठी मधु मेवा पकवान’ (१ ७४) धयवा—‘झकी धवि मिष्टान्न खीरि की बसुमति मेरै हाथ पठाई’ (१ ८) झाक जाने में जास-जास धवि कृष्ण बसराम इतने मज हो गए कि गायों का ध्यान भी न रहा—‘जैसत झाक पाह बिसराई

सबा दीरामा कहत सबनि छौं जाकई मै तुम रहे भुलाई।

बेनु नहीं बैखियत कहूँ निवरीं भोजन ही मै साँझ कराई ॥ (१ ८२)।

प्रातःकाल न्वालों की भावाव सुन बालक कृष्ण-बसराम धबूरा कसीबा करके नाम गए थे अतः माता बसोबा का चिन्तित हो तीस्र झाक भेजना स्वाभाविक ही है—

भानु कसेऊ करत बग्यी नहि पैयन सैं जठि बाए।

तुम कारन बन झाक बसोबा मेरै हाथ पठाए। (१ ७२)

१—धावने ध, पृ १५२ १२४

२—मानस, बाल, ‘माइन्ह संहित उबति भानुबाए। छुरस असन अति हेतु जैवाए’

३—य स ध्या, ३६३।६ ‘ती जैसन नहि जाकर सुजा’

४—मानस, बाल, ३२८ ‘पुनि जैसनार धई बहुं जसि’

५२ ‘भांति अनेक नई जैवारा’

६—य० सं ध्या, २८३ ‘पांति पांति बैठे जाति भांति जैवनार’

धयवा—‘होइ लाय जैवनार सुभारा’

७—य सं० ध्या, पृ २२९ ‘तीजि रसोई नरुड बिहानु

घबरा—‘प्रेम सहित मैं बली आक वह, कहँ हूँ मैं भूखे रोठ भाई । (१ ७५)

घबरा —‘ब्राह्मण भोसि सियौ अघजैवत, जठि रोरे रोठ मैया ।

तबही तै मैं भोजन कीन्ही चाहति बिधो पठाइ ।

भूखे भये घामु रोठ मैया आगुहि भोसि मैगाइ । (१ ७४) ।

हृष्य बलराम का मध्य बालकों के साधन मन में पलाश के बोनों में ही क्षीम मग्न कर आक खाने की प्रवृत्ति का निश्चय बालकों की सहज प्रकृति का परिणामक है— बेंकड्ड नाचत है धारै की टांग कागु, सज्जिन के मध्य छाक सेत कर छीने (१ ८५)

घबरा— कमल-यव होना पलास के सब घावें भरि पकसत आत ।

‘ब्राह्म-मंडली मध्य स्वाम-मन सब मिमि योजन बधि करि खात’ (१ ८६) ।

अतीवृद्ध खेन की छपक बोली में छाक शब्द प्रत्येक समय के साधारण भोजन के दर्श में भी आता है तथा शेषहर में बाहर भेजी जाने वाली रीटी के दर्श में भी । वहाँ प्रायः भी बनेऊ तथा ब्यास ब्यासु (बिहारी) शब्द सुनने को मिल जाते हैं । शेषहर के भोजन को ‘छेटी’ भी कहते हैं ।^१ परिचमो उत्तर प्रदेश में कहीं कहीं उनके खाने पूरी को भी खाता कह देते हैं—(घबरा खाना ले जाधो = पूरी ले जाधो) ।

१०५—बिहारी (८४६ ८४९ १ १५) [छ विकास विकासिक—विघात-भ्याम् + एक—भ्याम्] संघ्या घबरा दिनामकानीन भोजन होता है—‘सुरस्याम कबु कटी बिहारी पुनि एखौ पीड़ाइ’ (८४४) । नींद से फुफो बाती हुई पककों खाने एवं प्रसराते हुए बच्चों का माँ के धनुरोप पर बोझ बहुत खाने का सुन्दर व स्वाभाविक चित्रण अनेक पदों में है— प्रालस छौं कर कीर उठावत नैननि नीर भ्रमकि रही मारी’ (८४६) ‘या’ बार-बार बमुहात सूर प्रभु’ (८४६) । बिहारी में दिन के भोजन के समान खाने के अनेक नामों की समीचीन सूची सभी पदों में प्राप्त नहीं की गई है । मिष्टान्न लुबुई बरा तथा घबरा की बर्णना ही विशेष रूप से की गई है । घाट-काश के समान ही बिहारी के बाद बूब पिलाने का वर्णन भी अनेक पदों में किया गया है— घाघी बूब घोटि नीरी को छै घाई रोहिनि मल्लारी’ (८४६) घबरा ‘छौंकि छौंकि बलनी पम प्यावति’ (८४७) घबरा ‘कबु कबु बाइ भैबरी तब बमुहात बलनी जाने । छठु साल कहि मुख पकरावौ तुमकी लै पीड़ाई’ (८४८) ।

१ ६—पूजा के पञ्चम की भोग (१४१२ १५१८) तथा नेवज^२ (१५१ ११) [छ नेवज] कहते हैं । गोवर्धन पूजा प्रसंग में विरोध रूप से इन शब्दों का अनेक बार उल्लेख हुआ है— महरि सब नेवज छै सेंटति’ (१५११)

घबरा—‘यह कहि-कहि देवता मनावति । नीक-समझी बरति उठावति’ (१५१२)

तथा—‘ठा देवहि तुम भोग मनावहु’ (१५१६) ।

अनाम घबरा नाम से बने ज्यज्ज^३ अन्न [छ] कहलाते हैं—‘नीक धन बडु बार सबायो घपनै कुस सन अहिर बुनायी’ (१४१८) घबरा ‘रोहिनि बरति धन भोजन-ठक’

१—छ बी , प्र ११, अध्याय ६

२—छ बी प्र ११, प ६, भाजकस दात्याङ्ग मुक्तपक्ष में सीमवार या मुक्त को मग्रा की पूजा के पञ्चम की विशेष रूप से नेवज कहते हैं ।

३—ईशिया एज नीन टु पालिनि प्र १६—अष्टाध्यायी III. २ ६८ में भोजन को धन व खाना खाने वाली को ‘धन्ना’ कहा गया है ।

(१५१) । नाज (१८११) शब्द भी एक दो स्थलों में मिलता है—'यन सवि होइ नाज के बोक' (१८११) ।

जाने योग्य तथा न जाने योग्य पद्याओं के लिए साह्य ग्रन्थाद् (१८३) [सं० पाठ प्रकाश] का उल्लेख भी है—'बाह-प्रसाह न छोड़ि भव सौं । जाने के एक प्रास को गुरसागर में कीर (१८११ ८४२) [सं० कवल-कवर-कठर-कीर] ही कहा गया है—'बघ कीर मेतव मुच भीतर' (८४२) या 'पछिरी पमवाटी परघायो । तब प्रापुन कर कीर छठयो' (१८११) । कीर को प्रतीक रूप में 'बहा [सं० प्रास] को कहते हैं । पद्यावत^१ का 'कवर' तथा मानस^२ का 'कवल' शब्द जो इसी शब्द के प्रत्यय रूप हैं ।

१ ४—जाने की समाप्ति पर जाने के पार्श्वों में प्रबलित पदार्थ जूनी, जूठनि (१८१२ १८११) कहलाते हैं । पाठ्य की जूठन भक्तों को सोमाय से ही प्राप्त होती है—

सूर जूठनि पकट पाई देव सोक जुपाह' (१८१२)

प्रपचा—'बोनि रहैंहि जूठनि पाटी' (१८१२) । चाक जाते समय कूट्य सबका जूठ कीर स्वयं छाकर उनका जीवन साधक कर लेते हैं—

'जातनि करैं कोर बुझाय

जूठौ मेव सवनि के मुच की अपन मुच से पावत' (१८८६)

प्रपचा—'कलवासी पठर कोउ नाहि ।

इहा इनक छिब व्यान न पावै इनकी जूठनि लै-लै नाहि । (१ ८७)

भारतीय मित्रों में प्रति की जूठो बावो में भोजन करने की प्रथा रही है । यह प्रथा प्रति के प्रति उनके अग्राम स्नेह की सूचक थी । भिरों में प्रभु को भोजन भजने के बाद देव पकवान प्रसाद के रूप में भक्तों को बांटा जाता है ।

प्राक्कल छहुरों में कसेवा शब्द का स्थान गारते तथा 'बलपान' ने ले लिया है । चाप प्रपचा काशी का प्रचार माण्ड में अकबर के बाद हुआ था । प्रथ ही बीरे-बीरे इन्होंने हुए क स्थान ले लिया है । 'ज्वाला तथा बियाटी' के स्थान पर 'जागा' प्रपचा 'भोजन' शब्द ही अधिकतर बीते जाते हैं ।

२—अनाज और तेल

१ ५—दाखें—गुरसागर के दशम स्कन्ध में जाने के सिलसिले में दासों के उत्सव के प्रकटित कुछ नाम स्पष्ट प्रदर्शों में भी मिलते हैं । दास के लिए बारी बारी, (१५१ १०१४) शब्द प्रयुक्त हुए हैं—'बिसन बारि जनक करि बांधी (१५१०) । पद१०१४ में छोटी घोर बावत के साम कई दासों के नाम एक साथ दिये गये हैं—'मूय मसूर, उरद जन बारी । इनक पटक परि पटक पछारी । पकाने के पहले घास भी बाँसे मूय या जमनी से 'पटक' 'पछोर' कर छाक कर लो बाँधो है । पन जनक प्रपचा खना (१०१४ १५१) [सं० बसक] तीन प्रकार से घासे थे—जने के साग या हरे जने की छरवाटी ('बोठे तीन जना की बांधी') दास बनाकर तथा दास के घासे प्रपचा बैसन से घनेक प्रकार के व्यंजन तथा रोटी बनाकर ।

उरद मसूर [सं० मसूर] मसूर—मसुरा—मसुरा तथा मूय [सं० मूय] नाम

१—म० सं० म्या २—ब० 'बहुत सबाह लो बाँधे एक कबर भी पाह'

१—मानस, बात० १२१ 'बैच कबल करि बेंबन लाल'

की पाकशाखा के लिए प्रायः बहराइन से सुखवास म्यासियर से देवजीरा तथा राजीरी और नीमला से जिजिन चावल गंगबाकर संपहू किये जाते थे ।^१ घास भी पूर्वी भारत के वास्कों का विशिष्ट स्थान है । बस्ती का बांसमटी बैहराइन का चावल तथा हूँछणज घासि चावल प्रसिद्ध है । चावल पतला बम्बा सफ़ेद रंग का तथा सुगन्धित ही बम्बा माना जाता है ।

११२—मोटे गानों में सुरबास ने ज्वारि (४१४७) का उल्लेख किया है—सुरबास मुक्ताहल भोगी हंस ज्वारि क्यों चुनिहै । इसको 'बोगरी' भी कहते हैं । रोपाव के निर्जन बर्र में फक्कर ज्वार बाजरा मक्का तथा जी के घाटे की रोटी या इनको भूनकर खाते हैं । सुरबासर में जी की बच्ची नहीं है । घासने फक्करी हैं उस समय प्रचलित छनी प्रवाल किसी के नाम तथा उनके घास का ज्ञान होता है ।^२

माड़ में भुने हुए घनाब को खैना (१ ८५) [सं बर्बल] कहते हैं । इनम बना चावल मक्का ज्वार, तथा बाजरा प्रमुख हैं । सुरबासर के घोषारख-सीपक ज्यों में छल्ल तथा म्यास बालकों का खेना खाने का बर्जन है—

'म्यास मंडसी मैं मोहन बट की छाँह, रुपहर बैरिया सखानि धंव सीने । एक हूब फल एक ज्वारि खेना लेत निब-निब कामरी के घासगनि कीने । (१ ८५) ।

पद्मावत में जी के खेने के लिए 'बहुरि' उल्लेख प्रयुक्त हुआ है । इस पंक्ति में बाड़ तथा बाबू में भुनने का उल्लेख भी है ।^३ खेना खाने की क्रिया को 'खबला भी कहते हैं ।^४ घास भी गरीब लोग कभी-कभी खेना खाकर ही पेट भर लेते हैं । चावल को भुनने पर 'सहय' 'परमस' मक्का खीज' कहा जाता है । यह माड़ में मकसूबा भुनता है ।^५

हरे बाल की कूटकर तथा भूनकर बनाए हुए बिबड़े बाने की बिठरा (८२९) [सं० बिपुट बिपिटक] कहते हैं । कसेने के बाद पराचों में बिबरय भी बा—'सकरी बिठर

१—घासि घ , पृ ११७

२—घासिने प्रक , पृ १२३, १२५—घासिने फक्करी की रबी तथा करीब की जिसों की सूची में प्रायःकल के प्रायः छनी नाम, जैसे देहू, कई तरह के चालन (घासि, सुखवास, हुनाप्रवास, सामन्तीरा, बका घासि) बालें, जी, बम्बा, कुमारी, फक्करी, सरसी, मोबिया, तथा केवू घासि का बिबरल मिल जाता है । फक्कर के बाद मक्का, ओदल, मूंगफली, लम्बाऊ तथा चाल एवं कायरी का माछ में प्रकार हुआ बा । फक्करकालीन तावा, केना, घाल, नील घासि जितें प्रक मल्ट सी हो गई हैं ।

३—५ सं ज्वा , १३४१३ 'सापिबं बरै बरे बल जाक । बहुरि जो भू बलि त्यों न बाक ।'

४—कुलसी, कविता० ३३ 'घासने खना खबाइ हाथ बासिमत है'

५—क जी० घ , ॥ १५, अध्याय ५, समरकोव २।१।१० 'बलोवेडम्बरीयं प्रायः (प्रायः = माड़) प्राकृत कोय में भाव' प्रथम देखा गया है । बाड़ लने भुने

७ बने 'बगरी' कहलाते हैं । यकूब (घ १३ अंश २२) में भुने जी को 'बाव' कहा गया है । संस्कृत साहित्य में भी नहीं कहाँ मिलता है । 'बाला अष्टमै निम्न' (समरकोव २।१।१७) मल्ल १८।२९, बाला, कप कुबल गरीबापत्य गोबुमा ।

प्रसन्न बृहन्तो । मानस में भी बधि तथा बिडरा जनक द्वारा उपहार में भेजने को बधि है । प्रायस्क उपे 'बिडरा' या 'बुध' भी कहते हैं तथा ब्रह्म में नियोजक भयवा भी में भूतकर नमकीन खाते हैं ।

१११—आटा—सूरदासर में येहूँ [१० बोजुम] या उसके साधारण घाटे का उल्लेख नहीं मिलता है । परमावत में 'गेहूँ' को बोने-बीसने तथा धानकर घाटा तैयार करने के विस्तार है ।^१ । सूरदासर में 'गेहूँ' के महीन घाटे मैदा (८५६, १५१) [५५ मैदा] का निर्देश कई स्थलों में है । गोवर्धन-पूजा के निमित्त मैदा के लिए भी मैदा छापी गई थी—'मैदा उज्ज्वल करि के छाप्पी' (१५१) । 'गेहूँ' की खेती का अनुमान ईसा पूर्व १००० तक में है क्योंकि मोहनजोदड़ो में यह पाया गया है । वैदिक काल में 'गोजुम' तथा 'यव' प्रधान भाजों में से थे । 'वाय' प्रारम्भिक वैदिक काल में 'भुने यव' के धर्म में धारा है तथा बृद्धि भी वायन के धर्म में बाद के वैदिक काल में प्रचलित हुआ । ऋग्वेद में इनका उल्लेख नहीं है ।^२ पाणिनि के समय में कुछ व्यंजन गेहूँ के घाटे से बनाए जाते थे ।^३ ह्यपरित में भी एवावबीरर के खेतों के बर्णन में राजमाय भृगु बान तथा गेहूँ खादि धानाओं के नाम मिलते हैं ।^४ धानिप्रकवरी में भी गेहूँ के कारीक घाटे धबका मैदे का उल्लेख ही धारिक है । बरवार के मोहन के लिए एक मन गेहूँ से धाबा मन मैदा को छेर बलिया तथा रोप भूसी निकलती थी । बलिया तथा भूसी बटाकर साधारण मैदा बनाई जाती थी । गेहूँ के छारे घाटे को 'बुरका' कहा गया है ।^५ अत्र अनुमान होता है कि सूर के समय में गेहूँ के अच्छे घाटे को मैदा ही कहा जाता था ।

जैसा कि वालों के सिलसिले में बताया जा चुका है मैदा के प्रतिरिक्त बने का घाटा भी बनता था जिसे उस समय भी बेसन (८५६ ८५६ १५१) कहते थे । इससे भी रोटी, पूरी तथा अन्य अनेक व्यंजन बनाए जाते थे । मैदा तथा बेसन को मिलाकर भी पूरी बनाते थे—'बेसन मिलि सरस मैदा छौं अति कोमल पूरी है भारी (८५६) धबका 'रोटी खिर कनक बेसन करि' (१८११) । प्रायस्क रोटी तथा पूरी दोनों ही गेहूँ के साधारण घाटे-से बनाते हैं । अस्त-वास्त धबकलों पर, नियोजक बिबाह के पञ्चान में मैदे की पूरी भी बनाने की प्रथा है । अन्य बहुत ही नमकीन या मीठे पञ्चान भी मैदे से बनते हैं । लिप्प खेड़ी के लोग बना मक्का बाजरा आर तथा भी खादि के घाटे भी रोटी भी खाते हैं क्योंकि यह गेहूँ से ज्यादा सस्ता होता है ।

१—मानस, बाल, १५—'बधि बिडरा उपहार प्रपारा'

२—५ सं व्या, ५४३११, २ विजत गेहूँ कर द्विषा कट्टा । धाने तहाँ होय बहू भट्टा तब पीते बब पक्षिमेहिं बोए । कापर छामि मांड भल बोए ॥ १८०१४ 'महु गेहूँ' कर द्विष बैहरामा ।

३—कोटीक प्रोफु हंडिया, पृ १७

४—हंडिया एज मोन दू पाणिनि, पृ० १९

५—हर्ष सा प्र, पृ २५

६—धानि प्र, पृ १५१ । धानि-प्रकवरी में (पृ० १२५) कनका (गेहूँ का घाटा) प्रतिमन १५ दाम मैदा २५ दाम, बने तथा भी का प्राग क्रमाः २२ दाम तथा ११ दाम दिया है । मोटे भाजों में लहहू (बाजरा) ५ दाम तथा गुपारी १ दाम प्रतिमन बिजती थी । मरा तथा बने का घाटा बटाकर भृगु में चितता था ।

सूरसागर (परि १५३) में सूजी की वर्षा भी है—'निबुषा लोह तेन तर सुजी ।
येहू ये ही सूजी बनाते हैं । उपर्युक्त संस्केत के सूखे से बने व्यञ्जन का बच रिवाज उठना नहीं
है किन्तु कि सूजी के हलने प्रथम खीर का । सूजी को प्रायःकल रवा भी कहते हैं ।

११४—तिल और तेल—सूरसागर नवम स्कन्ध में दशरथ-भक्त्योपदिष्ट-क्रिया प्रसंग में
तिसाबलि देने की प्रथा की ओर संकेत किया गया है—'अस्म धातु तिस-धन्वलि बीन्ही देव
विमान बदायी' (४१४) । इस प्रकार धन्वलि में तिल-तथा बज्र लेने की प्रथा प्रायः भूत
रही है । इसी से 'तिसाबलि' शब्द निकला है जिसका अर्थ 'छोड़ देना' है । सूरसागर में तिल
के तेल प्रथम तिल-तेल (२५४२) [तं तिल-तैल] का उल्लेख कई स्थानों में है—'तिल-तेल
समावी स्वार कहा जाने वृत् ही री' (२५४२) । धी से तेल को नीची कोटि में सँकट रखा
गया है ।^१ धन्वलि वर्ष भी का। धन्विक उपयोग करता है तथा निर्धन वर्ग तेल का किन्तु कुछ
तरकारियों तथा व्यञ्जन तेल के बने हुए भी स्वादिष्ट होते हैं । येत सूरसागर में भी तेल में तर
काटी 'झोकरे' का वर्णन किया गया है—'झोके तेने (१ १४) प्रथम 'तेन तर सूजी' (परि०
१५३) । तिल के तेल को 'मीठ तेल' भी कहते हैं—'मीठी तेल बना की माजी' (१ १४) ।
सरसों के तेल को 'कड़वा' तेल कहते हैं । पद्यावध में इसका उल्लेख है ।^२ प्रायःकल तिल के
तेल के स्वाग में उत्तरप्रदेश में सरसों का तेल ही अधिक प्रचलित है । बंगाल तथा बहिष्क में
मारियल के तेल में ही अधिकतर आद्य पदार्थ बनाये जाते हैं । तेल जिंगी वस्तु के धर्म के
साधारण धर्म में भी प्रयुक्त होता है । कुछ लोग तिल तथा सरसों के तेल बाल तथा शरीर में
भी लगाते हैं । अन्य कई प्रकार का भी तेल बाल में लगाया जाता है तथा फूफो के तेल से
हम भी बनाते हैं ।

पाणिनि ने नाक की सूजी में तिल को भी स्वाग दिया है ।^३ काशिका के धनुवारगुरु
तिल तथा घृत मिश्र वस्तुओं के उदाहरण है । इनको उचित माघा में मिलाकर प्रधान भाग्य
पदार्थ का स्नान प्रस्था किया जाता था ।^४ भास्ति धक्करी में भी सफेद तथा काले दोनों ही तिल
शरीर की जितों में है ।^५

३—मसाले

११५—अस्म स्कन्ध के अन्तर्गत बहि-दान शीर्षक पर्व में से पद २१४६ तथा २१४७
में मसालों के व्यापारी का उल्लेख किया गया है । पद २१४६ दो मसालों के नामों की सूची मान
है । इनमें निम्नलिखित मसालों के नाम आए हैं । कुछ नाम ग्रन्थ प्रसंगों में भी मिल जाते हैं—

१—झौंग (२१४६) [तं कर्षण]

२—सुपारी (२१४६) तं सुतजल— सुपारी का वृक्ष]

३—हींग (२१४६, २१४७ १ १४) [तं हिनु]

१—भास्ति धक्करी में भी प्रतिफल १ ३ दाम तथा तेल ४ दाम दिया है ।

२—य स व्या ४४६, करुण तेल कीन्ह वसिष्ठाक

३—ईशिया एण नीम दु पाणिनि—पृ १ ४

४— " " " " पृ १ १

५—भास्ति ध , पृ १२६ : लक्ष्म तिल प्रतिफल २ दाम अन्तत तिल प्रतिफल
१६ दाम ।

- ४—मिरिच, मिरच, मिर्च (२१४९ २१४७ १०१४, १८३१ ८०१) [सं० मरीच—काली मिर्च]^१
- ५—पीपरि (२१४९) [सं० पिप्पल—पीपल का फल]
- ६—अवबाइन (२१४९) [सं० यवानी]
- ७—कूट (२१४९)
- ८—कायफर (२१४९)
- ९—सौंठि सौंठ (२१४९ ८ १) [सं० सुंठी सुंठि सुंठ्य]
- १०—चिरइसा (१२४९)
- ११—करजीरा (२१४९) [सं० काल + जीरा जीरक जीरण]
- १२—आस (२१४९)
- १३—नारियर (२१४९) [सं० नारिकेल]
- १४—मजीठ (२१४९) [सं० मजिष्ठा]
- १५—वाइविडंग (२१४९ १४२८)
- १६—वहेरा (२१४९) [सं० बिमीच बिमीच बिमीचक बिमीचा]
- १७—हरे (२१४९) [सं० हरीतकी]

११६—इन नामों के अतिरिक्त बाघ पशु तथा तरकारियाँ बनाने की बिच के सिमसिमे में भी कुछ मसालों का उल्लेख हुआ है। बैंग के भरते में खटाई (१८३१) [सं० कटुई—कटुपत्र] काली बई बी—'मरठा मेटा खटाई बीनो । प्राय खटाई कच्चे घाम की फाँकें सुकाकर बनाई जाती है जो किसी भी खट्टी वस्तु की खटाई हो सकती है जैसे नींबू करीया या हमली की खटाई । एक स्थान में हमली की खटाई बालन का प्रथम मो है—'प्रवर्द्ध हमली बई खटाई' (१८३१) । पचाक में खटाई के लिए 'बुक्क' तब प्रयुक्त हुआ है । घाम कल 'खट्टाक' बहुत धमिल कट्टे को कहते हैं । हींग तथा राई (१८३१) [सं० रात्रिका] का हथि में डालने का वर्णन है—'हींग नगाह राह वधि रात्री (१८३१) । राई से भी कट्टापन पाया है । हुरद या हुरदी (१८३१) [सं० हुरिदा] का उल्लेख कई पदों में हुआ है—'क्रितिक मांछि केरा करि सीने, हे करबेरा हुरदि रंग नीने (१८३१) हमली पत्रि भी मानी जाती है । पूना की खामशी में दूध बाबल तथा रोली के साथ हल्दी धरवर रखी जाती है । नमन स्वल्प में भी राम के प्रत्यापन के समय घाट्टी के बाल का इनी प्रकार का बिचल है—'धमि-नूय

१—अजरक, भाग १, पृ २२—सुपतलात में मिर्च तथा अजरक घादि कुछ मसाले गुजरत के कुछ भाग में जुड़ नैरा होते थे ।

२—इंडिया एज नोब टु वांछिनि, पृ ११३, मैरेय नामक पद बनाने के रंग में मैरागु भी छान व सुड़ के साथ ही मरिच, पिप्पली तथा मिष्टता का उल्लेख भी है । मरिच काली मिर्च के धर्म में प्रयुक्त हुआ है तथा पिप्पली लम्बी मिर्च के धर्म में । घाजकल दोनों को ही मिर्च कहते हैं तथा कालो या मोल मिर्च कह कर भेद दिया जाता है ।

'मियगु सीकूववापामिपुर्वी गुह्यगीवाय' पिप्पली-मरिच लग्नारतिशयतामुक्ते वा मैरेय ।'

३—य स क्या, २४८, 'हुरक लाइ के रंघि भांटा'

४—क बी, प्र ११, पृ १—हुक (सं हुक) धमरकोय १८।३४

हरब फल-पूत पान ! कर कनक-आर-सिय कलत मान । (६१) । हस्ती तथा बूना मिलने पर एक ही रंग सास में परिनिवृत्त हो जाते हैं घटएव प्रायः प्रेम की एकात्मकता का रूपक इसके दिया जाता है । गोपियों का अपने आराध्य कृष्ण के प्रति इसी प्रकार का प्रेम था—

‘मानसि नहीं लोक सरजाहा हरि के रंग मयी ।

मूर स्याम की मिलि भूमी हरबी क्यों रंग रेंबी ॥ (२२४६)

११७—नमक के लिये खौन (१८३१) प्रमया खोन (बिनब) [छं लवण फा नमक] शब्दों का प्रयोग हुआ है—‘मसे बनाइ नरेना कीने मोन सगाइ गुरत बरि भीने । खेबा नमक को सेंघी (१८३१) [छं खेबब—खेबब] कहा गया है—‘मज्जाइल खेबा मिलाइ बरि (१८३१) । नमक प्रमुख तीन प्रकार का होता है—खेबा सारि तथा काला । खाने में प्रायः खेबा या सारि नमक इस्तेमाल आता है । नमक का प्रयोग अस्तित्व नहीं है, वह खाने के पदार्थों में मज्जीन स्वाद करने के लिए इस्तेमाल आता है । बटरस में इसका भी स्थान है ।^१ ग्रामीण बोली में प्रायः भी लोग प्रमया मोन ही कहते हैं । पद्यावत में भी खेबा नमक का उल्लेख आता है ।^२

बैसन की रोटी में नमक तथा मज्जाइल आती गई थी—‘रोटी बरि कनक बैसन करि । मज्जाइल खेबा मिलाइ बरि । (१८३१) । घरखों मेथी बाबि साय हीन हस्ती तथा निर्बं डाल कर झीके गये थे तथा साय ही खाने का बरख (१ १४ १८३१) [छं बाबि फा बरख] और बाबरे (१ १८) [छं ग्रामलक] खाने गये थे—‘हीन हरब निब खेबि तेने । बरख^३ और बाबरे मेने । बायसी ने बरख को बाबि कहा है ।^४ परि १८३ में प्रयुक्त कछौली भी उल्लेखनीय है—‘राइ करीबा यंब कलौली । प्यौर बनाने की विधि में ‘छोठ’ तथा मिरिब का उल्लेख भी है—‘अवि प्यौर सरस बनाई । ठिहि छोठ मिरिब बनि गई (८ १) ।

११८—इन मछालों के अतिरिक्त कपूर (१ १४ १८३१) [छं कपूर] से तरकारियाँ तथा अन्य सुगन्धित किया जाता था—‘सालन सकल कपूर सुवासत’ (१ ८) मज्जा सीतल बल कपूर रस रकमी (१८३१) । छोटिली शीरक पब (६५८) में बदन तथा कपूर पीने का बर्तन है—‘आठ माछ बदन पिबी (हो) नवण पिबी कपूर’ (६५८) । घनसार (४६८६) [छं०] कपूर का समानार्थी शब्द है । सीतलता प्रदान करने वाली वस्तुओं में कपूर का स्थान भी है—‘पवन पान बनसार ‘सभीवन बनि-सुत किरिनि बानु गई भुबे । (४६८६) । तरकारियों में लहसुन तथा प्याज डालने के उल्लेख नहीं हैं । सारिबक मोहन में इनका स्थान होता भी नहीं । कुम्मा तथा कृष्ण के प्रति गोपियों यह अंगव्य बरख करती है—‘बैठ काग हंठ

१—ईडिया एक मोन टू पाणिनि—पृ १ २—कात्यायन ने लवण को केवल पदार्थ में ही स्थान दिया है तथा आद्य पदार्थ का सुख माना है । किन्तु पाणिनि ने लवण को एक प्रमया इसके अतिरिक्त पदार्थ वस्तु (material commodity) भी माना है । उन्होंने लवण के व्यापारी को ‘लवणिक’ कहा है ।

२—यं सँ व्या, २४३१४ ‘खेबा मोन परा लव हीदी ।

३—ईडिया एक मोन टू पाणिनि—पृ० ११—कुछ आद्य पदार्थों में बरख तथा सुती भी मिलाई जाती थी । इनको ‘अपरस’ कहा गया है ।

४—यं सँ व्या० २४३ ‘एकहि बाबि मिरिब निर्बं पीके’

की संपत्ति, सहस्रसं संम कपूर' (१७७) । कपूर से सुवासित भोजन में सहस्रसं (१७७) की वस्तु न होने का कारण भी इससे समझ में आ सकता है । तुलसी ने भी सहस्रसं का उल्लेख निम्न वस्तुओं में ही किया है ।^१ प्याज की बागमूमि घसीका है तथा सहस्रसं की सर्व प्रथम उत्पत्ति सिधनी बहिष्णी फंस तथा एशिया के मध्य भाग में माली गई है । एक प्रमुख मसाले बनिया (२२२) [छं० बाग्य] का उल्लेख अमरशीत लोपक पर्वों में एक स्थान पर किया गया है—'सुरबात टीनों नहि उपजत बनिया बान कुम्हार' । (४२२२) । बाजकस तो हस्ती बनिया तथा मिर्च का ही मसालों में प्रमुख स्थान है ।

सुपारी का पर्यायवाची शब्द पुंजीफल (४६६) [छं० पुंजफल] नवम स्वर्ग के ककद-मोचन लोपक पद में है—'पुंजीफल-सुत कम निरयस बरि धानी गरि कुडी ओ कमर की' (४६६) । हस्ती के समान सुपारी की धिनी भी दून वस्तुओं में है । बिबाह की लज में धाम बार निरयस के साथ धिलके बहिष्ठ सुपारियां भी होती हैं । उपर्युक्त पंक्ति में भी सुपारी पड़े कम का ककद के समान लाया जाना इसी की पुष्टि करता है ।

मार्ग में घटवरी में भी मसालों की समीचीनी है । इनसे उनके प्रचलित मूल्यों पर भी प्रकाश पड़ता है । सुरसापर में उल्लिखित नामों के धर्मिल्ल हलायची बीरा लौक तथा बारचीनी बाहि मसाले और हैं । छटाइयों की सुबो प्रसंग है तथा सहस्रसं और प्याज तरकारियों में है । नमक बाजकस से मेलना था । एक मन नमक सोलह दाम में मिलता था ।^२

बायमी ने भी पद्यावत में बहुत से मसालों के नाम दिये हैं । बाबराह के मोर में मोर मसाली तथा तरकारियां बाहि बनाने के बखन में यह नाम विशेष रूप से दिये गए हैं । कुछ नाम जिनका समान सुरसापर में उल्लेख है पद्यावत में मिल जाते हैं, जैसे—इलायची लौक मेरी बायफल तथा बीरा ।^३ सिंहलद्वीप-वाटिका-वर्णन में फलों के बुर्रों के साथ कुछ मसालों के बुर्र भी बिनबाए गए हैं ।^४

बाजकस भी प्रायः यह सभी मसाले उपयोग में पाते हैं । कुछ के बालने का ढंग प्रवरय बखन गया है जैसे कपूर प्रायः तरकारियों में नहीं रखा जाता है, पीठे बही में प्रवरय कमी-कमी जाता जाता है । इसी प्रकार धांसे का उपयोग भी इस रूप में कम ही होता है । पछका भवार या मुज्जा अधिक प्रचलित है । कुछ मसाले इतने पर्वों बाद भी प्रारब्धजनक रूप से सुरबावर में बलिष्ठ ढंग से ही बालते हैं जैसे बैबन में लवाई, छापों में हीन और मिर्च तथा केरी में हस्ती ।

१—तुलसी, दोहा १६५ 'तुलसी बायमी बाजकस जलो न लागत कातु ।

तेहि न बसत ओ दास मिल सहस्रसं हू को बसत ॥'

२—बाहि घ पृ १९५

३—य लं० प्या० १४७१२ 'मिरी कर तेहि बीहू हू पाक'

१४५४ 'जीर सु पारि कसे सब बरे'

१४६१२ 'पीठ नहिउ धौ जीरा ताका

१४६१६ 'झोंग लाइची तिउ बहि घरा'

१४६१७ 'जिफर झोंग सुपारी हरा । मिरीच होइ ओ बहू न पाटा ।'

१४६१८ 'सोवा सौंफ जतारे पना । तेहि ते अधिक धाय जातवा ।'

१४७१७ 'कु हूक परा कपूर बताई । लौंग मिरीच तेहि ऊपर लाई ।'

४—यं० ५० प्या०, १८७४ 'जोह जेकर की लौंग सुपारी'

गरम मसाला बहिष्पी भारत तथा पूर्वी द्वीप समूह में ही अधिकतर होता है। सीस काली इलायची, काली मिर्च, बालचीनी तथा तैयपात को ही धानकम गरम मसाला कहते हैं।

४—फल, मेवा, तरकारी

१२ — फलों का उत्पन्न विशेष रूप से कसेवा तथा बिपारी शीपक पर्वों (५२६-५३) में है। मोरन (१ १४ १८३१) में भी ग्रन्थ विभिन्न प्रकार के व्यंजनों के साथ कुछ फल भी थे। प्रातःकाल यशोदा शिशु कृष्ण को लासपधानों के नाम बताकर छोटा छटकर कसेवा करने का आग्रह करती है— छटिए स्याम कसेऊ कीर्ति । मनमोहन मुक्त निरखत कीर्ति ॥

हारिक बाक जोपर जोरा ।

केरा घाम ऊँच रस सीप ॥

धीऊन मधुर चिरींजी घानी ।

छटरी चितरा धन सुवानो ॥ (५२६)

धनवा— हारिक बाक चिरींजी कितमिउ बन्धन गयी बचाम ।

छटरी सेव छुहारे पिस्ता जे तरबुवा नाम ॥ (५३) ।

भारतवर्ष के फलों में घाम का विशिष्ट स्थान है। यह उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त को छोड़ कर सारे भारत में पैदा होता है। पीर पर्वों तथा बर्पा के प्रारंभ में होता है। घाम के दो प्रधान भेद हैं—बुसनी तथा छलनी। पड़ोसी हिस्स जंगली अवस्था में भी पाई जाती है किन्तु दूसरी हिस्स में छलन लगाते हैं। छलनी घाम भी अनेक प्रकार का होता है। इसमें ससलऊ का बसइरी व छट्टेवा तथा बम्बइया जेयड़ा लोतावरी फलनी बादि अनेक प्रसिद्ध हिस्से हैं। सूरसागर में छिछ जॉव^१ अंय, घाम (१ १४ ८२६) [सं धाम] ही कहा गया है। संभवतः उस समय तक कलमी घाम नहीं चल पाया था। बादिने अकबरी में भी इसका जिक्र नहीं किया गया है। उस समय पंजाब में भी घाम कम होता था। सम्राट ने ही बाहौर में राक-बानी बनाने पर वहाँ घाम के पेड़ लगाना प्रारंभ किया था।^२ बनियर तथा मनुषी^३ ने भी भारत के फलों में घाम की बहुत तारीफ की है। बनियर ने लिखा है^४ कि ये भरनी में सस्ते व अधिक मिलते थे एवं बंबाल गामकूडा तथा दोला के बोट होते। ये। भारत के प्राचीन काल के फलों में घाम का स्थान है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में फलों के अन्तर्गत 'घाम' तथा 'बन्धु' (बामुन) का ही उल्लेख किया है।^५ घाम का फूल 'बीर' बन्धों द्वारा बचाने वाली मुठली 'पयमा' तथा पेड़ों का समूह 'घमराई' (घामराशि) कहा जाता है।

सूरसागर में पके घाम के प्रतिरिक्त कच्चे घाम के अचार तथा अटाई के संबंध में भी बताया गया है—'निबुघा लुरन घाम अचानी' (८५६) तथा 'घाब बादि है उबै रंघाने' (१ १४) कच्चे घाम का बड़ उपयोग घाब भी होता है।

१२१—ऊँच धनवा ऊँच-रस (एक १ ८२१) [सं धनु + रस] भी सुब्ब के भारत में पीने की प्रथा थी। ईश की खेती भारत में प्राचीन समय में भी होती थी। पाणिनि^६ ने जब दूर तक फैले ईश के खेतों को 'धनु-वन' कहा है। धनु-रस से मद्य बनाने की प्रथा भी

१—प० सं ध्या, १८० 'करै घाब अति लयन सुहाए'

२—बादिने घ, पृ १२१

३—मनुषी, भाग १

४—बनियर, पृ २५१

५—इंडिया एज मोन द पाणिनि, पृ ११

६— " " " " पृ १६, ११७

भी। बाबा^१ ने भी इस-जन का बर्णन हर्षवर्णित में किया है। पुराणों में ऊँच की उत्पत्ति विष्णु के लिये विरचामित्र द्वारा निर्मित स्वर्ग में बताई गई है। प्राग्नि यज्ञवरी में भी ऊँच बनाने तथा उसके विभिन्न उपयोगों के अनेक विस्तार मिलते हैं। ईँच नोमल तथा कठोर दो प्रकार की होती है। कठोर से ही गुड़ शक्कर कंब घीर मिथी बनाते थे।^२ ईँच के इन विभिन्न उपयोगों के कारण ही इसका अत्यधिक महत्त्व है। प्यारसी में ईँच को 'नैराकर' कहते हैं। बायसी ने भी ठेक से भी ईँच को ईरबरीय रस माना है।^३ प्रायः भी भारत में ईँच की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है। ईँच का जो रस पीने के लिये बेरते हैं उसे पूर्वी प्राचीन बेसी में 'पेदमा' रस कहते हैं।^४

नागरिक भाषा में 'गन्ना' [उं काबड—एक पाँठ में दूखड़ी गठ तक का भाग] शब्द ही प्रचलित है। ग्रामीण बोली में 'ऊँच' ऊँचि 'ऊँच' उबबड 'उबुड' आदि कहते हैं। पत्ते के नीचे काटे हुए टुकड़ों को 'पेदेरी' कहते हैं। सूरदास ने गाँव (४२२२) [उं मंड—गठ प्रपचा बोड़-गले में गाँठें छी होती हैं घीर नहीं से प्रायः टुकड़े करते हैं] शब्द प्रयुक्त किया है। इसको 'नीम्बा' भी कहते हैं। साथ ही इस पंक्ति से हाथी को गन्ना प्रिय होने की बात भी बताई गई है—'कडू पदपव कैंसे खेयु है हाथिनि के मँग गाँठे' (४२२२)।

१२२—तरकारियों में कच्चे केले की तरकारी बनाने के साथ ही फलों में भी पके केले खाने पाने की कच्ची है। कदली (विनय) केला (१८११, तथा केला (८२६१ १४) [उं कदली] शब्द मिलते हैं। सोनि घरे खरबूजा केला। छितल बास करत छति बेरा' (१ १४)। प्राग्नि यज्ञवरी में भी केले के पेड़ तथा फल का विस्तृत बर्णन है।^५ भारत के अतिरिक्त अन्य कम देशों बर्मा प्रच्छिन्न अफ्रीका मलाया द्वीप तथा चीन आदि में भी केला होता है। एक पेड़ में एक बहर जाती है जिसमें छतर-धसी केले होते हैं। उसके बाद बहुत पेड़ गिरा दिया जाता है। प्राक्कल 'नीनिवा' तथा बम्बहपा' दो प्रधान किस्में होती हैं। पद्मावत में 'केला की घौरी' (१८०७) तथा मोनह छी केरन्ड की घवरी' (१४१४) में 'घौरी' 'घवरी' आदि शब्द 'बहर' के लिए मिलते हैं। जयपुत्र पर्वत में खरबूजा (१ १४) [का खरबूजा खरबूज] भी चील कर रखने का उल्लेख है। प्राग्नि यज्ञवरी से पता चलता है कि यज्ञवरी के राज्य में खरबूजे खूब बिकते थे। भारत में वे भी वैसे खेपे तक होते थे। वे भी ठेक मुलायम तथा खुरबूखार होते थे। कनार के धारम में काश्मीर से खाने सगवे थे फिर काबुल से तथा पृथ में बरखला से मँवबाये जाते थे। इस प्रकार मात्र एक सिलसिला नहीं टूटता था। बर्मावर तथा मनुषी ने भी यही सिखा है कि काबुल बरख बुझारा समरकन्द तथा ईरान से अनेक प्रकार के फल खरबूजे खरबूज सेब आमपाठी अंगूर तथा अंगूर प्राग्नि मेकर काकिये जाते थे। वे इस हिस्से में बँहने बामों पर बिकते थे। इनके बरने उन देशों को सोना-चांदी नहीं जाता था किन्तु यहाँ के लोग इनसे सामान ही बाहर आते थे। हिस्सी में फल का बाजार प्रसंग ही था। धमीरों का प्रधान व्यव फल तथा मेवा पर होता था। खरबूजे का बीच

१—हर्ष० ला० अ०, पृ १८३

२—प्राग्नि यज्ञवरी, पृ० १४

३—प लं व्या०, ४। 'कोन्हेति ऊँचि मोठि रस भरी'

४—प्रा अ , पृ० ४६, ११३

५—प्राग्नि अ , पृ १४६

६—प्राग्नि अ०, पृ १३३

ईरान से भारत में आया था किन्तु यहाँ की जमीन उसके लिए जतनी अच्छी न होने के कारण फत की हिस्म साधारण ही रही।^१ प्रायः कम सज्जनक का तरबूरा प्रसिद्ध है जो छोटा किन्तु मीठा मुसामम तथा रसीला होता है।

१२३—तरबूजा (८१) [फत तरबूज] तथा सुयानी [फत बुबानी] भी बिदेह से लाये गए फत थे। तरबूजा भी दिल्ली में प्रायः घास में अधिकता से मिलता था। दिल्ली के तरबूजों को बलियार ने मुसामम और मीठा बताया है।^२ बिदेह से आने वाला तरबूजा अधिक महंगा मिलता था। एक तरबूजे का मुख्य क़रीब डेढ़ क़रान होता था।^३ बामसी ने तरबूजे को 'हिंदुमाना' कहा है।^४ बाबकल फत खावाद का तरबूजा प्रसिद्ध है। बुबानी का रस घल्ल' बताया गया है। रस के कारण ही अकबर के समय में इस 'ख़र घास' भी बढ़ते थे। बाबकल कुमारीं प्रादि पहाड़ी प्रदेशों में यह अधिक होती है।

नारियर (२१४५) [सं० नारिकेल] का उत्प्रेषण मराठों तथा मेवा के व्यापारी से संबंधित पत्र में आया है किन्तु कहीं-कहीं उदाहरण भी दिया गया है—'जो मरकट कर होत नारियर तैसी इहाँ घमाभी' (१६२५)। इसके अतिरिक्त गरी (१६२५) तथा खोपरा (८२६ [सं० खपर] शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। नारियल के अन्तर के मुसामम पूरे को घास भी बरी करते हैं। सबसे नारियल की मिट्टी मेवा में भी होती है। महाभारत तथा सुधुन में नारिकेल का उल्लेख है। बाघ ने भी विष्णुपट्टी के फलों के वृक्षों में नारिकेलों का उल्लेख किया है।^५ प्रादि अकबर की इसका बृहत्त नाम 'बीजे-हिन्दी' बताया गया है। इसके विभिन्न उपवासों का विवरण भी है, जैसे कच्चे नारियल का पानी पीते थे पकने पर बरी खाई जाती थी घी उसके जिलके से चम्मच प्यासे व चुंबे बनाए जाते थे तथा घास से रसो बनती थी। एकल नारियल को दो भाँकों वाले से बेहतर मानते थे।^६ घास भी नारियल इन सब भाँकों में आता है। यह समुद्र तट के निकट अधिक होता है। इसका तेल भी निकाला जाता है। सूरदासर से केवल नारियल की बरी के बारे में ही पता चलता है।

१२४—अंगूर के लिए सूरसागर में दाख (८२६ ८३) [सं० दाखा] शहर प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ मुनक्का तथा किटमिट भी होता है। इस अर्थ में भी यहाँ यह शब्द दिया जा सकता है। पत्र ८३० में 'दाख' तथा 'किटमिट' दोनों का उल्लेख साथ दिया गया है। अतएव यहाँ अंगूर का अर्थ ही अधिक उपयुक्त होना अंगूर को ही सुझाकर किटमिट व मुनक्का बनते हैं। अकबर के समय में आपाइ से साबन-भाँवों तक अनेक प्रकार का अंगूर होता था। कश्मीर से भी अंगूर आता था जो एक शम में आठ डेर मिलता था।^७ बिदेह से आने वाला अंगूर काला तथा अछेब दो प्रकार का होता था। बाबकल भी अंगूर कश्मीर तथा काबुल प्रादि स्थानों से मंगाया जाता है तथा बरसात में अधिक मिलता है।

अंगूर के समान ही अँहो फलों में सेब (८३) का स्थान है। मुगल राज्य में कई

१—बलियार, पृ० १३; जमुनी, भाग १

२— " " २३

३— " " २३

४—ब० श० प्या, १५६।३, 'बी हिंदुमाना बामसी बीरा'

५—हर्ष ला० भा, पृ० १५६

६—प्रादि भा, पृ० १३१

७— " " पृ० १३३

जाता है, जैसे संतरा नासपाती भीजी बामुन घनग्लास फलसा खरीझ बेर, बनुर तथा धंवीर । पचावत में मूरसावर के नागों के अतिरिक्त ऊपर दिए हुए प्रायः सभी नाम मिल जाते हैं जैसे मीरा 'सबाकर (खरीझ) 'तुरंग' (बड़ोतरा) 'नारंग' 'तुल' (शङ्खुत) 'बीर' (बेर) व 'निर्दबी' (नीचा) खोहारा आदि । इन फलों के बूटों का वर्णन सिद्धन हीप की बाटिकाया क बज्जन में है ।^१ पचावती तथा सखियों का बालिका में जोड़ा करने के प्रथम में भी अनेक फलों के बूटों की सूची है । इनमें ऊपर बताए गये फलों के अतिरिक्त 'बांजु' तथा 'महुब' नाम भी मिलते हैं ।^२ 'नायमती-पचावती' विवाह खख (४३३ ४३८) में अनेक फूल व फलों की बर्णना है तथा बाबसाह-नीच^३ खंड में भी मीरा भर कर बनाये गए कुछ फलों का वर्णन है । इस प्रकार मूरसागर में झूटे हुए प्रायः सभी प्रधान फल पचावत में मिल जाने से यह स्पष्ट है कि उस समय आज के प्रायः सभी फल होते थे ।

भारते फलबारी की फलों की सूची भी इसी बात का अनुमोदन करती है । बिदेसी तथा हिन्दुस्तानी फलों की घनग-अमक सूची है तथा सूखों पर भी प्रकाश डाला गया है । इनमें ऐसी फलों में अमघास कमला (मीठी नारंगी) बेर समुतफल (नासपाती) धंवीर तुल सबाकल खिरनी महुभा तथा बनुर और बिदेसी फलों में बालुबुखारा धंवीर खुहारा खड्गानु (पाइ) बालूचा आदि फल मूरसापर व बंशित फलों के अतिरिक्त मिलते हैं ।^४

हर्षचरित में उल्लिखित फलों से भारत के प्राचीन फलों का अनुमान होता है । इनमें झाडा बाकिम बनुर पाइ^५ नारिकेल केला^६ बामुन तथा सबाकल (खरीझ) आदि नाम प्रमुख हैं । मुगल राज्यकाल में तरबूजा खरबूजा सेब अमकल तथा नासपाती आदि जैसे कर्त पान फल के प्रमुख फलों का यहाँ प्रचार हुआ । बाबर कुछ रोष्ठ खरबूजे के बीज काबुल से लाया था जो उसने अपने साबरे के बाग में लगाये थे । बीजपुर के अनार उस समय प्रसिद्ध थे ।

१—य हा क्या, ३४

२—य स क्या, १५७

३—य हा क्या ५४३

४—भारते फल, पृ १३४, १३३ १३७

हिन्दुस्तानी मोठे फल—(१३३) आम—१ —४ आम—बर्षा

ऊल—२—१ आम—जाड़ा

केला—२—१ आम—बर्षा

अनार—प्रसिद्ध—५ १ आम—बर्षा

सदाफल—१—१ आम—सदा

खरबूजा—प्रसिद्ध—४ आम—मीठ

तरबूजा—१ २—१० आम—बर्षा कार्त

नारियल—१४ आम—खरब

५—हर्ष सां फ, पृ ३३

६—हर्ष सां फ, पृ ७१

७—हर्ष सां फ, पृ १८३

८—भारत, भाग १, पृ १०

सट्टे फल

११७—कुछ सट्टे फलों के नाम भी उल्लेखनीय हैं। प्रायः तरकारियाँ बनाने की विधि में ही इनका उपयोग बताया गया है। यहाँ या बुझा में इमली (१८३१) [च प्रमलफल] की बटाई वाली गई थी—यहाँही इमली बई बटाई। केने की तरकारी में करवेंदा करौदा (१८३१) 'दे करवेंदा हर्दि रंग नीने' (८५६) से सहृपन लाया गया था। 'राइ करौदा' (परि १५३) का वर्णन भी है। मिपाटी के भोजन में भी घाम नीयू, कटौदे घादि के घाघार की ओर ध्यान आकषित किया गया है—'मिनुधा सूरज घाम घालानो कटौदन की रवि ग्वाटी' (८५३)। इनमें सबसे अधिक महत्व मिनुधा मिनुधानि (८५६ परि १५३ (८३१) का है—घररख घब मिनुधानि ठैई रवि (१८३१)। उस समय छाती में आँवसे (१ १५) [च घामलक] भी डालने की प्रथा थी—घररख और घाँवसे सेने' (१ १५)।

घररख के समय में इन सभी फलों का कुछ प्रकार था। इनके घालाया कमरख का नाम घाईनेघररखी में और मिलता है। नीयू कागली तथा एठ प्रकार का बर्ष घररखने वाला भी बताया गया है। पचावत में भी इन सभी के साथ कमरख का नाम भी मिलता है। 'बमीरा 'बलवल' तथा 'सुरेय' बिशौर घादि नीयू की फिसों का उल्लेख भी है तथा कटौदे की उपर्युक्त फिस 'घम-कटौदा' की बर्षा भी है। इमली के लिए कागली ने 'हैबिली' या 'हैबिली' उल्लेख प्रयुक्त किए हैं।

घामलक भी ये सभी सट्टे फल पाए जाते हैं। इनमें नीयू के अनेक उपभोग प्रचलित हैं। तरकारी सब्जत घादि में काम में आने के साथ ही इसका अचार भी लोगों को अत्यधिक प्रिय है। यह कागली कठ तथा बिनीरी तीन प्रकार का होता है, वैसे कि घाईने-घररखी में बताया गया है कि घाघ भी नीयू की एक किसम ऐसी होती है जिसके पेड़ पर घाघ घररख लगे रहते हैं।

१—हर्ष लां घ, घ १५६, विन्धवलय के कुलों में बमीरी नीयू 'बमीर' के पेड़ का उल्लेख भी है।

२—हैबिली एयू नीयू ह पाणिनि घ ११७ नेरेय में लिखता डालते थे जिसमें घामलक स्वभावात् होता ही है।

३—घाईने घ घ १३९—विन्नुस्तानी सट्टे फल—नीयू—घीघ्य घ—१ घाम आँवला—घीघ्य—प्रतितेर—१ घाम।

सट्टे मीठे फल—इमली—घीघ्य—प्रति तेर—२ घाम कमरख—घररख—घ—१ घाम। करौदा—बर्षा—प्रतितेर १ घाम

घ—घ स घ्या, घ १३९ १३, १ 'नवरंग' नीयू सुरेय बमीरा। घी बाघाम बट बमीरा।

'पलगत सुरेय सराकर बदे, नारंग घति राते रत बदे।' 'करे दूत कमरख घी मिर्जो, राय करौदा बैरि बिर्जो।' १८७। 'बोई बिर्जो'

५—घ स घ्या, २५ 'मास वात घनि हँवली।' १८७ 'बोई बँबिलि बोई मनुष्य लखूरी।' 'बोई बँवरा बोई बर करौदा'

हैं। प्रायः तथा करीब का प्रकार व मुख्य ही धनिक बनता है। करीब लाभ तथा हरे रंगों का होता है तथा इसका कटीसा गड़-सा होता है पकी हमली का उपयोग प्रायः भवाई के रूप में ही किया जाता है। हमली का कुछ जूब बना और बड़ा होता है।

मेवा

१२८—सूरकाजोम प्रचलित मेवाओं का ज्ञान भी उपयुक्त पत्तों (८२६ ८३) से हो जाता है। फलों की मुख्य सम्भावनी के साथ ही मेवाओं के नाम भी दिये गये हैं। मेवा (८२) [छा मेवा] शब्द ही सूरसागर में प्रयुक्त हुआ है—‘यस्य मेवा बहु भाँति भाँति है पट्टरस्य निष्ठा’।^१ बिदेही उद्गम होने के कारण स्पष्ट ही है कि सूखे फल खाने की प्रथा बिदेही सम्पर्क का प्रभाव थी। सूरसागर में प्रायः सभी प्रचलित मेवाओं के नाम मिलते हैं—

किस्मिस (८३) [का किस्मिस]

बबाम, पिबबबाम (८३ १ १४) [छा बाबाम]

पिस्ता (८३) [छा पिस्ता]

चिरौली (८२६)

चिरारी (१ १४)

गरी (१ १४ ८३०)

कारिक (८२६ ८३)

छुहारे (८३)

पकवानों में भी मेवा और कपूर आते थे—बोम्ब वूँचे गाल वगैरह मेवा मिर्ची कपूरनि पूरी।^२ कुछ प्रमुख मेवाओं की कमी की ओर ध्यान आता है जैसे—‘यस्योद [छा यमोद] चित्तगोबा [छा चित्तगोबा] मलाना (मुगा हुआ कमलकट्ठा) तथा कानू [छा कनी = बछ्छा टेढ़ापन]। प्रायः यमोद की हिन्दुस्तानी सूखे फलों की सूची में गारवस पिबबबूर यमोद चिरौली तथा मलाना धारि नामों के उल्लेख से भारत में पैदा होने वाली इन मेवाओं का पता चलता है। ईरान धारि देशों के फलों की सूची में छुहारा किस्मिस भाबबोद (मुलका) बबीर बाबाम पिस्ता और चित्तगोबा धारि प्रचलित मेवाएँ हो गई हैं।^३ बास्तब में फलों के साथ बाहर से ये भी गंगाबाई जाती थी।

१२९—पद्यावत में फलों के वृक्षों में कपूरि, ‘बाबाम’ ‘यमोद’ ‘किस्मिस’ चिरौली’ ‘छुहारा’ चिरौली का उल्लेख है।^४ बाबबोद के लिये बनाए गए विविध प्रकार के

१—छा जी, प्र १२ अ १६ कातुल लुबी एकावली के दिन सिद्ध्या प्रायः के वृक्ष को देवता रूप में पूजती हैं तथा बेर, सिन्धुड़ी व जल चढ़ाती हैं। कार्तिक शुक्ला नवमी के दिन भी इसकी ब्रह्म रूप में पूजा होती है।

२—मावत, बाल १३३ ‘विविध भाँति मेवा पकवाना’

३—प्राग्नि अ, प १३२, छुहारे के लिए पिबबबूर प्रयुक्त हुआ है।

४—प्राग्नि अ, प १३६, १३७ बिदेह से आने वाली प्रमुख मेवाओं के मुख्य इस प्रकार थे—बाबाम—प्रतिसेर—११ बाग। पिस्ता—प्रतिसेर—२ बाग। चित्तगोबा—प्रति सेर—३ बाग। छुहारा—प्रतिसेर—१ बाग। किस्मिस—प्रति सेर—२ बाग।

५—प० सं अया, प० २३ ‘सी बन तार कपूरि’

६—, , १४, १४३।

भ्यंजनों में भी कई तरह की सेवा करने का वर्णन मिलता है,^१ किन्तु सूरसागर के समान ही प्रचुरोट भित्तगोत्रा याचि कुम्भ वतमान सेवाओं का समान पद्यावत में भी है। वर्तमान समय की सबसे अधिक प्रिय सेवा काजू का उत्सव तो धानि अफ़जरी में भी नहीं है। इससे यही अनुमान होता है कि काजू का प्रचार बाय में हुआ है।

धायकन भाड़ में सेवा लाई जाती है किन्तु मंहगी होने के कारण यही वर्ग के शाव पत्रावों में ही इनकी स्थान मिल पाता है। पहले के समान भाव भी बहुत-सी सेवाएँ काबुल भादि स्थानों से आती हैं। भारत में प्रचुरोट के पेड़ पहाड़ी जगहों जैसे कुमामू पड़वान हिमाचल प्रदेश में अधिकता से होते हैं तथा काजू बहिष्ण भारत में होता है। कारमीर भी कम तथा सेवाओं के लिए अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

सरकारी

११०—सूरसागर में सरकारी के पर्यायवाची कई शब्द मिलते हैं। इन शब्दों के अर्थों में थोड़ा-सा भेद प्रकरण किया जाता है। सरकारी (१५१) [छ० सर + कारी] वह चीज को कह सकते हैं जिसके बड़ बटन पत्तियों फूल अथवा फल पका कर खाये जाते हैं। शोबज्ज-सोसा प्रसंग में अशोरा निवेद्य के लिये विविध प्रकार के भ्यंजनों के साथ सरकारियाँ भी बनाती हैं—महरि करति अथ सरकारी। बोरति सब विधि न्यायी-न्यायी (१५१) प्रायः पकी हुई सरकारी को साखन (१ १४ १८३१) [छ० समबद्ध-यकी सखानेसर सरकारी] अथवा भाजी (१ १४ १८३१) [हि० भाजना भूजना] कहते हैं। कुम्भ-भ्यंजना के विलसिने में इन तीनों का अधिक प्रयोग हुआ है—साखन लक्ष्म कपूर सुवासत। स्वाय मेत सुन्दर हरि सासत (१ १४) या 'बार नटोप बरित रत्न के। भरि सब साखन विविध अन्न के (१८३१) अथवा बेसन साखन अधिकी भावर (१८३१)। इसी प्रकार 'भाजी शब्द का भी कई बार उल्लेख हुआ है—'मोटे तेज बना की भाजी' (१ १४) अथवा 'भाजी भली मति बस कीन्ही (१८३१) हाथ वह सरकारियों के बनाने का वर्णन है। धायकन बावतों भादि में कभी कभी इसी सरकारियाँ बनती हैं। जो प्रायः जो सीम सरकारियाँ बनाने का रिवाज है। तेस भादि में मुनी सरकारी के लिए भाजी से ही मिलता-जुलता शब्द 'मुजिया' बोला जाता है।

पते वाली सरकारी प्रायः साग (१८३१) [छ० शाक] कहलाती है। सूरसागर में भी इसी अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है—साग बना मरुता बोरई (१८३१)। प्रथम स्वल्प के बिदुर प्रसंग में साग-पत्र अथवा साग (११ २४४) [छ० शाक + पत्र] सरकारी के सामारख अर्थ में भी लिए जा सकते हैं—'कीरव-काज जसे रिपि सायन साक-यन मु असाय' (११) 'पटरस भ्यंजन छोड़ि रखोई साग बिदुर बर बाय' (२४४)। यही पर 'साय' अथवा 'साक-यन' सामारख अथवा निरुपिण भोजन की धोर भी संकेत करता है। सागकन का 'साग-यत' भी इसी भाव को व्यक्त करता है। साग के ये दो अर्थ प्राचीन समय में भी थे। अष्टाध्यायी में 'भास्य' पत्रावों की सूची में 'सूय' (पकी हुई बातों जैसे मूय तथा माय का रस) 'पयस' (मांस) तथा शाक (सरकारी) बताये गये हैं।^२ अथ स्वल्प पर सुन्दर भोजन के साथ खाये जाने

१—व स० प्या०, ५५। १ 'तहरी मारि सीनि धीर वरी। परी चितौजी की सुरहरी।'

२४६।४ 'मारिपर बाव धनुर दोहरे'

२—इतिहास एन जीव इ पाणिनि, पृ० १०

बाने प्रायः पदार्थों में शाक (पत्तेदार तरकारी) 'माषी' (पकी हुई तरकारी) तथा 'सूप' का घस्नेस हुआ है ।^१

जामसो ने 'तरकारी' तथा साग का प्रयोग किया है^२ तथा तुलसी की तन्त्रावली में भी साग सम्बन्धित है ।^३ यहाँ भी साग संभवतः पत्तेदार तरकारी के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है । वर्तमान समय में प्रायः तरकारी तथा साग सम्बन्धित प्रचलित है । तरकारी कच्ची तथा पकी दोनों प्रकार की तरकारियों को कहा जाता है तथा साग प्रायः पत्तेदार को । एक अन्य सम्बन्ध 'सब्जी' [छा = हरी तरकारी] भी सुनने में आता है ।

तरकारियों के नाम

१३१—मोजन तथा ब्यौनार से संबंधित पत्तों (१ १४ १८३१) में ही विशेष रूप से तरकारियों के बहुत से नाम एक साथ दिये गए हैं । कहीं-कहीं इनके पकाने की विधि तथा अन्य विशेषताएँ बताने का भी प्रयत्न किया गया है । यह नाम इस प्रकार हैं—

(१) बनकोरा (१ १४) । यह नाम स्पष्ट नहीं है । घाईने अकबरी की तरकारियों की सूची में बखिर यह 'ककोरा' या 'बनकरेश' नामक तरकारी हो सकती है ।^४ ककोरा सम्बन्ध भी मिलता है । यह संभवतः कटीला परबल या खेकटा नामक तरकारी है । बंसी खेक (१८३१) । मे 'ककोरा' शब्द भी इसी अर्थ में बोला जाता है ।

(२) पिंडीक (१ १४) । इस तरकारी का मानकन नाम सुनने में नहीं आता है ।

(३) चिचिडी चिचिडी (१ १४ १८३१) । इसकी बेश होती है तथा फल बारीबार, लम्बा एवं पतला होता है । नांव में कभी-कभी जोड़ इसकी कम्मियों को दीपक दिखाते हैं जिसे बहुत जल्दी से बड़ जाने पर घाईने अकबरी में 'बबेडा' नाम दिया है तथा यह एक सेर दो बान का दिखाता था । मानकन भी इसे 'बबेडा' बबेडा बबेडा कहते हैं । यह बर्बा जलु में होता है ।

(४) सीप (१ १४) । मानकन की प्रचलित तरकारियों में इसका स्थान नहीं है ।

(५) पिंडारु (१ १४) । घाईने-अकबरी में पिंडारु नाम मिलता है । उसमें लिखा है कि इसकी बेश ऊपर बड़ा बी जाती है, पत्ते पान के आकार के होते हैं तथा सब खोब कर पकाई जाती है ।

(६) कोमल मिंडी (१३१४) । यह मानकन की प्रिय तरकारियों में है । यह प्रायः घाईने और बर्बा जलु में होती है । मिंडी मुलायम ही अन्धी होती है और कि सूरसागर में भी स्पष्ट कर दिखा गया है । मिंडी सर्वप्रथम आरतनर्प में ही बंगली बबेडा में उगती हुई पाई गई थी । मिंडी को 'रामतरोई' भी कहा जाता है—'बीरा रामतरोई' तामे । अठथिनि खिच बंदुर जिन बामे । कुछ स्वामी में रामतरोई सम्बन्ध लोकी के अर्थ में बोला जाता है ।

(७) सुरन (८५६, १५३४) [छं सुरन] उस लिखा गया था—'भूरन करि ठरि । इसका दूसरा नाम 'बमीरु' है । और कि नाम से ही स्पष्ट है, यह बमीर के संकर होता है

१—इंडिया एंड नोन हु पाणिनि, पृ ११

२—य स ग्या , २४८२ 'मांति नांति सीमो तरकारी'

३—मानस, बाल ७४। 'संबत लहस मुलपल जाये । सागु जाइ सत बरस रंदाए ।'

४—घाईने छ , पृ १३७, फल वाली सब्जी तरकारियाँ पकाकर खाने वाले वाले फलों के नाम से भी गई हैं ।

५—कु० बी , प्र १९, अध्याय १३

तथा इसका आकार बड़े से मिमता-मुलता है। यह जरपरा सा होता है इसलिये इसकी प्राप्ति आसकर पकटे है। कहीं-कहीं शिवासी के दिन जमीकंद खाने की प्रथा है। हृषिकेश में उत्तिष्ठित तरकारियों में 'सुरखकंद' की बर्षा है।^१ धार्मिककवियों में अचारों की सूची में 'जिमीकंद' दिया गया है।

(८) सोरई (सरस) (१८३१) की बेल होती है। यह भी प्रायः गर्मी व बरसात में अधिक होती है। इसकी तरकारी इसकी मानो जाती है और सीनी के समान ही बीमारी के बाद पच्य में दी जाती है। धार्मिककवरी में एक घेर सुरई का मुख्य डेढ़ नाम बताया गया है^२ तथा इसके अचार आसने का भी उल्लेख है। बायसी ने सुरई तथा जर्बड़ा को बीरा देकर खौंकने का उल्लेख किया है।^३ प्रायः भी सुरई, जर्बड़ा तथा सीनी को बीरा आसकर खौंकने की प्रथा चल रही है।

(९) सेम (१८३१) [छं शिवा शिम्बिका] की सत्ता होती है तथा सजेव व हरी दो प्रकार की फलियाँ होती हैं। बाड़े की तरकारियों में सेम का विशिष्ट स्थान है। धार्मिककवरी में 'सेव' प्रतिघेर डेढ़ नाम की बताई गई है तथा इसके वर्णों होने का उल्लेख भी है। पद्मावत में भी 'सेव' शब्द ही मिलता है।^४

(१०) सीगरी (१८३१) सूजी की फली को कहते हैं। सेम तथा सीगरी पकाने का बर्णन इस प्रकार है—'सेम सीगरी खौंकि भोरई'। 'भोरई' संभवतः 'भोस' (तरकारी के माड़े रसा या शोरबा) के अर्थ में आया है। आसकल सेम तथा सीगरी प्रायः सूजी ही बताई जाती है।

(११) मंटा (१८३१) [छं० बंय] का भरता [देरा] खटाई आसकर बनाया गया था—'भरता मंटा खटाई बोन्ही'। प्रायः में घून कर बैंगन का भरता प्रायः भी बनाया जाता है तथा खटाई भी आसने का विधान चल रहा है, इस प्रकार आलू का भी भरता या 'बोन्हा' बनाते हैं। 'मंटा' के लिए अधिक प्रचलित शब्द बैंगन है। जिससे इसी रंग का नाम 'बैंगनी' या 'बैंगनी' पड़ा है। आसीय बोली में 'मंटा' भी कहा जाता है। यह प्रायः सत्त भर ही होता है। धार्मिककवरी में भी 'बैंगन' प्रतिघेर डेढ़ नाम दिया गया है।^५ वह प्राचीन काल की तरकारियों में से है क्योंकि हृषिकेश में 'बैंगन' की बर्षा है।^६ इसकी उत्पत्ति भारत में ही हुई थी। पद्मावत में भी बैंगन बनाने का रस्य मूरतानर से मिलता हुआ है।

(१२) परबन (१८३१) भी सत्ता पर ही होता है तथा भरसो व बरसात में फलता है। धार्मिककवरी की सूची में सबसे अधिक महंगी तरकारी 'परबन' ही है—एक घेर बारह नाम का। आसकल भी महंगी तरकारियों में ही इसकी विमती है। बीमारी के बाद परबन भी दिया जाता है।

१—हृषिकेश सा, पृ १८३

२—धार्मिककवरी, पृ १३९, १२२

३—यं सं ध्या, २४८५ 'सोरई शिपिडा जिबसी तरे।

बीरा धु गारि कले तब बरे ॥'

४—यं सं ध्या, २४८५ 'रीथे टाड़ सेंय के करार।'

५—धार्मिककवरी, पृ० १३९

६—हृषिकेश सा, पृ १८३

७—यं सं ध्या, २४८५ 'सुबक लाह के रीथे मंटा।'

(१३) फॉगफरी (१८३१) मोनिका फांगी (१ १४) 'बविर लमासु खोनिका फांगी (१०१४)। धान की अधिक प्रचलित तरकारियों में इसका स्थान नहीं है।

(१४) टेंटी^१ (१८३१) करीम के फल पर लगे बाने गोम छोटे फल को 'टेंटी' कहते हैं। जब प्रवेश में फली टेंटी 'पेचू' का प्रकार धान भी पकता है। प्रत्यक्ष इसके बाने का रिवाज नहीं है। यह वहाँ की स्थानीय तरकारी माना होती है। करीलाफल (१९८) 'मिहि मधुकर प्रभुज रस बाब्यो क्यों करील फल मावै (१९८) शब्द भी टेंटी का सूचक है।

(१५) डेंडस (१८३१) का वर्णन इस प्रकार मिलता है—'पोह परबर फाँव फरी पुनि ॥ टेंटी डेंडस खोसि कियो पुनि। वर्तमान समय में प्रचलित 'टिबे' को इस धान भी डेंडस कहते हैं।

(१६) कुनरु (१८३१) [छं कुनरु] परबल के आकार की एक तरकारी है। पकने पर इसका फल लान ही जाता है। इसकी बेल क पत्ते तुरई के पत्तों से मिलते हैं। बरसात में इस पर फल आते हैं। इसको संस्कृत में 'विम्ब' या 'विम्बक' भी कहते हैं। साहित्य में लाल विम्ब-फल होठों का प्रसिद्ध उपमान है। हेमचन्द्र ने विम्बफल के लिए 'कुंदीर' शब्द भी प्रयुक्त किया है।^२ धार्मिकग्रन्थों में 'कुंदीरी' शब्द दिया गया है तथा मुख्य प्रति सेर डेढ़ दाम बताय गया है।^३ फर्मावत में भी साहित्य परबल व कुंदर धूलने का वर्णन मिलता है।^४ प्रायश्चना कुंदर की तरकारी कम हुई बरों में बनाई जाती है।

(१७) ककरी (१८३१)। 'ककरी बाव बिबीडा छीर' या ककरी ककरी धाव ककना रयी। इसकी बेल ककरी को तरह की होती है जब ककरी की तरकारी भी सुन्दरी हो गई है।

(१८) करेखा (१८३१) की भी बेल होती है। इसका फल कबवाहट लिये हुए होता है, घट-कटाई बाकि काम कर इसे मूलते हैं और बड़ी छत्र के लोग ही प्रायः अधिक खाते हैं यह शीघ्र तथा बर्षा में अधिक होता है। धार्मिकग्रन्थों में करेखे का नाम प्रतिसेर डेढ़ दाम दिया गया है।^५ सूरसागर के वर्णन 'मजे बनाइ करेखा कीने। लीन लबाइ तुरत छरि लीने' से पद्या बत का वर्णन 'कबई काड़ि करेखा काटे। घासी मेलि तरे किए खाटे' अधिक स्पष्ट व विस्तार से किया गया है। उसमें मांस भरे हुए घाँटे का उल्लेख भी है।^६

(१९) फरी अगस्त (१८३१)। 'फरी अगस्त करी समुद सम' से इस फली के पीठे होने का अनुमान होता है। यह तरकारी भी जब प्रचलित तरकारियों में नहीं जाती है।

(२०) अरुई (१८३१) कटाई काम कर बनाई गई थी—'अरुई इसकी पई कटाई। बँवत पटरस बाव बनाई। यह भी जमीन के प्रकार होती है। इसकी बड़ व पत्ते दोनों की तरकारी बनती है। पत्ते से 'फटीरा' नामक व्यंजन बनता है। पद्यावत में 'अरुई' सबबा बेंसन

१—क० बी, प्र १९, पृष्ठा ११ जब प्रवेश में टेंटी संबंधी अनेक लोकोलियाँ प्रसिद्ध हैं, जैसे 'कामल में मेवा बई, जब में टेंटी खाई।'।

२—क० बी, प्र १९, पृ १३ (दे ना ला १।३६-हेमचंद्र)

३—धार्मिक प्र, पृ १३६

४—प स प्या, १४५।१ 'परबर कुंदर धूलने काड़े। बहुतों यिमें तुरतुर के काड़े।'।

५—धार्मिक प्र, पृ १३७

६—प स प्या, १४८।६, १४६।९ 'मीठ जो मांस समुद सो मीठा।'।
ये कर दूज बाँव सी मीठा।'।

बाल कर' मुद्रया बनाने का बणान है।^१ मुद्रया धातु भी इस प्रकार बनाई जाती है। धातु 'धरई' सम्प्र से 'मुद्रया' सम्प्र धातु प्रचलित है।

(२१) पेठा (१८३१) कई प्रकार का बनाया गया था—'पेठा बहुत प्रकारानि कीन्हे। तिन सों सब स्वाद हरि सोन्हे। यह भी बेल पर फलता है तथा कुम्हड़े के धाकर का सफेद रंग का होता है। यह आड़े में होता है। धर्म कई तरहकारियों से पेठे का आष धरकर के समय में धातु का।^२ धातुका पेठे की मिठाई बनाई जाती है और छई की वरी में भी इसके टुकड़े बाने जाते हैं। पेठे के पगे हुए टुकड़ों को ही संभवतः सूरसागर में 'पेठापाक' बताया गया है (१ १४)। पर १८३१ में धनेक प्रकार का पेठा बनाने से भी यही तात्पर्य हो सकता है।

(२२) खीरा (१८३१)। यह फल बरसात के दिनों में लगा पर होता है। सूरसागर में इसकी मिलती तरहकारियों में है। प्रत्यक्ष इस सूची में भी उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। धातुका यह धाम फल की तरह कच्चा ही खाया जाता है तथा इसका रसता भी बनाते हैं। हर्षचरित में खीरे को 'बपुष' कहा गया है।^३ धातु के धरकरों में खीरे न बकड़ी का धातु बताया गया है।^४ बायसी में बालबा खीरा' मस मर कर तैयार किया हुआ बताया है।^५

(२३) रतालू (१८३१) सुंदर रंग रतालू राती। गरि गरि सोन्हीं धरहीं राती। इस चित्र से रतालू के रंग तथा उस कर बनाने पर प्रकाश पड़ता है। यह भी कता बनता है। कि रतालू गर्म न ठण्ड का बना धातु स्वादिष्ट होता है इसका पीया धातु न टकरका के समान होता है। यह जमीन के धातु से निकलता है।

(२४) ककरी (१८३१) की भी लोरे की तरह की बेल होती है। यह परमी में करबुजे के साथ ही विकती है। प्रायः रंग या धर्म धातुओं के रंगों में तट पर करबुजा तरहका न बकड़ी बनाई जाती है। धातुका पतली ककड़ी फल की तरह खाई जाती है। मोटी न बड़ी ककड़ी की तरहारी भी बनाते हैं। सूरसागर में तरहकारियों के साथ ही ककड़ी का उल्लेख है। हर्षचरित में प्रती कुटुम्बियों के घरों में राजमाप बपुष ककड़ी लोकी तथा कुम्हड़े की बेलें बड़ी होने का वर्णन है।^६ गांभों के घरों में तरहारियों की लजाएँ इस प्रकार बड़ी हुई धातु भी दिखाई पड़ती है। सब ककरी करई' (१६१४) से कभी कभी ककड़ी निकलने की ओर संकेत है।

(२५) पेछा (१८३१)। 'कितिक आति केनाकरि सीने। है करैवहा हृदि रंग सीने' वर्धन किया गया है। फलों के चित्रितों से केने का चित्र किया था चुका है। इसकी तरहारी धातु भी कुछ इसी प्रकार से बनाते हैं।

१३२—स्फुट प्रसंगों में कुछ धर्म तरहारियों के नामों का उल्लेख हुआ है—

(२६) मूली। अमरगोव प्रसंग में घोषियां धर्म करती हैं—'मूली के पातलि के वर्धन को मुक्ताह्वन है। मूली जमीन के धातु से निकली जाती है। यह कच्ची न पकी हुई दोनों तरह से खाई जाती है। मूली के घरों का रंग भी बनाने है। धातु के धरकरों की धातुओं तथा

१—ब० स० ध्या १४५।३ 'धरई कहुं भल धरिहुन पांठा'

२—धातु ध्या, पृ १३७ पेठा प्रति लेख ८ धाम था।

३—हर्ष सां ध०, पृ १५३

४—धातु ध्या, पृ १२६

५—ध्या स० ध्या०, १४९

६—हर्ष सां ध०, पृ० १८४

हाक भाभी की सुचियों में मुसी का नाम भी है ।^१

(२७) कुम्हाड़े, कडुवा, कुपमांड (१६ व १७१ ४५२०) [सं कुपमांड] योर्बर्ग पूजा के निमित्त बनाई गई मिठाइयों में कुम्हाड़े की मिठाई भी थी—‘कडुवा करत मिठाई बृत फर’ (१५१)। इसके अतिरिक्त भ्रमर-गीत के प्रसंग में कुछ कहावतों में उल्लेख हुआ है—‘भाए बोन सिबाबन पांडे—सूरदास तीनों नहि उपकत भगिया नाम कुम्हाड़े’ तथा उधै रासियै यह बात—‘बोन धनि कुपमांड लैसो प्रभाभुस न लमात । कुम्हाड़े का फल भी मिठै या तरबुस की तरह बेस पर घाटा है जो कि फले पर पीसे रंग का हो जाता है। घीम तथा बर्पा जलु में यह अधिक होता है। पका हुआ कुम्हाड़ा काफ़ी दिनों तक बरतन नहीं होता है। घाईने प्रकवरी में कज्जू’ प्रति सेर दो दाम का बताया गया है। बापसी ने भी कुम्हाड़ा कई प्रकार से बना बताया है। घाबकन इसके ‘कडु’, ‘गोयाफल’, ‘कासीफल’ अथवा ‘छीठाफल’ आदि अनेक नाम प्रचलित है। कुम्हाड़े की गिनती सस्ती तरकारियों में होती है।

१३३—अपर्युक्त प्रचलित तरकारियों के अतिरिक्त कुछ फलों या सब्जियों का ‘घाबकन’ भी बताया गया था—

(२८) फूल सखिवना (१८३१) [सं सोमाबन] ‘फूले फूल सखिवना छेकि । मन खि होइ नाम के भौके । इषवरिन में बन-धाम की बाड़ियों में सगे गुहमों में सिधु’ (सोमाबन) का उल्लेख भी है ।^२ सूरदास तुलसी बंगक तथा एरक आदिके समान ‘सिधु’ भी प्राचीन समय में प्रचलित था। घाईने प्रकवरी में भी ‘संहुवन’ का नाम अचारों की सूची में है ।^३ घाब सहुवन की फलियाँ बनाने की अधिक प्रथा है, किन्तु यह तरकारी सबों की साथ प्रिय तरकारियों में नहीं आ पायेगी। इसका बूच बहुत ऊँचा नहीं होता है तथा फूल सखेव रंग का होता है।

(२९) फूल करील (१८३१) [सं करील प्रा फुल]। ब्रजप्रदेश में करील की भद्रिनी बूच दिखाई देती है। घास घास उड़ील मंड तथा हाथरस (मसीक बिला) तक भी करील होता है। इसकी काटेदार फाड़ी होती है तथा पत्ते भी नहीं होते। बंद में छोटे-छोटे गुलाबी रंग के फूल लगते हैं। इसी फूलों की तरकारी बनाने का निर्देश है। यह तरकारी भी फल ‘टंटी’ के समान ही ब्रजप्रदेश में प्रचलित है। कारण स्पष्ट ही है कि करील सही क्षेत्र में होता है। सूरदासजी के समय में इन तरकारियों को खाने की प्रथा अधिक बात होती है, क्योंकि घाईने प्रकवरी में भी करील के फलों व फूलों के अचार का उल्लेख है^४।

(३०) फली पाकर (१८३१) [सं फली]। इसका बूच बड़ा होता है। घाईने प्रकवरी के कटे नीचे फलों की सूची में ‘पाकर’ का नाम भी मिलता है ।^५ अब पाकर की फली की तरकारी बनाने की प्रथा कम हो गई है।

(३१) कचनारुखी (१८३१) [सं काचनारुखी] का बूच फलुत बंद में बैंगनी-से रंग के फूलों से अत्यन्त चित्कार्यक ढंग से भर सटा है। इसकी कलियों की तरकारी बनाने

१—घाईने घ, पृ १२६

२—प० स घ्या, ३४५।१ ‘कहुड नाति कुम्हाड़ा की फारी’

३—हर्ष ला घ, पृ १५३

४—घाईने घ, पृ १२६

५—घाईने घ, पृ १२६

६—घाईने घ, पृ १२७

की तथा धातु तक चल रही है। बाईने धक्करी में भी धक्करी की सूची तथा शाक-भाजी में कचनार का सम्मेलन है।

साग

११४—**प्रायः** सभी प्रमुख सागों (पत्तेदार तरकारी) के नाम सुरदागर में मिल जाते हैं। शाक ही सुरक्षाधीन प्रचलित साग बनाने के रंग का अनुमान भी किया जा सकता है।

बीराई (१०१४ १८११)। यह साग बरसात में होता है जो चिकना व कटोला तथा साग या हरे की रंगों का होता है। इसका फूल लहहर होता है। इसकी 'बीनाई' या 'बीरवा' भी कहते हैं।

सागड़ा (१०१४)। वर्तमान काल के अधिक प्रचलित सागों में इसका स्थान नहीं है। संभवतः इसको ही सागकल 'भाही' कहते हैं।

पोई (१०१४)। इन सागों की बचने का रंग इस प्रकार का—'बीराई' लाल, भूरा पोई। मध्य लेनि निबुधानि निबीई। यह साग भी सागकल दिखाई देता है। कहीं-कहीं इसकी पकीड़ी भी बचाते हैं।

सरसों (१०१४ १८११)। बाई में यह साग होता है। इसका फूल पीले रंग का होता है। सरसों के बीज से 'कचनार' तैल बनता है। सरसों के छेत फूलने पर प्रात्यक्षिक नजर सात होते हैं।

मेथी (१०१४)। बाई में होने वाली मिश्र सागों में से है। इसके बीज का उपयोग पचाने की तरह भी होता है।

तोया (१०१४ १८११)। इसकी पत्तियाँ हारीक सी होती हैं और यह प्रायः मेथी के साथ भी मिला खाता है।

पासक (१०१४) [सं० पासक]। इसके पत्ते बड़े व चिकने से होते हैं तथा बाई में अधिक हावा है। साग के अतिरिक्त पासक की पकीड़ी घीर उपचा भी बनाते हैं।

बघुवा (१०१४ १८११) [सं० बघुवा]। 'बघुवा रसि निबी बु उतासक।' यह प्रायः भी तथा मेथी के छेतों में उग जाता है। साग के अतिरिक्त बघुवा के पत्तों, उपचा घीर पेटियों या-पराटे भी बनाये जाते हैं। यह १८११ में बड़ी में बघुवा बिलाने का बर्णन है—'बघुवा जली भाँति रसि रंगयो। हीम सवाह रस रसि रंगयो।'।

चना (१८११)। 'साग बना मरुता बीराई। बीचा यह सरसों सरसाई। बने का साग सोर बहुत रसि से पाते हैं। यह साग मटर के साग की तरह कच्चा भी खाया जाता है।

मरुता (१८११)। इस साग के पत्ते बीलाई से मिलते-जुलते किन्तु कुछ बड़े होते हैं।

ये सभी साग इस प्रकार बाँके गये थे—'सरसों, मेथी तोया पासक। बघुवा रसि निबी बु उतासक। हीम सरस मिश्र बाँके तेने। धररक घीर बाँके मेने। (१ १८) धातु की कटौत करीब इसी प्रकार में साग बनाये जाते हैं। इनमें से पासक तथा मेथी के साथ में धक्करी धातु भी खाता जाता है। सुरदागर की तरकारियों की सूची में 'बघुवा' का विशेष ध्यान नहीं रखा गया है।

साईने धक्करी में शाक-भाजी की सूची में बीचा पासक बीरवा बीरु, पोई, बघुवा बघुवा तथा बीलाई नाम दिये गये हैं। अंजनों की सूची में एक नाम नाम का बर्णन भी है। यह पासक तोया तथा मध्य सागों से बनता था। इसमें भी, प्याज धररक कासी निर्ब, सोम,

इलाक़ों तथा मिश्रकाल विभिन्न भाषा में बोल कर बग़ाते थे^१। पश्चात् में छात्र छाँकने का उल्लेख है, किन्तु नामों के इतने विस्तार नहीं है^२।

१३५—उपर्युक्त तरकारिया के नामों में कटहल के अंगाम की और विशेष रूप से ध्यान आता है। यह प्राचीन काल में भी प्रचलित था। हर्षचरित में वर्णित विष्णुदास की बृद्धों में 'कटहल (कटहल) भी है।^३ घाईने मकबरी^४ व पश्चात् में भी वर्णित है। धात्र भी कटहल परिचयी उत्तर प्रदेश में कम होता है। ब्रजप्रदेश में कम होने के कारण ही गुरुदास में संभवतः इसका उल्लेख नहीं हुआ है। घाईने मकबरी में गोमो (करमकम) का नाम भी मिल आता है जो धात्रकम की प्रिय तरकारियों में से है। गुरुदास तथा पश्चात् दोनों में इसकी स्थान नहीं मिला है। वर्तमान समय की धात्र धात्रकम प्रमुख व प्रिय तरकारिया^५ फूलपोभी, पांछोभी धात्र टमाटर यात्रर अलबन तथा लकड़कन धात्र बाब व धात्र में प्रचलित हैं। अतः गुरुदास में इनका उल्लेख न होना स्वाभाविक ही है। धात्र तरकारियों में धात्र का स्थान सबसे ऊँचा है। बाब की धात्र तरकारियों में हरी मटर की तरकारी का वर्णन भी गुरुदास में न होने से अनुमान होता है कि इस प्रकार मटर बनाने का ढंग अतः समय नहीं बना था। 'सीकी शब्द का भी अर्थ है। पश्चात् में 'सौधा' परबती धात्र पहाड़ी सीकी की भाषा व एकता दोनों बनाने का उल्लेख है।^६ पश्चिमी उत्तर प्रदेश व राजस्थान धात्र में अधिक होने वाली कमल की बड़ 'मरीका' का जो उल्लेख नहीं है। हर्षचरित में इसको 'सातक' तथा घाईने मकबरी में 'सातक'^७ कहा गया है।

तरकारी पकाने के नाम को व्यक्त करने के लिए भी गुरुदास ने कई शब्दों का प्रयोग किया है—झोंकि झोंकि (१ १४ १८३१) सँबाने सँबो (१ १४) तरि (१८३१) रौंघ्यो (१८३१) कीन्ह (१८३१) तथा धुंगारी (१८३१) धात्र। इन सभी शब्दों के

१—घाईने म, पृ १२

२—म सं ध्या, ५४८।० 'झोंकि धात्र धुनि सीकि धात्र'

३—हर्ष सां म, पृ १८६

४—घाईने म पृ १३६ हिन्दुस्तानी सीते फलों में उल्लेख है। जो कटहल एक नाम में मिलते थे।

५—म सं ध्या, ५४६।४ 'कटहल बड़हल तब संबारे'

६—वी प्रयागनाम कोट—हिमालय गर्वरी, हैदराबाद (सांख्यिक हिन्दुस्तान) फूलपोभी तथा बन्धपोभी पश्चिमी योरोप में ही सर्वप्रथम पाये गये थे और अलबन भी योरोप से ही आई थी। पांछोभी का अस्तित्व वर्तमान है। मात्र धुंगी योरोप तथा हिमालय के पश्चिमी भागों की वेन है। धात्र की उत्पत्ति के स्थान अमेरिका के पीक व चिली नामक स्थान हैं। टमाटर व लकड़कन भी अमेरिका से आई है।

७—सन् १६१३ में सातकवा द्वारा तर टोमस रो को दिए गए मोम में धात्र का सर्वप्रथम उल्लेख है—घाईने म, मोम, पृ १३९

८—म सं ध्या, ५४८।२ 'सी, मू की सीधा परबती। रता कर्ह काटे की रती।'

९—हर्ष सां म, पृ १८४

१०—घाईने म, पृ १३०

मर्ष में घोड़ा सा धातुर है।^१ पदमावत य भी प्रायः ये सभी शब्द प्रयुक्त हुए हैं—'भूमी' 'भूमे' सीन्धी 'रीचे' 'तरे' 'बुगारि' 'कडी' कड़ि धौकि धादि। इसमें से प्रायः सभी शब्द मात्र भी तरकारी बनाने के विभिन्न ढंगों को व्यक्त करते हैं जैसे तसगा भूगना पकाना या रीचना तथा धौकना।

'सीन्धी' (१८११) शब्द एक विशेष प्रकार के खाने के स्थावर व सुगन्ध का सूचक है। सीन्धी शब्द यस भी बोला जाता है। 'पकाधौंधी' तथा झुसीसी (झाँझ) (१८११) विशेषतः अक्षरय सूरसागर के अपने हैं।

५—खांड आदि तथा बूध और सनके अन्य रूप

११६—सूरसागर को साध पदार्थों की सूचक शब्दावली में सभी प्रमुख सीन्धी वस्तुओं के नाम मिल जाते हैं। कनकदेवन शीर्षक पत्र में (७६८) गुर [धं गुड] की बर्णना है—'हाथ छोड़ारी मेसी गुर की। गँगौ गुर (१५६) का निर्बल धनेक विनय पर्वों में ईश्वर संबंधी ज्ञान प्रकटा करम धनिभ्यक्ति के बर्णन की प्रसमर्पता व्यक्त करने के लिए हुआ है। पले के रस को पकाकर ही गुड बनाया जाता है। गुड पकाने की क्रिया का बर्णन या प्रथम स्कन्ध के एक विनय पत्र में (११) किया गया है—'दे मन अजहूँ क्यों न समझारै रस सेने घोटाइ करत गुर, बारि रस है जोई। फिर घोटाए स्वाद जात है, गुर तै स्वाड न होई। कनकदेवन के समय बन्ने का ध्यान घोड़ा की घोर से हटाने के लिए मिठाई दे दी जाती है। गुड को मेसी गुम भी मानते हैं। गुड की बटी को मेसी (७६८) कहते हैं। बाई घेर की मेसी 'झईमा मेसी' और पांच घेर की 'पंचेरी मेसी' कहनाती है। बस घेर की बटी को 'मेसा भी' कह देते हैं। मुदठी से बनाई गई छोटी मेसी मुटिया या 'पिड़िया' कहलाती है। मेसी का शीघ्र सबसे अधिक कड़ा या 'खट' रखा जाता है।

खांड (१ १४, १८११ १९) [धं साण्डन] का उपयोग शक्कर की तरह अधिक होता था—'बीर खांड कुत भावनि लाहू' (१ १४) 'बीर खांड बीचरी सेवारी' (१८११) यन्त्रा घोडा खांड मोटि है राखी (१८११)। यह एक प्रकार की बिना साँझ की हुई शक्कर होती है। झक-रस से ही खांड भी बनती है।

शक्कर शब्द खांड के समान अन्त में प्रयुक्त नहीं हुआ है किन्तु शक्करपारे (८ १) [धं शर्करा-या शक्कर-शक्कर, का० शक्कर] में शक्कर शब्द प्रयुक्त हुआ है। हस्ते पके हुए शीरे से राब बनाते हैं और खी से शक्कर बनती है। प्राचीन साहित्य में राब को 'अधित' कहते थे। शर्मिस्त बीनी के सिने 'शकरा' शब्द प्राचीन समय से ही प्रचलित है। अन्धे क्रिस्व के गुड की घण्टाप्यायी में 'गुडे साधु' कहा गया है^२।

१—य सी० ध्या, १४५५ ५४५ (४) कते [ध०] = ततना—स्टाइनवाच धरवी कोय
५ ५३४

२—यं सी० ध्या०, १३०१४ 'सिपारन सीपि' १४५१० 'साण्डिंकि मुनि सीपि रताप'

३—ईडिया एम् मोन द्वा बाणिनि, ध० १०५१ हर्ष० सी ध०, ५ ६४, १८१

उस समय मिथी मिसरी^१ (७०९ = ०१) अधिकतर दूध तथा दही में डाली जाती थी—'बहिहि बिलोइ सदमाखन राख्यो मिथी सानि चटाये गैदाल' (७ २) अथवा 'तुमही माखन दूध-बहि मिथी हौं ल्पाई' (८३७)। फाग के प्रसंग में 'मवा मिथी बहुत रतन बई सबनि भरि भोस' (३५३३) का वर्णन है। मिथी के पाग से भी मिठाइयाँ तैयार की जाती थीं—'मृत मिथ्यन् सबै परिपूरन। मिथी करत पाग की चूरन। (१५१)। मिथी बानेबार शकर की छोटी टिकियों के रूप में बनती है। यह बच्चों को सदैव से प्रिय रही है। इस खांड तथा मिथी के उपर्युक्त उपयोगों का स्थान अधिकान्त रूप से वर्तमान शनकर या भीनी में से लिया है।

१३७—ग्रन्थ प्रमुख मीठी वस्तुओं में सीरा (८ १ १ १४ १८११) [छा सीरा = दूध से धीर = दूध का सीरा-मीठा सीरा-मीठा मिठाई] भी उल्लेखनीय है। व्यंजनों की सूची में 'सीरा' को स्थान मिला है—'है कर्णो चिरावन सीरा' (८ १) या 'बैवत बनि राखी सीरा' (८ १) अथवा 'सीरा सखी लेहु जखपती (१ १४)। असीमक खेज की प्रचलित ग्रामीण बोली में पानी की तरह पतली सपसी 'सीरा' कहलाती^२ है। योसीरा अथवा सीरा का अधिक प्रचलित अर्थ 'चाखनी' है। यह गुड़ शनकर अथवा खांड को पकाकर बनाया जाता है और कुछ मिठाइयाँ सीरे में डालकर बनाते हैं। इस प्रकार के रस का वर्णन घूरखानर में भी मिलता है—'खेबर अति बिरत बमोरे, खे खांड सरस रस बीरे' (८ १)। इस का रस पखली कड़ाई में पकवने बाने पर 'कबला' दुसरी का 'पाका' तथा तीसरी का 'बासनी' [छा 'चाखनी'] कहलाता है। इससे ही लककर राब ब युक्त बनता है। खिबार के पत्तों पर राब को दाल बेते हैं। उसमें से निकलने वाला द्रव पदार्थ भी 'सोरा' होता है।^३ घूरखानर में व्यंजनों की सूची में 'सखी सीरा' उल्लिखित होने के कारण ज्ञात होता है कि इन स्थलों में पतली सपसी के लिए ही धारा है। चाखनी के अर्थ में पाग माफ (१५१ १ १४) का प्रयोग अधिक हुआ है। पाग के धीर कई अर्थ भी प्रचलित हैं जैसे कड़ाह में एक बार में बितना रस धारा है वह 'पाव' कहलाता है।^४ खांड की चाखनी में पकी सेबाई भी 'पाव' ही कहलाती है^५।

ग्रामीण बोलियों में इन मीठी वस्तुओं को खाचारखया 'मिठाई' भी कह देते हैं। घूरखानर के एक दो स्थलों में मिठाई (८३७) यही अर्थ देता है—'घाछे मोदपी मेनि मिठाई'।

१३८—इस के रस से बनी उपर्युक्त वस्तुओं के अतिरिक्त मधु (८ १, ७ ७) [सं] का भी कुछ प्रचार था—'सब बनि माखन बीं प्राणी। तापर मधु मिथिरी सानी।' (८ १)। यही व मखन के समान धीर में भी मधु डालने का उल्लेख अन्नप्राशन संस्कार में है—'कनक-बार भरि धीर बरी लै तापर नृत-मधु गाह (७०७)। अन्नप्राशन की धीर में घाब तक मधु डालने की प्रथा चल रही है। शहर की मन्दिनों द्वारा एकत्रित किया गया फूलों का रस ही मधु होता है। अतएव स्वास्थ्य के लिए लाभदायक इस वैद्यकिक रस की तुलना ग्रन्थ मीठी

१—आवेष्ट, १, ८१, १४ में मिथी का उल्लेख हुआ है—'अर्ज बहतीरपूर्त वृत्त वय-कीलाल परिध तम्।

२—क भी, प्र ११, प १

३—" " , प्र ८, अध्या २

४—पा घ, प १११

५—क भी, प्र ११, अध्याय ३

६—प सं अध्या ४१ 'कीमूँसि मधु जावह तह माखी'

बस्तुएँ नहीं कर पाती हैं। मिठास भी इसकी अप्रत्याशनीय है। घट 'मधु' से ही 'मधुर' शब्द बना है। प्राचीन काल में भी कोय मधु का उपयोग करते थे। अष्टाध्यायी में साधारण शब्द को 'मीठ' बताया गया है।^१ हर्षचरित में भी 'मधु-वपक' अथवा 'मधु रस' के उल्लेख हैं। यों तब रसका यथा शब्द विगड़ता नहीं है—और वैदिक शास्त्र में इसकी अत्यधिक महत्ता है। आजकल 'शुद्ध रस' ने 'मधु' का स्थान ले लिया है।

सकल के समय में ऊपर की गयी सभी बस्तुएँ प्रचलित थीं। आदि प्रकटरी म मिथी सखे कंद, व सखर तथा लाल सखर के नाम प्रचलित मूर्तियों के साथ मिलते हैं।^२ इनमें सफेद कंद ही सारे देश भर में अधिक काम में लाई जाती थी। शब्द भी उस अवयव जमा किया जाता था किन्तु साधारणतः उपयोग में कम आता था।^३

आज पाँचों में तो अब तक कुछ खाँस तथा बुरा (बापीक पिपी शककर) का प्रचार अधिक है किन्तु नगरों में शानेश्वर सखे शककर ने ही प्रमुख रूप से इन सबका स्थान ले लिया है। मिठाई आदि में पिपी शककर काम में पाती है। 'शककर' तथा 'पीपी' दो शब्द अधिक बोले जाते हैं। शककर की बनी एक मीठी बस्तु बताया भी इसका को पूरा प्रिय है। परन्तु उत्सवों आदि में बगले बाँटने का चलन भी है। शब्द अब पये तरीके से जमा किया जाने लगा है, किन्तु रूप वही आदि में बाल कर जाने का रिवाज उठ-ठा गया है।

दूध और इसके अन्य रूप

११६—कृष्ण-कथा में बूब बही तथा मन्त्राल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्वार्थों के मुद्रिया 'ब्रह्म-परब्रह्म-सिद्धार महर' (१४०) में के कर में गान वए बालक कृष्ण का समय अन्य बालकों के साथ गाये बजाने खेलने तथा बूब मन्त्राल व वही के लिये गोपियों को छेड़न आदि म ही बीकटा था। मात्स्य-बोरी तथा दधि-दान से संबंधित अनेक वर सुरसागर के उत्कृष्टतम पदों में से हैं। मात्स्यबोरी द्वारा उस परम आत्मा की कुछ विरोध आत्माओं पर कृपा तथा दधि-दान लीला द्वारा इन आत्माओं का परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण एवं एकारमता का रूपक खींचा गया है। बृहन्न तथा भोक्तृ की पृष्ठभूमि में आराध्य कृष्ण के बाल-मुसम स्वाभाविक दैनिक क्रियाकलाप के विरुद्ध के विरोध में अनेक पदों में उनकी धार्मिक लक्षित-सामर्थ्य का भी कवि बार-बार ध्यान दिलाता रहा है। बूब वही व मन्त्राल के लिए मां से मन्त्राला गोपिया के पदों से बुरा कर जाता आदि साधारण जीवन के स्वाभाविक विषयों में भी उच्चैर्दार्शनिक परब्रह्म के प्रवृत्त कृष्ण के धार्मिक-रूप का ब्रह्म करने का प्रयत्न किया गया है।

बालक कृष्ण माता यशोदा की मधुमी पकड़ कर मन्त्राले हैं और वही नहीं मन्त्राले देते—

‘बब दधि मधुमी देखि धरे’

आदि करत बटुके बहिं पोहन बाबुकि संभु डरे। (७१)

अथवा—‘मंद बूक बारी काशु, खाँकि दे मन्त्राली

बार बार कहति मातु, जगुमति भंडरनिवा

मैकु रही मात्स्यन बडेँ मेरे प्रानधनिवा।’ (७११)

१—इंडिया एन्ड मोन टु पाणिनि, पृ १०४

२—हर्ष० छा० प्र, पृ १६८

३—आदि प्र, पृ ११८

४—अष्टाध्या, पृ० २१२

फिर कमो दही के पात्र में जलती हुई मक्खनी की जगह के साथ तिरु कुण्ड किसकरी
मृत्यु भी करने समर्थ है ।

(एरी) धार्मिक सौं तृप्ति यवति जसोबा धमकि मयगियां बूमी ।

निरतत साज नसित मोहन पम भरत धटपटे मू मी । (७१५)

कसेने म यनेक प्रकार के व्यक्तियों के होते हुए भी कुण्ड तथा जलराम को माखन-रोटी
ही प्रिय है—

‘कीबत प्रात समय बोट बोर ।

मौखन मौकल बाल म भागत औबत जसोबा-जलमी तौर । (७७६)

प्रश्न—गोपासराह बधि गौगल घर रोटी ।

माखन सहित बेहि येरो मैया सुपक सुकोमल रोटी’ (७८१)

प्रश्न—‘हरि कर राबत माखन रोटी

भनु बारिब सति बैर जानि बिय यहुबो सुबा समुझीटी । (७८२)

छोटे बच्चों को दूध भात भी बहुत अच्छा लगता है—‘दूध भात बहु पसून धानी’
(परि १५१) ऐसा कौन छा तिरु होया को बिना पूरे तरीर म लपेटे हुए जाना जा सके ।
माखन एक आपन कर के एक बदन म नागत (७८३) ।

१४ —मैं के लिए बच्चों को दूध पिलाया सरल नहीं है । धनेक प्रलोभन देने के
बाद किसी प्रकार से दूध पीने को तैयार होते हैं—‘कबरी को पय पियु माज बावों
तेरी बैनी बई । बैसे बेहि भीर नन बासक खों बल-बैल कई । (७८२) या

मैया कबहि कईपी जोटी ।

किती बार मोहि दूध पियत मइ यह बचहुँ है जोटी । (७८३)

प्रश्न—‘मैया मोहि बड़ी करि ली रो ।

दूध-दही-धूस-माखन-मेवा को मीनी सो बे री’ (७८४) ।

दिन तथा रात के खानों में भी दूध-दही तथा मक्खन का विशेष आकर्षण था । उनके
दही व मक्खन म मनु किसी मिठाकर खाने की प्रथा का निर्बन्ध कई स्थानों में है —

‘सह दधि माखन सौं धानी । ता पर मनु मिसिरी धानी । (८१)

या—‘तुनकी माखन-दूध-दधि मिसी हौं स्वार्थ’ (८२७)

या—‘सह माखन, दूध दही सजायी घर मीठी पय पीवै (८८) ।

कबरी तथा बीड़ी गायों का दूध बेचने समझ जाता था—‘बीरी को पय मोहि प्रति
बावै (१ १४) ‘कबरी को पय पियु माज (७८२) । दूध अच्छी तरह पीटा हुआ व मलाई
पका अविक स्वादिष्ट होता है । कुण्ड को काँची (७८३) दूध मयिब होना ठीक ही तो है—
‘काँची दूध मियावति पचि पचि बैति न माखन रोटी’ (७८३) या—‘धात्री दूध—गौरी धीदि
जसोबा रण्यो’ (१ १४)

या—‘मनु बसबाऊ को बीवै । मइ दूध आघावट पीवै ।

एव हैरि घरी है साझी । मई ऊपर-ऊपर काड़ी । (८१)

१—महाभारत काल में दूध का ही दूध व भी प्रचलित था । भैर के दूध का उल्लेख
नहीं है । महाभारत, बल-पर्व, पृ १६० ‘गुह्यतावायवेरकं सोपु मय्यातु
पुर्या’ ।

छाया तथा वेग पराई

प्रायः रूठ होते ही बच्चों की नींद जाने लगती है—माँ को बल्की होती है कि बच्चा कुछ खा ले ऐसा न हो कि सो जाय । साधारण जीवन के माता व बच्चों के ये सभी बिग धूरसागर के बराम स्कन्ध पूर्वांश में भरे पड़े हैं । यद्योश नर्तु मोहम को बन्धी-बन्धी कुछ कोर बिधा कर शीघ्रता से गर्म हुए फूँक-फूँक कर पिलाने का उपक्रम करती है—“कनक कटोरा नरि बीबै यह पय पीनै घति मुखर कहैया । आछै कौन्थो मेलि मिठाई खिचकर चँबवत कपी म कहैया ।—“कूँकि कूँकि बननो पय प्यावसि मुख पावनि जो उर न समैया । (८४७)

तथा—बन मोहन बौड घसलाने ।

कपू-कपू खाइ दूध घँघघी तब जम्हाउ बननी बाप्पी । (८४८)

१४१—कृष्ण की बीमाओं में माबन-बोरी का महत्त्वपूर्ण स्थान है । माबन बोरी (८८२-९४६) शोषक घनेक सुन्दर पर है । माबन की कृष्ण-कृष्ण में यह प्रसंग गरी है । बाद में कवियों ने यह प्रसंग बोड़ कर माब तथा कला प्रदर्शन का खेब घोर घबिक बड़ा लिया । माबन-बोरी प्रसंग बाल-विनोच होते हुए भी जाने की कृष्ण-बोरी प्रेम-नीला की नीब बातवा है—प्रबम करी हरि माबनबोरी ।

आनिनि मन हृष्टा करि पूरन पापु मने बज बोरी ।
मन मै यह बिचार करत हरि, बज बर-बर सब बाई ।

पोकुल जनम लियी मुख-कारन सबके मासन बाई ।
बाल-कप जमुमति मोहि जाने गोपिनि निनि मुख मोय ।

मूरबाध प्रभु कह्य प्रेम सौ ये मेरे बज-मोग । (८८९) ।
यद्योश के पाछ उलाहने से भरपूर हो उठता है—

के कनककन पालंकोलास से भरपूर हो उठता है—
‘गोपालहि माबन जान है ।

गुनि री सज्जी नीम छे रहिये बरन बही लपटान है ।
गहि बहियाँ ही लैके लैही गैनि तरनि मुष्मन है । (८९२) ।

यद्योश के घर उलाहने लेकर जाना भी कृष्ण-वर्तन का बहाना मान ही है—
माबन बरहान के मिस बाई ।

‘नैद-नैदन तन-यन हरि लोली बिनु देखे दिन रझी न बाई । (९२१)
या—‘मपनी बाई जेठ लंदराली ।

बड़े बाप की बेटी पुनहि मली पड़ावति बानी । (९४४)

या—महरि तें बड़ी कृपल है माई ।

दूध बही बहु निनि को बीनो मृत सौ परति घपाई ।
बालक बहुत नहीं री तेरे, एक कुँवर बम्हाई ।

छोड़ती परछीं पर बोलतु मारान खात जोराई । (९४९)

बा—‘जमुबा बहै ली कीने कनि ।

‘दिल प्रति नैस सही परति है, दूध-बही की हाथि । (८९८) ।

१४२—बाप-मातम हाथरों तथा बागुप का बिबन भी इन माबन बोरी सम्बन्धन

बरो में लगना सम्भर है कि बैनने ही लगता है—
‘स्याम बहा बावत से डोलत ?

मैं बान्सी यह मेरीं घर है ता बीबी मैं बान्सी ।

‘बैलत हों गोरस मैं बीटी कल्लन कीं कर भायी । (८१७)

धम्मवा—‘धानु बए हुर्यें नूनें घर ।

सखा सबे बाहिर ही बाँके बैलसी बुधि-माखन हरि भीतर ।

गुरत मय्यी बनि-माखन पायी छे-से जात बरत धम्मरणि पर ।

X

X

X

अंतर मैं आधि यह बैलति मगन भई, पति घर धामन्य भरि ।

‘धूर स्वाम मुख निरखि पणित भई, कहत ब बनी खी मन है हरि ॥ (९)

धम्मवा—‘सूरदास प्रभु मैं परे फँस बैचें न जान भावते बी कैं ।

मरि गङ्गुय, छिर्छि है नैननि विरिचर भाँति बसे है कीर्ति । (९ ५)

तथा—‘हरि सब भावन छोरि पराने—रौकत पाए’ (९४६) ।

मथोदा को मन्त्रों से मोहन को बैलकर बोधियों की बातों पर निरवास नहीं होता ।

धनको क्या पता कि उनका छोटा सा मित्रु बोधियों के रसिक-सिरोमणि प्रभु’ (९१६) है—

धब ये झूठु बोसत लोग ।

‘पाँच बरस भव कल्लु बिननि की कब भयी बोरी लोग । (९१)

तथा—‘तब मये स्वाम बरय हावस के रिई सई बुझी बा बाँधि पर । (९१९) ।

वह जनको मोला-आला समझ कर तरह-तरह से समझाती है—

धनत सुत गोरस को कत बात ?

बर सरमी कारी बीरी को माखन माँधि न जात । (९४४) ।

इस प्रकार माखन-बोरी प्रसंग से आत्मियों के प्रेम का पूर्वाभास प्रारम्भ होता है—

‘तन-नग की बसि-मति बिसरार्ह, सुख बीग्री कबु माखन चाह ।

सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमणि तुम्हरी बीजा को कई पाव । (९१६)

धम्मवा—‘बैल्लो मेरे नाम की सुम बरी (९२)

इस कथा से ही अनुसन्ध-बंधन प्रसंग भी जुड़ा हुआ है । ब्रह्मार्पण-संसार कथा कृष्ण के धर्मोक्ति कप का स्मरण कराती है । कृष्ण के तरह-तरह से यह समझाने—‘मैंबा मैं नहि माखन जायी—स्वास परं ये सखा सबे भिति मेरीं मुख समझायी । (९१२) पर भी माता का क्रोध टालत नहीं होता । फल मटो होता है—‘बाँबीं धानु कौन तोहि छोरे (९६९) । यहाँ तक कि आत्मियों का मन भी व्याकुल हो उठता है—‘बैल्लो भाई कागह हिसिक्किनि रोने । इतनक मुख माखन नपटायी बरनि बाँसुबलि बोबी । (९६५) धम्मवा कदा भयी बी बर के सरिका बोरी माखन जायी (९७४) ।

१४३—‘धामे चल कर बो-बोहन (१ १८ १ २८) शीर्षक पत्रों में पाव का बूझ बुझने का वर्णन है—‘मैं बुझिहों मोहि बुझन सिखावहु’ (१ १९) । बूझ को धार वर्तन में गिरने के चरमेश भी है—‘कैसे धार बूझ की बाबति’ (१ १९) या ‘धार धनतहों बैल्लि कै ब्रह्मपति होति बीग्री । (१ २७) ।

दान-बीजा (२ ७७ १३१) तथा बरन-हरन-बीजा प्रसंगों में इस प्रेम का चरम उत्कर्ष है । प्रेम में एकतामय का भाव बोधियों बहुत देर में समझ पाती है—

‘दिसो दान माँधियी नहि बी हम पै बियी न जाव । (१०८)

धम्मवा—‘कागह धब संवरार्ह हों जानी ।

‘मंगल नाम बही की घबर्नी प्रब कसु धीरे ठामो । (२०६२)

या—‘कान्त कहत बुधि-नाम न देहो ?

‘जेही धीनि हूब बहि माखन देखति ही तुम पैही । (२१२६)

तथा—‘जब दसि बँचन जाहि मारन रोकि पौ (२१ ६) ।

वे यद्योदा के सामने फिर भी छोटे बालक ही पड़ते हैं—

‘बन मैं तदन कह्यहु चर्यहु मानत हूँ धीमा । -----

बस को हूँ बी बीस की मैगनि देखी चाह’ (२१०६) ।

जिन पदों में गोपियों को कृष्ण प्रेम का अनन्य भाव स्पष्ट करते हैं वे दार्शनिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं । इनमें से कुछ पदों में स्पष्ट रूप से उनके भक्तार सेने का हेतु और उनके प्रार्थन-रूप का वाक्य दिया गया है—

‘को भासा को पिता हमारै’ (२१३८)

‘भक्त-हेतु बरतार भरै—जहाँ नाम तहाँ है न टारै’ (२१४०)

दास देखि की कसरो करिही

प्रथमहि यह जंजाल पिटावहु सब तुम हनहि निरखिही (२१६२)

‘कूटी बात कहा मे जानौ’

‘जो नीकीं बैसि हि नबै रो ठाकीं तैसि हि मानो (२१८१)

‘कंस हेतु हरि जग्न मिथो (२२२२)

तथा— तुम कारण बैकठ ठकत हौं जनम भेत ब्रम धाह ।

कृपाकर दास-योनी सेन बहु नहि बिचरयो जाह । (२२३२) प्रादि

कृष्ण (वर-ब्रह्म) व दासा और गोपियों (उनकी कृपा दृष्टि से धर्मवित्त प्राप्तार्थ प्रब । उनकी प्रार्थन प्रसारिणी शक्तिवर्ती प्रभन-प्रलय नहीं है । उन्हें धनन समझना बुद्धि का भ्रम हो तो है—‘मूर स्थान स्थाया तुम एकै कइ हँसिहँ संसार (२१७६)

‘योनी ब्याज काहु है माही ये कहूँ नैक न म्यारे (२२२३) ।

व्यासियों की बलि का विभ्रम दूर हो जाता है । वे दास देकर अपना जीवन ब्रह्म समझती हैं—‘कान्त माखन काहु हम नु देखै ।

‘बस बहि दूध रवाई धरति धरति, दाहु तुम सफल करि जगम लेसै’ (२२१४)

प्रबन्ध— एक निमित्त ब्रह्मवाणि की मल नहि तिहुँ लोक बिचारै’ (२२२४)

तथा— बन्ध ब्रह्म ललनानि कर तै ब्रह्म माखन जात (२२२१) ।

१४४—उपर्युक्त प्रसंगों से संबंधित प्रसंगों में दूध के कई पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं—‘दूध (८०३) [सं पुंल] पय, पयो (८०८, ८११, ४६) [सं० पय] तथा गोरस (१२१) [सं० गोरस] । जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है सरयो कसरी प्रपचा भोटी प्रादि प्रयोग का ताका प्रपची तरह घोटत न मिली प्रादि से जीत किया हुआ दूध भरत समझ जाता है । ताबे के लिये सद् सय (८०१ ८ ८) [सं० प्रपच] शब्द प्रयुक्त हुए हैं । प्राचीन साहित्य में दूध के लिये अधिक प्रचलित शब्द ‘बीर’ या ‘गुमरी नैदूध गोरस के बाब ‘बीर’ नहीं-कही इती धर्म में प्रयुक्त किया है । वर्तमान ‘बीर’ शब्द का उद्भव नहीं है । प्रप्याप्यादी

१—गुमरी, जीहृष्ट घोता २ ‘मेरे कहां पाऊँ गोरस’

गुमरी, बीता बाल १०४, ‘गुमना-गुमनि विगार बीर इहि मयन बनिप यव सिमी इती रो’

‘संस्तुत’ प्रकृता प्राप्ता होती ही सुरंग जाने योग्य पदार्थ ‘बधि’ ‘उदस्तति’ (ब्रूय का मन्त्रण) एवं ‘भीर’ बताये गए हैं। ब्रूय व उसके ग्रन्थ पदार्थों को ‘गाम्य’ प्रकृता ‘पमर’ भी कहते थे जैसे ‘बधि-ग्रन्थी’ बधि’ प्राणि^१।

सुरसागर में गाम्य के बग से निकली बार को गेहूँ लगाकर पी लेने को चैया (१०८१) कहा गया है—‘घाई घाऊ प्रवार भई है, गेहूँ चैया पिएउ सजेरे’ (१ ८१)।

ब्रूय तथा यही पर जमी हुई सखाई (१८११) प्रकृता साड़ी (८०१) [सं घारा:] का वर्णन भी मिल जाता है—‘सब हेरि बरो है साड़ी’ (८ १) ‘साख्यो बही अधिक सुखवाई। ता ऊपर पुनि मजूर मलाई। (८ ८)। बही को साख्यो या सखायी’ कहा गया है। ऐसे बही को घाब ‘बकका’ प्रकृता सबाब भी कहा जाता है। प्राणीख बोली में मलाई हटा लेने पर ‘कट्टई बही कहलाता है। तुलसी^२ भीर बायसी^३ ने भी मलाई तथा साड़ी तन्त्र प्रयुक्त किये हैं। छात्रों में मलाई^४ तन्त्र ‘साड़ी’ से अधिक बोला जाता है।

१४५—बही के लिये बधि (८ १ ७२४) बही, यही, बहियो (९ ७ ८ ८) [सं बधि] तन्त्र प्रयुक्त हुए हैं। बही जमाने का वर्णन इस प्रकार है—‘बोरी बेनु बुझा घाति पय मजूर प्राणि में घीटि सिरायो। नई बोहनी पोंछि पक्यारी धरि निरजूम क्षिति पैं ठायी। ठामे मिलि मिलिउ मिलिरी करि, वै कपूर-पुट खावन नायी।^५ सुख बहियौ कोंकि बाधि पट बलन राखि कीरि समुदायी ॥ (२२१८)। ब्रूय ब्रूयै या बही जमाने के पहले पाब को बोझें पानी से बोलने को ‘पछारना’ या ‘बैगारना’ कहते हैं। ब्रूय जमाने के लिये उसमें बी बोझा सा बही बाधा जाता है बहु प्राब भी जानन’ कहलाता है। बही बिबोने से संबंधित घनेक पद हैं—‘अड़ी मबति जमनि बधि घादुर, खौनी गंव-सुवन को’ (७५५) वा ‘घाति मबानो बह्यो बिलोबी’ (८४९) प्राणि में प्रकृता [सं मन्त्रण] तथा ‘बिलोना’ [सं बिलोना] तन्त्र मिलते हैं। यही तन्त्र प्राब भी इस प्राब को व्यक्त करने के लिए बोले जाते हैं। रई बमने की व्यति के लिए मूर ने ‘बमरकी’ तन्त्र प्रयुक्त किया है—‘लौ-र्यो मोहन नाह ल्यो-ल्यो रई बमरकी होह (री)। (७११) प्राणीख बोली में ‘बुरक’ ‘बुरकन’ प्रकृता ‘बमरा’ प्राब भी कहते हैं। बही बिबोकर माखन (८ ८, ७१५) [सं मन्त्रण] निकाला जाता है। माखन से संबंधित प्रमुख प्रसंगों का ऊपर सन्नेब किया जा चुका है। साने के साथ तुलसी बान कर यर्म किए मन्त्रण की बर्णना भी है—‘सब माखन तुलसी है ठायी। बिरछ सुबास कबीर नायी। (१५११)। बही मबने पर बी बी सा ऊपर रैर जाता है बही खौनी छावनी^६ (८ १ ८ ७ ७२५, ७२७ २२१७) [सं मन्त्रण-मन्त्रण-मन्त्रण-मन्त्रण-मन्त्रण-मन्त्रण]—मन्त्रण बधि माखन-खोरे

१—इंडिया एंड नोल टु पारिउनि, पृ १२, १२

२—तुलसी वीरा, सुन्दर०, १७

‘बतसुख तखी ब्रूय-माखी ल्यो प्रापु काकि साड़ी नई’

तुलसी कविता, उत्तर ७४, ‘छाड़ी की ललाट जेते राम-नाम के प्रताप जाल सुमसल सौने ब्रूय की मलाई है’ ॥

३—य सं व्या, ११ १४ ‘आमा दूध बहिउ सिर्न साड़ी’

४—य सं व्या, ११२१, ४

‘बधि एक ब्रूय आम सब बीक। कांओ सुब बिगसि होई भीक।

स्वाम बहेकि भन मंजनी पाड़ी। हिएं चोट बिनु फूट न साझा।’

५—छात्रव ब्रूयरा (१११११) ‘तखे मन्त्रण तखे फल तखे प्राणिना तखे बाबिनब’

(८ १) । अष्टाध्यायी में नबनीत इसी धर्म में प्रयुक्त^१ हुआ है । दूध के मक्खन के लिए प्रचीन शब्द 'घनाबास'^२ या । पद्मानास में भी 'सैन्' या सोनि का उल्लेख है ।^३

नबनीत निकले हुए पतले दही को मही,^४ मही (१५१ ८ ० २२३६) मक्खन छोंछ (१८३१) कहा गया है—'पाहुनी करि है जनक मही' (८ ०) दही मही के कारणें कृति ब्रह्मविधि परि (२२३६) मक्खन 'कोठ दूध कोठ दही मही से बनी समानी (२२३६) बोरी सासे छाँछ' (२२३६) । द्वितीय स्थान के एक विनय पत्र (३५१) में मही का एक स्पष्ट रूप से बताया गया है—'जब तै रसना राम कही—अपट प्रताप ज्ञान-गुरु-मन तै इधि मनि बृत्त तै उज्यो मही । मोहन प्रलंभ में भी 'धुंनारी' यई छाँछ का वर्णन है—'छाँछ छबीसी बरी धुंनारी । भर है उठलि भर की स्वारी (१८३१) । छाबकन मही के लिये अधिक प्रचलित शब्द 'मट्ठ' है । ग्रामीण बोली में 'मठा' भी कहते हैं और बीरे मिश्र से मट्ठा छाँछ की प्रथा अब भी चल रही है ।

खोया, खून्ना (८२६ ८ १ १ १४) दूध को पका कर बनाया जाता है । खोया में भी बताया जाता था खोया खाँड़ पीटि है राखी (१८३१) मक्खन 'बोना मेलि बरे है कूपा' तथा उसकी मिठाईयाँ भी भाव के समान ही बनती थीं—'जोश-मय-मधुर मिठाई (८ १) मक्खन 'बेवर केरी और सुगरी खोवा रहित बाहु बनिहरी' (८२६) । पद्मानास में भी दूध पीटाकर खोवा बमाल का विज्ञापन है ।^५

१४६—प्रातः का अत्यन्तम धन्य पिरत, घृत, पीय (१ १५ १ १४ १८३१) [तं घृत] भी दूध का हो एक रूप है । मक्खन के शिलशिले में बताया ही गया है कि बी नबनीत गर्म करके बनाया जाता है । घूरसापर में भी गर्म करने के लिए 'ताई' (१ १४) शब्द प्रयुक्त हुआ है । बी राने पर उसमें मिठा हुआ मट्ठा धसब हो जाता है । यह शब्द प्रातः भी इसी रूप में घुनने में आता है । तुलसी की पत्नियाँ जान कर भी को सुपन्न करने की प्रथा अब चलती नहीं रही है । अक्सर प्रातः का पता जान कर भी गर्म किया जाता है । मात तथा रोटी में भी लपाने की प्रथा उस समय भी थी—'मात पता रोहिणी स्याई । घृत सुपन्न घुलै है ताई (१ १४) तथा 'रोटी बाटी पीरी चरो । एक कोरी एक पीय बमोरी । और 'माँझ माँझ दुनेरे चुपरे । बहु घृत पाइ आपही उबरे' (१८३१) । रोटी में भी लपाने की क्रिया को 'बमोरी' मक्खन 'चुपरे' कहा गया है और जिना भी की रोटी को कोरी । रोटी में भी चुपटना अब भी कहते हैं । स्थानों के साथ एक कटोरी में माय का बी^६ रखने की प्रथा आज के समान ही थी—'मायो-घृत परि बरी कटोरी । कपु बापी कपु छे छोरी' (१ १४) मक्खन पिरत सुभास कबोरा मापी । (१८३१) तथा 'सब माजल घृत दही समानी' (८ ८) । पद्मानास की के बनाने पर बल दिया गया है—'सब सुगरी बेवर बी के' (१८३१) मक्खन 'धुनो

१—ईडिया एज मोन टु पालिनि पृ १ २

२—ईडिया एज मोन टु पालिनि पृ १०१

३—य तं व्या , ५४१।४ 'सैन् बाहि धनिक कोबरी'

५५०।१ 'तहरो बाकि सोनि भी गरी'

४—तुलसी बीठा , बात० १ ४, 'मयि माजन तियराय सँवारे । सकल मुन एधि मगहुँ मही रो ।'

५—य तं व्या , ५५ १४ 'सुबक लीहु टु पीटा खोवा'

६—तुलसी, मालत, बात० ३२८ 'सुपोरन सुरभी सरपि ।'

पक' या 'सब परसि बरी भूत पूरी' तथा पुए भी 'ताते गुरत बमोरे भी के' (१ १४) होते थे। घण्टाघ्यादी में मिश्र खाद्य पदार्थों (स्वाद्य-अध्या करने वाले) में भूत को रखना मया है।^१ घक्कर भी पाकवावा का भी प्रायः हिसार छिरोबा छि घाता था।^२ पचावत में भी 'मिरि' तथा 'मिर' में बने पकवानों का बखाना अनेक बार आया है।^३ मसलियों में पड़े हुए भी का बखाना व्याप्त आकर्षित करता है।^४

सूरसागर में ताजे के घर्ष में सबु, सद्य (८ ८) का ही प्रायः प्रयोग हुआ है। किन्तु पचावत में समामार्थक शब्द 'टाटक' आया है।^५ प्रकधी में भी के लिए अब भी मझ तन्त्र चबता है।

६-पकवान—मिठाई तथा नमकीन

१४७—सूरसागर में पके हुए खाद्य-पदार्थों के सूचक दो शब्द मिलते हैं—पकवान (६१४ ८०८-८१) [छं पकवान] तथा व्यंजन (१११८, १८११) [छं व्यंजन]। मूल प्राशन-संस्कार बौद्ध-नूबा तथा जाने के विमर्शने में अनेक प्रकार के पकवान तथा व्यंजन तैयार करने का वर्णन किया गया है—'कीठ न्नीनार करति कीठ वृत्त-पक पटरस के बहुमूर्ति बहुत प्रकार किये सब व्यंजन अमिठ बरल मिष्ठान' (७ ७) प्रकवा—'बहु-बहु मूर्ति करति पकवान' (१५ ६) या 'वृत्तपक बहुल मूर्ति पकवाना। व्यंजन बहु को करे बखाना। (१५१८)। भोजन में भी विविध मूर्ति के व्यंजन रहते थे—इतने व्यंजन कतोश कीम्हे। तब मोहन बालक सम लीम्हे। (१८११)। व्यंजन का प्राचीन काम में प्रचलित घर्ष 'उपसेवन (स्वाद्य बेहतर करने के खाद्य-पदार्थ) या जेसा कि घण्टाघ्यादी से खात होता है। फर्बसि तथा काठिका ने बहि वृत्तम् उवाहरखन्त्रक्य बठाए है'। नाम से ही स्पष्ट है कि पकवान का घर्ष पके हुए अन्न से बनाये गये भोज्य पदार्थ मिया या चकटा है तथा व्यंजन में दूध बड़ी मात्रा की वस्तुएँ और तरकारियाँ प्रावि भी या सकती हैं। आनकल पकवान में प्रायः मिठाइयाँ तथा नमकीन सम्मिश्रित करते हैं तथा मीकल में परोखो जाने वाली विभिन्न सामग्रियों की गिनती व्यंजन में की जाती है—'बरी बरा बेसन बहु मूर्तिमि व्यंजन विविध अमनिय' (८५९)। सूरसागर में भी इन ही शब्दों में इस प्रकार का अन्तर दिया गया है (१५१८)। पकवान प्रायः 'वृत्तपक' बताया गया है तथा 'कलेवा' में 'पकवानों का ही उल्लेख अधिक है।

१—इं दिया एम् नोन दू पाणिमि ५ १

२—घादि घ , ५ ११७। ५ १२७, बी एक मल—१ ३ बाम, तैल—४ बाम, दूध—२३ बाम, तथा बही—१८ बाम में मिलता था। घक्कर के समय में भी ब तिलहन अन्न की अपेक्षा सत्ता या जब कि नमक ब लयेब घक्कर घान में अधिक मंहुमी थी।

३—घ सं घ्या , २३ १२ 'मिरि' मूर्ति के पाका देठा।' २३ १३ 'आ हस्तवा पिठ करे मिचीवा २४६।१ 'मिरि' कपडूमि बेहर घरा।'

४—घ सं घ्या , २४७ 'मिरि' घरेह रहा तस हाथ पहुँच लहि वृत्त।

बूझ जाइ ती होइ नमकीन ती म्छूरी ले ऊड़।'

५—घ सं घ्या २४७।१ 'पिठ टाटक म्छू लोमि सैरावा।'

६—इं दिया एम् रो १ ३ १ १ २

मोठे पकवानों को मिष्टान (७ ७) [सं मिष्टान्] तथा मिठाई (१४२१) [सं मिष्टान्] कहा गया है—‘पटरस की बहु-मिति मिठाई’ अथवा ‘पटरस के मिष्टान’ वा ‘कटुवा करस मिठाई वृत्तपक’ (१५१) आदि। इन संस्केतों में मिठाई के साधारण अर्थ के प्रतिरिक्त सम्भवतः पकवान का अर्थ भी नहीं-कही है। मिठाई पटरस प्रकार की होने का यही तात्पर्य हो सकता है। पद्यावत में मिठाई शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—मिठास व मिठाइयाँ।^१ महाभारत के प्राथमवासी-पर्व में तीन प्रकार के रसोद्यों के सम्बन्ध में बताया गया है। ‘राग चाद्वयिक’ मोठे पकवान ‘सूपकार’ हाफ बास कडी रास्ते आदि व आरासिक मोठे पकवते थे।^२ इस सम्बन्ध से जाने की-छापत्रियों के विभाजन का अनुमान होता है।

अब ‘पकवान’ तथा मिठाई शब्द ही-प्रधिकरण बोझों में धाते हैं। पड़े मिठे नागरिकों में तो व्यंजन का कुछ-कुछ समानाधिक धीरे-धीरे शब्द उतरते (dishes) हो गया है। मिठाइयों के नाम

१४५—कलेबा तथा मोहन में कृष्ण के लिये परोसी गई मिठाइयों से सूरकाशीन प्रमुख मिठाइयों का अनुमान हो जाता है। साथ ही इन के मन्त्रियों में बढ़ायी जाने वाली मोय सामग्रियों का अन्तर्भाव भी लगाया जा सकता है। इनमें से बहुत-सी मिठाइयाँ आज भी लोगों को उतनी ही प्रिय हैं, कुछ अक्षरों ही मधुर धमीक्य आदि ज न म अधिक दिखाई देती हैं। जोड़े से नाम जरूर स्पष्ट नहीं होते। प्रमुख मिठाइयों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

पासा या पाक (१ १४ १८३१) सूरसावर में कई प्रकार के बताए गये हैं—‘पाक समुत् विविध। पटविचि कचि क्रिये हित माह’ (१८३२)। यही येशवे ‘पाक’ कहाती है। पेठा पाक^३ (१ १४) गौड़-पाठ (१ १४ तथा इलाची पाक (१०१४) [सं एता एलीक इतायचो] आदि भी इसी प्रकार जुताए क्रिये गये थे। पेठे के टुकड़ों को चाटनी में पकाने जाने पर प्रायः ‘पेठा’ कहते हैं। पाकरी का पेठा प्रसिद्ध है। बबुल को पौड भूनकर चाटनी में पकाने पर प्रायः भी गौड़ कहाती है। यह निरुपेक्ष रूप से शिखों को खीर अथवा सुतिक्षपुह में भी जाती है। इलाची पाक सम्भवतः वर्तमान इलायची बना है। पांडे-ग्रामन-अर्थ में पाक (८६७) उम्ह पके खास पदार्थों के साधारण अर्थ में भी मिलता है—‘करि करि पाक सबै प्रपेठे हैं तबहीं तब खूँ धावे।’ (८६७) अथवा सिद्ध पाक इहिं पाह बुठायो (८६६)।

गेहूँ के आटे से बनी मिठाइयाँ

१४६—पूसा (१ १४) (१ पूष पूषानिका पूषासी पूषिका पूषक आदि)। यह पतले क्रिये हुए मोठे आटे से बना पकवान है। यी में बने मुनामम गर्म पूष का बर्णन किया गया है—‘हीस हीस तो स्वाडे पूषा .. मोठे प्रति कोमल हैं नीके। जाने गुरलत बबोरे यी के।’ (१ १४) इसी प्रकार के पूष अन्धे माने जाते हैं।

मासपुवा (८ १) [वित मन्त्रय + पूषक]—‘मुहु मासपुवा मधु माने’ (८ १) तथा ‘मासपुवा माहन मधि कीन्हें बाह प्रसित रवि सम रैम कीन्हें’ (१८३१) आदि बर्णनों में

१—य सं क्या एवता ‘बुप वही का कहीं मिठाई’

२. १३।—‘कही न बाह मिठाई’

३. १९ ‘मैं को मिठाई कही न बाह। मुक्त मिलत किनु बाह बिलाई।’

४—महाभारत, प्राथमवासी पर्व, ‘आरासिकः सूपकरा रागचाद्वयिकास्तथा, उपसिच्यत रागार्न वृत्तपक्य पुरा।’

५—य० सं० क्या, १३. ०१९ ‘मिष्टि नूँज के पाका पेठा’

हृ

पालपुष्पा बनाने के रंग की ओर संकेत है। यह पूषा से मिलता जुलता है। देखीनाममासा में (६।१४५) हेमचन्द्र ने पुष के वर्ष में 'मस्मय' शब्द लिखा है।^१ पूर्वी उत्तर प्रदेश में पुष को 'गुलपुष्पा' कहते हैं और भीठी पूरी को 'पुष्पा' किन्तु पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भीठी पूरी को 'मिटमरा' कहते हैं। स्पेयरों व पूषा धारि के पञ्चमानों में पुष का प्रमुख स्थान है।

हेस्तमि (८ १) यह हेस्तमि सरसि सैवारी। यति स्वाय परमसुखकारी। यह सभी धाम्पदाकार भीठी वस्तु है जो धनीकड खेन में प्राय भी 'नाकसेन' या 'हिसमा' कहलाती है। यह उस खेन को स्थानीय मिठाइयों में ही बिनी या सकती है।

सुहारी (८२६ १८२१) [छ + अहार]। बी या 'मोयन' जाने गए या? की सीरे में पड़ी पुरियाँ को सुहारी कहते हैं। यह साधारण पूरी में मोटी व बड़ी बनाई जाती है। यह भी मधुर धनीकड धारि में ही पबिक बनती है।

मोरी (१ १४) नीठे नेहूँ के घाटे से पीसे की तरह का बना पञ्चमान है। जब तथा 'धनीकड खेन' में 'मोरी' शब्द इसी वर्ष में प्राय भी सुनने में आता है।^२

सुरमा (८ १) [छ + सुर्म]। मोयनवार घाटे की बनी सोल टिकिया प्रकृता प्राकृतिकर टुकड़े जो खाँड में पाये जाते हैं। सुरमा कहलाते हैं—यह सुरमा सरस सैवारी। ते परसि बरे है ग्यारे। (८०१)। धामकल नमकीन सुरमा भी बनाते हैं।

अमृत कांडू (१०१४) [छ + अमृत + कांड]। यह सम्भवतः वर्तमान लकड़पारे की तरह का कोई पञ्चमान है। धनीकी में शनकरपारे को 'कांडू' [छ + कण्डलक] कहते हैं।^३

सातू* (४ ६८) [छ + सातू]। दक्षिणी प्रसंग में इसका उल्लेख है—'नक्त के वस नक्त-नक्तन बिहुर सातू छाव जायो। प्राचीन भारत के प्रचलित खाद्य पदार्थों में 'सातू' (सातू) भी था। पाणिनि ने 'वश्क-मन्तु' तथा पराशरि ने 'वशि-मन्तु' का उल्लेख किया है।^४ प्राय भी सत पानी या दूध के साथ खाया जाता है।

लापसी लापसी (८४५) (१८३१) [न + लपिका] भी में घुने घाटे का भीठ व पत्रमा निष्ठा है। इसका इसी प्रकार का मिलता जुलता पञ्चमान है किन्तु इसे सूखा बनाते हैं। मुरसावर में बधित इन भीठे पञ्चमानों में हमूए का उल्लेख नहीं है। धनीकड खेन में पत्नी लपसी को 'सीरा' भी कहते हैं (८ १)। पाणिनि के समय में भी का बनाया हुआ 'मवातु' प्राच्यिक प्रिय था। यह लपसी से ही मिलता-जुलता है। उन्होंने 'सालनिकन मवातु' द्वारा उस प्रदेश में विद्येय रूप से इसके पबिक व्यवहार का संकेत किया है। प्राय भी इस प्रदेश प्रचलित मनवर है। बीकानेर तक पञ्चमान के इस भाग में 'लपसी' (धनीकड द्वारा खाई जाने वाली पत्नी) तथा रावरी नमकीन व सूखी-सी) जाने की प्रथा बृज चल रही है। प्राचीन समय में भी 'मवातु' के नवा 'मिलेपी' दो प्रकार का प्रचलित था।^५

१—इ भी, पृ ११, अध्याय ६

२—इ भी, पृ ११, अध्याय ६

३—य सं ग्या, पृ २४३, 'कांडर कांडि कांडी कांडी = कांडी = चापनी, (काण्डवती) कांडि = काटना, कांडी = पागला।

४—तुलसी, कविता, लंकाकांड ३ 'बीभित सो सावि सावि पूरा जल समुद्रा'।

५—इंडिया एज नीन दू पारिलि पृ १ ७, महाभारत में भी सत की प्रशंसा की गई है।

६—इंडिया एज नीन दू पारिलि पृ १ १ २ ३ ४

मैदे की मिठाइयों

१५०—चेवर (८ १) [सं० वृत्तपुर-विचर—चेवर] 'चेवर' शक्ति विरत चमोरे । लै बाघ सरस रस बोरे । मैदा का बना गोल जस्ता सा होता है । इसको पी में सेंकने के बाद बाघनी में पाय बेटे है । चेवर धान भी धमीगढ़ तथा मधुरा आदि की तरल हो अधिक बनता है । हेमचन्द्र ने देसीनाममासा (२।१ ८) में चेवर का उल्लेख किया है ।

फेन्नी (१ १४ ८२६) । यह मैदे के सूतों से बनी पूरी सी होती है तथा पकी हुई व दूध में मिथुनर दोनों प्रकार से खाते हैं । मुरसागर में दूध में खाने का उल्लेख भी है—'फेन्नी पुरि मिथि मिथी दूध सेव । मिथि मिथित भई एक रस । (१८११) । पठि १५३ म पैरा-फेन्नी भी दिया गया है ।

सकर पारे (८ १) [अ संकरपाट] । मैदे अथवा घाटे के बने त्रिमुखाकार या त्र्यक्षरकार बंड जो सकर में पाय सिधे खाते हैं । मुरसा के पाने सकरपारे अधिक स्वादिष्ट होते हैं—'सकरपारे सब पाये । भाज कहीं कहीं मोम इसको 'सकनपाट' भी कहते हैं ।

खलेसी (१८११ ८ १) । यह मैदे की मोल खलेदार मिठाई है जिसे छोटे में डालकर भीठा करते हैं । इस रस को ही मुरसागर में खलेष भी कहा गया है—'बहुत जलब खलेसी बोरी । मार्हित बटल सुधा ठी बोरी (१८११) अथवा 'सुठि सरस जसेवी बोरी । बेहि अवय रवि नहि बोरी (८ १) । यह आनन्दन मोलों की प्रिय किन्तु तस्ती मिठाइयों में आती है ।

खाजा (१०१४) [सं० खाज—पा० खज] । यह लाड म पपी मैदे की रोटी सी होती है । खाना भी परिचमी उत्तर प्रदेश में ही अधिक बनता है ।

गाखमसूरी । यह एक विशद मिठाई है जो मैदा और बेसन मिला कर बनाई जाती है—'धव ठेसिये गाखमसूरी जो छाठहि मुक्त हुक्त भूते । शका वधन मुरसागर म है । यह मिठाई भी ब्रजप्रदेश की ही मिठाइयों में आती है । उपर इसको धान भी मसूरी अथवा 'मैसूरी' कहते हैं ।

गूम्हा, गुम्हा, गोम्हा (१८११-४ १ १४) [सं० गृहधक, गुम्हा-गोम्हा-गूम्हा] इसका नाम 'गृहधक' धार्मिक ही है क्योंकि मैदे की पूरी के अन्तर छोटा मोटा धक्का भर कर बनाते हैं । 'गूम्हा' बहु पूरन पूरे । गरि गरि कपूर रस पूरे । (८ १) । पूरन धक्का संभवतः इसी धर्म का सूचक है । सिद्धते समय फट न जाये इसीलिए गुम्हा के किनारे 'गूठ' या दूध देते हैं—'गोम्हा गौंठे (१८११) । धानकल इसको 'गुम्हिया' कहते हैं तथा होली तथा विवाह के पकवानों में अवश्य बनाई जाती है ।

खर्वांग (८ १) गुम्हिया के समान ही मैदे की पूरी में छोटा धीर दबा भर कर बनाते हैं, किन्तु इसका आकार चौकोर होता है । इसको सोंप से बन्ध करके लीरे में धिगोया जाता है ।

बेसन की बनी मिठाइयों

१५१—सुल पूरी (१ १४) । यह बेसन की बनी मोटी पूरी होती है । धव दूधपूरी बनाने की प्रथा कम ही मिले है ।

सेब (१ १४) । पन्ना और लम्बा लम्बीशर एकदम की लीरे में पन्ना दूध या मोटा धक्का मयकीन दोनों प्रकार का बनाता है ।

१—हू बी०, प्र ११, अध्याय ९

२—ब० सं० ध्या०, ११५।४ 'विश्व भर दूरि कल जा गोला।'

साहू (८ १) [सं लहु लहुक] लहु मुने हण बेसन की मूंदी या गुनटी के ब्याहातर बनाये जाते हैं। गुनटी के लहु की ही समकथ सेबलहू (८ १) मोली साहू (८ १) [सं मोस्तिक] धीर साबनि साहू (१ १४) कहा गया है। घाव बायीक मुक्ती के बने लहु मोलीचूर के लहु कहलाते हैं। खिर-साहू (८ १) [सं चीर + लहु] डाय शायब बोले के लहु से तात्पर्य है। इन सब का इस प्रकार वर्णन किया गया है—

सेब साहू खिर सेबारे। मो मुख मेलत सुकुमार।

सुठि मोली साहू मीठे। वी खात न कन्हू उबीठे।

खिर-साहू सबेपनि गए। ते करि बहु बचन बनाए। (८ १)

तथा—लावन लहु सागत नीके (१८३१)

लहु बच्चों की विशेष रूप से प्रिय होता है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'मोरक' विदूषक को प्रिय बताया गया है। लहु का समानार्थक शब्द मोरक भी सुरसावर के फल-प्रसंग में मिलता है—'मोरक मीठ कपूर भालि मरमाती हो' (१४८)। पद्मावत में कुल के सेने वा बही के रसबुले के समान मिठाई 'मोरका' का उल्लेख है।^१ पछाड़ि तथा पंचाब में मुने कैंडू मक्का मुरमुरे या बने के कुछ प्रकथा खांड में पवे लहु भी 'मोरका' कहाते हैं। ठाँों के प्रसंग में बिप-साहू (२२२ २१ १) तथा ठगमोरक (४ १५, २२ १) का उल्लेख भी सुर ने किया है।

बाबल के घाटे से बनी मिठाइयाँ

१५२—बबूरी (८ १) [सं बबु बबूट बबूरे] 'बबूरी घसि सरस बबूरी'। यह बाबले के घाटे की टिकिया छी होती है जो भी में खेंची जाती है। अलीगढ़ क्षेत्र में 'बबूरी' के लोहार पर (बाबली के एक दिन पहले) बनाया गया पैकवान भी 'बबूरी' कहाता है।^२

बाबर (८ १) 'बाबर बरने नहि जाई। जिहि रैकत घसि सुख पाई—बाबर के घाटे की माकचुर की तरह की मिठाई है। अलीगढ़ क्षेत्र में 'बाबर' या 'बाबरी' नामक यह मिष्टान्न प्राय भी बनता है।^३ किन्तु और जगहों में बाबर बिछाई नहीं देता।

बैबरसा (८ १)। बैबरसी का वर्णन कई पदों में है—'मुन्वर घसि सरस बैबरसे। ते बुल-बलि-मनु मिलि सरसे' (८ १) मक्का 'घसि सम बुन्वर सरस बैबरसे ऊपर कनी घमो बनु बरसे' (१८३१) तथा 'भीम कपूर लाव बुल बार। बैबरसे कटमिठे बिचारे। (परि १५१)। यह बाबल के घाटे की मीठी गोल भी में खेंची टिकिया छी होती है। ऊपर के वर्णन में इसमें बही, खांड या मनु, भीम तथा कपूर डालने की बर्णा की गई है।

अम्य बीजों से बनी मिठाइयाँ

१५३—अमिरसी। यह सरस की बाल के घाटे के बनी बही अनेबी से मिलती बुलटी मिठाई है। पद्मावत में इसका समानार्थक शब्द 'मुरकुरी' प्रयुक्त हुआ है।^४ किन्तु सड़ीबोसी

१—प स० ब्या, पं० १६ 'हूब बहो के मोरका बाये'

२—क बी, पं० ११, अध्याय ५

३—,, ,, पं० ११, अध्याय ५

४—प ल ब्या, पं० १० 'मोति साहू घाल छी मुरकुरी। मंठ पेरक बुद मुरकुरी।' अथवा घ सुनकी (वाल्म ४० ८६१)

हिंदी में हमरती सभ्य भाव तक बनता है।

पूजबरा गुरबरा (१ १४)। क० पूज या सेवे का भी में सिद्ध बरा पूजबरा होता है और 'गुरबरा' पुत्र के रस में नियोजक बनाते होने—इस कोर इस मित्रे गुरबरा।^१

पिराक (८२६) कोवे की छोटी मुद्रिमा सी 'पिकी' या 'पिरकी' कहलाती है।

गिंदौरी। (१ १४) कांड की गोल बड़ी टिकिया को ही बिंदोरी कहते हैं। पचाह में बिंदीय रूप से विवाह के अवसर पर तेल के दिन जलन में यह बाँटी जाती है।^२ मिठाइयों की इस सूची में धानकम की प्रमुख त्रिप मिठाइयाँ—बराछी पैड़ा गुलाबजामुन बाभूठाही कलाकर तथा घर की बनी कटरियों तथा हलवे को कमी कटकती है। धान मधुरा के पेड़े और कुरचन बहुत मसहूर है। बगाली मिठाइयाँ जैसे रसमुस्ता जमजम रसमसाई तथा संवेत घादि सम्भवतः बाद में बनी है। किन्तु हलवे का जस्सेक पन्माबत तथा घादि घण्टरी दोनों में ही है।^३ घादि घण्टरी में बीसे से बना हुआ बताया गया है जब कि धानकम प्रायः सूखी से बनाते हैं।^४ नमकीन पकवान

१५४—नमकीन पकवानों की सूचक सम्भावनी इस प्रकार है—

फुलौरी पतकौरी, पकौरी (१०१४ ८ १) [सं० पुस्तक + बरी पक + बरी]—छो कात समुत पकौरी (८ १)। पकौरी बैसन तथा मूँग या उब की दाल की बनती है। धानकम 'पकौरी' सभ्य अधिक सुने में आता है, किन्तु फुलौरी सभ्य भी प्रचलित है। मनीष्य चम में पकौरी की कई छिमें व उनके नाम मिलते हैं—'पूजकौरी' बरीरी^५ कुम्होरी, गुरबरी घादि^६ सुरसावर में मूँग की दाल की पकौरी का संस्मरण जो है—'मूँग पकौरी' (१ १४)।

पिठोरी (१०१४) [सं० पिष्टिका—पेष्टिका-पिष्टि-पिठो पिठो] धान पिठन के बाद 'पिठो' कहलाती है। घाटे के अन्दर पिठोकर कर पिठोरी बनाते हैं। प्रायः खर्ब बने या मूँग की दालों की पिठो बनाई जाती है।

पतबरा (१ १४) 'मूँग पकौरी पनी पतबरा' [सं० पत पका + बरा]। यह ७ भवत धानकम का 'पतीरा' है जो बुझा के पत्ते व खर्ब की पिठो या बैसन लपेट कर सवासने के बाद कटरे काट कर तला जाता है। यह सूखा व रसेदार दोनों प्रकार का बनता है। बपुए के साम तथा मूँग की दाल तथा अन्य कुछ दानों तथा बैसन घादि के भी पतीरे बनाते हैं। जामुकत जस्सेक में पतबरा बनाने की विधि स्पष्टका से नहीं बताई गई है। पनी—शायद 'पना' के अर्थ में आया है। घाम तथा बोरे घादि से बने नमकीन पानी को 'पना' कहते हैं। सबकी में बतीरे का समानार्थक सभ्य 'रिक्कब' पचावत में भी मिल जाता है। बिहार में भी इसको

१—प सं० व्या, २४६—'कीन्ह सुनीय की गुरबरो'

२—क० बी, प्र० ११, अध्याय १

३—प सं० व्या २६। ३ 'ना हलुवा पिठ करे निबोवा'

४—घादि घ०, पृ० १२०, हलवे में बैदा, कच तथा धी दध-रस तैर डाला जाता था।

५—प सं० व्या, ५४८। 'बी खंडबानी लाह बरीरी'। खंडबानी बरीरी = कांड के पानी में पड़ो हुई खर्ब की दाल की बकीड़ी

६—क० बी०, प्र० ११, अध्याय १

७—प सं० व्या, ४६६। 'नाम लाह क रिक्कब छोके'। रिक्कब = छुइया के पत्त व खर्ब की दाल के पतीरे।

‘रिक्कैय’ या ‘सेंठा’ कहते हैं।

काचरी (१२४)। काचरी नामक फल के टुकड़ सुसाने के बाद भी में तल सिधे बाटे हैं। भावकर्म को धार्मिक प्रवर्तित ‘काचरी’ चावल के नमकीन घाटे में बनती है। यह चावल के घाटे के नमकीन रस से होते हैं।

कोरी (१८३१) संभवतः चावल के घाटे से बनी काचरी है जो भाव भी पानीगढ़ क्षेत्र में कई नामों से प्रसिद्ध है—मोहन पकौड़ी, काचरिया, ‘कुंरी’ आदि। हजरत में इसी को ‘मिरचीनी’ कहते हैं।

कुमकौरी (१८३१)^१ खीसते हुए पानी में बनी पकौड़ी कुमकौरी ‘कहलाती है। यह कुमकौरी बनाने का रिवाज कम हो गया है।

मठरी (१४२८) ‘फिस्ता बाज बराम सुहाय कुरमा खान्ना गूँछा मठरी’। मोमलवार घाटे की नमकीन छोटी पूरी को मोटी व खस्ता बनती है। पछाई के बरों में मठरी घमसर नास्ते में बनाई जाती है। ‘मठरी’ शब्द धातु भी बोला जाता है।

मठ^२ (परि १५३)। ‘मठ बिरबानी’ संभवतः वर्तमान ‘माठा’ नामक पकवान है। यह मठरी की तरह का किन्तु पूरी से भी बड़ा और मरे का बनता है। बीच में तरह-तरह से ‘गूँठा’ जाता है। बिचाई के पकवानों में इसका खूब चलन है।

बरा (८४२ ८ १ ८२३) [सं. बट = गोमि टिकिया]। यह मूँच का चर्ब की टिकिया है जो कई प्रकार की बनती है—मीठी (पुरबरा) या नमकीन वही में पड़ी हुई प्रकवा खटाई में पड़ी हुई—बारे कट्टे मीठे हैं मिचि (१८३१) बरी बरा बेसन बहु यौतिनि^३ प्यंकन विविध धमनिर्वा (८४६)। एक पूरा पत्र (८४२) बरे से ही संबंधित है—

बरा कीर मेसत मुख भीतर, मिरिच प्रसन टकरीरे।

छीछन सबी मैल भरि घाए, रोबठ बाहर बीरे।

बहि-बाटी (८४४) भी शायद वही-बरा के चर्ब में सिखा गया है। ‘बहिबरा’ भाव कर्म के प्रिय व्यंजनों में गिना जाता है। बूब के बरे का भी उल्लेख हुआ है—‘बहि बूब बरा बहिरीरी’ (८ १)। बहिरीरी भी शायद वही बरा का ही सूचक है [बही + बरा]।

सूजी (परि १५३)। इस समय तेल में तली व कट्टी सूजी बनाने की प्रथा भी थी—‘निबुधा सोन तेल तर सूजी राइ करौवा रब कलौमी। यह नमकीन सूजी के तेल पर सूजी का मोटा झुप्पा ही धार्मिक प्रवर्तित है।

घाबकर्म की नमकीन वस्तुओं में बालमोठ खस्ता ‘समोसे’ तथा विभिन्न प्रकार की चाट के नाम इस सूची में बड़ाए जा सकते हैं। समोसा इस समय प्रवर्तित या न्यायिक बावसी ने मांस से भरे समोसा का वर्णन किया है।^४ पश्चिमी सम्प्रदाय की रस विविध व अमलरोटी ने तबलों में चाय कोछी के साथ भारतीय नास्ते में विशिष्ट अंगु कना भी है।

१—य सं. व्या, १४२४ ‘कड़ी सेवारि भी कुमकौरी’

२—” ” ११ में ‘मठ’ शब्द का उल्लेख है।

३—य सं. व्या १४३१। भांति जांति पाकहि बरा। ‘प्रकवा’ एकहि आदि मिरिच सिर्ज पीठे। छीठ को बूब पांड सो पीठे।’

४—य सं. व्या, १४३१। ‘युक्ति समोसा पिय मंह काड़े। रौब मिरिच सिन्ध मंह काड़े।’

७—मोजन की अन्य सामग्रियाँ अथवा व्यंजन

१५५—मोजन-सामग्री की वृष्टि से १ १४ तथा १८११ पत्रों का बहुत महत्व है। इन्हें पढ़ कर जगजा है कि ज्ञापक के पूरे जाने में परोये जाने वाले व्यंजनों में इन कई सी पत्रों में भी कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ है। निम्नलिखित नाम उल्लेखनीय हैं—

रोटी (७७७ १ १४) सूरसागर में बेसन की रोटी का निर्देश है—रोटी खिर कनक बेसन करि। अन्नबाहुन सेबो मिलाइ करि (१८११)। मञ्जरी (१ १४)—एक मञ्जरी है मोहि साजी—मो' एक प्रकार की बेसन की रोटी को कहते थे। अन्त्य भी से बमोरी का चुपड़ी रोटी का करि से वर्णन किया है—'इक कोरो इक बोब बमोरी (१ १८)। कसेबा-अंश में कृष्ण को मानन रोटी प्रिय बताया गयी है—'जननी वे मांगत बदन-जीवन है मानन रोटी छठि प्राठ' (७७७) प्रबवा 'मानन रोटी बहुत प्रिय' तथा 'बोड मेवा मेवा वे मांगत हैरी मेवा मानन रोटी' (७८३)। एक स्वप्न में रोटी का विशेषण 'सुपक सुकोमल (७८८)' आया है। रोटी मुत्तायम व मञ्जरी तरह सिद्धी ही अच्छी होती है।

आदि प्रकृष्टी में कई प्रकार की रोटियों का विवरण है—(१) बुनुर्गे-तनूरी (बड़ी तनूरी रोटी) तथा तुमके-तामरी (हमकी तबे पर सिद्धी)। इसी की एक किस्म बपाती है। यह एक छेर घाटे में पंडह या कुछ अधिक ही बन जाती थी।^१

तुमसी ने भी 'रोटी' का उल्लेख किया है।^२ बाबकस छोनी व पउसी रोटी को कभी कभी 'फुलफ' भी कहते हैं तथा मुसलमानों में विशेष रूप से 'बपाती' बनाने का रिवाज है। पंजाब में अधिकतर तंदूर पर बनी तनूरी तथा 'नान' आदि भी बनती हैं।

मांडि (१८११ ४२२२) [छ मडक]। मीरे की रोटी-विशेष आटे काइसाटी है मांडे मांडि कुनेरे चुपरे। बहुत चुन पाइ पाउरो उबरे। अन्न मांडे बनाने का रिवाज नहीं रहा है। पश्चात्त में भी भी से पोए हुए उम्बबन मांड कर बखन है।^३

बानी (१ १४) [छ बटी]। मीठे के घाटे की लोई हाथ से चिपटी करके कंड़े की राख

१—हिन्दी शब्द सागर के अनुसार मञ्जरी (बेस) के कई अर्थ हैं १—घाटे के भीतर बेसन आदिवा लगे की मिट्टी भरकर बनाई गई कचौरो, बेसनी रोटी २—मटर के घाटे की रोटी, ३—बेसन तथा मीठे के घाटे को मिलाकर उसमें नमक, सिमी, मंगरेला मिलाकर बनाई रोटी।

२—आदि छ , आदि २१

३—मुसली, ककिला , उत्तरकांड १६ 'राबरो कड़ाहीं, गुन पावीं राम राबरोह, रोनी है पावीं, राम राबरी ही कानि हूँ।

श्रीकृष्ण गोता , २, छोटी मोटी भीली रोनी चिकनी चुपरी क रे री मेवा ।'

४—प स ० व्या , १८४१ (२) जानसोस्तास के अनुसार मीठे के घाटे में भी नमक हुए और पानी डाल कर भाङ्गे के बाद उसकी लोई की रोटी हाथ से बनाकर मिट्टी के तबे पर रोक ली जाती है। जिज्ञासु (१९३१) में बूच व चाड़ के मांड का उल्लेख है ('मोठे प्रबन बूच गो घोये। खीर जांड मिलि मांडा पोए।')^४

प स ० व्या , १८४१ 'आमर मांड आए पिब पोए। ऊपर बैत्रि पास बए पोए।'

१४३१९ 'ऊपर छानि मांड भल पोए।'

की धीमी-धीमी प्राय में छेक लेते हैं। 'रोटी बाटी पोरी भोरी' (१ १८) नाम एक साथ दिये गये हैं। दधि घाटी (८५५)। यह समय बहो म हास कर बजाते हैं।

अंगाकरि (१८११) यवही अंगाकरि तुरत बनाई। ये भजि भजि ब्यालनि संन बाई। भक्षण में तुरत का बना 'अंगाकरि' अधिक स्वारिष्ठा बनाया गया है। बड़ी बाटी को ही 'अंगाकरि' कहते हैं। यह समय परिचयी हिली में आज भी चल रहा है। बरों में साधारणतया बाटी या मांजे बनाने की प्रथा अब नहीं रही है।

लुभुरई (८५१ १ १४) [सं दधि या पख लोच]। मीरे की पत्ती मुनाबम व बड़ी पूरी ही लुभुरई कहलाती है। बायसी ने भी पूरी तथा सोहारी के साथ यम घीर कोमल लुभुरई का उल्लेख किया है।^१ दो मोहनों के बीच में बीजगाकर पतलो बैसी हुई पूरी भी जो ठने पर लेकी जाती है लुभुरई या 'रोड़ी' कहलाती है। अबच में अर्धत लुभुरई के दिन लुभुरई खाने की प्रथा है।^२ यह प्रायः खांड के साथ खाई जाती है।^३ अब तो मीरे की पूरियाँ प्रायः बिनाह धात्रि के पकवानों में ही बनाने की प्रथा रह गई है। पूरे पूरी पुरि पेरो (८ १ ८२१, ८६६, ८९६ १ १४) [सं पूरिका]। जगता है पूरी बच्चों को हमेशा से ही अच्छी लगती है— सब परसि बरी बूत-पूरो। अब पूरो सुनि हरि हरष्यी। तब भोजन पर मन करष्यी।^४ (८०१) कलेशा में भी मीरा तथा धान्य विविध पकवानों के सामने बालक कुल्ह का प्याज पूरी व अचार ही प्राकटित करते हैं—'तुमको जाणत पूरी संजानी। (८२६)। बिवाह-प्रसंग में मीरा घीर बेसन मिठाकर बनाई कई मुनाबम तथा भारी पूरी का बर्जन है— दधि कोमल पूरी है भारी। मेवहुं ब्याम मोहि सुख बीजै। ठाठ करी मुम्हें ये प्यापी (८६६)। रोटी अंगाकरि बाटी धात्रि तो प्रायः दिन के भोजन में ही बनती थीं किन्तु पूरी हर समय के खाने में पा सकती हैं। बेसन पूरी मुख पूरी लौरी (१ १४) हाथ उस समय बेसन की पूरी बनने की प्रथा का भी उदाहरण है। अब तो बेहू के घाटे की पूरी अधिक लोकप्रिय है। परिचयी उत्तर प्रदेश में पूरी समय ही प्रायः बोला जाता है, यों 'पूरी' 'पूरी' समय भी सुनने में आते हैं। अबच में बने की बेल बरी हुई 'पूरी' कहलाती है जो घीर बयहों की 'कपोली' हुई। साधारण पूरी को बड़ा 'सोहारी' कहते हैं। पूरी से बड़ी सोहारी व उससे बड़ी लुभुरई बनती है।^५ अब भी घीर मीठी पूरी को सोहारी कहते हैं। पञ्जाब में भी पूरी के रंग, कोमलता एवं सख्त स्वाद का विस्तृत वर्णन मिलता है।^६

१—य सं अ्या, २८४ लुभुरई पूरि सोहारी परी। एक राती भी लुठि कौबरी।

२—य सं अ्या, २८४ (१)

३—य सं अ्या, २४३। 'लुभुरई पोह बीज तो बेंई। पावें अहीं खांड तो बेंई।'

४—यु जी, अ ११, अध्याय १ बीजियार बिलियमस कोय में 'पोलिका' प्रसंग मिलता है। पाइयतहकहएणबी कोय में भी संस्कृत 'पोलिका' ही है। पोलिका-पोलिम-पोली-पूरी-पूरी विज्ञातप्रसंग संभव हो सकता है।

५—य सं अ्या, २८४ (१)

६—य सं अ्या २४३। 'करिल बड़े लहं पावई पूरी। मुम्हें यह रूई लौपरी।

आणतु तैत पीत ऊबरी। लेनू जाहि धात्रि कौबरी।

सुख मेस्त दिन जाह बिनाई। लुभुर सबाय बाब जो बाई।'

२४३। 'पूरि सोहारी करी मिठ सुवा। पुस्तक बिनाई डरलू को सुवा।'

कचौरी (१८३१) [कच—बास—तामिस] यह बास को पिट्टी भर कर बनाई गई ममकीन पूरी ही होती है किंतु छोटी और मोमदार बाटे की कुछ अधिक मोटी बनती है। या ममोत कुमार बैटनी के मतानुसार 'कच' तामिस रुद्ध है जिसका अर्थ बास है। कचपूरिका-कचवरिया कचौरी—यह विकसकम संज्ञा हो सकता है।^१ कचौरी प्रायः उरख की पिट्टी की बनती है। इसी का बड़ा रूप 'बेई' है जो धर्मोपदेय खेन में अधिक प्रचलित है।^२ धातकम धामु मटर प्राय की भी कचौरी बनाने की प्रथा सहरो में चल गयी है।

कौरी (१८३१)। धातकम सादाबाब तहनीम में पण्डे को पन्दा टिक्कर धक्का करीरा कहते हैं।^३ संज्ञात 'कौरी' को ही कौरी कहा गया है— पूरी पूर कचौरी कौरी। सबल सख्तमम सुन्दर कौरी (१८३१)। पण्डा प्रायः किमुबाकार होता है और भी लवाकर तने पर चेंबते हैं। पछोह म पण्डे को 'पण्डम' भी कहते हैं।

१५६—संदुख (४८४) ओदनि ओदन (१८३१) भात (११४) तथा कूरा (११४—मोठे चार-पर ककल कूरा) रुद्ध पके हुए बास के अर्थ म प्रयुक्त हुए हैं। इन शब्दों की व्याख्या की जा चुकी है। कुछ लोग बासत पकटे समय कुछ पानी निकलते हैं जिसे 'माई' कहते हैं। ऐसा करने से बासत बिखर हुए में बनते हैं। इस क्रिया को 'पसाना' कहते हैं—बास पसाइ रोहिली बनाई (११४)। पूर्वी उत्तर प्रदेश बिहार बंगाल तथा बखिख में लोगों का मुख्य पादार्थ बास ही है। पर्वतमि में बिष्मयी बसिउकम् ओदन का उल्लेख कई बार किया है। इन प्राप्ति में धात भी इस रंग से बासत खाने का दुरव हेतुने को मिस जाता है।^४ बीजरी (१८३१) [च कूतर.] बास और बासत मिलाकर (बिजरी) गकाते हैं। भाईने धकबरी की व्यवस्था-यूथी में भी बिजरी बनाने का रंग दिया गया है। यमाद की पाकसामा में बिजरी बनाने के लिए पांच पांच देर बासत मूंग की बास तथा बी की धातकमका होती थी। मूरमावर में बिजरी किस शान से बनाई गई थी यह नहीं बताया गया है। प्राईने धकबरी के उल्लेख से अनुमान होता है कि मूंग की बिजरी अधिक प्रचलित थी। धात भी उर बास ममुर चने प्रादि की बिजरी बनने पर भी लोगों को मूंग की बिजरी ही अधिक प्रिय है। बितेपरक से बीनारी के बाद वो यही बी जाती है। बास बासत तथा बी के अनुपात में धकबय परिवर्तन था क्या है।

मूरमावर में इनके प्रमाणा और किछी रंग से बासत बनाने के उल्लेख नहीं मिलते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि उस समय धात की प्रिय 'तहरी' या बासत का 'उररा' न बनाया गया हो क्योंकि अनुपात तथा भाईने धकबरी में इनका विक्र हुआ है। भाईने धकबरी में कलिबिध बासत की धक गरतरियों में 'जुव बिर्ज' 'मूरक' तथा 'बादिमा' प्रादि नाम दिए

१—डा बातुदेवतरण धकबाल—'हिन्दी के ती धक्यों की निकलित

२—डा बी, प्र ११ अध्याय १

३—डा बी, प्र ११, च ६

४—इदिया एज लोग ड बातिमि—'पृ १०३' महात्म्य बासत के अनुसार एक अधिक रूप भोजन सुप और यह लता (barley) ही था। पर्वतमि के अनुसार किसी भी ब्राह्मण को भोजन कराने के लिए 'ओदन' धकट होता था।

५—बनियर, पृ ३२१, बनियर में सैनिकों के बिजरी खाने का उल्लेख किया है। बिजरी बनाने में बासत व तरकारी पाक-ताप उबाने के बाद ऊपर से नीचे घालने का चलन है।

जा सकते हैं।^१ पद्मावत में केसरिया 'सोनवरण तथा 'तहरी भी व्यंजनों में है।^२

१५७—ऊँदा (१८११)—'बाटी पट्टो विविध बाई। बहुत बार जैत अथि बाई। सोयी के प्रिय व्यंजनों में बाज भी ऊँदा का स्थान है। बेसन की पकौड़ी को बेसन के पतले रसे में पकाकर बनाते हैं और बहो डाल कर इलम कटायन लाते हैं। निमोमा, निमोननि (१०१४ १८११) निमी दाम को मून कर उसमें बहो मसाला हरी मटर आदि डालकर निमोमा बनाया जाता है। बने की दास का ही निमोमा अधिक बनता है। सूरसागर में बाम-विशेष या बनाने की विधि का संकेत नहीं है। बटपडा होने का संवरण उल्लेख है— बहुत विरिष है किय निमोमा (१ १४) तथा 'सरस निमोननि स्वाध मंदाग्यी (१८११)।

बेसन सामान। सूरसागर में बेसन ॥ विविध प्रकार के व्यंजन बनाने की चर्चा कई बार की गई है। इनमें से एक बेसन की तरकारी भी जो—'बेसन सामन अधिको नाचर' (१८११) तथा बेसन के दस बीसक रोना' (१ १४)। भावकन भी बेसन का नमकीन हलवा सा बनाकर फिर उसके ऊपर काट कर सूखी और रसेदार तरकारी बनाते हैं जो 'बेसन कइलाठी है। प्रथम में इसको कटप भी कहते हैं।^३

बरी (८५६ १ १४-१८११) [चं कपी]। उब की बाम की छोटी-छोटी पकौड़ियों को मुबाने के बाद उसकी रसेदार तरकारी बनाते हैं। यह भावकन मूब बनाई जाती है। कूर-बरी (१ १४) का उल्लेख भी है [कूरी = घरहर की कूरी]।

मुँगाछी (१८११) मूब की बाम को बनी कई नमकीन वस्तु खात होती है। बरी की तरह ही बनाई मुँगीरी (मून को बाम की) भी हो सकती है। पद्मावत में भी 'मुँबीछी' का उल्लेख है।^४

डगडरी (१८११) मूब डगडरी होव मनाई से को^५ नमकीन वस्तु खात होती है। पद्मावत में 'डुम डगडरी' का उल्लेख है। वहाँ हरी मटर या पत्ते की बुँदिया के लड्डू का अर्थ भी लगाया जा सकता है।^६

मिचौरी (१०१४) उब की बाम का फटे की बरी जिसमें मैथी आदि मसाला डाला जाता है इसको कुम्हरीरी भी कहते हैं। मिचौरी लम्बे एवं घाघारखटया मुनने में नहीं आता है। पद्मावत में निराल वही मिचौरी का निर्देश है।^७ वहिगौड़ी (८ १) भी डूब और वही

१—भाई स , पृ ११६

२—य स ध्या , ३६१६ 'कीड सोनवरण जेई केसरि'

" , ५३ ११ 'तहरां पाकि लीलि सी परी। परी चिरींजी सी सुझुटी।

३—य स ध्या २८४ (३) भावकनार के अनुसार कंठरा बेसन का बीकोर बना होता है जो लुखा और पीला दोनों प्रकार का बनता है। कुंवर सुरेस सिंह के अनुसार मूब बना, उरब तथा घरहर आदि बालें मिलाकर पीत कर उसके 'संडरे' काप्रकर बनाते हैं। ये 'मुँगीरी' की तरह बनाये जाते हैं।

४—य स ध्या , ३४६१३ 'मई मु गौछी मिरिचें परी। कीन्ह सुंबीरा दी गुरबरी' ३४६१३ (मुनपचूया-मुनपचूया-मुँबीछी) बनवरी बोली में यह नाम नहीं मिलता है।

५—य स ध्या , ३५ ।

६—य स ध्या ३४६१४ 'जई मैचौरी तिरका बरा ।'

कि वही एक प्रकार की बड़ी होती थी (बर्गिडोर वाटिका) ।

१५८—राहुता (१८३१) [सं० राधिकार] । आनन्दन वही क ज्योतिषी में रायता सबसे अधिक बताया जाता है । यह लीकी लीरे ककड़ी बमुए, मासु, मुँदी आदि विभिन्न प्रकार की चीजों से बनाया है किन्तु लीकी का रायता सबसे अधिक प्रचलित है । रायत में कभी-कभी राई भी डालते हैं । सूरसागर में रायते के विस्तार नहीं है किन्तु पञ्चमास में 'लीका का ही 'रैता' बताया गया है ।^१

लीर, अमरलीर (८६६ ७६२ १८३१) [सं० लीर] । लीर का अन्वेषण कई स्थानों में हुआ है—'लीर काट्ट भूत सावन भादू (१ १४) लीर काट्ट लीचरी लीचारी (१८३१) । मङ्गलने के पाँचे धामयन प्रसंग में भी लीर का उल्लेख है—'मेनु पुद्गाद रूप ली पाई पाँचे रजि करि लीर बहायी (८६६) । पूरे जाने में लीर की भीटी ललरी में लीर का प्रमुख स्थान प्राप्त भी है । बाबल की लीर ही अधिक प्रचलित है । या आनन्दन मन्त्राने लीकी लुकी आदि प्रत्येक चीजों की लीर बनती है । लीर में मेवा लीर बेसर डालते हैं तथा ऊपर से छेन या लीरी का बर भी लगाते हैं । सूरसागर के प्रसंगों में प्रायः लीर के साथ काँड़ लब्ध बताया है । आर्यन अकबरी में लीर को लीरलिरा नाम दिया गया है तथा इस सेर लुप एक सेर बाबल एक सेर लब्ध तथा एक दाम लक से बनाने का विवरण है । पञ्चास में बाबल व लुप की लीर को बाडरि कहा गया है ।^२ पञ्चास में दोनों लीनार के अन्त में लीकानी (शरबत) पुमाए जाने का निर्देश हुआ है ।^३ आर्यन अकबरी में भी शरबत का पता चलता है किन्तु सूरसागर से इस प्रथा पर प्रकाश नहीं पड़ता है । आनन्दन प्रसंगी रूप के साथ में लाल से लुके ही शरबत बनवा लसों का रत (syrupous) देने की प्रथा है । जाने के बाद 'कोड़ा' जाती है ।

लिखरन (१८३१)—'बलीपी लिखरन पति छोपी । मिले निरिच नेटल बकचीपी ।' बहो के मट्टे में लुह का काँड़ डाल कर लिखरन बनाई जाती है । बासीपी या बासी होने से कटास बढ़ जाती है । बायसी न 'तोमि लिखरन के पाड़ होने का बखान किया है ।^४ अलीमद खेन में बासी लीक 'बहोड़ कहुलाता है ।^५

काँजी (१४७५) [सं० काँजीक] । लट्टे मट्टे में राई व लक डाल कर काँजी बनायी जाती है । अमरकोट प्रसंग में बोपिया कहुती है—

'बिरिच धन बहुरि रापी बाह ।

टूटी लुरै बहुरि कतगि करि, तऊ बाप नहि जाह ।

लुप काँठि लीकी ली काँजी कीक स्वाद मोर छाह । (४४७५) काँजी तथा लिखरन आदि लुकी के अन्वेषण अब कम ही बनाने जाते हैं विद्यपकर लवरो में ।

१—य सं० व्या, १४८५ 'ले लु ली लीका बनती । रैता कहे काटे लै रती ।'

२—य सं० व्या, १४८५ 'बाडरि पदियाडरि पाई ।' (७) बाबली की उपभोग लेखाही में लेखनार के अन्त में बरोली जाने वाली भीटी ललरी को 'पदियाडरि' कहते हैं ।

३—य लीकालरि पदियाडरि, लीका लीनार । (१) लुकेलकरन में लिट्टे वैय के रूप में 'पदियाडरि' का प्रकार है । वहाँ लीनार के अन्त में बाबल तथा लाल का अन्वेषण, लीकनी या मोरल में लुह विलाकर परलने की प्रथा है ।

४—१४५१, 'ले लेखनार किरा लीकानी १४५१ 'ले लेखनार किरा लीकानी ।'

५—य सं० व्या १४०१४ 'लिखरन लीपि टूटाई पाही ।'

६—य ली०, प्र० ११, साम्या० ६

मोजल को बाय सामान्यी बनवा बर्जल

मोहरी (१८११) [स मही से]—मयूर मोहरी मोनियारी। मोहरी मट्ट में बुद्ध व
 बायल को काकर बनाते हैं। कमी-कमी मक्के या बाजरे का बजिया भी बना देते हैं। इन
 मट्ट के मूल में 'मोहरी (मट्ट)' ही है। इसी प्रकार मने के रस में पकी और रसदार रसावर
 या रसवाई [रस ४ बाजल] बनाते हैं। मोहरी तथा रसदार प्राचीन मोहन में ही अधिकतर
 होती है। पचावत में बर्जित केबहार में पहिली बजवा पेयन है जिसकी वरति हिन्दी मध्य
 व्योसर (८ १)। यह संभव पेयनी बजवा पेयन है जिसकी वरति हिन्दी मध्य
 मोहन में संस्कृत 'पु' से मानी गई है। इन की ज्यादा बाय बजवा मेल के मूल को 'पेयनी'
 कहते हैं। यह न झा। तथा मोहरी रस का होता है और इसे पीने में हानिकारक मालूम है।
 मुरसानर में 'मेलि व्योसर' उत्पन्न बनाई। जिहि छट्ट मिरिब बर्जित। बर्जित है।

१४६—पार (१८११)। बा बुनीकुमार मेलों के अनुसार पारमल के मूल में
 वामिन मध्य 'पु' (बाज) है। सं पर्यट या पयन-पारम—यह विकारक हो सकता है। बाय
 मूल पारम कई प्रकार की बीजा से बनाए जाते हैं—जहाँ या मूल की बाय बाय बाय तथा
 धनुषाभा। बाजे में पारम का बजवा बिलिख स्थान है और कुछ बजलों में तो बाजल पारम ही
 से बज बना जाता है। बायसी में भी मनेक प्रकार के पारम मने का बजल बना है।
 सैधानी (८२६) बाबा (१८११) तथा बायानी (८२६) [सं] त्वायु—टिकाऊ।

य तीन मने बजार के मने में प्रमुख हुए हैं—पारम बरी बजार परल मुचि (१८११)
 दुमकी बायत पूरी सैधानी तथा 'मिमुसा' दुम बाय बजलों और कटीयों की बर्जित
 (८२६)। बजबर के समय में मनेक प्रकार के पल और तरकारी के बजार वाले बाते में
 बाय बाय बजवा दुमकी मनेकी धारि। मने के पसलों में भी मूल के बजार का निर्देश
 निर्मोक्त धनुष बाय बाबर मेल समान तथा बाय के बजार बाय भी बजल बाते
 इसके मिरिबिल मने मोनी और बजबर के बजार की मोनी को मने है। बजार के स
 मने तथा बजनी भी बनाई जाती है। बायनी में सैधान मध्य बाय भी बजला है और पयन।

१५०—मुरसानर के रस का (८ १ १४ १८११) में बिलिख बाय दुम
 बजलों के मानी की और भी बजला जाता है। इसके मने लय नहीं है। संभवतः यह वे
 बजल बायक बजलित नहीं है। प्रमुख नाम निम्नलिखित हैं—
 'मिमुसा' मुर (१ १०) 'बर्जित' 'मोहरी' 'मोहरी' (परि १५१)।
 (८२६) 'पेयनी' 'मुरकुनी' 'मोहरी' तथा 'मुरकुनी' (परि १५१)।

- १—दुम की, य १०, मय्या ६
- २—य सं म्या, १४६१ 'मोह' मद्रिब की बीजा तावा। मोह बरी मने
- ३—मोह बाबा १
- ४—मोह बाबा १
- ५—मोह बाबा १
- ६—मोह बाबा १
- ७—मोह बाबा १
- ८—मोह बाबा १
- ९—मोह बाबा १
- १०—मोह बाबा १
- ११—मोह बाबा १
- १२—मोह बाबा १
- १३—मोह बाबा १
- १४—मोह बाबा १
- १५—मोह बाबा १
- १६—मोह बाबा १
- १७—मोह बाबा १
- १८—मोह बाबा १
- १९—मोह बाबा १
- २०—मोह बाबा १
- २१—मोह बाबा १
- २२—मोह बाबा १
- २३—मोह बाबा १
- २४—मोह बाबा १
- २५—मोह बाबा १
- २६—मोह बाबा १
- २७—मोह बाबा १
- २८—मोह बाबा १
- २९—मोह बाबा १
- ३०—मोह बाबा १
- ३१—मोह बाबा १
- ३२—मोह बाबा १
- ३३—मोह बाबा १
- ३४—मोह बाबा १
- ३५—मोह बाबा १
- ३६—मोह बाबा १
- ३७—मोह बाबा १
- ३८—मोह बाबा १
- ३९—मोह बाबा १
- ४०—मोह बाबा १
- ४१—मोह बाबा १
- ४२—मोह बाबा १
- ४३—मोह बाबा १
- ४४—मोह बाबा १
- ४५—मोह बाबा १
- ४६—मोह बाबा १
- ४७—मोह बाबा १
- ४८—मोह बाबा १
- ४९—मोह बाबा १
- ५०—मोह बाबा १
- ५१—मोह बाबा १
- ५२—मोह बाबा १
- ५३—मोह बाबा १
- ५४—मोह बाबा १
- ५५—मोह बाबा १
- ५६—मोह बाबा १
- ५७—मोह बाबा १
- ५८—मोह बाबा १
- ५९—मोह बाबा १
- ६०—मोह बाबा १
- ६१—मोह बाबा १
- ६२—मोह बाबा १
- ६३—मोह बाबा १
- ६४—मोह बाबा १
- ६५—मोह बाबा १
- ६६—मोह बाबा १
- ६७—मोह बाबा १
- ६८—मोह बाबा १
- ६९—मोह बाबा १
- ७०—मोह बाबा १
- ७१—मोह बाबा १
- ७२—मोह बाबा १
- ७३—मोह बाबा १
- ७४—मोह बाबा १
- ७५—मोह बाबा १
- ७६—मोह बाबा १
- ७७—मोह बाबा १
- ७८—मोह बाबा १
- ७९—मोह बाबा १
- ८०—मोह बाबा १
- ८१—मोह बाबा १
- ८२—मोह बाबा १
- ८३—मोह बाबा १
- ८४—मोह बाबा १
- ८५—मोह बाबा १
- ८६—मोह बाबा १
- ८७—मोह बाबा १
- ८८—मोह बाबा १
- ८९—मोह बाबा १
- ९०—मोह बाबा १
- ९१—मोह बाबा १
- ९२—मोह बाबा १
- ९३—मोह बाबा १
- ९४—मोह बाबा १
- ९५—मोह बाबा १
- ९६—मोह बाबा १
- ९७—मोह बाबा १
- ९८—मोह बाबा १
- ९९—मोह बाबा १
- १००—मोह बाबा १

८—पेय पदार्थ

१११—आने के साथ साछ (१ १४) [सं] धपवा नीर (१८३१) [सं] का होना अपि आवश्यक है। गुरागर में भोज्य सामग्रियों के साथ मूरी में सातल [सीतल सं] बमुना-जल रखने का निर्देश हुआ है। 'बमुना जल राख्यो भारी भरि कागू कटुयी ही मानु प्रभायी। धब यीकौ सीतल जल धानी। (१ १४) धपवा 'नर्मनदन नीर सीतल धप्ये सडे धबाइ (१८३२)। पीने के पानी को कपूर से सुगन्धित करने की प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है— सीतल जल कपूर रस राख्यो।^१ सो मोहन अपि रचि करि कथ्यो। (१८३१) धाब भी बटोप धपघरों पर केमड़ा व गुलाब जल डामकर जल सुवासित किया जाता है। पीने के लिए पानी धपे धप्यो' लब्ध प्रयुक्त हुए हैं। धब पानी [६ पानीस] लब्ध जल ठंडा नीर के स्थान पर अधिक होता जाता है। पद्मावत में भी पानि धपवा 'पानी लब्धों का ही अधिक प्रयोग हुआ है।^२ पीने का जल भारी, गुरु धपवा खरिका (१ १४ १८३१) में रक्ता जाता वा पद्मावत में कचोरा में पीने (५१४१) का उल्लेख है। धाब-कस नयनों में पानी म्मास में पीने का रिवाज है किन्तु गाँवों में प्रायः लोग ओटे से पानी पी लेते हैं। गुन्दाबन बमुना के बिमारे बसा होने के कारण बमुना जल पीने के काम में धाना स्वाभाविक ही था। इन प्रसंगों में बऊ सं पानी ठंडा करने का उल्लेख कहीं नहीं है। वास्तव में धपबर के समय में ही बऊ का इस रूप में उपयोग धारण हुआ था।^३ धब तो बऊ कृत्रिम ढंग से बनाई जाग सर्ग है। सब जलों में हिन्दुओं के लिए 'बंभाजल का सर्वश्रेष्ठ स्थान है।

नशीले पेय पदार्थ

११२—ऊँच स्फुट प्रसंगों में मुरा (२६ ४१४) [सं] धपवा बारना (४=१६ ४८२ ३५२७) [सं] बावली के उल्लेख भी हैं। १५४ १५५ वा परीक्षित-वधा में निम्न वस्तुओं में मुरा का उल्लेख हुआ है— बड़ी हरि विमुक्त धब बेत्या बर। मुरापान धपकनि गूह वहाँ। 'बूया सेलत वहाँ धुधारी। ये पानी है ठीर तुगहारी (२६) कट्टम-बबाव के बल्लभरि-बबतार से समुद्र-मंदन द्वारा मुरा तथा प्रभु को प्राप्ति का बखानू है— 'बहुरि बन्नीति धायो समुद्र ही निकसि मुरा धब प्रभु निज संग जायी। (४१५) फिर मोहिनी रूप बारछ

१—प सं ध्या, ११४१२ 'पामा वैहि कपूर क बलता। विष न पानी बरत पियासा।'

२—प सं ध्या, ५१४११ 'पानि लिहे बासी बहूँ सोरा। धपित बानी भरे कचोरा।'

३—प सं ध्या, ३२०१७ 'पाव सुमरिहा सीतल नाम'

३—धार्मिक ध (धावधारण) लब्ध पानी को प्रयुक्त कहता था। बहूँ घर व धानाओं में रखाजल होता था, किन्तु जब धावरे तथा पत्तेपुर में रहता था तो सोरो से पानी आता था तथा बजाव में हरिहार से। बाकपाला में यमुना तथा बजाव या बर्पा का जल उपयोग में लाया जाता था। सर्वप्रथम लब्ध ने सोरे से पानी ठंडा करने का डग निकाला, फिर लब्ध ३ इसल्लो (१३८९ ई) में जब लब्ध लब्धौर में था तब हिम या बऊ का रिवाज शुरू हुआ। पकानपेट के पास दो उत्तरी बहावों से बऊ कहारों व बहल्लों पर धाली थी। रुपये की दो तीन सैर मिलने के कारण साधारण वर्ग के लोग केवल गर्मियों में लाभ उठाते थे।

तबोनी तमोली] से ही धाया है। प्राचीन समय में पान का बीड़ा उठाकर प्रतिष्ठा करने की प्रथा थी। इसी प्रथा पर बीड़ा उठाना मुहावरा साधारण है। नवमस्कन्ध सुन्दरकाण्ड में हनुमान जी सीता को खोजने की प्रतिज्ञा साम्प्रत उठाकर हो करते हैं—‘पवन-पुत्र बलवन्त बन्ध तनु कार्य हृदयौ जाइ। तियो बुझाइ मुखि बिग छै के कहुँयो तबोतहि नेहु।—‘तियो तबोत माय करि हनुमत कियो बनुरपुन गाव। (५१८) सकटासुर बध में भी उल्लेख है—‘मुरतहि सोरु बीरौ (१७६)। देव-पूजन के सोलह रंगों में पान का स्थान भी है।^१ पूजा या धारती के पान में दूध दधि रोचना तथा चानस आदि के साथ पान भी रखना शुभ माना जाता है। गिरिधर-भारव प्रमथ में इस प्रथा पर प्रकाश पड़ता है—‘चार तमोर दूध दधि रोचन हरि प्रमोदा स्पर्श। करि छिर तिलक बदन अक्षमोदति मनहुँ रंजति निधि पाई मा कंचन पार दूध दधि रोचन सखि तमोर ले धाई। (१५८४)। नवमस्कन्ध में जनबास की अवधि-नमाप्त होने पर राम के अवधोभ्या-आगमन के समय पुर-बपुरे धारती सजाती है—

दधि दूध-हरद कन-कून-गान। कर कनक-भार तिय करति नान। (३१०)।^२

भारतीय प्रथा के अनुसार धार्मिक-सत्कार में भी पान का महत्वपूर्ण स्थान बहुत दिनों से है।^३ जूना कत्ता सुपारी व मसाला-ढास कर मिश्रित हुआ पान ही बीरा (१८३१) [सं० बीटक] कहलाता है—‘मनमोहन हलधर बीरा’ (८ १ १८३१)। मिस्ती पत्रे बीड़े की बीरी (१) कहते थे—‘न बीरी तनक मुन नायो। छति नाल धरर हई धाबो। (८०१) पीसे डम्बल तथा बुराने पान के गल भेष्ट मान जाने थे—‘पीरे पान पुराने बीर साठ नई दुति शानि हीरा (१८३१) या—‘डम्बल पान कपूर कस्तूरी धारोवत मुख की छवि करी। (१ १४)। इस पत्रात छ बीड़े में कपूर तथा कस्तूरी डालने की प्रथा का भी अनुमान हो जाता है। पान का पत्ता छाया हा उमी जाने की इच्छा होती—‘छाये पान बरे सिद्धि तोरा। निप सुर्ग नहि बहु बीरा (परि १४३)।

बीड़ा बनान के लिए पान के पत्ते के अनिरिक्त सुपारी कत्ता तथा जूना धत्यावरणक है। सुरदासर में पान के साथ इनका उल्लेख नहीं है किन्तु छग्न प्रसंगों में सुपारी (११४६) [सं० सुमिय] तथा जूनी (११४६) का उल्लेख अत्यन्त हुआ है। व्यापारी के रूपक में मसालों की सूची में सुपारी की जर्ची है—‘जौन नारियर बाल सुपारी कहु साहे हूँ धाई। (२१४६)। जूना तथा इसी मिलाकर एक ही रंग साज हा जाता है इसी प्रकार गोविन्दों का अपने धारण्य इष्ट के प्रति अतिरिक्त प्रेम था—‘मानति नाहि साक-सरसादा हरि के रंग मन्दी। गुर स्नान की त्रिनि जूनी हरयो ज्यो रंग रंजी। (२२४६)।

धार्मिक प्रवृत्ति में साम्प्रत का साक या कन में मिला गया है। उस समय प्रचलित पान की प्रमुख व्यक्तियों का भी पत्ता चलता है। वो सी पानों की गद्दी ‘कासी’ कहलाती थी। वो बीड़े चलन चलन लगाकर (एक में कत्ता धादि व दूसरे में जूना) तथा रैतम से बांध कर

१—देवपूजन के सोलह अंग में हैं—‘आसन, नान, अर्घ्य, धाबधनीक, ननुपर्व, स्नान, बत्न, आभूषण, पद्म, पुष्प, पुष्प बीर, नेत्रेण, साम्प्रत, बन्दन पच्छिमा।

२—मानस, बाल, १५६। ‘हरद दूध दधि परतव जूना। पान पुष्पक मगत धूना।

३—“ १४६। ‘विह पान पुजे जनक दत्तरथ सहित लमात्र।’

भोजन करने का रस

स्तुत किन्ने जाने की प्रथा थी ।
 पद्मावत में भी एक स्थान पर पाता की प्रमेक काठियों के माथ भिरे गए हैं । इनमें
 पेड़ों (बुरान पीछे का पान) मुनरावि (मठा के मध्य भाग का पत्र हुआ चक्र या पीला
 उत्तम पान) तथा बहीना (बुहाराही) नाम उल्लेखित हैं । मुरवार में उल्लिखित पीरों
 उत्पन्न तथा पुराने पाता की यही चिह्न होती जो उत्तम पेड़ी में पाते थे । उधरों की
 ज्वलार के बाद पान बुनाए जाने का जिक्र है ।^१ कन्वे की टिमिया या बिरोरी [सं० बिदिर
 बटिका—कयर बटिया—बदरखरिया खरीदा-बिरोरी बिरोरी] कपूर जान कर बगई गई
 थी—बहुत कपूर बिरोरी बोधी । (३६।४)
 पान की मठा को संस्कृत में 'माधकसी' भी कहते हैं ।^२ पाकजान बोधा जिन्ने के मँहूँ
 तथा महीने का पान मठिक है। 'माधर' मरछी याद बिठियाँ पधिक प्रचलित हैं । पाठिय
 'बनारसी' नामक देवी 'माधर' मरछी के लिए बो पान के बीड़े या बीना-बीरी देने की प्रथा है ।
 सत्कार में अधिक सम्मान प्रदर्शन के लिए बो पान से बन्ध किया जाता है तथा सोने की बड़े क लोह कर
 बाब रेशम के स्थान पर पान नीय से बन्ध किया जाता है । मगाने में विपरीत मरी सोड तथा दमाकसी
 उत्तरी मक्का काउबाय में प्रस्तुत किया जाता है । पान के संबंध में एक मनोरंजक पहेली प्रसीधक सेब में मरछूर है—'नीच मरछूर पाँवों
 में कपूर व कपूरी का स्थान से लिया है ।
 पान के संबंध में एक मनोरंजक पहेली प्रसीधक सेब में मरछूर है—'नीच मरछूर पाँवों
 रंग मरछरिया में बैठे तो एकई रंग ।^३

१०—भोजन करने का ढंग

१९६—जाने के विनियमों में मुरकातील प्रचलित काच-बालियों के प्रतिनिध बाग
 भाग के ढंग पर भी प्रकाश पड़ा है । पान पर बीज के बाब बोधी पानने रख दी जाती
 थी—पासन ही बोधी पाने चाहिए । फिर पान में हाथ बुनाए जाते थे—कपूर-बार में हाथ
 बुनाए । लकड़ ली मोजन लहूँ पाए । (१ १४) । मोजन को घन निपावों (८९६ २०८४)—
 से बनी लीपकर जाने बैठने की प्रथा का निर्देश है । जाने की समाधि पर तो हाथ बुनाए ही
 जाते थे—'जोयबन से लब बीए कर मुक बयका 'मोजन घल जायमान कीरों' (परि
 न कर मुक (१ १४) याद ।^४
 १—बादले घ, ४० १५३—पान की से प्रमुख जातिलों थी—बिखरी—सिने व
 बलकीला, कन्देर—जम्मे बिन्नीबाद, कपूरी—सोला बेल्ला—बीड़ा बड़ा बल
 तथा बेलवार कपूरजाल याद ।
 २—व सं घ्या, ३०६ ३६।१ पान मरछूर करे सँवारो
 ३—४० सं घ्या, २५५१२ सिने बाल बगुरा सब कीरों
 ४—क जी म १३, प्रयाय २, ४० में भी इतना उल्लेख है ।
 बोस—१०।१२ । हर्त सं घ, ४० में भी इतना उल्लेख है ।
 ५—क की, म १३, प्रयाय २ —पान मरछरी बरबा बुना तथा लीव मिन कर
 तात रंग ।
 ६—पासन, बाल, ३२६ 'पातर' लक्षित जायमानु रीमू ।

हाथ मुँह जोने के बाद पात्र खाने की प्रथा भी चर्चा की जा चुकी है। पात्र के अति रिक्त चरम तथा अत्यन्त भगाने की प्रथा भी थी — बर्बल और अरगना आसी। अपनी कर बस के भोग आसी। या पात्रे आपुन हूँ आसी। जबरूयो बहुत सज्जनि पुनि पासी। (१८३१) तथा— बर्बल भोग के करण्यो (१ १४)। इन सभी पद्यों में अक्षरों को पनवारो (२२८ १८३१) व झूठनि (१८३२ १८३३) मिलने पर उसका अपनी सौमन्य पर हृषित होने का बखान है— 'सूरदास पनवारो पासी (८२८) सूर झूठनि भक्त पाई देव-सोक मुमाइ (१८३२) या— 'बोनि बई हंसि झूठनि बारी (१८३३) अथवा 'हरि लनक लनक कछु बापी झूठनि सब मज्जनि पासी। (८ १)। आसली^१ तथा गुसली^२ ने भी पक्षम के लिए 'पनवाट सूर ही प्रयुक्त किया है। अथवा तथा कुबेसकण्ठो ने यह शब्द बल रहा है। खाने के बाद की बची सामग्री यात्र भी 'झूठनि' कहलाती है। सर्वत्र धाराण्य की 'झूठनि' काकर अज्ञानम प्रेम प्रकट किया जाता रहा है, यही तब कि भारतीय स्त्रियाँ भी इसी भावना से पति के बूटे बर्तनों में खाना खाया करती थीं।

दासत आदि में बहुत से लोगों के खाने का ढंग कब भिन्न होता है। सब भोग पंक्ति बद्ध होकर दासनों पर बैठ जाते हैं और सामने पक्षमों पर खाना परचा जाता है।^३ खाने का यह पंगति [सं पंक्ति] का ढंग सूर के समय में भी प्रचलित था— 'नव सहित पंगत बैठारी' (परि १५३)। इन्द्र के अन्नप्राशन के उत्सव में भी खाने का यही ढंग था— 'महर् भोग सबही मिलि बैठे पनवारो परचाए। भोजन करत अधिक शक्ति उपसी ओ जाके मन भाए। ७ ७)।

१६७—मनुषी ने यही के प्रचलित ढंगों से खाना खाने का विलुप्त वर्णन किया है।^४ बादशाह दस्तरखान पर बैठकर खाते थे। सामने सोने चाँदी के पात्रों में भोजन परोसा जाता था। अकसफजल ने लिखा है कि भोजन प्रायः यही-रूप से प्रारंभ किया जाता था। खाने के पहले छोटों का भाग निकाल देते थे और अन्त ईश-विजय में होता था।^५ मनुषी ने साधु संन्यासियों के संबंध में लिखा है कि वे बटाई पर पासबी लगाकर बैठते थे। छतों दीवार से सीना जाता था। भोजन बड़े-बड़े बत्तनों पर परचा जाता था जो नमक और मक्खन से चिकने कर लिये जाते थे। उनके भोजन में चावल छरकारो तथा दही-मट्ठा ही अधिकतर रहता था।

सूरदास में नवविध सोने-चाँदी के बत्तनों में खाने का ढंग यही बल वाला है। खाने के इन सभी बर्तनों के संबंध में धार्य बताया जायगा।

मात्रकल प्रणामतया सफ़री के पीछे धासन अथवा बटाई पर बैठकर खाने की प्रथा है। खाना प्रायः बर्तनों में ही खाया जाता है। बखिख तथा गुजरात आदि कुछ जगहों में सामने चौकी पर खाने के पात्र रख कर खाना खाते हैं। नगरों के छोटे-से बड़े लिये घनी बग मेव कुर्सी पर बैठ कर प्लेटो आदि में खाने का ढंग पारशास्य सम्प्रदाय का प्रभाव है। इस बग में अम्मर घुरी तथा काँटे से खाने का ढंग भी विदेशी प्रभाव के फलस्वरूप ही धार्य है।

१—प० ल० प्या, २८३। 'कनक बज तर पोती कनक बज पनवारो'

२—नामत, बाल ३२८। 'तावर लये परल पनवारो। कनक कील भनि पात्र लंवारो।'

३—प० ल० प्या, २८३। 'पति नति सब बैठे, नति नति जेवनर।'

४—मनुषी, भाग ३, पृ ४९

५—दासि प० पृ० ११८

खण्ड ३

स्थानवाचक शब्द तथा काल-विभाजन

१—कृष्णकथा से संबंधित शब्दावली

१६८—सुरदास का कवि-हृदय ग्राम्य जीवन में ही अधिक रहा। अठएक इष्टदेव की ब्रजलीला के अन्तर्गत बृन्दावन तथा योक्लुन ही उसका ध्याय अधिक आकर्षित कर पाए। मथुरा का ऐलीला किनारा करीस कम तथा ब्रज के बगो म ही उनका चित्त उसमें कर रह गया। कवि ने पूर्ण मनोयोग से तथा भाव बिभूषण होकर इस सब का ही चित्रण करके तुल्य पायी। कृष्ण तथा राम कथा के विमर्शों में भारत के तीन प्रमुख प्राचीन मयों—मथुरा, द्वारकपुरी तथा अयोध्या की वैभव-सम्पन्नता का वर्णन करना तो आचरमक ही था। यह उन्होंने किया अचरम किन्तु, जैसे केवल कल्पनापात्र के लिए।

सुरदासर की रचानसूचक शब्दावली के तीन भाग किए जा सकते हैं—(१) कृष्णकथा से संबंधित शब्दावली (२) रामकथा से संबंधित शब्दावली तथा (३) ग्राम्य स्फुट प्रसंगों में उल्लिखित शब्दावली। सुरदासर का विषय ही ऐसा है कि ऐतिहासिक प्रवृत्ति भीषीक ज्ञान-मयार्ण के लिए अधिक रचान नहीं है। इसके अधिक अक्षर आपसी की पदमावत में मिला है।

नगर ग्राम आदि

१६९—सुरदासर में अत्र^१ के कोषों (१२१२ १७३४) से योक्लुन तथा बृन्दावन के मयों से ही उालय है। मथुरा नगरी उसमें प्राय नहीं पायी है। कवि के आराध्य की ब्रजलीला का प्रथम आध्याय योक्लुन (६४२) से प्रारंभ होता है—अत्र मयी महरि कै पूत जब यह बात सुनी। सुनि जानये सब लीम योक्लुन नगक सुनी। अथवा अति धार्मिक होय योक्लुन में रतनमुनि सब धाई। (६१६) तथा धार्मिक-मय नर योक्लुन सहज के। (६४७)। योक्लुन के हाट-बाजार म उक्तात जैसे विचार पड़ता था—‘योक्लुन हाट-बाजार करत बु सुनवन रे (६४६)। फिर कवि योक्लुन को अमर नगर’ कह कर जैसे उसके अतुल लीलाय की घोषणा करता है—अमर नगर उठसाह अक्षरा गावन रे।

बहु निमी अक्षरा बुष्ट के शवन रे। (६४६)

अथवा—सुरदास प्रभु योक्लुन अष्ट मथुरा बर प्रहारी। [६१९]

आराध्य बुष्ट का लीलावतन योक्लुन में ही बीता। अन्ध-मगन—नाम नारदेवन

१—डा बीरेन्द्र वर्मा (ब्रजभाषा व्याकरण, पृ ६) के अनुसार ‘ब्रज’ सम्म सर्व प्रथम आग्नेय संहिता में प्रयुक्त हुआ है किन्तु वहाँ शीरों के अक्षराय अथवा पञ्चमभू के अर्थों में आया है। फिर हरिवंश आदि पौराणिक साहित्य में इस शब्द का प्रयोग मनुष्य के निकट नंद के राज या योद्ध विषय के अर्थ में हुआ। हिंदी साहित्य में आकर हो मथुरा के आसपास का प्रदेस ब्रज या ब्रजमंडल के नाम से विख्यात हो गया।

पाठन, पृ ८०-८१, इसमें बारह वन, चौबीस उपवन सम्मिलित हिमे जाने लगे शीर वरिधि अनुमानतः चौबीस कोत की माने गई।

१—पाठन पृ ८०-८१। ब्रज के चौबीस उपवन—योक्लुन, योद्धवन, वरतान, नंदवन, संकेत परमर्षि अर्य, शय्यापी, याट, डौलागवि, दोतवन यीपुरा, अर्धवर्ण परतोली, बिसपु, बटवन, आदिबटो, कन्हता, अन्नकोट, पियासोवन, कोटिलावन, बबिन, कोटवन, रायनवन हैं।

कुम्हारका से संबंधित शब्दावली

की शाय बगवा सोहिरो पावना नामकरक प्रममाशन बर्यमोठ, कमोशन प्राणि—निश्चित
मंझरो एवं मुछ कनो के प्रतिरिक्त बाज-मुकम-नीमोठ तथा बज्जरापूर्व वैमिक क्रिया-कलाओं
बैठे—कुटनों तथा पैर बनना बज्ज-प्रस्ताव कमेबा मिट्टी-खाना माकन-चोरी अनुबन
बन प्राणि निश्चित प्रदंतों से संबंधित घनेक पत्र (६-२-१ १६) नेकुन की पृष्ठभूमि में ही
लिखे गए हैं। बीजन के इस स्वाभाविक पत्र के साथ साथ विष्णु के अवतार कृष्ण द्वारा संभव
कुछ भौतिक बटनार्थ भी लिखित हैं, जैसे—गढ़े भ्रम मुछ में पक्षि बह्मोड-मदान
हाथिभ्रम प्रसंग पठना बीजर कामापुर लकड़ापुर तथा लुखार्ल वन बीर यमामुन
उठार।

नेकुन मयुरा के पुरुषचिह्न में एक बाँव है। मयुर से नेकुन तक की पूरी केवल चौक
या घा नीव है। घाब ती बही के कुछ प्रमुख मीरर इसका स्वरूप करता है। इनमें प्राचीन
प्रमुख नेव बा। प्राब ती बही के कुछ प्रमुख मीरर इसका स्वरूप करता है। इनमें प्राचीन
उन इमारतों नेकुनमान मलमोहन तथा विटठवमान की हैं (१३११ ई.)। मलमोहनिका के
मंदिर तथा डाकाताब (१३५६ ई०) का महात्म्य अधिक माना जाता है।
१७ —नेकुन म मयुरों के इन उपर्यों से ही चित्रित होकर गढ़ तथा यथोक्त ने
बही से प्रमाण कर दिया। उन्होंने बुद्धावर्ण (१०२) में पुरु के निरवय किया—

‘मह महरि के मय यह धारै।
नेकुन होव उगव विन प्रति बलिप बुद्धावर्ण में धारै।
उव नेपिनि निनि यमडा घाने सहाहि के मय में यह धारै। (१२)
नूर बयन-उठ केर कीन्ही पौब बरन के मुँवर बन्धारै। (१३)
फिर पौब बर्य की धावु से नेकर मयुरा बाने तक की समस्त बीजाओं का संबंध
बुद्धावर्ण से ही है। एक प्रकार से घाब नेहब के बाहर पार्याव करके बालक कृष्ण का वर तथा
बाम के बाहर का बीजन वही घाते ही प्रारंभ होता है। यही ही बीजारण तथा मुरली-बाज
के साथ रावा तथा वासिका के प्रेम की बरन धर्मव्यति हुई। संयोग-प्रेम के पलों में वय-
नर्जन बीर-दरक रासलीला बाललीला के निष्पत्त बह्मोड बयुवा तथा उनके तट के करीब-मुँब
बन प्राणि उव की पृष्ठभूमि बयवण के मुँब प्राणि पूँव गय, पुषन बयुन बन पवन क्षितीटी।
एवं कंठ-निमुँब हो तो है—‘गये’ मुँब प्राणि विस्तार नीप तक धारै (१४-२)
(१३ ई.) ती मय बोर करय बड़ि बडे (१४-५) तबामा स्थान पुषन बयुवा जल निर्धम कल विहार।
‘मिहल मुँबि मुँबिगारी (१०-५) तबामा स्थान पुषन बयुवा जल निर्धम कल विहार।
प्राचीन लकल साहित्य में नेकुन का समानार्थक मयुरा ही है। मयुमन में
बज्ज के घौजन की धनीकिक जमानों के स्वरूप आज भी बने हैं। बज्ज किन
बज्ज के पुरु के चारों स्थलों—पुषन, मंदरान, रावबन, रावमुरर तथा बरताना माने
मयान राव के भी बार स्थान बुद्धावर्ण, रावबन, रावमुरर तथा बरताना माने
गए हैं।

१—मयन घण्टा ४, २ ४०
२—मयन घण्टा ० ४ (बगवा = मुलनी) बह्मोडों बुराल में बुरा नामक घण्टि
की बगवा है। पुरुने बही एक मयुर भी बा जिसका घब तो कोई पयोव नहो
है। मयकर संभवतः एक बार बहो जाए के।

(१७७७) प्रादु निधि रोमित सरल सुहाव । सीतल मन्त्र सुगन्ध पवन बहै रोम रोम सुलसाई ।
 यमुना पुलिन पतीत परम रवि रवि मङ्गली बनाई (१७५९) । तथा—'एक शीघ्र
 कञ्जनि में आई । नागा कुसुम सेह धारण कर दिए मोहि सो सुख न आई । (४ १) ।
 प्रत्यक्ष प्रारम्भ के समुद्र-गमन के बाद यमुना चारों तरफ बहती थी और मठा-बुद्ध धारि भी
 बिछ-ब्याध से मुक्त न रह सके—मोहन या दिन बगहि न जात । ता दिन फसु-पसी हुन
 बेनी बिनु देखे सकुमात । (१८२) अथवा 'कानिन्दी अथ कमल कुसुम सब वरसन ही
 कुलवाई । (१८१९) । उनके धार्मिक चरित्र की सूचक बटनारों भी मिली होती रहती है
 जिनमें ब्रह्म-वत्स-हरण धमापुर, कलापुर, लंकपुर तथा प्रसन्न धारि धमुरों के बड़े कासीय
 समान दावानल-पान गोबिन्दवारण बरुण से लम्बे की मुनि तथा सुदर्शन-विद्याधर-हाथ-
 मोहन धारि प्रमुख प्रसन्न हैं । यथोक्त की पुन के लिए विस्तृतता गोपी-विद्या तथा लब्ध का
 कृष्ण-संविद लेकर बुद्धावन धारा और प्रवरगोठ जाने पर सूरदासर के उल्लेखित पदों में से है ।
 मधुरा से छ' मील की दूरी पर बुद्धावन नामक गाँव बसा हुआ है । इसके तीन ओर
 यमुना बहती है । मुस्लिम राजाओं में कई बार प्रयत्न किया गया था कि मधुरा का नाम
 इस्लामपुर और बुद्धावन का नाम मुमीनाबाद हो जाए पर उनको इस कार्य में सफलता न मिल
 सकी । कचहरी में प्रवर इस्लामपुर कर्मो कर्मो सुनने में जाता है । बलराम संशय से संबंधित
 अनेक मंदिर मधुरा बुद्धावन तथा गोबिन्द न में हैं । पोकुन मधुरा तथा बुद्धावन में कृष्ण की
 उन्मुख लीलाओं से संबंधित स्थान आज भी स्मारक रूप में इन्हीं नामों से जाने जाते हैं
 तथा तीर्थस्थानों के समान पूजे जाते हैं । बुर-बुर से यात्री पाकर इनके दर्शन करते हैं । इनमें
 पाँच पहाड़ियाँ प्यारह ठिठारों चार सरोवर, चौदहो ठाणार बाह्य कुएँ, बाह्य बन तथा
 चौबीस बपनों के क्रमानुसार दर्शन बन-यात्रा के नाम से प्रसिद्ध है । घुर ने द्वारक बन का
 उल्लेख किया है (१४०२) तथा बुद्धा विपिन को कहा है (१४५८ १४७१) ।

१७१—मधुरा (१२९ १७१९) [संस्कृत मधुरा मधुरा] ही कृष्ण की जन्मभूमि
 थी । मोक्षदा छन्द-पुरियों में इसका स्थान है । मधुरा-नामन से कृष्ण का वृत्त हो

१—प्राञ्ज, अथवा ४ घण्टों के आदेशिक विभाजन के अनुसार इस प्रकार यमुना
 के बहने के समय में एक कथा मिलती है । बलराम ने यमुना से कष्ट होकर एक
 बाई बना दी और यमुना उसमें गिर गई । बलराम के क्रोधित होने के कारण
 दोनों कथाओं में मिल गई । सुसलमानों की राज्य समाधि पर मोक्षदेन तथा
 कोटी की धन्य-मल्ल परवने हो गए थे ।

२—प्राञ्ज, पृ १, पुराणों के अनुसार राम के राज्य में मधु नामक एक राजा
 यमुना के तट पर रहता था । जती के नाम पर यह बन मधुरा कहलाया ।
 मधुरा ने उसको मार कर और बहु जंगल कटवाकर जती स्थान पर मधुरा
 नगर बसाया । मधुरा का कई पीढ़ियों तक वही राज्य रहा । उनमें उत्तरेन
 धर्मित राजा थे । महाभारत युद्ध का अनुमानन लगभग एक हजार ई. पू. है ।
 वृत्तकाल में मधुरा वर्ष तथा कला का प्रमुख केन्द्र था । काहियान की यात्रा में मधुरा
 उल्लिखित है । वह सर्वप्रथम मध्य देश में यमुना पर बनी मधुरा हो पाया
 था (४ ई.) । उस समय यही मोल पड था । वह एक पहाड़ी पहाड़ी
 रहा था । काहियान के दो तीर्थ वर्ष बाद लोनाग (६२२-६४४ ई.) भी
 यहाँ पाया था । इसके बाद पीढ़े-पीढ़े इसका उतना महत्त्व नहीं रहा । फिर इन्हीं

संयुक्तता से संबंधित स
 न्याय—मनुरा नरलाटी
 न्याय नरलाटी

मन्त्र धारण होता है और घर ही बुधभवनवासियों को प्रणत पीडा है। (१७६२)।
 नैऋत्य भाग बरबाद। दूर मधुरी पौर्णिमा से घर चक्रान्तर। (१७६३)।
 है कि कृष्ण का विमलित न दृष्ट इति मधुरा भाते के बाव ही सभी बटमाएँ करि बटाए।
 हो गया है किन्तु जैसे उनके उरका मन दूर भावता है। उसको तो घाले इष्टरेक का मोड़न
 तथा बुधभवन बासा ही समीपमान भासा है। इति मधुरा इन दो दशाओं में सवीपत नहीं हो है।
 भावने के प्राण है।
 नैऋत्य भाग की दृष्टि से ही दैत्य-वधन की विद्या है—मधुरा दिन दिन धारि क
 नैऋत्य भाग की दृष्टि से ही दैत्य-वधन की विद्या है—मधुरा दिन दिन धारि क
 नैऋत्य भाग की दृष्टि से ही दैत्य-वधन की विद्या है—मधुरा दिन दिन धारि क

[illegible]

मार्च-प्रमुख बटमाछी में जलम का
 जलो में संलग्न होते हुए भी वे बुझावना
 जल का संलग्न होने से जलो में जलम का

[illegible][illegible]

कम बोझ बैसै कुम्भा पर उतार देना चाहती है—कुम्भिना नहीं तुम देखी है। यदि बेचन जब जाति मधुपुरी, मे नीकै करि पेयी है। (१७१५)। माता को ध्याना का भी कोई पण्य नहीं—गुर नर फिरि बन्धु मधुपुरी स्वाधनु सुठ करि कोटि जतन बन। (१७५७)।

मधुवन भी प्रनेक स्वर्णों से मधुरा का ही शोचक है—

‘तुमहि छाँड़ि मधुवन मेरे मोहन कहा जाइ बन सीहीं।

तही कहा जाइ असुमति सीं अब सम्मुख उठि ऐहीं ॥ (१७१४)

धरबा—एक छोटे मधुवन के भोग।

जिनके संग स्वामसुखर सखि सीखे हैं धरबाव। (४२ २)

धरबा—‘मधुवन भोगनि को पतिपाह

मुख पीरै बंतरगति मोरे पतिपति निजि पठवत बु जनाइ। (४२ २)

तथा—चितवन ही मधुवन बिन बाव (१८११)

पीर—‘बिखि-बिखि मधुवन की बाटहि बुँदरे भर मेरे नैन’ (१८१७)।

इन प्रसंगों के साथ ही कहीं-कहीं मधुवन वन के एक विशेष वन का सूचक भी है—‘मधुवन तुम क्यों छूट हरे। (१२२८)।

इस प्रकार विरह-विमोह के पलों में विशेष रूप से मधुरा मधुपुरी धरबा मधुवन का बार-बार उल्लेख है। ठीक भी है—श्याकुल गुन्नाबगवाधियों के साथ कवि का हृदय भी ठो बार-बार उबर ही लिजटा जाना है—‘बिखि सखी वर है तनू गार्डे।

कहीं बसत नरनाम हमारे, मोहन मधुरा गार्डे।

कानिही के कून रहत है परम मनोहर छर्डे।

बो उन पंक हीइ सुनि सखनो धरहि कहीं छर्डे गार्डे।

(१८७९)।

१७२—कृष्ण के गुन्नावन जीवन के सिलसिले में धन्य दो नावों का उल्लेख भी हुआ है—महरने (८९९) तथा बरसानो (१२११)। महाराना में यशोदा का मायका था। यहाँ से एक पाँडे के घाने का प्रसंग है—महराने हैं पाँडे घायी। जब घर-घर बृम्ह नर रावर पुन भयी सुनि कै उठि घायी। (८९९)। साक्षात् ब्रह्म को कृष्ण रूप में समझने पर सबके धारन की सीमा नहीं थी—बारंबार नर के धारन, मोटव छिब धारनरमयी (८९८)। राधा के गाँव का ही नाम बरसाना था, अतः राधा-कृष्ण प्रेम-कथा में प्रनेक बार उसका उल्लेख हुआ है—‘ही मैं गार्डे गार्डे बरसानो (१५१४)। राधा के पिता बृपमानु पर इसका नाम बृपमानु-पुरा (२७८२) भी था—‘इनकीं जखीं क्यों न गुनाबहु। को बृपमानुपुरा की मोकुम निफटहि धानि बसानहु। (२७८२)।

१—प्राङ्ग के अनुसार मधुवन वन प्रदेश के बारह प्रसिद्ध जलों में से एक है। धन्य कुल प्रसुत नाम काम-वन, धारि-वन, बु-बावन तथा भीरवन हैं। कुल विद्या मधुपुरी या मधुवन को मधुरा का ही समागार्थक मानते हैं। मधुरा तो प्रारंभ से ही मधुना के तः पर है, जब कि मधुोती बलिष्ठ परिचय की ओर बार पाँच थीर दूर दिपड है। प्राचीन संस्कृत साहित्य तक में इन दो नामों के बीच यह पड़बड़ी है। हरिबंश में दानुज द्वारा मधुरा बतानेका उल्लेख है ‘मधुपुरी’ नहीं।

इस प्रकार के संबंधों को स्थायी
कराई जाये

[illegible][illegible]

१—प्राच्य के जगुलार प्रजायिक के जगुलार प्रजायिक है—
 २—प्राच्य के जगुलार प्रजायिक के जगुलार प्रजायिक है—
 ३—प्राच्य के जगुलार प्रजायिक के जगुलार प्रजायिक है—
 ४—प्राच्य के जगुलार प्रजायिक के जगुलार प्रजायिक है—
 ५—प्राच्य के जगुलार प्रजायिक के जगुलार प्रजायिक है—
 ६—प्राच्य के जगुलार प्रजायिक के जगुलार प्रजायिक है—
 ७—प्राच्य के जगुलार प्रजायिक के जगुलार प्रजायिक है—
 ८—प्राच्य के जगुलार प्रजायिक के जगुलार प्रजायिक है—
 ९—प्राच्य के जगुलार प्रजायिक के जगुलार प्रजायिक है—
 १०—प्राच्य के जगुलार प्रजायिक के जगुलार प्रजायिक है—

मिमहि किम माई । महाराज अनुनाय कदापय तवहि हुते सिसु कुँवर कन्हारै । (४६ १)
 यक्षमा 'हरि वु इते विग कही सगाए' (४६ ६) । खिमखी और राजा सभी बहिनों की तरह
 मिलती हैं (४६ २) । राजा तथा मायब के प्रेम के एकात्म्य का सुन्दर वर्णन है—'राजा मायब
 मेंट गई । राजा मायब, मायब राजा कीट भग गति हूँ वु गई । ... जिहँसि कहुँही हम तुम
 नहिँ धँतर, यह कहिँही धन बच पठई । (४६ १) ।

नवम स्कन्ध की पुरवा-खर्बोती कथा से भी कुसुम का सम्बन्ध है । राजा पुरवा बिरह
 व्याकुल होकर कुसुमेन पहुँचे । वहाँ उनकी यक्षमा देस इवित होकर खर्बोती ने उनको दर्शन दिये
 (४७६) । एक स्कन्ध पर 'ज्यों कुसुमेत बड़े की सोमी' (४७५६) उल्लेख भी हुआ है ।

कुसुमेन प्रसिद्ध महाभारत युद्ध के लिए विशेष रूप से विख्यात है—'या रज बैठि बहु
 को गर्बहि पुरवे को कुसुमेत (२६) । धाव भी दिल्ली और कालका के बीच में कुसुमेन का
 प्रसिद्ध मैदान पड़ता है और वहाँ मेला भी लगता है । वहाँ ज्योतीरवर के पास एक बरपद का
 गुह है । कहा जाता है कि वहाँ पर योद्धा ने अजुन को अतन्त्रिष्यात बीठा का उद्वेग
 दिया था ।

१७४—इस्तिनापुर (४८३६) [सं० हस्तिनापुर] हस्तिनापुर] राजा हस्तिना द्वारा
 बसाया गया अत्यन्त प्राचीन नगर का नाम था । यह मेरठ जिले में दिल्ली से पचास मील उत्तर
 पूर के कोले में बंगा के तट पर बसा था । पाण्डु यहाँ का राजा था । पाण्डवों तथा कौरवों से
 संबंधित कथ्य-कथा में इसका उल्लेख हुआ है— इस्तिनापुर मये हुते हरि पांडु गृह तहाँ तै बने
 यह बात जानी । हस्तिनापुर कुछ समय की राजधानी थी । इसका पाणिनि ने उल्लेख
 किया है ।^१

कुंडिनपुर (४७८५) [सं० कुंडिन] यह बिरनों की राजधानी थी । यहाँ के राजा
 भीष्मराज की पुत्री खिमखी से ही कथ्य का विवाह हुआ था । खिमखी-हरण कथा में इस
 नगर का बखाना किया गया है— ठिक कहियो अनुपति हो बात ।^१ बेर बिदह होत कुंडिनपुर,
 हंस के घंस काग नियरात । (४७८६)

खन्देरी^२ (४७८४) । सिन्धुपाल खंदेरी का राजा था और खिमखी के भाई ने उसको
 खिमखी से पाणिग्रहण करने के लिए बुलाया था— खम खंदेरी सिन्धुपाल । व्याह काज सिन्धुपाल
 बुलायो । (४७८५) ।

बाराम्बसी (४८ १) [सं० बाराम्बसी] । खिमखी कथा में कथ्य के बिदह बाराम्बसी
 के राजा बंदवक के युद्ध करने का प्रसंग भी है—'साख बंदवक बाराम्बसी को गुप गई दन
 धावि मनी धम धाए । (४८ १) प्रथम और द्वितीय स्कन्धों के विषय पर्वों (१४ १४६) में

१—इंडिया एन्ड मोन टु बालिनि पृ ७१, २४ अष्टाध्यायी में इसका उल्लेख है ।
 बानेश्वर, हितार तथा हस्तिनापुर के बीच का त्रिकोण प्रदेश कुछ राज्य (गंगा
 अनुना के बीच में स्थित जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी), कुछ समय
 (रोहतक, हांसी, हितार) तथा हरक्षेत्र (उत्तर में जिसका केन्द्र बानेश्वर केवल
 और करनाम था) इन तीन विभिन्न भागों से जाना जाता था ।

२—प सं टी, ११७७ 'बहिन बिरर खंदेरी बाये, बरखकारस्य के साथ ही
 जायसी ने इन दो स्थानों का संरित भाष किया है । ४६१११ 'का बितर केहि
 काज खंदेरी', २ १३ 'बंसा माये लेत खंदेरी । धावि स्थानों में भी खंदेरी
 का उल्लेख जायसी ने किया है । गोरग्राह का जिला खंदेरी में भी था ।

[illegible][illegible]

1-व तं श्री, ११७७ 'नामी क कर
नो न द्युत सीते छिद्र पाद।
श्री, ११७८ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११७९ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११८० 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११८१ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११८२ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११८३ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११८४ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११८५ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११८६ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११८७ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११८८ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११८९ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११९० 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११९१ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११९२ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११९३ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११९४ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११९५ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११९६ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११९७ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११९८ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, ११९९ 'जाद नगरसि नगिरि कया।
श्री, १२०० 'जाद नगरसि नगिरि कया।

१- ईंधिया एक मोठे वृक्षालिप्त वृक्ष, ३०, ७२ फी. अथवा १०० फी. तक उंच हो सकता है। यह एक बहुत ही बड़ी वृक्ष है।
 २- ईंधिया एक मोठे वृक्षालिप्त वृक्ष, ३०, ७२ फी. अथवा १०० फी. तक उंच हो सकता है। यह एक बहुत ही बड़ी वृक्ष है।
 ३- ईंधिया एक मोठे वृक्षालिप्त वृक्ष, ३०, ७२ फी. अथवा १०० फी. तक उंच हो सकता है। यह एक बहुत ही बड़ी वृक्ष है।

[illegible]

प्रति करी । घड़ी पणिक कहियो छन हरि होई भई निरह मुर करी ॥^१

निरि-प्रयत्न ते निरति धरनि बँसि तरंग तरफ छन भारी ।

छट बाक उपचार मुर, धन-मुर प्रत्येक पमारी ॥

विपणित कच कुस काँठ कुस पर पंक मुर काकल सारी ।

धीर भ्रमत यदि फिरति भ्रमिष्ठ गति दिति बिसिधीन दुखारी ॥

निधि दिन बकई पिय मुर रटति है, भई मनो अनुहारी ।

धुरबाध प्रभु जो जमुना गति हो यदि भई हमारो ॥ (१८०६)

कभी बोपियों का क्लेश जमुना पर भी सतरता है—मोको नई जमुना नम है रही ।

कैसे यिनी स्वामधुनवर को वैरिणि बीच करी ॥

कितिक बीच मधुरा सब मोकुल बाधत हरि मुर नहीं । (१८०७)

मूरसानर मे जमुना के कई नाम प्रयुक्त हुए हैं—जमुना (११५१) [सं जमुना—

बन की बहान], रविचनया^२ [सं] तथा कासिरी (१८०६) [सं कसिंर पवत ते निकनी नरी] ।

कालीय-वसन की कथा (११३६ १२ ७) का संबंध भी जमुना नहीं से है । उसके एक प्राद में ही कालीय नाम का नाम रहता था । उस स्थान को कासीरूढ़ (११४१) [सं कसिया बहु—धमि] कहा गया है ।

मधुरा के निजट जमुना एक वीन के करीब सीड़ी है । कुछ वर्षों पहले तक इसका छट धाड़ियों धीर कुओं से ढका हुआ था । यही बन खंडी (जैसे कोकिलावन करंबकपरी धाड़ि) धाड़ि नामों से जाने जाते थे । बनिबर ने जमुना स्थान के महत्त्व का उल्लेख किया है ।^३

सरस्वति (१८ २) [सं सरस्वती] मुद्रान-विद्यावर-साय-मोहन प्रत्येक मे सरस्वती नदी का उल्लेख हुआ है । नंद घोड़ी-आसों के साथ इसके ही छट पर पद से सब उन्हें साय ने काट लिया था—‘नंद सब घोड़ी आन समेत ।

नंद सरस्वति छट एक दिन तिक बौधिका पूजा हैत । (१८०२) ।

पाणिनि ने सरस्वती नदी का उल्लेख किया है ।^४ यह एक प्राचीन नदी है । प्रयाग में यँगा जमुना तथा सरस्वती-जोनों नदियों के संघन (निचली) होने का विश्वास बना था रहा है किन्तु अब इसका वहाँ कोई अस्तित्व नहीं है ।

१—ए सं टी, ११४१६ के कालिरी निरह लताई । जमि पयाप साहल बिच धाई ।

२—मानस, अयोध्या०, ११५ पुनि सिय रासलज्ज कर जोरी । जमुनहि कोन्ह प्रमानु कहोरी ।

जने लसीय मुवित बोट भारी । रविचनुजा कह करति बढ़ाई ।

३—बनिबर, पृ० ३०२, बनिबर ने लिखा है कि मुद्राहल (१६१६ का छल) के समय शिखर मधुरा में स्थान करते थे । उसके बाद जाहंगीरों को राज होते थे । इसी प्रकार यँगा, सिंगर तथा धीर कुतरी नदियों में भी स्थान को प्रकापी । बानेदर के ताताब को मूहता भी थी ।

४—ईरिया एम् मोन हु पाणिनि, पृ० ४६ अनेक नदियों के संघन में सरस्वती नदी होने का उल्लेख किया जाता है । उदाहरण तथा प्राक्य भाषों को बँटने काली नदी इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध थी ।

रामकथा से संबंधित उल्लेखनी

सिन्धु (२०६७) [३]। बलम स्कन्ध बरगर्भ में कृष्ण के डारका से कुम्भसेन घाते
का संकेत द्वाज कर ब्रह्मासी धारमिष्ठ हो उठते हैं—'पक्षिक कही सब काह, सुनै हरि बाज
सिन्धु सठ। सुनि सब संग भए सिद्धि बसो नहि बस शिरी कटि। सिन्धु समुद्र के गर्भ में श्री
प्रयुक्त हुआ है—बसो कुबि हनुमन्त जब सिन्धु पाठ (५९)। सिन्धु नदी के सम्बन्ध में व
पर्यंत

१७६—गोवर्द्धन (१५६०) [३] गोवर्द्धन] नोबनन पूजा और भारत हीपक धानक
म (१५२६-१६२८) है। कृष्ण डाय नोबनन को वाज बिल मनाहार जेनबी पर कटने की
कथा की ऊर्ध्व धनीकिक बारि में ही जाती है।
मनुष्य से ऊपर वेष्ट वीज दूर सामुद्रिक है को सामुद्रिक की पुन के लिए लपटा गया है।
हरी नान पर मनुष्य से हीन वीज दूर सामुद्रिक है को सामुद्रिक की पुन के लिए लपटा गया है।
मना डाय पुन वीज की बाटि का स्वरूप करता है।

ऊर्ध्वक गोवर्द्धन कथा के कारण ही हिन्दुओं में इसका धार्मिक महत्त्व है और
गिरिज के नाम से पूजा जाता है। यह के साहित्य में धनकृत नाम भी मिलता है।
बहु इला परिय नामा जाता है कि यहाँ से अन्ध भैरव का निरुद्ध है। यहाँ बालभार्गव का
बनबाबा (१५२ ई०) वीजान भी का मन्दिर भी है। गोवर्द्धन के समय में इसकी
मूर्ति नामाकार ऊपरपुर सेज ही बनी थी। यह यहाँ अलभूत का कलत्र होता है तथा गोवर्द्धन की
पूजा की जाती है। कातिक के महीने में इसकी परिक्रमा का भी महत्त्व है। दूरवास की
वीजान की के मन्दिर में ही नमन-कीर्तन किया करते थे।

अन्य स्थान

बंसीवट संकेतवट (१३२३ ई०)। बगुला के वट पर इन स्थानों में कृष्ण के
चित्रक करने का बलन मनेक वनों में है—बगुला दून दून बंसीवट बावन तोप बनारि
(१५२३) तथा—'फिरत बगलि दूबावन बंसीवट संकेत वट (१७८)। इन के प्रसिद्ध
बंसीवट कपलों में से संकेत भी एक है। बंसीवट दूबावन बगुला वीज वंशक न जाने (१५६)
(१७२५)—यात्रि वजन है। सका जिसे सई बर, दनु बन बारि कूँ है

२—रामकथा से संबंधित शब्दावली

१७३—दूरवास का गवय स्कन्ध रामकथा पर ही आधारित है। राम कुम्भ कोने से
छुट प्रसंग भी है। इन कोने से वनों में ही पती कथा बता दी गयी है। रामकथा से संबंध
रखने वाले प्रमुख नाम इस प्रकार हैं—
भरत आदि रामाव्या अयोध्या (२०८) (२०८४) [३] यशोव्या] राम-व्यास पर यशोव्या
रखने वाले प्रमुख नाम इस प्रकार हैं—यशोव्या बाबति धानु बगई (२०१)।
बाबिनों के हर्ष का बलन है—यशोव्या बाबति धानु बगई (२०१)। इसके धान नाम
या दूनी फिरत यशोव्यावासी नमन न रणन और (२०६) [३] कोष्ठन
अबधपुर, अबधपुरी (२०७) [३] यशोव्यापुरी] तथा कोसलपुर (२०१) [३] कोष्ठन
दुरी भी थे—अबधपुर वाले दमरव राट (२०३) अथवा—महापत्र दमरव नम वाली।

अथर्वपुरी की राज राम है जोई ब्रह्म बनकारी । (४७४) तथा बसव-मुक्त कोसलपुर-बासी^१ (५२१) । प्राचीन समय में कोसल जनपद था । पाणिनि ने इसका उल्लेख किया है ।^२ अयोध्या सरयू नदी के तट पर बसी हुई थी और सुमधुरी राजा बसरव की राजधानी थी^३—हमारी कल्पमूर्ति यह पाई । सुनहुँ सदा सुधीब विमोचन अमनि अजीव्या नाई—अफनी प्रकृति मिले मोलत हौं मुरपुर में न रहार्ते (१०६) ।

प्राच की कैलाश शहर से कुछ मील दूर सरयू के तट पर अयोध्या शहर है जो राम का जन्मस्थान होने के कारण पवित्र माना जाता है तथा वहाँ के अनेक मंदिर अब भी उनका स्मरण विभाते हैं । यहाँ हर वर्ष रामनवमी का मेला होता है । अथर्व जनमान समय में एक ब्रह्म है । इसमें लक्ष्मण कैलाश सीतापुर इरौरी आदि बाहुजिने हैं । युगमानों के सम्प्र-काल में भी अथर्व तथा कैलाश का महत्त्व था । अथर्व की संख्या (रामे अथर्व) अपने सौर्य के लिए प्रसिद्ध है ।

मिथिलापुर (४८२) [अ मीथिल] के राजा जनक की ही पुत्री सीता थी । यह विदेह देश की राजधानी थी ।^४ राजा जनक के नाम पर ही इसका दुसरा नाम जनकपुर (४९८ ४७२) भी मिलता है । सीता के दो नाम मैथिली और बागकी इन्हीं नामों पर आधारित हैं ।

पंचवटी (८१७) [अ० पंचवटी] जनवास काल में राम के यहाँ रहने का उल्लेख है । वहाँ पूर्वजन्ता-नासिकोन्मेषण तथा सोताहरण आदि घटनाएँ घटित हुई थीं—'यही ठाठ के पंचवटी बन छाँड़ि बने राजधानी । वहाँ ब्रह्म सोता हरि लोन्ही रानीचर अभिमानी ।'^५ विष्णु के दोनों ही प्रकटार थे—राम और कृष्ण । यशोदा विष्णु हृदय को राम की कहानी सुनावे समय सुनाती है । वे अपने पूर्व जन्म का स्मरण कर जनमान स्थिति को भूल जाते हैं और कह देते हैं—लक्ष्मण वनप देहु कहि उठे हरि अनुमति मुर उरानी । (८१७) ।

पंचवटी शब्दकारण्य के अन्तर्गत था तथा जनमान नासिक के निकट गोदावरी के तट पर बसा हुआ था ।

बंका बंका (३३ ५४९) [अ बंका] । अथर्व बंका का राजा था और सीताहरण के बाद इनकी यहाँ की अशोकवाटिका में रखा गया था । अनुमान द्वारा बंका बंका के नाम का अर्थ है—'बंका बंका बंका' (५४२ ५४३ ५४४) । बंका की राजधानी के लिए बंका के अतिरिक्त कनकपुरी कनकपुर (५१६) [अ], कंचनपुर (५२५) [अ] अफ्ना हट्टकपुरी (३३३) [अ] भी पाया है । इसका कारण वहाँ की वैभव-सम्पत्ति ही है ।

^१—इंडिया एज मोन टु पाणिनि, पृ ६ —बासी पुस्तकों में सोलह महाजनपदों में से एक कोसल भी है । इसके नगर आबस्ती का पाणिनि पण्डित में उल्लेख हुआ है और 'इरावत' तथा 'सरयू' का निर्देश मूल ६, ४, १७४ में है । वर्तमान में 'इरावत' जनपद बताया है जो कोसल का ही दूसरा नाम है ।

^२—मानस , १८८, 'अथर्वपुरी रघुनन्दननि रात्र ।

मानस , अरण्य , १९, 'नाम कोसलापीत कुमाय ।

^३—मानस , बाल २१३, 'मैथि विदेह नगर निगमाया ।

^४—मानस , अरण्य, २१ 'पंचवटी बति थी रघुनायक । करत बति मुर मुनि मुकदायक ।

^५—मानस , सुंदर , २६ 'अनदि बनि बंका तब जारी ।

हृदयका से संबंधित रक्तवाहनी

[illegible][illegible][illegible]

है—मौलाबदी खौर रिज-दुबल ।
 भीमपार (२२८) भाग्यन्द कबा मुगाने है ।
 है आने का बर्जान है —'हो गुणि मौनपार है भायो ।
 —सिंधु (मिनाय) [६]] वंजल
 नौ वरद-प्रीतिनी नरी
 म प्रदेह मिम

[illegible]

१-राजस्थान में विष्णु के लिये 'माल' नाम का प्रयोग होता है।
२-यूरोप में 'माल' नाम का प्रयोग होता है।
३-माल नाम का प्रयोग भारत में भी होता है।

महता प्रमुक्त तीर्थस्थानों से कुछ बढ़कर ही है। गंगा-स्नान से सब पाप नष्ट होने का विश्वास है। गंगा-जल भी पवित्र माना गया है। मृत्यु के समय सनातनी हिन्दुओं में गंगाजल पिाने की प्रथा है। सूरदासर में गंगा के पृथ्वी पर घाने तथा स्तुति से संबंधित घनेक पर है। नक्षत्र-स्कन्ध में गंगा-प्राणमन का विस्तृत वर्णन है (४५२)। मूकशंकर के राजाधों से संकय हाज के कारण इस स्कन्ध म यह प्रगम है। राजा भगीरथ के कठिन तप के फलस्वरूप शिव को जटाघा में स्थित गंगा के पृथ्वी पर घाने की कथा पुराणों म भा मिलती है। भगीरथ के नाम से गंगा का नाम भागीरथी पड़ा। इसका एक अन्य नाम मंदाकिनी (४५५) [४० मंदाकिनी] भी है। नपोषो से निकसने के बाद पर्वत में स्थित बाघ घास मो भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध है। उत्तर काशी के निकट भागीरथी में मिल जाती है। बिम्बकट के निकट बहने वाली एक अन्य नदी का भी नाम मंदाकिनी है। ययोषी से निकली बाघ भागीरथी में पश्चीय प्रवेश में वहाँ अन्य नदियाँ मिलती हैं वहाँ एक प्रपात माना गया है जैसे कर्ण-प्रपात ख-प्रपात तथा रेव-प्रपात आदि। पुराणों के अनुसार यह स्वयं में बहनेवाली गंगा की बार है। बड़ा-नील पुराण के अनुसार यह एक समुत योजना सन्धी है तथा हरिश्चंद्र क अनुसार हरिश्चंद्र के निकट की एक नदी का नाम भी मंदाकिनी था। सूरदासर में गंगा के प्रत्यक्ष नामों का उल्लेख भी है—माधव बेनी (४५५) [४० माधव बेनी] तथा सुरसरी (३ ७) [४० सुरसरि] 'जाग-नर-मधु सबनि बाह्यी सुरसरी को बुर (४५४) जय जय जय-जय माधव बेनी अपहित प्रकट करी कल्याण' (४५५), अथवा 'गंग-सरंग विनोदित नैन। अतिहि पुनीत बिजु पाणेक सहिमा निमन पकृत बुनि वेन। (४५६)। राम-कथा के अनुसार सीता अनुमान-संसार में भी उल्लेख हुआ है—'मंदाकिनि छट-छटिहि सिता पर मुख-मुप आरि विमल की करनी। (४५६)। यह संबंध प्रयम हठिहार में घाटी है इसीसिने हठिहार को भी पुण्य स्थान मानते हैं। वास्तव में गंगा से हटने नाम है कि उसको महता ठीक ही है। गंगा जल पवित्र मानने का एक कारण औपधिक महत्व भी है। यह बहुत दिन रक्खा रहने पर भी बुराब नहीं होता—'गंगाजल तबि निमज कूज बस' (२६६) अथवा 'तुम निर्मल गंगा-जलहू है (२६७)। गंगा यमुना सरस्वती के रंगों का उल्लेख भी है—

— 'बहन बौरि ललाट स्वाम के निरखत अति सुखवाई।
नती एक संग गंग-यमुन नम तिरछी बार बहाई।
अथवा 'घरन स्वैत छित भलक पलक प्रति को बरनी उपवाई।
मनु सरसुति गंगा यमुना मिलि, अग्राम कीन्ही भाई। (२४३१)
संयम के लिए प्रयधार का प्रयोग भी हुआ है।
बेना (३४६) [४० बेनी विवेची] प्रयाग गंगा यमुना के संयम पर ही व्यवस्थित है।^१

१—मानस, बाल ३१ 'रामकथा मंदाकिनी, १ १, 'बड़ा मुकुट सुरसरि तिर', २११, 'बेहि प्रकार सुरसरि यहि भाई।'

२—५० सं ३, १ ०१ बरनों पाँच सीस उपरहीं। यमुना नाम सुरसती देखी तैहि पर पुरि धरे ओं मीती। यमुना नाम पाँच के सोखी।

३—मानस, प्रयोध्या, २०४ 'देखत रघुपति धवल हिमोद, बलकि घरीर मरत कर बोरे। लवस कायप्रद तीरबराह। वैद विरित जय प्रकट प्रभाह।

लोचनी गरी छास्नी के निम्ने के बिनास होले के कारन बिनेली नाव है । बिनेली
 डिम्बों के निम्ने पस्विक पविन है — वहुस बार ओ लेनी परओ अत्रायन कोवै ली बार
 लोचनी गरी छास्नी के निम्ने के बिनास होले के कारन बिनेली नाव है । बिनेली
 डिम्बों के निम्ने पस्विक पविन है — वहुस बार ओ लेनी परओ अत्रायन कोवै ली बार

[illegible][illegible][illegible][illegible]

गोमती (५२२) [६] बरान-रुक्म कपास में
गार के गोमती छ पर गाने का उल्लेख है—यन यह कल बिचार
बरान कपड़ नगर गोमती छ पर बसा हुआ है।
पर्वत
१२२—हिवार (१५५) [६] हियान, हियानल यका हियानि] नाउ की प्रविष्ट
येकी हियानय नाम के सिक्कात है। संवार को सबसे अधिक ठीकी बोटी एगरेल
है। एगरेल संवार के बिस्व होकर नौनों के हियानय में बाहर लय करे। (१५५)।
हियानय में बाहर ही छरीयल किया था। छरीयल-
हियानय में बाहर ही छरीयल किया था। (१५५)।
हियानय में बाहर ही छरीयल किया था। (१५५)।

१८२—हिंदुआर (१५४) [न] बबानिधि हिंदुआर की हिंदु के डकी जोड़ियों को ही
 हिंदुआर पत्र में ही है। धूम्र रंगार के चिरप होकर ही बाहर ही छोड़ दिया गया
 की प्रतापी। धूम्रिटर बाकि ने भी हिंदुआर में बाहर ही छोड़ दिया गया
 के एक घर में ठीक-ठिकाने के साथ इसका उत्पन्न है— जो धूम्रिटर ने भी 'हिंदुआर' नाम
 पत्रालय में हिंदुआर नाम धूम्रिटर प्रयुक्त हुआ है।^{१५} धूम्रिटर ने भी 'हिंदुआर' नाम
 किया है।^{१५}

धूम्रिटर (१५५६) [न] बबानिधि हिंदुआर की हिंदु के डकी जोड़ियों को ही
 धूम्रिटर में है। धूम्रिटर एक घर में प्रयुक्त करने का में इसका उत्पन्न हुआ है—
 धूम्रिटर ने भी 'हिंदुआर' नाम धूम्रिटर प्रयुक्त हुआ है।^{१५} धूम्रिटर ने भी 'हिंदुआर' नाम
 किया है।^{१५}

धूम्रिटर (१५५६) [न] बबानिधि हिंदुआर की हिंदु के डकी जोड़ियों को ही
 धूम्रिटर में है। धूम्रिटर एक घर में प्रयुक्त करने का में इसका उत्पन्न हुआ है—
 धूम्रिटर ने भी 'हिंदुआर' नाम धूम्रिटर प्रयुक्त हुआ है।^{१५} धूम्रिटर ने भी 'हिंदुआर' नाम
 किया है।^{१५}

[illegible][illegible]

१—य सं टी, १ १३, बरली मो.
 २—जाल, बरस, ११—बोरबरी मिट म्पु टी
 ३—इरिया एक मोन दू पारिमि, दू ४५, रक्का नामक गरी की
 बाहण तथा बाहि एके में बलिण घात पबिक गरीयों में है जिसक
 तरबरी है बीर बरली मोर सेंकरी गरी।
 ४—य सं टी ३१ १४—जाल टीक हिपबल बरी, १५४१२—दूरक बरल
 हिपबल गरी।
 ५—इरिया एक मोन दू पारिमि, दू ३२

१-व तं ही, १-
देवी । १-
१-व तं ही, १-
देवी । १-

२-जलता एक गोमट पालिमि, इतिहास एवम् यन्त्र में वर्णित गरी ।

[illegible]

४-५ वी टी
शिवबाबू ताका ।

१.—इंदिरा पञ्च मोल दु बालिमि, ४ १२

पहले सभी पर्वतों के पंख से घीर उड़ा करते थे। जब केवल मैनाक पर्वत के ही पंख से घीर उड़ाने का विचार प्रचलित है। इन ने बय से सबके पर काट दिये थे किन्तु यह झिझक बच गया था।

मैदराचल (४३५) [ध] यह पुराणों में उल्लिखित वह प्रसिद्ध पर्वत है जिससे सूरों घीर समुद्रों में समुद्र-मंथन किया था। सूरसागर में भी स्रष्टम-स्कन्ध के समुद्र-मंथन प्रसंग में इसका उल्लेख हुआ है—“मैदराचल मन्थन बसे धाई” यन्मा “मैदराचल उपाय भयो भग्न बहूत (४३५)।

वीनागिरि (४६३ ४६४) नभम-स्कन्ध की राम-कथा में हनुमान द्वारा वीनागिरि पर्वत से संजीवनी कुटी भाले का निर्देश है—“वीनागिरि पर आहि संजीवनि बैह सुणन बढाई” (४६३)। कुटी न पक्षबानने पर हनुमान पूरा पर्वत ही उड़ा लाये—“संजीवनि की मेह न पायी तब सेल उढायो” (४६४)। यह पर्वत उत्तर का ही कोई पर्वत होया क्योंकि मार्ग में हनुमान का भरत से मिलने का प्रसंग है (४६४ ४६५)।

मलयगिरि (४३६ ४३९) [ध] मलय] यह दक्षिण भारत की एक पर्वत माला है जो बर्धन के पुत्रों के लिये प्रसिद्ध है। सूरसागर में भी मलय-वदन की शोचलता की धोर उल्लेख है—“मिथ नुह मलय बरन को राज बरन लपटाई (४३६)। इस उल्लेख में हरि-विष्णुओं की पुरस्ता का वर्णन है। नभम-स्कन्ध में रघुनाथ की मुद्रिका सीता की मलयगिरि के समान ही शोचलता प्रदान करती है—“यति मुख पाह उढाई लई तब बार-बार उर भेटे। क्यौं मलयगिरि पाह बापनी बरिनि हूय की भेटे (४३९)।

सुमेरु (५२९) [ध] सुमेरु] यह पुराणों में उल्लिखित एक कल्पित सोने का पर्वत है। यह सब पर्वतों का राजा माना गया है जिसके चारों ओर सब नुमेरु हैं। सूरसागर के नभम स्कन्ध में सीता-विजय-संवाद में इसका उल्लेख हुआ है—“हुन सुमेरु सेव सिर कये पन्धिम छदै कर बासर-नात। मुनि भिज्यो तीहूँ नहि आही मधुर धृति रघुनाथ-नात रति। पद्मावत में भी इसकी चर्चा है।^१ (५२९)।

द्वीप

१८२—अथ द्वीप (५३९) [ध] यह पुराणों में उल्लिखित बात द्वीपों में से एक है। यह मेघ पर्वत को चिरे हुए है। नभम-स्कन्ध में हनुमान अपनी शक्ति और सामर्थ्य के संबंध में कहते हैं—“अबहीं जू द्वीप यहाँ हैं से लंका पटुबाऊ (५३९)।

हर्षचरित में मध्याह्न द्वीपों वाली पृथ्वी बताया गई है।^२ द्वीपों की संख्या पुराणों में बार से बात हो गई थी किन्तु बाध के समय में मध्याह्न तक पहुँच गई। इनमें भारत को कुम्भाटी द्वीप व लंका को सिंहल द्वीप बताया गया है। कालिदास ने भी मध्याह्न द्वीपों का ही उल्लेख किया है।^३ महाभारत धार्मिक पर्व में राजा युधामन्यु को लंका द्वीपों का राजा बताया गया है।^४ सूर के समकालीन काव्यी तत्प क्षुलसी ने सात द्वीप ही बताया है।^५

१—पं. सं. टी., २११९, “जी सुमेरु विरमल विनाला, का कचनगिरि नाम प्रजाता। —“कन बहुर”, १२१४—“मेघ विविध तिनहुँ उपर्यो”।

२—हर्ष सां. प. ११६

३—“मधुराह्नद्वीपनिकातपुत्र —(रघुवंश ६।३८)

४—“यथोपासमुत्तरय द्वीपवदनम् पश्यता”

—पं. सं. टी., ४८३१२—“सप्तद्वीप राजा सिर नाबहि —“कालिदास सात”, ४, “सप्तद्वीप सुवर्णत जल कोरुह”।

वीरशक्ति अभिषेक स्थान

[illegible]

४-पौराणिक कल्पित स्थान

४--पौराणिक कल्पित स्थान

[illegible]

—ए तं टी ४६५२ वीट बंगाली
पटुका (पवित्री बंगाल की राजधानी पटुका)
४-६ स० टी ४६५३ कासमीर, टुला राज्यान्।

—ए तं टी ४६५२ वीट बंगाली
पटुका (पवित्री बंगाल की राजधानी पटुका)
४-६ स० टी ४६५३ कासमीर, टुला राज्यान्।

भोक का उल्लेख मोक्षार्थ लीला में अनेक बार है। उनका भोक सुरपुर (१९ १) यथवा अमरलोक (१५९८) नाम से भी जाना जाता है। इन्द्र भेषों के राजा माने गए हैं तथा वैदिक देवता^१ विशेष भी हैं। इन्द्र की रानी शची एवं पुत्र अश्वत्थ ब्राह्मण ऐरावत धर्म भक्त राजधानी अमरावती मया सुभगा तथा मित्र उपवन संबल माने गए हैं। नरक उपवास में पारिव्राज कृष्ण का प्राप्ताय है। लवन वन में ही कश्यप भो कलित है। इन्द्र के भेषों का नाम उन्मेषमा (४७८४) तथा सारथी मातलि है। बड़ ज्येष्ठ नक्षत्र तब पूज दिया का स्वामी है।

अमरलोक (१११०) ब्रह्मा का निवास-स्वाम है। इसका उल्लेख ब्रह्मा-वत्सहरण प्रसंग में हुआ है।

शिवलोक (४९९५) शिव का निवास-स्वान केराय माना गया है। केलास (४८५५) का निर्देश भी है—यद् कीलास बहो मुनियत हर। शिव का उल्लेख वेदों में नहीं है। 'छ' ऋग्वेद में अग्नि का पर्याय है। बीरे बीरे वर्तमान शिव का विकास हुआ। यहाँ सब लोकों से अधिक परब्रह्म के अवतार कृष्ण के साहचर्य का माहात्म्य माना जाना उचित हो है—ब्रह्मलोक शिवलोक नादि सुख निगम पु नेति ब्रह्मनि। सो एव गिरिवरपारी के संप जिह्वा सेव ब्रह्मनि। (४९९५)।

अमपुर (विनय) यम की नगरी है। विरवाच के अनुसार यम के दूत ह। मृत्यु के बाद आत्मा को ले जाते हैं। यम मृत्यु का देवता है और उनका वाहन श्वेत है।

मरुत लोक (१९ १) का उल्लेख बरुड द्वारा नर हरण प्रसंग में है। इसको पता लहि (१९ १ ३०) भी कहा गया है। वरुड के मरुतों तथा विहासन धारि का बजन भी है।

इस प्रकार सभी देवताओं के अपने अपने लोक माने गए हैं—शिव विरवि सुरपति यह मापत पूरन ब्रह्महि प्रसट मिले। पहुँचे बाद धामै लोकनि धमर बारि धति हरप मरै। (१९ १)। साधारणतः तीन प्रधान लोक या—त्रैलोक्य (१९ १) माने गए हैं—'जिनके सुन नैलोक गुसाई' (१९ २) यथवा 'माया के सब तीन लोक है (१५)। यह स्वर्ग, पृथ्वी तथा पाताल है। लोकों की संख्या कोई भी न थी गई है—सात ऊपरीलोक तथा सात अध लोक (ऊपरीलोक—मू. भुव, मह, जन तथा मत्स्य तथा अध-लोक—मत्तल बित्तम सुवम रसानल समानल महातल तथा पाताल है)। इनमें से भूतल (विनय) रसातल (विनय) पाताल (१७ १९ २) का तो उल्लेख है ही साथ ही सरग, स्वर्ग^२ (विनय) तथा नरक (१७२) [छ] लोकों की बर्णनियम पत्रों में विशेष रूप से है। पुण्य कर्मों से आत्मा को स्वर्ग के अग्रिम सुख प्राप्त होते हैं तथा पापों के अकस्मिक नरक-वास। नरक इन्ध्रिय माने गए हैं। यहाँ भीवितावस्था में अपने पापों के सब भोगने का विरवाच प्रवर्तित है।

५—काल विभाजन तथा ग्रह नक्षत्रादि

१८४—श्रीवीर स्वर्ण के नाम-माहारमय शीपक पत्रों में एक स्वर्ण १२ पुनों की सूचना

१—इंद्रिया एन मोन टु पाणिनि, पृ० १५९, वैदिक देवताओं में अग्नि, इन्द्र, परम, रात्र आदि को थे।

२—इंद्रिया एन मोन टु पाणिनि, पृ० १६७, 'परलोक' अथवा स्वर्ग की स्थिति में अधिकांश हिन्दुओं को विजयता था। वेदों में स्वर्ग को 'नाट' कहा गया है (मनहीं, धरु=पीडा)। पाणिनि ने 'मिथेयम्' (अतिरसों में इगटा धर्म पुर्ल पुण्ड है) तथा 'निर्वाण' का उल्लेख भी किया है। काजिटा ने 'निर्वाण' शब्द का संबंध बीड-यम से बताया है (निर्वाणो निवृत्त)।

भी सी बई है—'सतगुरु हउ जेठा लय कोई, बापर पूजा बारि। दूर नवन कसि केनव
कोई मज्जा-कानि मिबारि (१४५)। घबरा है हरि नाथ की घबारा। घोर रहि कसिकाख
गाही रह्यो निधि-ओहार। (१४७)।
सतगुरु नेठा बापर तथा कनिमुख में बगल संकति का हाथ होने का विरपात बा।
अष्ट १८५—'म्यों में सुरुगुरु (२०१५) [छं 'बहलीहि] सुक (२०१५) [छं 'दुक-
देखों के मुख दुककाबो] सनि (२०१५) [छं 'अभि] तथा सोम (२०१५) [छं 'भीम-अननकर]
के गानों की बर्बा भी है। काबजम पदों में बर्बा की अनेका के अन्तगत इकल प्रयोग हुपा है
तथा इसी की घोर भी संकेत है—
मेहर के मुक्ता में लोई, बरन बिराजति बारि (२०१५)
गानौ सुगुरु दुल, भीम लनि बलक बंद नैकादि (२०१५)
मनौ नील सेत बर पोत छल्ल लनि कलम नाग ललाई।
घबरा सनि, गुरु—कसर, देबगुरु, मनु भीम सहित समुदाई। (३२५)

खण्ड ४—

व्यापार, व्यवसाय, कृषि, ग्राम-प्रबंध
तथा

नग, धातु, सिवके

१—व्यापार और वाणिज्य

१८१—सुरसागर की कपाओं का विशेष सम्बन्ध तत्कालीन नागरिक जीवन के विभिन्न पक्षों से यही है। घटपट व्यापार व्यवसाय तथा राजनीति आदि विषयों को सूक्ष्म समझनी का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है। प्रारम्भिक स्तरों के विनय-पत्रों में (१४९ १४९ ११) ही व्यापार से संबंधित कुछ शब्द मिल जाते हैं। ये भी थोड़े से रूपों में ही प्रयुक्त हुए हैं। इसके प्रतिरिक्त बहम स्तर के बखिबान तथा अमर-वीर प्रसंगों में भी कुछ विनय पत्रों में बाखिबान का उल्लेख है।

इस दृष्टिकोण से अरबी तथा फारसी प्रभाव स्पष्ट है। मुगल राज्य में नागरिक जीवन से संबंधित समझनी पर बिदेसी प्रभाव होना आश्चर्य की बात नहीं है।

व्यापार के साधारण अर्थ के सूक्ष्म बनिज (२१४९) [सं बाखिबान] और व्यापार (२१४६ १६५) शब्द प्राप्य हैं तथा व्यापार करने वाले व्यक्ति के लिए व्यापारी (२१४६) [सं व्यापारी] तथा बनिज (२१४९ २१४९ २१४९ २१४७) [सं बखिबान]। बखिबान प्रसंग में इब्न तथा योसियों के संवाद में बाखिबान की बर्णना है—“येही कही बनिज का घटकी समझा ‘मुर बनिज तुम कउति सबाई’ (२१४९) बनिज व्यापार की सामग्री के अर्थ में अधिकतर प्रयुक्त हुआ है—‘हंति बुचमान-मुता तब बोली, कहा बनिज हुन पाठ’ (२१४६) अथवा

‘कोल बनिज कहि मोहि सुनावति ।

तुम्हरी गद्य साधो गद्य पर, हीन विरिच कह पावति ॥

अपनी बनिज बुरावति ही कत नाउं लिये से नाहीं ।

कहा बुरावति ही मो धाने सब आमत तुम पाहीं ॥ (२१४७)

बनिज के इस अर्थ में ही ऊपर गद्य [सं अर्थ] उदाहर भी प्रयुक्त हुआ है। प्रथम का अर्थ बना किया होता है। सौदा (११०) [सं अर्थ = सामग्री वस्तु] तथा मात (२१४४) [अ] भी समानार्थक शब्द हैं—‘करि दियाग यह सीज छावि के हरि के पुर से काहि’ अथवा ‘जो जो मात तुम्हारे’ (२१४४)। सौदा (११०) [अ] भी बेची व खरीदी जाने वाली सामग्री ही होती है। सुरदास के अनुसार पारायण राम में ही एकाग्रभाव मनुष्य का सबसे बड़ा सीधा है—‘मुर राम की सेवा छाँगी कहूँ ही हमारो जानि । (११) । सामग्री रखने का

१—इ दिया एक मोल दु बाखिबानि, प २३८, प्राचीन भारत में व्यापारी को ‘बखिब’ या ‘बाखिब’ कहते थे। व्यापार के स्थान पर ‘व्यवहार’ शब्द प्रयुक्त होता था।

— यह विस्तृत क्षेत्र में अध्य-विशेष का अर्थ होता था, जब कि ‘पएय’ हानीय व्यापार के सीमित अर्थ में प्रयुक्त होता था।

२—इ दिया एक मोल दु बाखिबानि, प २३८, २३९, बिकने वाली सामग्री ‘पएय’ अथवा ‘बखिब’ कहलाती थी तथा बिकी सामग्री ‘बय’ होती थी। (प २४६, २४९) पत्रों पर व्यापारियों द्वारा ले जाई जाने वाली वस्तुएं ‘माहृत’ या ‘हय्य’ कहलाती थीं। ‘माहृत’ में एकत्रित सामग्री को ‘माहृत’ कहते थे। कारावाण ने इसी को ‘समावयन’ कहा है।

આપાદ શ્રી રાજીવ

[illegible]

... १० दी, १३१४, "द्विज अष्टाचार नव बाहिरी को पूरती" १५
(११) या ग्योहार वही बु बगती हुडी वही नवरी (१२२१) "गवना दुखी
... १० दी, १३१४, "द्विज अष्टाचार नव बाहिरी को पूरती" १५
(११) या ग्योहार वही बु बगती हुडी वही नवरी (१२२१) "गवना दुखी

[illegible][illegible][illegible]

४—द्विधा एक नोल डू पारिमि, दू २३३, 'प्रबोधिनात्' से २३३
 (pharar system) कइगला या ।
 २—द्विधा एक नोल डू पारिमि, दू २४२ ध्यापारी धरनी लागी कई प्रकार
 'दू' से से जाले जे—इमारत बर, मंजल बर, इमारत बर बारिब । धरमल
 तथा धारु गव पबलीय बनले जाले से ।

मयद पर' (२१४७) तथा बीच गोल व्यापारी' (२१४९)। यह सामग्री गोल [तं गोपी] बबबा गाठरी (४२८१) निर्गुन मिरमोल गाठरी' में भर कर बाबी बानी बी। पटसन या कासी ऊन के बने बोहरे बोरे का 'गोम' कहते हैं। यह प्राय मान भरने के काम आता है। बापसी ने 'पेटारे' का संस्कार किया है (३८५।४) कमी कमी बाट [तं० बरम—प्रा० बट्ट—बाट] में मुट का भी भर होता था—बाट-बाट बहूँ घटक होइ नहि सब कोउ देखि निबाहि (३१) का संस्कार है। पद्यावत में प्रयुक्त 'नाइत सख्य से समुझी व्यापार का पटा चलता है।^१ पर २१४९ १४७ म व्यापार की अनेक सामग्रियों के नाम दिये गए हैं। इस दृष्टि से प्रथम पद का बहुत महत्त्व है। इनमें प्राय सभी मसालों के नाम आ पाए हैं जैसे—'हीर मिरिच पीपटि, बबबाइन ये सब बनिज कहारि' (२१४९) अथवा तुम्हारी गब साखी मयद पर हींग मिरिच कहू नाबति' (२१४७)। इनमें प्रयुक्त मसालों के प्रतिरिक्त 'नारियर' दाल' 'घास' 'साब' तथा 'सेतुर' आदि वस्तुयें भी थीं। घासकल प्राय से सभी बोंमें एक पसारी की दुकान से प्राप्त की जा सकती है। मुरसागर में हूय बही बेचने से संबंधित तो अनेक पद हैं ही—'हम अहीर मानन मदि बैर' (४२८१)। पद्यावत में सोने मोती आदि के व्यापार का संस्कार भी है।^२ कोई भी व्यापार करने के लिये व्यापारी को कुछ बग लगाना पड़ता है जो असख (१४२) [प्र] जमा (१४२ १४३) [प० बलम] मुखमिख (१४२) [प मुखमल = एकमिख] अथवा मूल^३ [तं मूल] (१४२) आदि नामों से जाना जाता है। व्यापार में इस मूलधन का पटना असफलता का चिह्न है और इसको हानि (३१) [तं] घटवारी (११४२) तथा घट्टा (१४१) [तं० बाली] कहते हैं। रूप-विक्रम में मूलधन की बुद्धि होता ही छाहा (३१) [तं० नाम] नफा (४२८१) (प नक्रम) कहा जाता है—'बह तो परंपरा बलि आई कुछ कुछ नाम अब हानि। (३१४९) नफा (४२८१) प्र और बनिज मनाही जाहा होति मूल से हानि (३१) अथवा होती नफा धातु की संवति मूल गांठि नहि टरतो। सूरदास बैकठ पेंठ में कोउ न के फकटो (१६७) अथवा अमरवीत प्रसंग में मानिया कहती है—'तै धार ही नफा बानि के (४२८१) अथवा यह व्यापार तुम्हारी ऊपों ऐसे हो बरसी है (४२५१)। पद्यावत में भी गद्य सौंठि [तं संस्कार = पूछी] नट होने का संस्कार है।^४

१८८—अथवा अपार देना भी एक प्रकार का व्यवसाय है। इनको अटन^५ (१६६) [तं अट] सेना कहा जाता है—'सबै मूर मोखी अट जाइय कही कहा तिन सीरै (१६६)। धपनी

१—प सं टी, १३१।३ "ठावहि छठहि बगारा", ४५१।७ "अत एहि नवर होइ बरवारी" ४ ९।७ "ले नव मोर लसुर ना बडा", १८३।४ "लाज आरि एक भरे पेटारी।

२—प सं टी, ५१७, ९ "नाहन नीक नंबर हति बोवा" नाहन = बेसी, पावस, समुझी व्यापारी।

३—प सं टी ७६।२ "राश बनिज घास तिपली", ७६।३, "वज मोति भरी सब सीपे। मोह बस्तु बहु तिपल बोपी। जानन एक सुभा ले धारा। कवन बरन अनुप लोहाया।"

४—प सं टी ३७। पुनि वैश्रव—मुरगवाह।"

५—प० सं टी, ३५८ केरक ल्याइ हरहि मन भी लहि गब है चेट। सांदि नांठि उठि नए बगल ना पहिपान न भेट।"

६—ईशिया एम् मोन दुपासिनि, ५, २३८ "अट" शब्द प्राचीन धातु में भी प्रचलित था।

व्यापार और वाणिज्य

[illegible]

क्या है —

नया है —
 मैं प्रेम सुन्दरी भोई, जगजग ही को हीही।
 मैं बोटि रहै गोपनि को रहै जगजगि मोही।

×

सुन्दर जाई कै हीन बचन सुनि बनार बनि छयन।
 तेसो करत नाख ही निरुपत को गनि छयन दयन।
 बया जगार के के ब्यथाय में प्रसन्न जान छयन।
 जग जहित कह बास करने पर ही छयन।

×

हीन मोकिनि ही मो
 करत न

[illegible][illegible]

केन्द्रों को
 देन किम मल मलित
 और सरजन शोषि अर्थात् ठेका
 ग्राह में वे एवम शोषी
 कल्पे बन्ना देन बात
 जासी एका दुसरी है। केवल
 बीपन टिका हुआ है। केवल
 बाई सब कोक मुनि एवम
 किनु और न कोक मुनि
 पयापन में श्री बनिम
 के अनेक हैं। बन्नाए एवम
 (१७) द्यापार सबरी
 २३६

१-सावक बाल, २३५
बी.जे. १७ "दिल बलि को, बनक हृदय "बहुरी प्यारी

१-य तं टी० इच्छा, मानव, बाल, वृद्ध-वृद्ध मंदिर, वे तृप्ति बनिज लई, कि बला बाल बपारी।

१-य सं ही ३०५६।
 २-य सं ही ३०५७।
 ३-य सं ही ३०५८।
 ४-य सं ही ३०५९।
 ५-य सं ही ३०६०।
 ६-य सं ही ३०६१।
 ७-य सं ही ३०६२।
 ८-य सं ही ३०६३।
 ९-य सं ही ३०६४।
 १०-य सं ही ३०६५।

४-१० सं टी०, १७१० "मन्य
 विष्णु बनी, ७१४४ तबही सीन्हु बेसा।
 योगरत, ७१४४ "मोहि सुनि बोरे।" ७१४६
 लेह का बोलि मोहि सुनि बोरे।" ७१४६
 ७१४१ "बनिज न किला ध्या पवितासा" ७१४१

साथ भिक्षुता व्यापारी समूह) राज्य को बाबरी में 'साथ' तथा फ्लेण्ट साथ को 'बनिबार' [सं वाकिम्पारक] कहा है।^१

तुमसी के ग्रंथों में भी बड़ी-छोटी चोरे से राज्य मिल जाते हैं। हममें 'बनिक' 'व्यवहारीय' तथा 'रिनिवा' का सम्बन्ध किया जा सकता है।^२

२—व्यवसाय तथा शिल्प

१८६—सुरक्षापर में स्वाम-स्वाम पर तत्कालीन प्रचलित शिल्पकारों तथा व्यवसायों का भी उल्लेख हुआ है। इनके उस समय के स्थानीय सामाजिक वातावरण का अनुमान हो सकता है।

ब्रह्म-वैवर्त के ज्ञान वर्ग में ब्रह्म का बाल्य-काल बीतने के कारण सर्वप्रथम इस व्यवसाय की ओर विशेष ध्यान आता है। गाँव पानने तथा दूध दही तथा ची पर जीविका कमाने वाले लोग प्रायः अहीर, अहीरि, आमीर अथवा ग्वाल्लिनि (११५८, ४१५८, ४१८९, ४१९८) [सं घाजीर, सं गोपाल प्रा गोबाल] कहाते हैं—'एहि सुत मर अहीर के' (११८९) या और अहीर सब कहाँ तुम्हारे हरि छौं बेनु दुदार्द (११५८) तथा बलपयस प्रबला अहीरि छठ तिगई लोग कत सोई। (४१९८)। ब्रह्म के मधुर जाने के बाद काम कर्मात्मी की मसहूम बेचना बढ़ाने में ही आगन्धित होता है—बरन बान बसत कर सी बचत है घाजीर। अर से उठत मोघ लेकर आ पहुँचे—'छो गति होइ सबे ताकी जो प्यारिनि लोग तिलावे।—सिखई कहत स्वाम की बतियाँ तुमकी नाही सोप। गोप गोपी (१५१६) [सं] तथा ग्वाल्ल घोर ग्वाल्लिनि घावि के बरनैस मरे पड़े हैं—'कुनी किरति बचति मग ये री' (८८४) अथवा 'बकिड कई ग्वाल्लिनि लन हैरी (८८२) अथवा 'कई हरि प्वाल्ल संग बिचार (८८३) या अथवा समसरी और गोप ये तिगई साथ पड्ये' (१२ १) तथा 'जा दिन है सचरे मोपनि में राही दिन है करत सुवैरों। मोपियाँ बुधवन हैं पाना दूध-दही घावि लेकर मधुर बेचने जाती थी—'मायल बनि भूत साजति मटुकी मधुर जान बिचारी (२०१५) अथवा 'बेचन वाली बनि ब्रजगारि (२११७) तथा 'प्रस ही से जाति बोरस बैचि बान्धति राति (२१२२)। ग्वाल्लिनों का नित प्रति का यह मधुर जाने का प्रसंग बचि-बान्ध शीर्षक पर्वों में विशेष रूप से मिलता है।

एहि हर्मा, मूर बंसाइ कलेईं तैहि बाटी" ७४।१ ४^३ अपने कलत्र न कीन्ह बुझयो। लाल न बीछ मूर भी हानी। का बीबा बहम मोहि नू जो। ओइ, कलेइ धरहुँ क पू जो।^३

१—७४।१ "बितरर यह क एक बनिजारा" २१८।२ "हनु बनिजारा हों बनिज बेसाहनु। जाति बेवार लैनु जो जाहनु।"

२—कविता, उत्तर ६५, 'दिसनो दिसान—कुल, बनिक, निपारीमा'।
दिय ०, १, 'दिसे को न कपु रिनिवा हो' मानव, बाल, २०९ 'धव जानिअ व्यवहारीया बोली।'

३—पं० सं० टी० ११५।२ "बहिड लैनु ग्वाल्लिनि मोहुराई।

•

ਅਸੀਂ ਹੀ ।
ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਹੁਣ ਹੈ
ਮੇਰੀ ਬਕਾ
ਕੀ ਬੀਰ
ਕਾਰ ਕੀ
ਮੇਰਾ

। केबट
न बीबिका यार्
प्यार्लैं। मो
नेटो (४८६)
केबट उत्तरार्ध
ली थी— हेम
इय्यार

१. नाथ पर नाथ
२. धर्म धर्म
३. धर्म धर्म
४. धर्म धर्म
५. धर्म धर्म
६. धर्म धर्म
७. धर्म धर्म
८. धर्म धर्म
९. धर्म धर्म
१०. धर्म धर्म

...का पा...
...सेमल ठ...
...की बाँधी दुम...
...स्वयं या...
...राम-प्रताप' स...
...जो नाब...
...बढ़ई

१. बृकट देह प्याह
 २. बृकट देह प्याह
 ३. बृकट देह प्याह
 ४. बृकट देह प्याह
 ५. बृकट देह प्याह
 ६. बृकट देह प्याह
 ७. बृकट देह प्याह
 ८. बृकट देह प्याह
 ९. बृकट देह प्याह
 १०. बृकट देह प्याह

(२८) क्या
 ही नाथ कनका
 र 'ब्रह्म' है दोठ
 महि चितवत
 (३०) नाथिक
 ६ ठगर सबसे
 मारि (१)

र (५२३)
मिषि हावि
मिलनहु पति न
तथा सोकी
मिक बीला बाव
१६५ १६२७)
के बर्तन में सु

सं० सुवर्ण
कार का उत्पीड
ह से संबंधित प
के लिए उपा

10

है, जो एक निम्न व्यवसाय है। इसको मुलम्मा बझाना भी कहते हैं, जो बाहरी तक्क-मक्क का चोतक है, प्रथम बाव में वास्तविकता का पता चलने को झलाई या मुलम्मा उठरना भी कहते हैं।

लकड़ी की चीजें बनाने वाला कारीगर बड़ई, बड़ैया [१६१ १६२ १६४ (सं वर्षिक) या बड़ई-बड़ई] कहलाता है। शिशु कृष्ण का पालना बड़ई बनाकर लाया था—पालनी प्रति सुन्दर गङ्गि स्थावर रे बड़ैया। सीतल जीवन कटाउ बरि सराव रंज भाउ। (१६२) सराव [का सराव या सराव] नामक घोड़ा द्वारा ही बड़ईलकड़ी की तरह चिकनी करते हैं। हिडोला बनाने वाले को गड़नहार (१४४२) भी कहा गया है—‘गड़नहार हिडो-रना की ताहि सेहु बुसाह। घनाड़ी बड़ई को ठोट सुर फूरकनि (११२) ठोट’ कहा जाता है। इसी को कठबियरा या ‘ठोटुवा घनीगड़ लेन को घामीख बोनी म घाव भी कहते हैं’।

१२१ बत्त चीने का काम दरखी (१६६५) अथवा दरजिनि (१६६१) [का बजी] का होता है^१ अपने चोपान के में बाये रंजि सेरें। दरजिनि हैं बाउं निरजि नैननि सुख देरें। (१६६६)। कृष्ण के मङ्गु बाने पर बहाँ के बर्यो से बत्त पहनने का प्रसंग है—‘घाह दरखी गयी बोलि ताकी गयी सुमग प्रेय साबि लन विनय कीन्हें’। (१६६३)

रंगरजिन (११ १) [का० रंगरेख] का उल्लेख कृष्ण के बहुनायकत्व संबंधी संयोग पद्यों में है—‘रंगरेजिनी मिली कोठ बाल’ (११ १)। रंगने की कला भारत में प्राचीन समय से है।^२ इसकी बर्णन बर्णों के सिमसिसे में की जा चुकी है। पाणिनि के समय में ‘रंग’ रंज तथा रंगने के अन्व पदार्थों का सूचक था।^३ सुरसागर ब्रह्म स्कन्ध के रत्नक-वच प्रसंग में रत्नक (सं] (१७२२, १६४५ १६९ ४) शब्द का प्रयोग हुआ है। रत्नक मारि हरि प्रबल हूँ मृग बसन मुटाय। रंग-रंग बहु भाति के गोपनि पहिटाए (१६९)। हृय-वर्धित में भी ‘रत्नक’ द्वारा बत्त रंगने का बखान है।^४ ऐसा कहा होता है कि बर को सिखाई बत्त बाँधने के बाद रत्नक को रंगने के सिपू से देती थीं। बिबाह के समय रत्नक को देग देने की प्रथा भी थी।^५

उपवन में फूल धारि लगाने का काम तथा फूलों वगैरह बनाय माछी (१६९६, १६९५) तथा माछिनी (१६२३) [सं माछिन माछिनी] का है। माछिनी ही प्रायः फूलों के द्वार और

१—महाभारत, उद्योग पर्व अध्या ६।२७ “अथाऽऽवपान परतु स्कन्धेऽऽवपान वर्षिक।”

२—क भी, प्र १३, अध्या १।

३—बुलसी, कविता, ११३ “ध्योत करे बिरहा दरखी।

४—अनपय ब्राह्मण (५।१।।१११) में रंजीत कपड़े का चोतक शब्द “पान्द्रव” है ‘अथेन पान्द्रव परिजात्यमिति’। हृय सां प्र ७४, वास्मिकी तथा कातिवात धारि द्वारा “अरित” शब्द रंगने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। (अमायल सुन्दर; ४६।४, मैयकृत, पृथ-मैय इतोक्त १६)।

५—इंडिया पत्र कोन टु पाणिनि प्र २३, पाणिनि ने रत्नक के साथ रंगने का भी उल्लेख किया है। प्रारंभिक समय से भारत में लाता रंगने के काम करता था। मंत्रिपदा, मोल तथा रोचना शब्द बस्तुएँ थीं। कात्यायन के अनुसार शकस तथा कईन भी प्रयुक्त हुये थे।

६—हर्ष सां प्र, प्र ७४।

प्रविष्टर नाई जाता है और उसे पहिरामनी या सरोपा' मिलाता है।

मानिन के घट्टिरिक्त पारिन के भी बंदनवार बाँधने का उल्लेख है 'बारिम बंदनवार बेवाई । धानरुत बाणि जाति के बहुत से लोग पतल बनाने के स्थान पर चटों में सेचकों का कार्य भी करने सवे हैं ।

कहार तथा कहारिन (४११) का उल्लेख जड़मरत-रुग्णय कथा में हुआ है—
तही कहार एक कुप पायी 'कहनी कहारनि हमी न खीरि । मयो कहार बमत पण
खोरि' । ये लोग प्रयाग बोयी और बेहरी पठान' तथा पानी बरने का काम करते थे ।^१
कहार को धानरुत 'महुरा' या 'बीमर' भी कहते हैं तथा कहारिन को 'महुरी' [सं महिला
महम्मिका-महम्मिका-महम्मिका-महम्मिका] तथा बीमरी । परिवर्ती खतर-अवेर में 'बीमरी' शब्द
प्रसिद्ध प्रचलित है तथा पूर्वी में 'महुरी' ।

११३—अमरनीय छीपक पर्व के अन्तर्गत एक पद में कुम्हार^२ (४१६६) [सं०
कुम्हार] के बड़ा पकाने और रंगने से गोमियों के प्रेय का कपक बाँधा गया है । इस पद से
कुम्हार [सं० कुम्हार] के व्यवसाय की ओर ध्यान जाता है । विभिन्न कुम्हार कीन्हें कर्त्तव्य
से तुल्य मानि पकाए । रंग दीर्घ हो काष्ठ खरिरे, रंग रंग बिज बनाए । चटों चरे न नैन मेह
से धबधि घटा पर घाए । (४१६६) । कुछ वर्तन जैसे पड़ा कमीठी तथा होंडिया धावि
पकने के पहले रंगे जाते हैं तथा कुछ पात्र जैसे मुराही खूँची धावि बाद में रंगते हैं मिट्टी के
ये पात्र सुन्दर चिन्हों से भी अलंकृत किए जाते थे । रंगरा [सं० धापाक—धा० धापाक—धापाक
धापाक] में ही पात्र पकाए जाते हैं—'इत्र करि रंग बाण रंगन करि, मुराठि धानि
सुनमाए । पूँक स्रष्टा बिरह प्रजरनि रंग, ध्यान बरत सिमराए । (४१६६) यहाँ
पात्र पढ़ी [सं० पात्र] (१०१८) । पद की उल्लेखनीय है—'तथा छूट चित पात्र पढ़ी
छो गृह संनान न मुझाई ।' (१०१८) । यह पहिले के धापर का घुमने वाला पत्तर होता
है । इन पर ही कुम्हार वर्तन बनाता है ।

११४—पैरा पैरा (४२० ४२४०) [सं० पैरा] । व्यवसाय कथा में परिवर्ती
कुमार द्वारा उनके नैन टोक होने का उल्लेख है । उसी प्रसंग में ये कहते हैं—'कहनी हम
यत्र नाम नहि पावत । पैरा जानि हमकी बहुरजत ।' ये परिवर्ती नामक अन्धकार तथा सुख
के दो पुत्र माने गए हैं । लक्ष्म कल्प में अश्विनी नृती बसाने वाले पैरा सुपेन (१११) का

१—मनस, बाल १११, सरि भरि बहुर धपार कहरा ।

२—कू भी , प्र १०, अध्याय १, पी टर्नर ने कहार का संक्षेप मानि "काकहारको
से जाना है । अविभि हृत्त मारत सहित, धारनेय पर, अध्या १ , "तथा
माठिका बीरा (कुरकमीपमीविका ध्याया) काकहारका (पुष्टा) कृष्टं तथा
हयगि मे' ।

३—इंधिया एत भोज दू पालिनि, प्र २१ , अध्यायी में "कुम्हार" तथा "कुम्हार
कार" धाव प्रयुक्त हुए हैं । उसके द्वारा बनाए गए मिट्टी के पात्र "कीमातक
बहुलसी ये ।

४—गुमबी, बोहर , ४२४, "मयी गुम छर बेर ओ प्रिय मोलहि मय बास । पात्र,
घरन, लज तोनि कर होइ बेय ही नास । धानि घ , प्र ८१ , अन्तर्गत
में "तमीर (पैरा) को संघी-साधियों या हितचरों से विना है । उनके कुम्हार
हजीय (वर्तमान पूनाजी विधि का बिचित्रतः) कालीकाल तरबरेता का ।

श्री गरीबब विद्या है। भ्रमलीत शीघ्र है।
 मैं अपनी विद्या करने को कहती हूँ—
 बापु को उपवास
 बड़ी रोद कर

ला है। अमरीक शीर्षक पत्रों में एक खबर पर
 'को प्रियेण जवै जक जाला मोलत बचन न दूरी।
 मयुल को तपार करी मति तब शीर्षक सिद्ध देहू।
 बड़ी दोत बच्यौ है हुमकी भवन चवारी देहू ॥
 हो भोपन जाला मोलित के धर मयुलियु के लैद ॥ (४१४०)
 हम कतर नाति धाले धिर यह कबल है लेव ॥
 [त] (बात पित तथा कक का प्रतिबन्ध) के काल
 इस पद्यों में प्रियेण [त] यह रूप ईशक शाल्य में प्रयुक्त होता है। कक कं प्रिययो'
 इस पद्यों में प्रियेण [त] यह रूप ईशक शाल्य में प्रयुक्त होता है। कक कं प्रिययो'
 इस पद्यों में प्रियेण [त] यह रूप ईशक शाल्य में प्रयुक्त होता है। कक कं प्रिययो'

[illegible][illegible][illegible]

१-हमें वा प प २४, तिरपु
 बल्ले) गादि बिल्लों के बल्लिक बाग,
 के लिलों में है।
 २-य से टी० १२ १२ बाल्य दुली मारो मय। सीमा

भी चलेगा है। 'सेमी के रूप में जित भरगत भजन न सारंगपानि (१२)। यहाँ पर ऐसे विक्रान्तों के कोष्ठ में दोनों की सहायता का निर्देश भी है। सेमी का काम तब सरसों प्राप्ति से तब निकलना ही है।

इतिहास शीर्षक पत्रों में वनचारिणि [वाणिज्यारक] वनचारिणि [अथ बाजार] तथा वनचारिणि [सं पण्यशास्त्री] (२६१) का निर्देश है—

‘नीम्बे फिरो रूप निम्बन की री गोभी वनचारिणि।

‘सेमी करति बेति नहि नीम्बे तुम्ही बड़ी वनचारिणि।

सूरदास ऐसी गय बाके ताके बुद्धि वनचारिणि। (२६१)

जैसा कि पहले बताया था बुद्धि वनचारिणि स्पष्ट रूप की कहते थे जो घूम-घूम कर बीजें बेचते थे और उसकी स्त्री को वनचारिणि कहते थे। बाबा वनचारिणि तथा वनचारिणि (जिप्सी रोमासी) इसी प्रकार प्रपन्न करने वालों एक बाशि है और वे सोप छोटी-छोटी बीजें बेच कर जीविका चलाते हैं। वनचारी या वनचारिणी उस वनचारे या महाजन की कहते हैं जो मसाले तथा अनाज प्राप्ति बेचता है।

मोदी (१४१) मोरी सोम विनय पत्रों में उल्लिखित है।

पारधी (१७) [सं पापधि] तथा व्याप (१७६) [सं व्याप] शब्दों का उल्लेख भी विनय पत्रों की अष्टाङ्गशास्त्रों में है—‘हो प्रमाण बह्यो रूप हरिया पारधी घाबे वान। मुमिछ ही घडि बह्यो पारधी कर छूटयो संवान’ (६७)। पारधी को ‘घाबेटक’ ‘शिकारी’ ‘व्याप’ या ‘बहेमिया’ भी कहते हैं। सूरदास में अहरी (४८१४) [सं घाबेटक] शब्द भी मिलता है—‘विनय आस वन बाशि व्याप की गुप बग घबसि बहोरी। वन तु अहरी इति बाधोपति मुहा पीजरी शरी। निकटे बेत घडीत एक मुख दावत कीरसि मोरी। वन छडि बसे बिहंगम के गन करे कटिग पग डोरी’ (४८१४)। इस पत्रांश में बिड़िया पकड़ने के डब पर भी प्रकाश पड़ता है तथा आज न पीजरी शब्द भी पाए हैं। वही पकड़ने की श्रम विविधा तथा सामग्री भी उल्लिखित है—‘चारा कपट पीछि क्यों फँदत। (१६४२) घबरा—

लोचन नवे पछेक माई।

कुम्बे स्वाम-रूप चारा की भलक फँद परे बाई ॥

मोर मुकुट टाँपी गाली यह बैठनि सलित बिभंग।

विठवनि छकुटा लास लटकनि पिय कोपा भलक तरंग ॥^१

१—प सं व्या ७४।१ जिततर गढ़ के एक वनचारि (१) शब्दीन सावदाह का मध्यकालीन पारिभाषिक शब्द वनचारि था। ये लोग घूम-घूम कर व्यापार करते थे।

२—क भी प्र १२ अध्या ३ भा में बांस के कण्डारों के बने बिड़िया पकड़ने के झड़े लुगड़ा या ‘कंवा’ कहलाते हैं। उसमें बिपकने वाली वस्तु ही बोवा कहलाती है। बिड़िया कंधाले का जान ‘बगुरा’ नाम से जाना जाता है तथा उसका ताँत या मोड़े की पूछ के बने फँदे ही ‘कंदाने’ या ‘फँदारे’ कहलाते हैं।

३—हर्ष भां अ ५ १८२ बाण में घाबेट की सहायक सामग्री में पपुयों की मत्तों की डोरियाँ जान कड़े तथा प्यपयान (टट्टी) कूपाजों की पेंडुरी का उल्लेख किया है। शाशुनिक प्रपवा व्याप मोतसक जान लिए हुए थे। दोनों पर लाता लगाकर गोरिया पकड़ी जाती थी। शिकारी वृत्त की महत्प्रता करते थे।

2

2

2

2

नट, नट्टी अथवा नटिनी (१८ ४२५७) भी बूमने-फिरने वाली एक जाति है, जो अपनी कला से लोगों को प्रसन्न करके मन राबित करती है । स्त्रियाँ प्रायः नाचती गाती हैं तथा पुरुष कलाबाजी दिखाते हैं—'ज्यों बहुकला काधि दिखरावै सोम न छूटत नट की । (२१०) इनका निर्देश घुरघागर के कई पर्वों में है— तब जो कहत घसुर की बाजी घब कुल बधु कहाई । नटिनी लौं कर लिए लकुटिया कवि क्यों नाच नचावै । (४२५७) कुबवा के प्रति गोस्वामी अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करती हैं । विनय पर्वों में कहीं-कहीं मृत्यु अथवा माया की तुलना नटिनी से की गई है 'ताके भुङ्ग जड़ी नाचति है मीच घति मीच नटो । (१८) अथवा 'यावा जटी लकुटि कर सीन्हें कोटिक नाच नचावै । तथा हर-हर सोम तापि लिए जोलति गागा स्त्राय बनावै । (४२) नटों की जाति प्रायः भी गाँवों में अधिक दिखलाई देती है । इनके सामाजिक तथा नैतिक नियमों का स्तर निम्न है । नटिनी को बेइनी भी कहते हैं ।^१ नट का समाजात्मक राजीमार् (२११) [अ राजीमार्] भी प्रमुख हुआ है— के कहुं रंक कहुं ईस्वरठा नट-बाजीमार् बैठे ।

अंत के दरबार में दो मस्त्रों (१९८७) [सं मस्त्र]—मुष्टिक तथा चानूर के इच्छा डार मारे जाने की कथा है—'बहो मस्त्र मुष्टिक से चानूर सिखा-संजन' (१९८९) अथवा 'नंद के कंबर दोल मस्त्र मारे (१९ ७) । मुद्रम बाकाश्यों के बाहर के अमोरबत में पहसवानों की फुरती ठिकार बुझवीक तथा हाथियों की मझाई का महत्त्वपूर्ण स्थान था । ये सोप नटों के खेल तथा कबूतर और बाज की मझाई के भी लोकगीत थे । नंद के दरबार में पहसवानों की उपस्थिति इस प्रथा पर प्रकाश डालती है ।

११७—कृष्ण जगमोहन शीर्षक कुछ पर्वों में (डाढ़ी डाढ़िनि १४६—१५१) के बयाबा गाने तथा लंछन गाने मुक्ता (१५१) तथा हीरा खन पटवर पाने का वर्णन है— 'डाढ़ी बीर डाढ़िनि गावै ठाढ़ हुरके बनावै हुरपि घवीस देत मस्त्रक नवाद की' (१४६) अथवा 'हंसि डाढ़िनि डाढ़ी छी बोली भव तू बरनि बचाई (१५१) 'डाढ़ी शन मान के भाई (१५१) कहीं-कहीं कवि ने स्वयं को ही डाढ़ी बताया है ही ती तेरी बर की डाढ़ी घुररास मोहि नाझे (१५१) अथवा 'ही तेरी जगम-जगम की डाढ़ी घुररास कडाऊँ (१५४) यह भी सम्भवत एक विशेष जाति है, जो गाने का काम करती है ।

ऐसा प्राप्त होता है कि बीच बीचकर बीचन नाचने करने वाला नम्र शूर के समय में भी या इनकी आपक (४९० १४८) [सं याचक] तथा मिच्छुक (१९८) या मिछारी (२१७) [सं मिच्छुक] कहा गया है— बीबी जन यह मिच्छुक मुनि-मुनि दूरि-दूरि से पाए' (१९१) या 'जो राजा-मुन होय निदायी' (२१०) ।

प्राचीन समय में राज-दरबारों के विद्यमान गाने बातों की भी एक जाति थी । राम तथा कृष्ण-जगमोहन पर नंद के द्वार पर इनकी उपस्थिति के उल्लेख हैं । इनको सन्नीजन (१५१) [सं संनिज] मूल [सं मूल] सागाय (४६२ १४८) [सं मायक], माट (१८९) [सं बट्ट] पारि अनेक नामों से पुकारा जाता था ।^२ 'भानिनि चित्र मूल नायक प्राकट-गन बसैंगि घसीस देत सब हिन हरि के' (१४८) अथवा 'मायक-संजी-मूल मृत्यु (४९२) अथवा

१—य सी टी, ११२१७ "जायतुं पति बहिनि देवराई ।

२—मुसली, जगन्नी-संघ, १८० "नट जाटसाय मूल नाचक अथ प्रताप बरतहो' ।

245

[illegible]

१६५) तथा दुली (१८५) को भी यहाँ से उपासी बनाया है। दुली की उपासी में ब्रह्म नरेश (१८५) से भी यहाँ से उपासी बनाया है। दुली की उपासी में ब्रह्म नरेश (१८५) से भी यहाँ से उपासी बनाया है। दुली की उपासी में ब्रह्म नरेश (१८५) से भी यहाँ से उपासी बनाया है।

[illegible]

१६ "बापि तवा गाने क्यूँ रुकें।
 २४ "कह कर खिबर न बनन बरान बननु किनु सप बाजे।
 २४ "कहँ भूप रत्नाशिवान तहँ की संका किमि माय ॥
 २४ "कहे बजाय तराज बनिम भोजे ननुहुँ डुबेर छे।
 २४ "जगता, जलर, १, १,
 २४ "पुन बही, मयपुन बही, रत्नात बही, गुलाहा बही कोक।
 २४ "मीना बात, १, १, "अपरोपित के कर जनक बनेर पदाई।

सहायता से शरीर तथा धारणा धारि का कपक बाँधा गया है (१४२।१४३)। इन चोरे से शर्मों की सहायता से उत्कामीन स्थानीय स्थिति पर कुछ प्रकाश व्यवस्था पड़ता है। सासन धारि में बिरेली शर्मों का कितना चलन हो गया था यह भी पता चलता है। ब्रज में गाँव के प्रमुख प्रपचा बिरेली जनों का धारर मुखक शर्म महसूसी (१४२) [सं महसूस] प्रपचा महसूस (१४० ११) [सं महसूस] था। ब्रजमानु महसूस (१४२१) प्रपचा नंद महसूस बर। महसूस (१११) महसूस का ही स्त्रीवाचक शर्म था। एक प्रपचा शर्म सिद्धवार (१४०) [सं सिद्ध बिरेलीनीय व्यक्ति] भी प्रयुक्त हुआ है। भूतम प्रसासन में सिद्धवार एक अधिकारी बिरेली का नाम था। कई गाँवों का भूतम परगना (१४०) [सं परगना] कहा जाता था। बनिबर ने ग्राम प्रबंधन में सूबे तथा परगने का उल्लेख किया है।^१ प्रमुख नगर प्रपचा ग्राम परगने का केन्द्र (सदर) होता था। प्रपचार के राज्य नाम में धाररा सरकार के धारगत मैलीस (malial) महसूस था परगने से। इनमें से ही गाँव मधुरा महोनी मधोमता महाजन तथा जलेश्वर से।^२ ग्राम एक वित्र में कई तहसीलों होती हैं और उनका प्रधान शहर या गाँव तहसील सदर होता है। एक तहसील में कई परगने होते हैं। 'ग्राम परगना सिद्धवार' महसूस तु ताकी कल्ल नगहई (१४०)—माझन जोरी प्रसग में मधोमता इत्यु से कहती है। नंद के बहप्यन को दिखाने के लिए ही यह उल्लेख है। ब्रजमान प्रचलित शब्द पटवारी (१८५) [सं पट्ट = नगर या कस्बा + वारी] भी मिलता, है—महकाय पटवारी काटी भूटी मिलत बही (१८५)। इसमें कर्मचारियों के धारवाचार की ओर भी संकेत है।

२ —अमीन की नाय-बोख का उत्कामीन प्रचलित शब्द महसूस (१४२) [सं] था—'बाया ग्राम महसूस करि कै।'^३ इसी सिमलने में कर तथा नवान सुषक भी कुछ शर्म ध्यान धारकियत करते हैं। इन सब का हिसाब-किताब करने वाले को सिमलहार (१४२)। [सि] कहा गया है—साँचो सो निमलहार कहा (१४२)। प्रपचा कर्मचारियों में मुहसिव (४२) [सं धार धार परीचक] तथा अमीन (६४) [सं वह धाराली कर्मचारी जो बाहर

१—बनिबर, पृ ४२३

२—प्राज्ञ, पृ ३

३—इंडिया एज नोन टु नारिणि, पृ १२४, किताबों में भूमि-वितरण नारिणि के समय में भी नाय-बोख तथा भूमि-पर्यवेक्षण पर धारारित था। यह सूत्र (४, १, २१) "कांडालताज नोन से फना चलता है। नोन वा यह नाय-विशेष 'कांड' था।

४—आर्ने, पृ १८, टकालन के कर्मचारियों में अमीन वरीता की प्रबंध कार्य में सहायता करता था तथा भगड़े को धार करता था।

मुरारिध नाय-व्यय का हिसाब रखता था और इस नाय के लिए एक किताब भी रफनी की जिसमें दिन-प्रतिदिन का हिसाब रहता था।

पृ २ आहूदी से तिपाही का काम करते थे तथा राजदरबार में सुहरिों के चर्चों पर, बिबरकों, तथा धारारों में भी भाग करते थे। धरती कर या नायगुजारी बनाने करने भी जानते थे।

आर्ने, पृ ८ मुस्लीमी नायब-बीवान या बकर का व्यवसाय होता था।

आमिष नोरेटर और मैजिस्ट्रेट का जो कृत्यों का रत्तक तथा नोन की दुबो बनाने वाला था।

का काम बला ही भी उल्लेखनीय है—यूर भापु बुवाल मुसलिह लै बवाल पुनबाले
(१५२)। मोहरिलि (१५३) [य मुहरि = मिलने वाला] बमल (१५) [य प्रयत्ना]
अधिकारी (१५४) [य]—अधिकारी बम लैला गाँदे तथा मुसली (१५५) का
भी उल्लेख है। इन्हें बलि में भी मौल के मुबिया तथा हिवाह-मिया का प्रत्यय करने वालों
का वर्णन है।
बला तथा कर के अन्तर्गत लख पोला (१५६) [अ पोला] मुसलिह (१५७)
अधिकारी (१५८) [य बमल = कर महसूल] प्रचलित है। मुसलिह (१५९)
भी उल्लेख है। इन्हें बलि में भी मौल के मुबिया तथा हिवाह-मिया का प्रत्यय करने वालों
का वर्णन है।
बला तथा कर के अन्तर्गत लख पोला (१५६) [अ पोला] मुसलिह (१५७)
अधिकारी (१५८) [य बमल = कर महसूल] प्रचलित है। मुसलिह (१५९)
भी उल्लेख है। इन्हें बलि में भी मौल के मुबिया तथा हिवाह-मिया का प्रत्यय करने वालों
का वर्णन है।

[illegible][illegible][illegible][illegible]

दुम्हार बरामद हैं की (१४३) ।

एक स्थान पर किसानों की निर्बलता के कारण सवान देने में असमर्थता तथा धाम धमिकारी के धमकावट का भी बयान है—

‘धमिकारी जम लेता माँगे छाते हों धाबीनी ।
धर में गम नहीं भजन तिहारी बीन दिवे में खुटी ।
धम बयानत मिस्त्री न चाही, तनै ठाकुर कुँ ।
धईकार पटवारी कपटी भूझी ललित बही ।
धाने बरम, बटावै धपरम बाकी सबै रही ।
छोई करों नु बसतै रहिबै धपनी धरिये गाउँ ।
धपने नाम की बैरम बाँधी मुबहु बची रहि पाउँ । (१८२)

कृषि

२ १—इसी प्रकार एक ग्रन्थ पर में कृषि का करक मिश्रता है—

ग्रमु नु वों कीन्ही हम खेती ।
बँजर भूमि गाउँ हर जोते धर खेती की खेती ।
काम लोप खोट बीन बलो मिलि रज दामद सब कीन्हीं ।
धति कुमुदि मन हाँकनहार, माया भूमा कीन्हीं ।
हनित्रम भूल किसान महामुग धमज बीन बई ।
जल नल की विषय बासना धपमत बसा नई ।
कीनै कृपा-भुष्टि की बरपा जल की बाति नुनाई ।
सुरवास के ग्रमु सो करिबै होई न काम-कटाई ।

उपमूल्य धमतरक में खेती से संबंधित प्रायः सभी प्रमुख शब्द मिल जाते हैं—खेती [धं खेन-खेत + ई] बँजरभूमि के नहीं हो सकती । भूमि खोसने के लिये बनी खोद खेस [सं धमज] की धानशयकता होती है । हल [सं०] का बीजों के फलों पर रखने वाला धाप आभा [सं धुग] कहलाता है । किसान [सं कीगाय] वा खतिहर [सं धनकर] ही उक्त हाँकनहार होता है । भूमि कीक होने के बाद बीज [सं० बीज] बोते हैं सब खता [सं] निकलती है । किसान का इतना परिश्रम व्यर्थ भी हो सकता है यदि बरपा [सं० बरपा] न हो । वाष्पिनी की धप्टाध्यायी में भी प्रायः यह सब बातें कृषि के प्रसंग में बताई गई हैं ।^२

१—बँजर को उतर भी कहते हैं । यह मिमी होने के कारण मिट्टी बिकनी हो जाती है । या या ५ ४, धामीण बोसो के “उतरहा” भी कहते हैं । ५ १३ ‘सुभा’ हल, का वह भाग है जो बलों की गरम में धमके है । यह धाम, धटहल प्रादि हलको लकड़ी का बनता है । इसको ‘सुभा’ ‘सुपाठ’ तथा ‘सुपाठा’ भी कहते हैं ।

२—इधिया एन मोन दू पाणिनि, ५ १६३, जगैर में किसान के लिये ‘कीगाय’ धमज मिलता है । धप्टाध्यायी में प्रायः “खेसकर” दाम हो प्रयुक्त हुआ है । हल को “हल” या “हुल” कहा गया है । “हुलपनि (हल चलाया) बार (बीज बीना) ” “भुताबहुल (धात बगरह) निकालना, ‘लवन’ ‘प्रवण’

प्रतिष्ठित क्षेत्रों को नदियों तथा कुओं के जल से सींचने का उद्देश्य भी है। इनमें सिन्धु, मुवास्तु, बल, सरयू, बिनास, रेविका तथा अजमेरा आदि नदियों के नाम आ सकते हैं। धान के क्षेत्रों में नहरों का पानी भी काम में आता था। रेविका नदी का छट (रेविका-कुल) नाम के सिरे प्रतिष्ठित था।^१

हृषिकेश में बाण ने भी किष्क्याटका के जन-शायों के बखान में कृषि तथा जलों का विवरण किया है। इन छोटे-छोटे क्षेत्रों में किसान बिना हल बैल के ही कुशल की सहायता से बीज बो लेते थे। कुछ स्थानों पर हल तथा बैलों की जोड़ी भी काम में आती थी। किसान बंजर भूमि को खाद डालकर उपजाऊ बना लेते थे। इसी भिलसिसे में यन्त्र के संर्गों कई घनटी छत तथा समेक तरकारियों आदि विभिन्न पैदावार का वर्णन भी है।

कृषि से संबंधित बोरे से शब्द तुलसी की छन्दामयी में मिल जाते हैं जैसे 'खेत 'पाही खेत' (घर से दूर रहने का स्थान 'पाही धीर वहाँ का खेत) 'किसान' कृषि 'बनार' आदि।

धान की प्राचीन बोली में हर (हल) कहते हैं तथा उसके कई भाग होते हैं— 'हर 'परिहृष' हरिह 'नाका तथा मूषा। हल में लोहे का छार (कास) भी होता है। हल बहुत लकड़ी का बन्धा होता है।^२

नग, धातु तथा सिक्के

नग

२०४—बहुमूल्य पत्थरों, चातुर्णों तथा कुछ प्रसिद्ध सिक्कों के नाम भी मुरसामर में मिलते हैं। वह प्रसिद्धता कर के कुप्पु-राधा कप-वर्णन आभरण तथा हिरोमा तथा पालने आदि के वर्णन में प्रयुक्त हुए हैं। कहीं कहीं नगों या चातुर्णों का प्रयोग उपमान रूप में भी हुआ है।

रत्न* (१५९) [छ रत्न] नग (११) [अ नवीन] धीर मखि*

जाते थे। वैदिक साहित्य में 'कास' शब्द कृषि की अपेक्षा प्रयुक्त होता था। हल के बेल 'हलक या सैरिक' नाम से प्रसिद्ध था। बहु अन्तर तरारियों के बेलों से किया गया था।

१—इंडिया एज नीम दू पाब्लि, पृ० १६५, २४।

२—हर्ष सां पृ० १५५, १७६।

'नग्यमान मुरि बिल लेन अंशतकम्'

१—तुलसी, नीता, भाग० ६३, 'जेत के से पीछे हैं'।

'पाही तेत जपनबट, अज मुग्धाव या जेत। बर बड़ लों पालने, किए पाब दूज हत ॥'

'दुप किसान तर-वेद निजमते जेत सब सीध। तुमसे कृषिसिद्धि जानिबी जलप, नदयन नीध ॥'

बीहा, ४७८,

'कृते न करे जेत जदपि मुया वरपहि जगज ॥' ४८५

४—भा सा, पृ० १०, ११।

५—यं छ टी ४८८। १ 'रत्न साव तैहि तीस कठोरी ४१६। ४ 'धीर बाब नय सोनू बिलेखे', ३३४। १ 'रत्न वरारव नय को बधाने'॥

६—इंडिया एज नीम दू पाब्लि पृ० २३१ धान में काम करने वालों को कात्यायन ने 'कास' कहा है। काण्डा में 'मणि प्रसार' का उल्लेख है। कात्यायनी में नगों के लिए 'मणि' शब्द आया है।

[illegible]

२ ५—अपूर्वक वल्लभों के
प्रमुख नाम निम्नलिखित हैं—
हीरा, हीर (४६२ १६९
३ का ऊपर वल्लभ रूप

[illegible][illegible]

१-नगरमों के नाम यह है
मुकराम और जीनम ।

२-य से डी १ भा१ 'बलन लोक न
हार्दी। हीरा विविहि लो लेहि परिप्राही।
'यत्न पवारण मानिक मोली'।

—य सं खे १ ७११ 'बनन
रही । हीरा बिबहि तो तैहि पटिपट्टा।
१—१ ७१२ 'रत्न बहारन मानिक मोली'।

कृष्ण के मुखर लहूँ बरिंकी की धामा मोती की धार बिसाही भी प्रबटति हँसत कुटुमि म्मु
शोषक दयकि दुरे वन घोरी री' (७५५) । लम्बा मोती समुद्र मे निकामा बाठा है तथा
बितना बड़ा हो उठता ही मूस्य अधिक होता है । प्राचीन काल से ही भारतीयों को मोती
विशेष प्रिय रहा है । राजकम इनकी अनुकृति रासायनिक डंकी से भी बनाई जाने लगी है ।
हंस द्वारा मोती चुपने की कवि प्रसिद्धि भी है—'जल तजि हंस चुपै मुक्ताहत (१०५८)
अथवा 'मुक्ति-मुक्ता झलगिये फल तहो चुनि चुनि जाहि (११८) ।

मानिक^१ (११५) [सं माक्षिक्यं ज्ञान पदराय] वा साहस (१२६) बैसा कि
नाम से ही स्पष्ट है ज्ञान रंग का परवर होता है किन्तु इसमें कई बल भी होते हैं । इन सभी
बलों के नाम विद्येय रूप से मुने के बरतों में मिलते हैं—हीरा-ज्ञान-प्रबामनि पंचति बहू मनि
पचित पचावनी (१५५) अथवा अरुण रौ मानिक चुनी धामी बीच हीरा तरंग' (१५५१)
अथवा 'मनि ज्ञान मानिक कटित मंभरा (१५५८) तथा ज्ञान हीरा साह' (१५५६) ।
माक्षिक्य तथा हीराक का ज्ञान काज भी मोनों को परबधिक दिय है—'जहि हीरा बिज
ज्ञान प्रबाल' (७२) बहुरे रंग के ज्ञान का ही संस्कृत नाम पदराय था ।

२१ मरकत^२ (१११०) [सं मरकतं] हिजोई के डंडे से मरकत कहा था—
बाड़ी लखो पवि पावि मरकतमय सुपति सुधर । राख बखन ये कृष्ण तथा मोपिनों के शरीर
की आधा मरकत का सम्यक कर रही थी—'बिच भी स्वाभ नारि बिच गौरी कलक बज मरकत
कवि होरी । (११५०) । श्रेष्ठियों का कथन बसा तथा कृष्ण का रूप ऐसा था 'मानी पत्र
मुक्ता मरकत पर सोमैत सुमन सोबरे पाठ । (७७७) इस इरित बल के परवर की आजकल
ममिकटर बना कहा जाता है । कृष्ण कविमयी विवाह वर्णन में पाना (४८०४) छत्र भी
प्रयुक्त हुआ है—'मुकुट कुंडल पाठि हीरा ज्ञान सोभा धनि कनी । पद्मा पिरोबा लखे बिच-बिच
बहुं निनि मटकट लनी । हाथ पटुंको हीरा के नम करित मुरदो भावई ।' (४८०४) ।
मुक्तमान इसे 'जमुरर भी कहते हैं । धार्मिक-मरकतों में यही लक्ष्य मिलता है ।

विद्रुम, प्रबाल (७१८, ७०२) [म विद्रुम प्रबाल] अथवा भौगा (१२१५)
(सं मुद्रव] छोटे बरतों की मृगा वहनाने की जवा भी तथा अन्य प्रसंगों में यह पर्यायवाची
नाम प्रयुक्त हुए हैं—'मुक्ता-विद्रुम-जीव-गीत मनि सम्यक मटकन भाल री' (७५८) तथा
हीरा ज्ञान प्रबामनि पंचति (१५५) । बीजानी का बीज कहा से बनाया गया था यह
पोनिनि के बीज पुराव बिच बिच ज्ञान प्रबालिका । (१४९७)^३ 'विद्रुम अथर का जमान
भी है—'अथर विद्रुम बखकन दाहिम किचो बसगावली (४८१) अथवा 'मनि-मनि बाडो

१—इंडिया एज नीज दू पाठिनि, पृ १३१ 'लोहितरा (म निग्ग) तथा 'मरकत'
(पका) की मिलती मरिचों में की गई है । इनका 'मर्यगाद' में भी जल्मेय
है । 'मैद्रुम' (Calis ag.) की लालें 'मानभाम' पर्यंत पर अधिक थी । 'विद्रुम'
में लाले लाले के कारण इनका यह नाम बड़ गया था । अमरकोष २।१।६२ ।
'मोलराले लोहितर' पदराय' ।

२—सं टी० टी० ४४०१६ 'जंजन करी रतन नम बना । कहाँ नवारव लहि न बना ।

३—अमरकोष २।१।६२ 'मरकतं मरकतं मरकतं मरकतं मरकतं' ।

४—सं टी ४८११७, कलक धगुदी यो नम करी'

५—सं टी० १४५१४ 'रतन बीज वृष्ट तैहि मीत ।

रवि दान की तीन-मग्न में योपियों के गले का पोत की मासा के दूटने का वर्धन धारण स्वामासिक है। इस वर्ग की सिक्का प्रायः पोत की मासा पञ्चमती है। एक और तो सोने के रक्त-वर्धित धारणों का वर्धन है किन्तु साय ही पोत का उन्मेष स्वामासिकता का देता है। मासा हीपक वर्गों में कांच तथा कंचन के धामास्य का वर्धन है—

‘सुरास कंचन धातु कांचिह एकाह भवा विरोधी (४३) ‘रंभ कांच-सुत तागि मृद-मति कांचन राशि रंभाई’ (३२८) तथा योपियों की दृष्टि में ‘हिय कांच हंस काय लरि कपूर बैसो’ (४२७१) कृष्ण-मुक्ता धामास्य था।

प्रसिद्ध पौराणिक मणियों

२०६ प्रसिद्ध पौराणिक मणियों से संबंधित उल्लेखनीय उदाहरणों यह हैं—

१ चित्तामनि (६) [सं० चित्तामणि] ज्ञान करते ही धर्मविधि वस्तु देने वाला एक सिद्ध है—‘परम उदार, चतुर चित्तामनि कोटि कुबेर निचम को’ (६) २ कोस्तुममनी (४३६) चित्तु के हार पर लोहावमान मणि विरोध है। कनूद-यंत्र के कस्त-स्वरूप निकले हुए बौद्ध रत्नों में कोस्तुममणि भी था।

पातु

२१०—विन प्रसंगों में रत्नों से संबंधित उदाहरणों मिलती हैं वहाँ धातुओं की चर्चा भी है। धातु (३५१६) [सं० धातु] लज्जित पराध] लक्ष का उल्लेख है। इनमें प्रमुख स्वान सोने, कंचन, कनक हाटक धातु है। [सं० स्वयं सं] के (३४२ ३५८, ३५९, ३६१४ ३५९०) को उल्लेख दे दिया जा सकता है। राम-कृष्ण बभ्रुलक्ष पर सुवर्ण-दान की चर्चा है तथा माधुसूत नृपा एवं योवक के पात्र पालना तथा हिरोजा धारि लकी स्वयं-निर्मित बताए गए हैं—‘लौ हादिनि कंचन-मनि-मुक्ता’ (३५९) कनक-रत्न-मनि पालनो (३६००) ‘लकरी कनक कनक किङ्की किङ्की कलित कटि हाटक रत्न बरि’ (३६१, ३६७२) ‘कंचन-धार सुवर्ण रीवम’ (३५८४) कंचन पाठ मराठ के (३५८४) लवि लौ कंचन के बरि’ (३५८८) हाटक सहित उदाहरणों (३५८०) तथा ‘मुनि हिन पदुनी मय्य हीरा (३५९०)।

उनकी मनुष्टिया मुरली तथा चिबकारी तक सोने की रत्नवर्धित वर्धित हैं—

१—बीरह रत्न इस प्रकार हैं—सपत्त, रेशरत्त, कनकचक्र, कोस्तुममनि, धातु चक्रमा, कनूय केतु, कनकलरि रत्न, लक्ष्मी, वास्ती, विष, तथा सप्त।

२—इंडिया एक तीन दू वास्तिमि, वृ० २३१ कनूय धातुओं में ‘हिरण्य धातु’ ‘कनकचक्र (कोला) तथा ‘रत्न (चोरी) का उल्लेख है। इनके प्रकाश ‘धपल’ (लौहा) कांच चतु (तीन तथा ‘लोहिनायक’ (लोहा) नाम भी मिलते हैं। एक मल में ‘लोहा’ तथा ‘लोहा’ का जिक्र भी है। व्यापार की सामग्री में भी इन धातुओं तथा मलियों की चिन्ता की गई है।

३—कोटिपय में सोने के पाठ मेव किये हैं। इनमें ‘हाटक’ हरी नाम की धातु से निकलता था। इसमें एक आग्रहण भी है। कनौटी पर कलने पर हरी के रंभ का लुबल है तथा ‘लुबल’ नाम से जाना जाता था। (कोटिपय चर्चण, अधिपार १)

व्यापार, व्यवसाय कृषि ग्राम-प्रबन्ध नव बाहु तथा सिक्के

सीसी कृति गई। (३६१४)। सोना घम करने का उल्लेख भी है—बाबि मने श्रीमों
सी भी ठगुबाहु गई। (४ २२)।

कसौटी (४२३३) [सं कयवदिका]—‘नेह कसौटी सीत’—परीक्षा के साधारण
घम में भी प्रयुक्त होने लगा है। कंचन का पारस हाथ बंदे करने की चर्चा भी है—
बुकिबा पारस नहि जानत कंचन करत सरी। (२९)

पद्मावत में कसौटी पर सोना कसने बुभारस बनि (बाहुबानी) उत्तम सुवर्ण तथा
गुहाये का उल्लेख भी है। बाहुबानी सोने को बुंदन कनक भी कहा गया है। बुंदन के
घामरख घाम प्रतिष्ठ है। प्रकवर के समय में खरेपन के लिए ‘घाम’ उल्लेख बनता था। सबसे
सोने के बाब बाहुओं के निरिखत कम य रजत (३४४८) [सं] घबसा रूपे

(१४२) रूपे (३७१०) [सं कर्ण] का स्वात है। एक दिवस पर में मनुष्यों से ‘कर्म’
का सोम छोड़ देने का आग्रह किया गया है—निघब कर्म लोग छाड़िके (१४२)।
कंस-वच के बाब घाम में सी जाने वाली पावों का ठावे कर्म तथा सोने से सुसज्जित
होने का वर्णन भी है—‘ठावे कर्म सोने साज राखी है बवाई क’ (३७१) द्विदोने के
‘मस्त्र’ तथा ‘मयारि’ रजत-निघित से—रवि रजत मस्त्र मयारि’ (३४४८)। घामकन

घौर पादा मिला देने पर पारे के कर्म प्रलय नहीं रहते। ऐतावारा ‘कम्पुली’
कहमाता है। रंघक पारे को कासेवी है। प्रकक, पारस तथा रंघक को एकत्र
करके तिमुर बनाने का यहाँ उल्लेख है। इस घास के अनुसार पादा
हस्तात तथा संख्या घाम में डालने से वज्र बाते हैं किन्तु बन्धक पारे को बज्र
कर मिला है। इनमें मिलकर हस्तात भी प्रभि को छू जाती है।
पादा में बारा नैपाल लोग जपान तथा स्पेन से भी आता है।

१—घ सं टी, १ १० ‘कंचन रज कसौटी कसी कनक बुभारस बानी’, १७॥१५ ‘बाहू
बहु लोहाय बहु लाय, १३॥४ ‘कनक सुवर्ण बुभारस बानी’, १७॥१५ ‘बाहू
छोवहि मिला लोहायु।’

२—इकिया एव लोग दु पाछिनि—पृ २७१, २७२ सिक्कों को निष्पातिका से चिह्नित
करने या ‘छपा’ लगाने के अर्थ में ‘कर्म’ शब्द छष्टाध्यायी में प्रयुक्त हुआ है।
इन सिक्कों पर एक बार का अनेक बार विभिन्न छापें बनाई जाती थीं। ‘कर्म’
प्रयत्न या ‘आहत’ के अर्थ में आता था। ‘अपणित’ अथवा ‘आहत’ दिए बिना
सिक्के नहीं माने जा सकते थे।

३—अर्चना में बारी के बार भेद बताए गए हैं—सुबोदहन (सुत्त पर्वत से प्राप्त
भौतिक (पौड़ पैदा की), कामुक (कहु पर्वत की), जाटबालिक (जाटबाल
पर्वत से प्राप्त)।

बैराग पर्वतों में सोना, चांदी, तांबा, रंगी, लौहा, सीसा तथा जस्ता सख बाहु
जानी गई हैं। बादा रस हुआ है। घाबाहु में ‘बादा’ भी गिना जाता है।
‘स्वर्ण’ कर्म तांबा अथवा घाबरमेर व। बाईस लौह रमरमेरि बागबोष्टी
प्रचोसिता। प्राप्तिना निघारों के लिए अष्टपायु का उपयोग होता था। रंघक
इंद्र प्रकक हस्तात सुराया डिक्करी नेक बाबि उपरसों में है।

इस एक नम सत शमिनि को साव टका री स्याई' (२५६) ।

मुक्ता-माल इतना बहुमुख्य था अतः उनकी पुत्री पर अतिशय होना उचित ही था । यह साजकन के पैसों के बराबर का पुराना सिक्का था । कपट सिक्का खोटा कहा जाता है—'हरि को नाम' धाम छोटे की 'झुंझ-झुंझ' करि बनी । (१४) ।

(४) कौड़ी (११३३) [सं कपट कपटिका] बचिराम प्रसंग में कृष्ण भोपियों से कहते हैं—'अब तुमको मैं जान न रीहूँ । बाग सेरें कौड़ी छोड़ी करि, वीर धायगो रीहूँ । धपका 'सुरदास स्वामी बिनु गोकुल कौड़ी हू न सई' (३७६८) । कौड़ी मुख्यहीन होने का भाव व्यक्त करती है ।

(५) दमरी^१ (१८६ १४१) धनमों तथा धपराकों की सूची वाले विनय पद में एक रूप्य का चित्र खींचा गया है—'लपट बूत पूत दमरी को कौड़ी-कौड़ी जोरि' (१८६) । 'कौड़ी-कौड़ी बोझना' मुहावरत बोझा-बोझा करके बहुत सा धन एकट्ट कराने का चोटक है ।

(६) मोक्ष (३५१६) [सं मूष्य] हिंदोमें में भूलने के लिए राजा तथा भोपिया बलबामरकों से धर्महठ हो एकत्रित हुई । उनके बरत मेंहगे (३५१६) से—'पहिरि विविध पद भोक्तनि मेंहगा । (३५१६) ।

पद्मावत में 'विनार सिक्के का भी उल्लेख है ।^२ धार्मिक-धकवरी में बीनार सोने की मुद्रा बनाई गई है । धन्य स्वयं मुद्राएँ भी धकवर के समय में प्रचलित थीं जैसे सर्वसा खस रवाही मोहर मानि करीब छप्पीस थीं ।^३ सुरदासर में इनका उल्लेख नहीं हुआ है ।

१—धार्मिक ध० ५८ दमरी नाम का धाठवाँ नाय था । 'अपेला' धाम का धाया तथा 'पावला' भीलाई नाय है ।

२—य सं टी० ४—११, 'साव विनार देवाई बेंबा' ।

३—धार्मिक ध० ५ ४६ ३६ ।

संद—५

राजदरबार, शासन-व्यवस्था तथा युद्ध

१—राजा, राज दरवार तथा महल

२१३—मुरसगर म राजदरबार, सामन तथा मुद्रा धारि की सातक सम्भावनी वनेष्ट मात्रा म मिली है। ये शब्द मरम-स्वर्ण तक की कमाओं तथा वरम-स्वर्ण-उत्तरार्ध के पदों में अधिकृत रूप में प्रयुक्त हुए हैं। विलय पदों में राजदरबार-संबंधी कुछ रूपक पूरे-पूरे पदों में मिल पाते हैं। इन शब्दों के धारिण को हटि से कुछ पदों (४ १४५, २२ १ ११८७, १६३१ ४८८५) पर ध्यान देना आवश्यक है।

राजा, राजदरबार तथा उनके मरम और सामन-व्यवस्था की मुख्य सम्भावनी निम्नलिखित हैं—

रूप रूपति (२५ ३४१, ३४२) [च] राजा (१४४ ४१९ ८१६ ४२५६) [च] महाराज (४) [च] राज, राज राज (३४८ १४५ ३७१४) [च० राजा-राज-राज], महीपति (२६१३) [च], मुबारक मुबारक (१२२) [च] मुबारक, रूपति (२४८) [च] मरम मुस्तान (१४५) [म] ही राज्य का उच्चतम अधिकारी होता था। कुछ विषय पदों में तथा मरम स्फुट प्रसंगों में पदार्थ के मरमदार रूप से वृष्टि व धारिण्यक बोधित किए गए हैं—‘मरम प्रलय राज कसो के धीनि मरम पर मरम’ (३७१४) जब कि कवि स्वयं सब पदितों का राजा है—‘हरि ही सब पदितों की राजा’ मरम हरि ही सब पदितों की राज (१४५)। इस हटि से उसकी नाई बरामदी नहीं कर सता—‘बो करि सके बरामदि येरी सा भी मोहि बराज’ (१४५)। राजाओं के ऊपर मुस्तान बलिष्ठ है—‘और है धारकल क राजा, मैं तिनमें मुस्तान’ (१४५)। मुस्तान राज्य-मरम में हिगुस्तान का समस्त ‘धार्मिक’ [का] कहलाता था। बहु राजधानी दिल्ली या आगरे म रहता हुआ राज्याधीन साक्षकों पर नियंत्रण रखता था। मुस्तान राजा हो प्रायः मुस्तान कहलाते थे।

प्रोपरी-और-दरबार प्रसंग में दुर्बोधन की राजा का विवरण कई पदों में है, जहाँ मनेक रूप और रूपति बँटे हुए थे—‘बैठी राजा सबस रूपति की’ (२४८) मरम ‘परे बरम मा रूपति-समा वे। (२५)। रूपति का मरम तथा दारकालुके के राजा होने का वरम भी कई पदों में है—‘राजा मरम विहार ठाकुर मरम मुक्ति पदरानी’ (४२५६)। मरम ‘कई वे धार्मिक के ठाकुर कही कंस की राजा’ (४२५१)। यही ठाकुर [च] धार्मिक प्रतिष्ठामुचक है, धार्मिक नहीं। पद २२ १ में राजा से मुस्तान रूप दीया गया है।

१—ईशिया शब्द गीत टु बालिनि, १ ३६८—४०७, ४११, ‘तय’ राज्य के प्रतिष्ठान ‘राज्य’ से प्राप्त प्रवेश ‘राज्य’ कहलाता था। धार्मिकों में राजा को उसके अधिकारों के कारण ‘ईश्वर’ भी कहा गया है। धार्मिक संस्कृत साहित्य में ‘ईश्वर’ राजा का मुख्य शब्द है मरम का नहीं। मरम में ‘राजा’ तथा ‘ईश्वर’ समानार्थी शब्द हैं। ‘ईश्वर’ से मुक्त वह ‘ईश्वरी’ नाम से जाना जाता था। ‘ईश्वर’ से ‘ईश्वरी’ पदार्थ के अनुसार ‘ईश्वरी’ शब्द इस भाव का उचित भी है। बालिनि ने राजा का मरम नाम ‘रूपति’ तथा धारिण्य भी बताया है। ‘धारिण्य’ शब्द से कई राज्यों पर धारिण्य होने का बोध होता है। सम्राट् तथा ‘महाराज’ मरम उपाधि हैं। ये शब्द राज्य को ‘सौराज्य’ कर्तुं से।

२—प से टी०, १३९११, ‘मरम समस्तान कि राजा मरम’।

राजा राज-द्वारा

[illegible][illegible][illegible][illegible]

जिन व्यक्तियों पर राजा का शासन होता था वही प्रजा (२५) [४] नाम से जानी जाती थी। राजा की सफलता का माप उनकी युद्ध एवं समृद्धि ही थी। इतिहास में प्रसे राजा कुर्बान का धन्यवाद प्रजा को धनुर बना देता है—पर वह वा गुणवि धन्य व कृति प्रजा धनुरानी (२५)। जोक धन्य भी यहाँ इसी धर्म व धन्य है—निरमय देह राज-युद्ध काकी सोफ-मनन प्रसन्न। (४)।

राजा धन्यवा सन्न का रहने वाला नगर ही राजधानी (१४६, ४२१५) [४ राजधानी] होता था। सूरसमर में धाराप्य कृष्ण की राजधानी होने का येन शोक, कृष्णन का वज्र का बलिष्ठ है—

यव दिन बार वज्र शोक में लेवत धाद बहुरि राजधानी। (४२५५)
धन्यवा—यथा-मोह-मोम व शीघ्रै जानी व हृदावन राजधानी। (१४६)

तथा—‘यद्यपि रमणीक मधुपुत्री राजधानी मज की मुक्ति की थी। (४२८३)
संन-राज्यों में शासन केन्द्र की ही राजधानी करते हैं।

२१५—राजा राजधानी के कोट (५१३ ४०८४) [४ कोट] धन्यवा गद् गद्गै (१४४ ५२) [४ यद—बाई] वा दुर्ग (५१६) [४] में धन्यवा के निमित्त रहता था। यह की इच्छा राज्य-सक्ति की सुरक्ष की—सूर पार की यह इच्छा कीगद्गै मुहम्म साह किवार। (१४४) धन्यवा मरने मरी मरकरि मोरै, शीघ्रै रहत किवार (१४१)। नवम रक्ष में लंका के दुर्ग का बर्णन भी है—‘बहुं विवि संन गुं जन्म-वस कैरै पाई जल। (१६) धन्यवा ‘नंक यह माहि धारक्य पारय पवी बहुं विवि बस माये किवार (५५) तथा लोचन कहीं लंक यह मोरै’ (१६६)। यह को बायें मोर से धन्य बनने के लिए पानी की खाई (४५) [४ नालक] होयो की तथा धनुर द्वार हड लो होया ही वा साह हो उस पर गहरा भी होया था—‘नंक सा कोट हैरि जनि गारबहि धन्य धनुर सी खाई। (५११)। किसी भी दुर्ग में प्रवेश करना सरल नहीं था इस लक्ष्य पर कोट के पानी धनुररणी से प्रकाश पड़ता है।

धन्यवा-युद्ध में धारकापुत्री के कोट का बर्णन है—‘धारकापी कोट कंचन में रथी शरि मंडल (४०५४) तथा मुक्तिव बहुं धारिका बवाई। धन्यवा निचा लीर धन्य व कंचनकोट मोमपी खाई’ (४५५)।

राजा के निवासस्थान अथवा महि (५१६) [४ धन्यवा] के लिए मन्दिर (११६ १५२) [४] धन्य भी प्रयुक्त हुआ है। हनुमान का राजण के महान के निष्ठा बैठ कर विरत करने का चित्रण है—‘मंदिर की परछाया बैदवी कर मोये पछाया’ (५१६) धन्यवा समय धनोचर मंदिर किरणी निहारि’ (५१६)। ‘मंदिर’ राज्य मुखर मनन का परिचायक भी है—(माई) माहु लो बणा बाज मंदिर मंदर के’ (६५१) धन्यवा ‘पहुं धन्य माह राजद्वारे पर, नहुं नहि मन्दवापी। इन पत्र चित्र मंदी मंदिर में हरि की बरमन है—‘हर्ष ता व, व १२७, बाण ने ज्ञानावसत रक्षकगुण के ‘मंदिर’ का उत्प्रेक्ष किया है।

५० सं टी, १६४४, ‘कनक मणिन नग कीगद्गै मराम’
१६४४ निग दिन बाजहि मंदिर गुण
१६४१ ‘जहाँ मंदिर पद्मावति केरा’

लगी। (४०५५)
 क्या—सुझाया मीरि देहि इन्दी।
 इन्दी इन्दी मेरी ठगक देवदा, को गुर बाजि छारो (४०५६)।
 यह छन्द घर के धर्म में भी पाया है—या लाली मीरि वन भरी। (४०५७) या
 कन 'मीरि' साधारणतया हैरतान को ही कहा जाता है। यादे के स्वका में मीरि इस धर्म में
 भी प्रयुक्त हुआ है—'कनिमि देवी मीरि बाई'। दूध-बीन-गुन-सायरी प्रती संन सब स्थानों
 धनका 'पाद' प्रभाव 'मिरिका मीरि' (४०५८)।
 अन्य छन्द मन्त्रन (४०५९)। [सं] उका मरुल मरुहानि (४०६०) अ-
 नुसलान-मन्त्रन भी वर्तमान-मन्त्रन की वर्तमान-मन्त्रन को वर्तमान भी है—
 मन्त्रन 'पाद' प्रभाव 'मिरिका मीरि' (४०६१)।
 मन्त्रन मन्त्रन है। सुझाया मन्त्रन भी वर्तमान-मन्त्रन की वर्तमान-मन्त्रन को वर्तमान भी है—
 मन्त्रन 'पाद' प्रभाव 'मिरिका मीरि' (४०६२)।
 मन्त्रन मन्त्रन है। सुझाया मन्त्रन भी वर्तमान-मन्त्रन की वर्तमान-मन्त्रन को वर्तमान भी है—
 मन्त्रन 'पाद' प्रभाव 'मिरिका मीरि' (४०६३)।

[illegible][illegible][illegible]

२१६—समा राजसमा^१ (११ २५) [स] का परिचय प्रमाण रूप से शीघ्र ही कहा से मिलता है—बब गहि राजसमा में धानी त्रपव-मुता पटहीन करन की दुस्सामन घमिमानी (२५)। इस पद्यांश से राजसमा में विशेष नियमांशों के पालन की प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है—ये कहा जाने राजसमा की ये गुणन विप्रर्जन जुहारे। (१५८६)। मुरली के पलों में इन्द्र-समा की चर्चा है—इन्द्र-समा अधिक मई (१२६७)। अनरु नागों का किसी विशेष ध्येय को लेकर एक स्वयं पर एकत्रित होना ही 'समा' कही जा सकती है। साधारण समा का उल्लेख भी मुर में किया है—बबहुन फूमि सजा में बट्पी मुकनि तब दिखायो। टेढ़ी चाम पाल सिर टेढ़ी, टेढ़े-टेढ़े बयो (३१) यथा—'बटे नंद समा-मधि (१४८)।

समा के संघर्ष ही पारपद (६२) [सं पारपद] कहलते से—बब घन विजय पारपद बोह (६२)। राजसमा की मुसलमानी शासन में दरबार (३५२२) भी कहने लगे थे किन्तु यहाँ नंद-दरबार का ही निर्देश है—'राम रंग रंगि मधि रह्यो नंदराज-दरबार'।

राजसमा में राजा सिंहासन^२ (१४१) [सं] यथा पाठ (१४१) पर बटता था—'असा के सिंहासन बैठ्यो बंन-कन सिर तप्यो। (१४१) या 'पात बिचय ममता है मेरे माया की अधिकार। यथा—'इह विश्वास किबी सिंहासन तपर बटे भूप हरि-जस बिमल सज सिर ऊपर राजत परम भनुप। (४)। सिंहासन स्वातन्त्र्य-निमित्त तथा रक्षकत्व भी बताया गया है—'कनक सिंहासन बैठि है हरि होरी है (३५३२)। जायसी ने 'सिंहासन' (३५६१) के साथ 'पात' तथा 'भीरमि' शब्द भी प्रयुक्त किए हैं।

२१७—राजा क महल तथा उसके धरने में बहनों में से कुछ का नाम दिए गए हैं—
 द्वारपाज (१४१) [सं] प्रतिहार (१४४) [सं प्रतिहार] पौरिया (४) [सं पौरि] तथा झरोदार (४) [हिं छत्रोदार]। ये राजमहल यथा राजसमा के द्वार पर लगे हो कर

१—इंडिया एज मोन टु पार्लि, ३२६, ४३, पार्लि ने तीन प्रकार की 'परिवर' का उल्लेख किया है—सामाजिक, साहित्यिक तथा राजनैतिक। इनका सरल्य 'परिवर' यथा 'परिवर' कहलाता था। सामाजिक परिवर 'समाज' भी कहलाती थी। राजा की परिवर (परिवरवली राजा) 'परिवरवली' नाम से जानी जाती थी। साहित्य-साहित्य, सर्वसाधक तथा प्रतीक के लक्षणों में भी 'राजपरिवर' का उल्लेख है। कौटिल्य ने 'मणि परिवर' व्यवस्था है। राजसमा परिवर से निज की। वैदिक साहित्य में भी 'समा' शब्द का सर्व राजसमा एवं समा करने का कल है। 'समास्यायु' से लगे जाने कल का बोध होता है। भीरकाल के पद्यों 'काजसमा' (रक्तु की कल) का भी प्रचार था। लुटियस के अनुसार समा में भीमल तथा विद्वान् ही होते थे (समापाम् साधु समेय)।

२—य ल० टी, ४७११, राजसमा पुनि शीन बट्टा।

५३११, 'राजसमा सब भर्ते बट्टी'

३—पारि भ, ४३, यमुनकाज ने कहा समाओं का 'बकील' का नाम से प्रतीकित होने का जिक्र किया है।

४—राहुर्हा का जनबाया हुआ 'समनागत' एक प्रसिद्ध राज-निहासन का जो मोर के प्रकार का था।

५—य ल० टी, ४७१४ 'मणि स्यात बड सब बाटा।'

४८६१ 'साह भीरमि राजा के रहा'

रामा, राम-द्वार रामा महल

की उखा करने से—यस-यस दोठ रई दुबारे, धर्म-मोत मिर गार्ने । बुद्धि बिबक बिबिच
 रखा समय न कहई पाम । इनकी यात्रा के दिना कोई धरर प्रवेस नहीं वा सट्टा—
 मष्ट-मष्टमिष्टि गार्ने ठड़ी कर कोरे तर मोले । छोटार बैराम निमोरी म्प्टिकि बहिरे
 कोले भक्ता हापाल म्प्टकार (१४१) यववा—कोय रतन प्रमिहारी (१४४) । दरबार
 यववा बैर-प्रानी प्रमिहारी को सोष्टिया कहा गया है (२९६१४) । पदसाधन में 'छोटार
 समय बरो यववा रामप्रभनों में व्यक्तिगत सेवक' (१४१) [सं] यववा किं—
 है—'कुछरी-गुकि-सेवक जन कति न बिय गार्ने । (१२४) । मक्का सेवक म्प्टिकि को मिर हो बडा
 सब भोके वरों न निकटा है—बाली पुला प्रमल टहल-नीछ बहुत न छिन बियाय ।
 पनावार सेवक ली निमिके करत बवादिन काय । (१४१) टहल सब काय भी सेवा का
 भाव व्यक्त करता है । वस बाली के मिर मारी कस 'केट' वा केदिना वा ।
 ममलीत के कुचन-प्रसंग म भी भोके वरों में यवुर-मृप कंस को बाली दुखा के प्रति
 गोरिया के बिचार प्रकट किए गए हैं—'बाली रति क कीरनि के इहो जोग बिलारे',
 (४२१२) यववा—'बाली की दौरी जब बाली बहो ल्याय यवुरान' ।
 'बाली घर-वो (४२१४) । बाली की दौरी जब बाली बहो ल्याय यवुरान' ।
 'कति के वन है—नीली की दौरी जब बाली बहो ल्याय यवुरान' ।
 इनके परिचित लब्धाय (१४१-४२१४) [य यववा] की बाली का व्यक्तिगत
 सेवक होता था । बिना-यवो में तथा कई म्प्टिकि क ठगुर काँ बँस की दौरी । इन्प्टिकि की बीन बतल
 मोह के वा कई ने ब्याविक क ठगुर काँ बँस की दौरी । इन्प्टिकि की बीन बतल
 मंदर करत यववा (४२११) तथा कई म्प्टिकि क ठगुर काँ बँस की दौरी । इन्प्टिकि की बीन बतल

- १—मष्ट-मिष्टिया—बलिमा, बहिया, लविमा, गरिया, मालि प्रभाव्य, ईसव
 बलिमा ।
- २—जानि म्प्टिकि पु १, सचट की सववा करने के निवे कई कैबक से ।
 इनमें प्रवाल (मोवन करती वाला), झोरही (रत्नाई का सचटवारी प्रवाल),
 आदि ४०, पु १ २ राम्य बैरम की माली से संबंधित है । सिंहान यववा
 'जीन' भोके प्रवाल की म्प्टिकियों के बतले से तथा मोने बाँरी के रत्नमिष्टि होते थे ।
 होने से । 'बन (सच) माल से कम नहीं होते थे । वे भी रत्नमिष्टि होते थे ।
 इनके परिचित 'मालमा' यववा 'मालमा' (सच) माल से कम नहीं होते थे । सिंहान यववा
 तथा 'कीरका' (दरबार के लाले काले हुए) सचट का बैरम बहोले से । सचटो
 के माल में कम 'माल' (सच) माल से कम नहीं होते थे । सिंहान यववा
 में बँस के कम 'माल' (सच) माल से कम नहीं होते थे । सिंहान यववा
 बहोली की । 'माल' में हुए प्रवाल का एक सचट का बैरम होता था । सिंहान यववा
 —बलिमा, पु २२१, सचट का सिंहान यववा की तथा होरे बहोली का सचट
 वा तथा इनकी म्प्टिकि लीन करीब सचट तक जोड़ी जा गली थी ।

१४१ १४४ २३४ ५१६) [य कर्म] याभि, गभ, (१४४ १४१) पर बहना—बाभि
मनोरथ गर्भ मत गज भसत कुमल रत्न-सुत (१४१) तथा नीमव (१४१) दु-दुमि (४६८),
बाँड़ी (१७१) निसाल (१४४) [का निघान] याभि द्वार पर बजना मोर सूत (१४८) बँड़ी
(१४४) मागध (१४४) तथा नफीब (१४१) [य मनीब] याभि यद्य माने बालों की
मिनी की या सकती है।

इस सति-व्यवस्था-प्रकाशन की सामग्रियों का वर्णन विशेष रूप से कुछ विनय पत्रों में
ही मिलता है—यज महकार बह्वी दिय-विजयी, मोम-सज करी सीस। (१४४)। धम्य
प्रसंगों में कहीं कहीं छत्र के साथ चिकुर-कपी और खंवर (१८०१) [यं वामर] का
निर्देश भी है—बल्लि कर पीठि सीठि धर-छत्र-छाँहि। राजसि धति खंवर चिकुर मुरख सता
मोहि। (१२०१), धपका चिकुर और धपस मुका हरि होरी है। (१५३२) एक सेवक राजा
के सिर पर छत्र ठानता हुआ खंवर झुलता था। लंकामति रामचक छत्र का मुहर बणान है
'बरजय द्युत मत मन बहुत सिधि छत्र भुजा बहुत सीस। स्वेत छत्र फहरात सीस पर मनी
सन्धि की बंध। (५१६)। छत्र वारण करना राजत्व का सूचक था—कौन विभीषण रंक
निवाचन हरि होसि छत्र पर। (१५) धपका 'उपसेम सिर छत्र धर्यो (१६)।

छत्र के लिए काष्ठपत्र (१८४५) [छं] तथा वतमान काल का प्रचलित शब्द छाँटा
(२१) [यं छत्र] की प्रयुक्त हुए हैं—'भक्तपत्र मयूर बंदिका लघु है रवि ऐय मोर, छाँटा
तो छाँह किम सोमिह हरि छाँटी (२१)। धावकल छाँटी लख भी सोता जाटा है, किन्तु
'छाँटा तथा 'छत्री राजसी छत्र के सूचक नहीं हैं। राजाओं धपका विशिष्ट ध्वजियों के मार्ग
म रेखनी पौवड़े (१ ५) [छं पत्रपट्ट] विछाने की प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है—'पाटंबर
पवित्रे बसाए १।

राजद्वार पर बुझी बज्ज की प्रथा भी थी—'एठ धम्यस धपस, मुर निठ सीसत
हार बज्जत। (१४१) या निचा पर-मुल गुरि रहूमी बज यह निघान निठ बाजा। (१४४)
राम या कृष्ण की युद्ध में विजय-प्राप्ति पर वैवराहो द्वारा झूल-बपा बुझी बज्जला श्रुतियों
का प्राचीनर धारि प्राचीन धार्मिक मंत्र बलिष्ठ हैं—'मुरति धम्यस में पुष्टुप धरपा करि
धपका टिपल धामास जयधुनि तवारी' (४८७१) तथा 'मुरति धाम्यस बुन्दुमि
बज्जई (८८३६)।

प्रमद-नीठ प्रसंग क एक पद में गोपिनी कृष्ण की मुपति-गुमार का म भी धारर क्षेत्र
को तयार है—'फिरि बज्ज बाइने योगाल। मर-मुपति-गुमार कीहै, धप न कीहै धम्य।'
(१८५४)। इनो पद में राजकीय चिह्नों की गणना भी की है—'जैने मुरमी निघान 'मुपति

१—'दाईने ध ४ १८ पर लिखा है कि मयों न कारण यमिनों एव लघाद् के
सेवक मड़े-कड़े पत्रों से हवा करते थे।

२—'धं ता ध १, बाण ने कई स्थानों पर धप का वर्णन किया है। उक्त
समय इन पत्रों में धर्पकण्ड की छाड़नियों बाली घोस बिजार लगे रहते थी।
मुपल सुम से इस प्रकार की लजावट मिलने लगती है। गुप्तकाल में कपल की
बमुझी तथा मोर या गरुड के धर्पकण्ड भी धा गए थे। इनमें कोनियों की धाला
तथा रत्नों की लजावट होती थी।

३—मानस, बाण, १६८, 'धरत पौवड़े बसम धमुपा'

मपनी-मपनी रीति। पुत्रिणा-पुत्र रहै निजि-नासर उपजावत विपरीति' (१४१)। तथा 'मनी काम कुमति बीके की' (१४४)। मन्त्री को समाह गुपति को कामन की व्यवस्था में बहुत सहायता देती है किन्तु कुमति से धर्म भी हो सकता है—'पाप समीर कहूँ सोर मन्त्री धर्म-गुणन मुटयो। नरणादेक की छाँड़ि सुपा-रस मुद्र-नाम धर्मयो' (१४)। मन्त्री के लिए प्राचीन सासन-व्यवस्था में 'सचिव' तथा 'धर्मप्रय' शब्द भी प्रचलित थे। कौटिल्य के अनुसार प्रमाण मन्त्री का ब्राह्मण होता आवश्यक था। सचिव राजा तथा ब्राह्मण मन्त्री की दीपुमाय काम से यथोक्त के समय तक प्रचलित प्रथा थी। कुछ प्रसिद्ध राजाओं के समान मन्त्रियों के नाम भी इतिहास-प्रसिद्ध हैं जैसे बर्षकार (धर्मप्रय के) श्रीकृष्णराज (चरण के) नमस्कृत्य (चरण के) तथा राजपुत्र (यथोक्त के)। दूसरा प्रमुख कर्मचारी सेनापति (१४२) [च सेनापति], जूयपति (५५२) [च जूयपति] तथा फौजपति (१६२२) [च फौज + न पति] था। सेनापति का पद धार्मिक महत्वपूर्ण था।

कुलवस्त (१५) [च कोटपालः] नगर की शांति का रक्षक होता है। यदि वह अपने कर्तव्य का पालन न करे तो वह स्वयं ही नगरिकों के मध्य एवं यथापि का कारण हो सकता है—'वपान्नाम कुलवस्त काम रिपु सखस छुटि लयो।' (१५) काजी^२ (२१५५ २०७४) [च काजी] का कार्य व्याप करना था। नेत्र धीर्षक पत्रों में एक स्थल पर उल्लेख है—'इसलैं तुम पखीलि बड़ावत ये हैं अपने काजी। स्वारथ मानि केठ रति करि के, सोलठ ही की हौं की।' (१०७५)। मुसलमान राज्य में काजी व्यापारियों को ही नहते थे जो मुसलमानी धर्मनुसार व्याप्य करता था। वह पर चरन व ही सम्मान तथा उत्तरदायित्व का समझा गया है। श्रीकृष्ण या फौजी की सेवा को सुखी (विनय पर) कहा गया है। अन्य राजों का उल्लेख चोरो, टयो भादि के विनयिते में किया गया है^३। राज्य-संघ में सम्मिलित धर्म वनधारियों में कामीन [च] अमल [च = कर्मचारी वर्ग] (१४) अहली (१५) [च] मुस्तौफी (१४१) [च मुस्तौफी = हक मुनीय हक एकाउण्ट] तथा मोहरिस (१४१) [चमनवत च मुहरिर = मुंठी, वसक] भादि उल्लेखनीय शब्द हैं। इनमें से कुछ का तो नाम-व्यवस्था में जो उल्लेख किया जा चुका है। विनय पत्रों के रूपकों

१—इंडिया एन्ड मोन डू पाणिनि, पृ ४ १ ४ २, ४०४—कौटिल्य के अनुसार राजा के बार रामचंभी, फिर रामपुरोहित, उसके बाद सेनापति होता था। इनके बाद पुनराज का स्थान था।

२—भाईने च, पृ ६, अनुसूचक के अनुसार मन्त्री व्याप करता था तथा भीर धर्मल मन्त्री का हुक्म होता था।

३—इंडिया एन्ड मोन डू पाणिनि, पृ ४१९ पाणिनि ने 'व्याप' तथा 'धर्म' का उल्लेख किया है। धर्मपति अनुसूचक का रक्षक था। इसी विनयिते में 'वरिचारी' या 'वरिचारी' 'ताली', 'तारय करोति' भादि शब्दों का उल्लेख भी किया जा सकता है। धारोक्त तथा धार्मिक दोनों प्रकार के बह होने की प्रथा थी। देह (धर्म-देह) तथा 'धर्म-देह' का भी उल्लेख है। यह शब्द प्रायः धर्म-वर्ग के धर्म में प्रयुक्त था।

एव तथा पश्य ।^१ अतएव इच्छा अनुरागिनी (१६४१) [स० अनुरागिणी] नाम पद्म 'विरूपा' है अति धीर मन्मथ से अनुरागिनी सेना मान । परजत अति नभीर गिरा मनु, मयगल मत्त मवार । पुरवा ब्रूरि सङ्गत रथ-पायक, धोरनि श्री कुरतार । (१६३१) प्रथमा 'सली' री पावस सेन पनाम्नो—मनो जसत अनुराग यमू नम बाझी है कुरखेह । (१६२१) ।

युद्ध के सभी प्रसंगों में प्रायः इन चारों नामों का वर्णन है । पायक पियावा^२ (१४१ १५४५ ३६३१) [य पावाल् पावात्कि] पैदस सिपयिहों का बोधक था—'सकस जय मृग पक पसक' (३८४५) । पैदस बनने वाले राही को भी पियावा (२७०) कहा गया है । कन वर्ममनी सीता के समय में इच्छा निर्दोष हुआ है—वह बर डार छांड़ि कै सुंवरि जमी पियादे पाठ' (४५८) । अनुबारी मेनिकों को जानक प्रथमा बार्निठ (१४१ १८४५) कहा जाता था—हुमलत-कन-कुमुम दानक' (१८४५) । एव हावी तथा घोड़े के सेना में होने का प्रथम बार स्पष्ट विवरण है—'बाजि मनारक धर्ष' मत्त यत्र घसल-कुम्पल एव-मु । पयक मन बनेत मपीरज सदा दुष्-मति दूत' । (१४१) ।

घोड़े पर सवार सैनिकों को^३ असवार (१११०) का सवार^४ कहा जाता था । बड़ी होसी-प्रसंग में गधे पर सवार होने का उक्ति है किन्तु 'सवार होने' के साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—रते कबक बरस सजि हरि होये है । कर्ण भवे असवार, घहो हरि होये है । (१५३२) । सैनिकों के मुख्य भी कई पद्वि मिल जाते हैं—वैसे सुमट भट महामत्त' (१४४ १६०१ ४०६६ ४२१६) [सं ७ जोषा (१६२१) [सं जोष] तथा सूरमा (१६११) [सं सूर]—'मास पाठ करत म' हादुर पहिरे निशिप सनाइ, उठरि उठरि वै परत घानि कै बोका परत बसछा' तथा रज्जी घईका सुखेत सूरमा सफि छी उर साति (१६३१) । इनमें 'सुमट' शब्द सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है—'तुम्हा वैस 'ह सुमट मनोरथ (१४४) 'रम ते उठरि चट

१—ईडिया एम मोन दू पालिनि, पृ ४१६, ४२, पालिनि के समय में भी सेना के चार भेद होते थे । इनको सेनाओं कहते थे । 'रबिकादर रोहम्' (एव तथा सवार) 'रबिकावावातम्' (एव तथा वैदल) । 'पदाति' (वैदल सिपाही) तथा सावि' (सवार सिपाही) प्रबलित छात्र थे । पालिनि ने 'उदु-सावि' तथा 'उदु-व मि' का भी उल्लेख किया है । सवारों का सेनापति 'अश-पति' के नाम से जाना जाता था । बड़ी पुरो सेना का 'सेनापति' भी होता था । सिपाही को 'वैदिक' अथवा सैन्य कहते थे । 'प्रहुरल' (घातों) के अनुसार इनके नाम थे जैसे—'पालिक' (सलवार वाला) 'प्रासक' (माले वाला) 'पादुक' (घुड़वाला) आदि । हर्ष ला० अ पृ ४३ —हर्ष के समय में भी हर्षग्यार में अंठ थे, किन्तु इनमें प्रायः डाक का काम लिया जाता था ।

२—ईडिया एम मोन दू पालिनि, पृ १३१ अठ्ठाध्यायी में एव का विलून वर्णन है । युद्ध के समय एव के दोनों ओर चौड़न वाले वैदल सिपाही (परिस्फ) कहलाते थे ।

३—हर्ष ला० अ पृ ९ हर्षवर्षित में भी प्राची जलनी हुई पराति सेना तथा बीजे आचारोही या आरकवृत्त का वर्णन है । वपीच के वर्णन में हर्षकासीन लगभग सेनानायक का बिज मिलता है ।

४—ब० ला० टी, २१२।६, 'हुद वैरी बहूने अगवारा'

[illegible][illegible]

पहला प्रत्यक्ष बा. २२३
इसी प्रकार लोहे की कड़ियों से
पर 'कलर' कहलाता था। इन्हें पारो का। मुह
था। यह लोहे का बड़ा तका वा होता था। लोहों के बने
ही है—'बहुत सारा मगर बर के लोहों में लोह होता था। का
कम बरि बरि बड़ी लोहमिहि पारो (१५२२)। लोहों के बने
भी मिले हुए हैं—'दूरे कमर (१५२३)। मुह लोह में लोह होने को लोह होता था। का
पिक कलर बाकि बरि कलर। (१५२४)। मुह लोह में लोह होने को लोह होता था। का
१५२५) कलर है। मुह लोह के लोह में लोह होने को लोह होता था। का
१५२६) कलर है। मुह लोह के लोह में लोह होने को लोह होता था। का

ही है—
 कबल राज बरने
 भी निरर्थक हुआ है—हूँ कभी
 निक कल भाति बलि बाहु। (१६८)
 (१६९) कहते थे। दूध-लेब के जयों में धनकोर
 से होता था। दूध-लेब के जयों में धनकोर
 [सं] रत्नमूर्ति तथा दमोदर के यथा-
 निजम मित्रु, विष्णुन पीठि विराजते यथा-
 संघ बीच में भजो लखते हैं (१६८)। प्राणी कल के दूध-
 होते थे। दूध से जनों के जीवन पर कोई प्रभाव पड़े के लिए
 ६ घण्टे विद्यालय निरिक्त थे। दूध से भी प्रजा पाले के लिए
 यथा-पीठ विद्यालय निरिक्त थे। दूध से भी प्रजा पाले के लिए
 यथा-पीठ विद्यालय निरिक्त थे। दूध से भी प्रजा पाले के लिए

[illegible][illegible]

धाते की नोक चौपट हुई है। यह नाडी में लगा होता है और फेंक कर मारता है। नेत्रा पूरे लोहे का बना छोटा माला होता है। सोम मेखे से बड़ा होता है। छेद करछी की ही कहते हैं तथा सति धाते का प्राचीन नाम है जिसका पाणिनि ने भी उल्लेख किया है। त्रिसूल [ध विष्णु] धातु का धातुय माला था। शक्तिमयी दूरण धीर्पक पर्वों में भयंकर मुद्र का बलन कवि ने किया है—सोम की भवक चहुँ दिशि कपला चमक गज गरज सुनत विमल डराये या 'बान बरसा लने करण सारे' यथवा बान सौ बान सिमके निबारे' तथा लङ्ग से दाहि भयबान मारन बसे' (४८ १)। इसी प्रकार साम्ब-वध का विषय है—छारपी धोर बरछी बसाई' तथा सीस छाडी बहुरि कट करबार छी (४८३६)। इसी प्रकार के अन्य छन्दों में वेदा, बुनी लंकर, करोमी किर्न कृपाव तथा पोनी होते थे।^१

इन्हीं मुद्रों में गदा (४८३६ ४८४०) [ध] तथा मुसल (४८०१) [ध] का उल्लेख भी है—लैवि गदा ठा सोध मापी (४८३९) धक्का बहुरि से गदा परहार किया स्वप्न पर धक्का हँर गदा लण्ड गये प्रात ठके निरुधि' (४८४) धक्का राम दम मुसल संभारि पारुषी बहुरि' (४८०१)। मुसल लोहे का मापी डंका सा होता है। गदा क नीचे का भाग मोल गुंबद की तरह होता था। ये लोह के बनते थे तथा इनसे प्रायः शिर पर प्रहार किया जाता था। मुसल को मुरदर (५५८) [ध मुदुरार] भी कहते थे। सीस का प्रिय धातुय गदा था—'बास भी छह दिन बसा मुद्र किया' (२५९ २४४)। काम रिपु क दल बल्लुन में (४ ८५, ४८३३) दाह [का बाह्य], पक्षीठा [का पक्षीठ] तथा गोला [ध गोला] गोला [ध गोला] धाति धारों के ज्ञेय से मुसलमान बाल के ठोप [तु] धामक मये पल्ल पर भी प्रकाश पड़ता है। हिमवतल म दृष्ट के पक्षा में इनका स्थान नहीं था। सिक्कर की सेना में कुछ ठोपें थीं। 'जसर कमान बारि बाक भरि लड़ि पक्षीठा गेल'। मरजन अब लड़न मनु गोला पहरक में गड़ सेत। (४८८३) द्वारा वर्षा का विषय हुआ है।

स्पष्ट ही है कि महाभारतमुद्र संक्रमुद्र धाति प्रारंभिक स्वरूपों में उल्लिखित मुद्र—प्रसंगों में प्रयुक्त शस्त्रों का नाम फिर ब्रह्मसंहार उत्तरार्ध में वल्लि रत्नमयी-दूरण भीमसुर-वर बाधामुर-वध पीडक मुद्र राम जराज्य धिनुपल वासर इत्येक धाति धनुषों के वर्षों के सिद्धि में मिलता है। वर्षा-वर्षन के कुछ पर्वों में ईश तथा कामरिपु की सेवा का वर्णन भी

१—इ जो म १३, धर्म्याय १४ बाहु एक विशेष प्रकार की तपवार की त्रिजे धातु की 'भुजाती' कह सकते हैं। बराहमिहिर ने उत्तम तपवार की संभाई पञ्चात प्रकृत कही है। 'ऊन' उससे प्राची लबाई की होती थी। वस्तुतः छुरी, बटारी, करौली, भुजाती सब तोल धनुष के साथ से काम होते थे। तलवार का एक नाम 'निर्मलज' भी था। धरता के जिहों में बाहु का धक्का है।

२—मुलनी, बोहा, ३१५ 'बाल तोपची तुपक धाति, बाक धमध कराल।
बाप पक्षीठा कटिग मुद्र, गोला बुहुमीपाल ॥

बोहा, ५१६, 'गोली बान लुमय लर, लमुधि उत्ति धन देति।'

५ ल० व्या, ५०६।१, 'बनो कपार्ने जिन मुल गोला'

'निगु पर विषय कपार्ने धरि। पात्रहि धाटपागु की बरी'

नी नी मन रिपहि बै बाज। हेरहि बहा, लो दूट चहास।

५०७।८ 'सिलक पलोत, तुपक मय'

भाने को नोक नीचहूँ होती है। यह लाठी में सया हुआ है और फेंक कर मारते हैं। मेजा पूरे लोहे का बना छोटा माम्मा होता है। सींग मर्के से बड़ा होता है। सेह बरसी को ही कहते हैं तथा सक्ति भाने का प्राचीन नाम है जिसका वाणिज्य ने भी उत्सेह किया है। त्रिसुल [स० भिषुम] छिन्न का वायुय माना गया है। खिमसी हुरण सीपक पर्वों में धरंकर युद्ध का बल्लम कवि ने किया है—सांग की अलङ्कार वही विधि करसा चयक गज परम सुमन दिगम्बर डराये या बाज बरसा लगे करन सारे' अथवा 'बाल की बाज तिनके निवारै' तथा 'अङ्गय से ठाहि ब्रह्मबाल मारन जमे' (४८ १)। इसी प्रकार सल्ल-वज्र का विवरण है—छाटवी घोर बरसी जलाई, तथा 'सौल छाकी बहुरि कष्ट करबार सी' (४८३६)। इसी प्रकार के अन्य छन्दों में सेमा, पुनी पंजर, करोली किर्च कृपाय तथा पीनी होते हैं।^१

इसी युद्ध में गवा (४८३६ ४८४) [सं तथा मुसल (४८०१) [सं] का उल्लेख भी है—'बोधि गवा ठा सोल मारो' (४८३९) अथवा बहुरि से गवा वज्रार क्रियो स्वाम पर' अथवा 'हुरि गवा बयल गये प्राल ठाके निकसि' (४८४) अथवा 'राम लल मुसल संवारि चारवी बहुरि' (४८०१)। मुसल लोहे का घाटी बंधा सा होता है। गवा क नीचे का मय्य पोक लुबक की तरह होता था। ये लोह के बनते थे तथा इनसे प्रम्य सिंग पर प्रहार किया जाता था। मुसल को मुहुर (५४८) [सं मुहुरार] भी कहते थे। भीम का प्रिय वायुय गवा था—'बोध भी सत दिन गवा बुद्ध किया' (२५९, २६५)। काय रिपु के दम बल्लम में (४८८५, ४८८६) दारु [आ बाकह], पक्षीता [आ बलीव] तथा गोला [सं पोक बोला] आदि धर्मों के लिये ये युसलमन काम क ठावें [गु] नामक लगे धल पर भी प्रकाश पड़ता है। हिन्दूकाल में बुद्ध के धर्मों में इनका स्थान नहीं था। सिक्खर की सेमा में कुछ ठोपें थीं। 'बल्लम कमान बाहि दारु धरि तकिष्ठ पनीठा बैठ। परजन धर तहान यनु पांठा पहुरक मं मङ्ग जेत।' (४८८६) द्वारा वर्षा का विवरण हुआ है।

स्पष्ट हा है कि महाभारतयुद्ध लंकामुद्ध आदि प्रारंभिक स्कन्दों में उल्लिखित युद्ध—प्रसंगों में प्रयुक्त धम्मा क नाम फिर ब्रह्मसंन्य वज्रारमें में वलिष्ठ कनिषधी-हुरम मोममुर-वज्र वानमुर-वज्र वायुय मुह लल वज्रारमें, विनुवाय बल्लम इतक आदि धनुषा के वर्षों के चित्तित्त में मिलते हैं। वर्षा-वर्जन के युद्ध परी में ईह तथा कामरिपु की मेजा का वर्णन भी

१—क० धी प्र० १३, अध्याय १४ बाहु एक विशेष प्रकार की लकड़ार की त्रिजे घाज की 'हुमासी' कह लपते हैं। बराहमिहिर ने उत्तम लकड़ार की लंबाई पचास अंगुल बारी है। 'अन' उल्लेख घापी लकड़ी की होती थी। बल्लुत' छुरी, कटारी, करोली मुजाओ लल लोम धनुष के नाव से कम होते थे। ललवार का एक नाम 'निदिज्ज' भी था। अजरा के चिह्नों में बाहु का प्रकाश है।

२—मुसली, दोहा०, ५१५ 'काल लोपवी तुपक महि, बाक धमय कराल।

बाप बलीना कटिग लुप, पोला पुनीपाल ॥

दोहा, ५१६ 'बोली बाज लुपक लर, लपुकि उलटि लप हैति।

५० ल म्मा, ५ ५११, 'बनी कमाने त्रिम मुल पोला'

'निहू वर विजय कमान धरो। गारहि धयधनु की धरी'

नी ली लल निधि से दारु। हेरहि जहा, ली दूट धराक।

५००१८ 'लिलक पनीत, लुपक लम'

युद्ध तथा व्यवसाय

है। इनमें युद्ध का सर्वोपरि विचार हुआ है तथा उस समय की युद्ध प्रणाली पर प्रकाश डाला है। इनमें युद्ध का सर्वोपरि विचार हुआ है तथा उस समय की युद्ध प्रणाली पर प्रकाश डाला है। इनमें युद्ध का सर्वोपरि विचार हुआ है तथा उस समय की युद्ध प्रणाली पर प्रकाश डाला है।

[illegible][illegible][illegible][illegible][illegible]

१-श्रीवा, प्रयाग २२, लोक १०
श्रीवा प्रयाग के विष्णु के रूप-रत्न हैं।
का का लीन रत्न कीय जाता है।
प्रयाग समस्त स्थित हैं, लोक १०
प्रयागसमस्त स्थित हैं, लोक १०

[illegible]

१—पृष्ठ ३४ पंक्ति २

२२५—मुसवी की छायावाली में भी कोर्दंड 'बाग' 'निर्गम' 'सारंग' 'हाम' 'सरदारि', 'धरि' परम्पू 'कर्म' (बाल) 'बोला', 'गुपक' 'बाक' 'पत्तीठा', 'मोती' आदि शब्दों के नाम मिलते हैं। इनके प्रतिष्ठित सुम' 'करक' 'सनाह' 'कुम्माऊ डोम' आदि शब्द भी उल्लेखनीय हैं। ये शब्द मानस के अंकाकाण्ड में विशेष रूप से मिलते हैं (२१ १४ १७ ८१ ८८)।

बासवी ने भी पद्यावत के बाद चढ़ाई जग में कुछ का समीप वर्णन किया है (४६१।२ ४६६ ५०४ ५ ६ ५६४)। कण्ट का प्रवास या कुछ चोड़े हाथी पैरल तथा गरिमह (परिष्कृत-राजकी सामग्री तथा चंजर आदि) के उल्लेख भी हैं। इनके शब्दों 'टीर' 'कमान', 'हाम' 'गु' 'पोलन' 'कमान' (नोप) 'बाक' आदि के प्रतिष्ठित जेबा 'घोस' (कमल तथा सिरस्त्राण) और बैरक [गु० मंडा] आदि नाम भी उल्लिखित हैं। रत्नमय के सेनिकों का वर्णन असाहसिक के सेनिका से भिन्न है। यहाँ सम्मिलन ८ उद्भव शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं जैसे—'सनाहा' 'पहुँची'—'सनाहा' 'सुखलक्षण' ने 'दलबाना' शब्द प्रयुक्त किया है। 'टोला' आदि। सुरसागर की छायावली में मुसवी और जालवी की मध्यावली में कुछ ही नये शब्द हैं।

आदिने प्रकवटी से भी लक्ष्मीय प्रमुख शब्दों तथा उनके मूल्या पर प्रकाश पड़ता है। मुसकासीन सत्त्वशक्तों में मुर बगुल नामा के प्रतिष्ठित तथा करीमो रिश् 'छुटि' 'दिरपान' 'कटार', 'पीसी', 'गुली', 'चंजर' 'कुचारा' 'बन-गया' 'पंजा' तथा 'गुरक' [गु सुख्य= 'बलूक'] के।

इन कई छी बर्णों में यदि जीवन के टिमरी अंग में स्पष्ट परिवर्तन हुआ है तो यह है कुछ के मानुष तथा कुछ की विधि। मात्र बैरानिक आचार पर बने शब्दों का सामने मनुष्य संस्था की धरि तथा दूरी कोई अर्थ नहीं रहती है। वर्तमान आधिकार एम तथा हाइड्रोजन कम धैर्यपूर्ण वैज्ञानिक विज्ञान आदि ने ही साधारण लोग कम एक हवाई-जहाज बलूक पैरसुट पतङ्गशी आदि कुछ सामग्री तथा मन्त्रों की विधि तक को बहुत पीछे छोड़ दिया है। मात्र के कुछ में कुछ नवरी तो क्या पूरे संसार पर ही प्रभाव पड़ता है। एक कुछ अपने बाद बर्णों तक के लिए निर्धनता, अज्ञान, तथा अनेक अवसर रोम छोट कर पड़ा है।

खण्ड ६

सामाजिक संगठन, संस्कार तथा त्योहार

१—दर्शन-व्यवस्था तथा जातियाँ

२२९ भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता उसकी बर्तन व्यवस्था भी रही है। प्रमुख चार धर्मशास्त्रों में जगत् व्यवस्थाओं को तबनुसार चार भागों में बाँट दिया गया था—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र।^१ प्रारंभ में कर्म के अनुसार वर्ण निर्दिष्ट होता था किन्तु धीरे-धीरे समय के साथ इस संबंध में लचकता घाली गई तथा वर्ण से ही वर्ण की व्यवस्था होन लगी। प्रारंभ में उपाध-सुट भेद मात्र था कि बिहार समाज को धारण क्या प्राप्त हुए।^२ मुरदाभर प भी प्रमुख वर्णों का उत्प्रेषण है तथा ऊँच-नीच की भावना की धोर भी पीढ़े से स्वता में संकेत है। अपने समाज के इस प्रमुख धार की धोर कबि का ध्यान आता स्वाभाविक ही है।

विनय पर्वों में तथा अन्य कुछ सुकुट प्रसंगों में ब्राह्मण के कई पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख हुआ है—विप्र (८६३ ६४४ ४२४ ३१८६) [सं विप्र], द्विज (६५२ ५६५) [सं द्विज] तथा ब्राम्हण (५६७ ३७७) [सं ब्राम्हण]। इससे धार्मिक पंडित^३ (३५३२) [सं पंडित] तथा पांडे (८२६) भी ब्राह्मण के ही सूचक शब्द हैं। पंडित का साधारण अर्थ 'विद्वान्' का^४ किन्तु ब्राह्मण का कार्य शिक्षा से संबंधित होने के कारण दोनों शब्द एक दूसरे के पर्याय रूप में प्रयुक्त होने लगे। धार्मिक भी पंडित शब्द इन दोनों वर्णों का श्रोतक है। यज्ञोपवीत द्वारा ब्राह्मण का दूसरा वर्ण माना गया है और वह ब्राह्मण्य को प्राप्त होता है। यग उसका द्विज नाम पड़ा।

यज्ञोपा के प्रथम पहलू से एक पांडे व धार्मिक का प्रसंग है (५६९ ८७) —'महाराज स पांडे भावो (८६९)। इस प्रसंग में ब्राह्मण के विधायक शब्दों तथा उनका अर्थ मान्य बनाया

१—बर्तन, पृ ३६१ ३६५ भारतीय समाज के इन विभाजन का अनिवार्य ने उल्लेख किया है। उन्होंने वर्णियों के पुत्र विभाजन (संत कल जता तथा हार) का भी समाज की विशेषताओं में उल्लेख किया है।

२—मोरीज शीत इत्यादि पृ ३१ ९ अन्वेष में 'ब्राह्मण धार अर्थात् धर्म' प्रमाण पुरीहित के अर्थ में ही प्रयुक्त रूप से (संज्ञासिद्ध चार) प्रयुक्त हुआ है। वर्ण सूचक केवल पाठ चार ही पाया है और यग रचयिता के अर्थ में सबसे अधिक बार प्रयुक्त हुआ है। अन्वेष के अन्तिम भाग के पुन्य भाग में ही केवल चारों वर्णों का उल्लेख हुआ है। पुन्य (सृष्टि का रचयिता) के पुत्र से ब्राह्मण बहुत स राजस्य आदि से वर्ण, तथा पर्वों से शूद्रों के उत्पन्न होने का वर्णन है। पुराण-काल तक भेद भावना का पूर्ण विकास हो गया था। धीरे-धीरे धार्मिक व्यवस्थाओं का भी वर्णन होता गया तथा महाभाष्य काश (ई पृ ७ से ईसा पूर्व २५० तक) तथा पृथु मुक्त तथा इष्टि (१० ई) हैं। तब तक इस संबंध में निश्चित नियम भी बन गए थे।

३—ईशिका एक मोन दू पालिनि पृ ७६ 'ब्राह्मण' वैदिक शब्द है जिसका प्रयोग पालिनि ने भी किया है।

४—य सं टी, ३६।३ चतुर्ष्विध ब्रह्म पुराण। परम र्वं वर वरहि ब्रह्म।

५—य सं टी, ३६।४ 'महार्णवित हीरावनि काश'।

सहस्रों संघ कपूर। जैसे वचन बाँध करारों से काम सिर। मोहन साथ सूत्र बाधन के,
तरी उनको साव। (१७७)।

२२७ छंदी (४५७) [सं सविद्य] सव्य का उल्लेख परशुराम भवभार में हुआ है—
मारे छंदी इकट्ठे बार। (४५७)। ठाकुर (१२२ ४२९१) धरवा ठाकुरावति (४२५५)
तथा ठाकुरानी (४२०६) (राधा तथा कविमणी के लिये प्रयुक्त) राज प्रभ बङ्गन के मुख
है। इनका उल्लेख विनय पर्व में तथा भ्रमरगीत प्रबंध के गोपिया के बंधन बचन में धर्मिकां
क से हुआ है। ऐसी को ठाकुर जन राज दुख सहि यही मनाव (१२२) धरवा हरि
सी ठाकुर घोर न जन की (६) धरवा कहै न ब्रह्मदिक के ठाकुर कहै नम का दासी।
(४२९१) धरवा 'कहियो ठाकुरावति हम जाना। (४२५५) धरवा राजा भए गिहारे ठाकुर
धर कुनिजा पटरानी। (४२५६) तथा 'नंदनन करि घर की ठाकुर (२६६) एक विनय पद
के छंदी के रूप में यह छंद 'समयवत' बाणि विनय का मुख है—'धर्म' समाप्त मित्यो न
बाँधे ठाँ ठाकुर मूठी। (१८५)। ऊपर के पद्यांशों द्वारा स्पष्ट पता चलता है कि प्रविष्टि के
साधारण धर्म के मुख रूप में ही ठाकुर प्रायः प्रचलित था। धारक साधारण तथा ठाकुर
सब सविद्य बाणि के धर्म में होता जाता है। राम धरवा रूप की मूर्ति-विशेष भी इसी नाम
से जानी जाती है।

धर्मधारियों के सिद्धांत में 'बनिश' का उल्लेख किया जा चुका है। व्यापार व्यवसाय
द्वारा जीवन-यापन करने वाले व्यक्ति ही बस्य रूप में पाते थे। धारक ठाकुर धर्म के कार्य
में लगे लोगों को 'महाजन' या 'बनिश' भी कहा जाता है।
सूत्र (१७७) [सं धु-धरवा नीच] राज धर वण के साधारण धर्म में
प्रयुक्त हुआ है। धर कर्मों में लगे हुए कुछ व्यवसायिकों के संबंध में बताया जा चुका है।

१—धुनमो कविता ७ १ ६ 'धुन कही रजपूत सुताहा

२—ध सं टी २७४ ठाकुर संत ज्यों भी मारा तर्ह सेवक कहीं कहीं उबारा।
इहिया एन नोन दु पाणिनि पु ७३ पाणिनि ने मोन जनपद तथा संघ के सिल
सिले में सविद्य का उल्लेख किया है। संहिताओं में 'राज्य' धर सविद्य का
वर्णनवाही है।

१—वा सुनीत कुमार बीरों भारतीय धर्मधारा और हिन्दी (पृ ११) को
सिले में सैबी के मनानुसार 'ठाकुर' धरवा ठाकुर धर का उद्गम प्राचीन युगों
धर तेगिद' से है।

४—इहिया एन नोन दु पाणिनि व ७३ बीरों को 'धर्म' उपाधि प्राप्त की जिससे
उनके सामाजिक मान का अनुमान होता है।

५—ध सं टी २७४ 'धरक हट लख गुरुगुरु लीकी बैठ महाजन तिपलदीयो।
६—इहिया एन नोन दु पाणिनि पु ७३ धरजति ने ही प्रचार के श्रुतों का उल्लेख
किया है—'धर्मधर' तथा समाज में रहने वाले २—उत्तरे बाहर रहने वाले।
धर तथा धरन समाज के धर्म नहीं थे और यह भी धर नाम से पुकारी जाने थे।
धर्म-विज्ञान-धर्मियों के बाहर रहने वाले श्रुतों में 'बांझा' का नाम लिया जा
सकता है। समाज में रहने वाले तथा निजिक कर्मों में लगे श्रुतों में धरक थे, जने
'समा' 'रजक' 'संगुधर' धरि। धर ही श्रुत धर्मधर नामसे जाने थे।

24

विषयवस्तु

...पूँजाय नमः ...

१. पाले-पान

पुनर्निर्माण के लिए

पान

2

1

संस्कारों की सीमा से बांधा गया है। यह संस्कार उसके जीवन को संस्कृत कर रही माय निर्बंधित करने का मतलब करते हैं। सुखसागर के कवि ने अपने भाराध्य के जीवन को हर ही कोष से संस्कृत करने का प्रयत्न किया है अतएव हिन्दू धर्म द्वारा निर्धारित इन नियमों की सीमा से बांधे को स्वीकार की है। गुरुसागर में उल्लिखित इन संस्कारों में अष्टांग नामकरण धनप्राप्त करके यज्ञोपवीत बिबाह तथा धर्मोपनिषत् से संबंधित धर्मशास्त्रों की ओर स्वतः प्रयत्न जाता है। उक्त सभी संस्कारों में अमोक्ष तथा बिबाह संस्कार मुख्य धर्मशास्त्रों की दृष्टि से धर्मिक राम-सीता बिबाह का अर्थ भी किया गया है।

साक्ष्य संपादित संस्कारों के साथ-साथ हिन्दू परिवारों में कुछ लोकप्रचलित दृष्ट कर्म भी प्रचलित हैं। इनके अंतर्गत उल्लिखित धर्मशास्त्रों से मुख्यतः कुछ धार्मिक प्रथाओं का भी सूक्ष्म परिचय मिलता है। अतएव यहाँ संस्कारों के साथ इन दृष्टकर्मों का विवरण देना अनुचित न होगा।

बालक के जन्म के अवसर से संबंधित शब्दावली

२३ कृष्ण-जन्म क परम विष्णु का अवतार तब म देवकी के गर्भ में प्रजा श्री उसका प्रभाव वर्णित है 'हरि के गर्भ-शायन बनी की वन' उन्नीस साग्यों। प्रविशती को नाम बाल्यो मज्ज देव धनुरागो। कुछ दिन पूर्व गर्भ का आसक्त उर देवकी बनती। सुय-रोहिनी-स्यन्त्री-संगम अनुदेव निजट बुलायो। सकल लोकमान्य गुरदायक सज्जन ब्रह्म बरि मागो। (६२२)। फिर अतीविक्र पटनागो के पदमरकत अनुदेव सिंगु को निज मंद के वान मोहन छोड़ने में सज्जन हुए। यमोदा का भी पुत्र ब्रह्म के पदमरकत अवस्था का 'सोहिनी में बगन है—घाट माल बंदन गियो (ही) मयई गियो कपूर। बसंत माग मोहन मल (ही) घांगन बाने गुर। (६५८)। इनके बाद पिपु अमोक्षक म संबंधित पर है (६५२ ६५२)। बाई द्वारा मार छेदना तथा मय के लिये अमोक्ष का (६१३ ६१३) का उल्लेख भी किया जा सकता है। पुत्र-जन्म पर मंद का घर हो नहीं हिन्दु साध मोहन ही उन्नीस क सागर में

१—१ गर्भाधान २ पुनः ३ लीयन्तीकरण ४ अंतर्कर्म ५ नामकरण ६ निरूपण
७ अष्टमांग ८ पुत्रार्कर्म ९ अर्चन १० उचनपन ११ वैशाख १२ तमावर्तन
१३ बिबाह १४ पुत्रव १५ अमोक्ष १६ तमावर्तन

२—५ सं टी, ३ १० 'अतः श्रीधान गुर होइ ताम्, विन-विन हिर्प होइ परताम्।
अतः संटी भी यह दिया। ततः उचिपार देपाने दिया।

३—५ सं टी ३११ 'मए दल माग गुरि नै परो।
४—हर्ष तां घ पु ६४, बाग नै भी हर्ष के अमोक्षक का बिबाह बिहाल दिया है। यह गुरुसागर में उल्लिखित बिन है धार्मिकजनक रूप से किया है। हर्षवर्तन में सज्ज, कुटुम्बी, बग्न आदि मंगल वाद्य सुगन्ध गुरुसाग्यों से बंधी कानियां यज्ञ धामाग्यों में प्राशनिन सज्जि बग्नलों का बोधोवधारण परिवारकों एवं बनिनों का प्रयत्न है। साथ करमा आदि उल्लेखनीय है। गुरिपुत्र में जानना देवी

पयसा बर्बसा की साहसि बग्न गई थी।

मन भयी (हो) रानी आभी पूत ।' (६५५) । गौरी गणेश्वर एवं सारवा की भिन्न करने का भी प्रारम्भ भीतर प्रारम्भ करते हैं । इनको देवी के गीत कहते हैं । जब मैं देवी गीतों में एक 'सुरही [सं. सुरभि] गीत भी है । चरों में शुभ अवसरों पर गाए जाने वाले गगन गीतों को कुछ देवी के गीत गाने के बाद ही गाते हैं । गौरी गारि (६२) [सं. गारि] के गीत गाने की प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है—'वे देत महुरि कौं गारी । (६२२) अथवा 'बहुत गारि सुहृद् सुबहि धीर जीय कुमारि । सजल प्रीतम नाम से से से परसपर गारि (६४४) । अक्षप्रपन्न संस्कार में भी सखियों द्वारा गाती गाने की प्रथा है—'मुक्ति महुरि कौं गारी नालि, धीर महुरि कौं गारि नालि । कर्मिणी-विवाह के बाद भी एक सम्भा सा पद गारि वा है—'तोसौं गारि कहा कहि होई बाप कुपल काकी नाथ जीसे जाति गेट न जागिये । तेरी माई सकल जग सोयी । (४८५) । इनसे उस समय के नारी-गीतों का अनुमान हो सकता है । गौरी-गीतों में संबन्धियों पर व्यंग्य होते हैं तथा यह स्त्रीय तथा अस्त्रीय दोनों प्रकार के होते हैं ।' स्त्रिया के बपाने के प्रतिरिक्त बाली डाढ़िनि के बजावा जाने धीर 'बकसीस' (६२७) [का बकिश] अथवा दान निमने से संबंधित भी कई पद हैं (६३६ ६३७) । बाली का उत्प्रेषण जीवन-निर्वाह के साधनों के विलसित में किया जा चुका है ।

गीतों के साथ ही प्रान्वयमान हो नंद धीर गोप आत्मा के कृत्य करने का कारण भी है—'नाथ नम्र मुक्ति मन कोइ आस बजावत गारी । (६२२), अथवा दानदित गोपी आस नाथ नंद दे से दान सति धनुनाम मयी बसुमति माई के' (६४६) तथा 'गुप्त ठाढ़ि आस' (६४४) ।

अनेक प्रकार के वात-वार्ता की प्रथा ने वातव्यवहार को धीरे धीरे उन्मादमय बना दिया—'पर पर बाजे निवारा' (६४५), अथवा 'नाथ पनव सिल पंच विध बंध मुरख चहनाई' (६४५) । इन वातों की व्याख्या संगीत संबंधी व्यवस्था के अन्तर्गत की गई है । आज भी शुभ अवसरों पर चहनाई गीत वा 'बैठ' गाने की प्रथा चल रही है ।

२३२—नंद का पुत्र अगम पर बाली मलयमूत तथा बालीयों अर्द्ध को बहुमुख्य वस्तुओं बन करने का निर्देश है—'महुरि महुरि नंद-हृद् मुनाथ आनंद उर न समई ।' (६४५) अथवा 'जिन ओ आम्ही सोइ बीन अल नंदराइ हरे ।' (६४६) तथा 'एकनि कौं गोबान समपत एकनि कौं पहिरावत धीर । गवनि कौं भुवन पाटनवर एकनि कौं पु देत नय होर ।' (६४७) । इन सबका तथा पुत्रों का असीस [सं. अक्षि] देना भी शक्ति है—'घाण बुरन घास है सब

(७) सामाजिक गीत जो विवाहादि अवसरों पर गाते हैं । [सं. सीमावत्-मा सोदल + क-सोदल] ।

१—हृद् सा अ, य ६७ हृद्-अम्बोत्तव के अवसर पर वारा ने भी वार विलासिनियों के असीस रासक वारी (सीतली) के गाने का उल्लेख किया है ।
असीस-रासक-वदनि रासा + प्रामयोल ।

२—गुप्तगी गोता १ १ 'नाथहि नुर नर गारि प्रेम भरि देह बला बिसराई ।
१ २ गुप्त करहि नट गटी गारि नर अने-अने रंग ।'

३—गुप्तगी बीना १ २ 'घटा घटि बजावत घावत जीन केनु डक लार ।'

बालक के जन्म के बादर के संबंधित कथाओं की

निर्दिष्ट नहीं की। संभवतः काशी की भी कोई कथा होगी। (१२५)। यद्यपि निम्नी के लिए नहीं है। (१२६) तथा शक्ति प्रतीक के अनुसार कथित रूप से

एक काल तपि दुर्ग प्रसन्न के प्रतिष्ठित रूप कुछ लोग कहते हैं कि—
(१२७) या 'गुरु-संग-न-पत पल तोषि भीष्म के दुर्ग'। यह भीतर भक्त बुद्धि
यह सिद्ध-प्राप्त-परी। इस बात वदारी निहारि शक्ति प्रतीक के। यह भीतर भक्त बुद्धि
नरोत्तम, सब से सीस पर है। यह भीतर भक्त बुद्धि प्रतीक के। यह भीतर भक्त बुद्धि
पितर पुत्रार्थ में भक्त होकर है। यह भीतर भक्त बुद्धि प्रतीक के। यह भीतर भक्त बुद्धि
बुद्धि का वहीरार सब क पाई पर है। (१२८) यद्यपि 'यद्यपि' का पुत्रार्थ की भाँति
भूमि-नमन श्रुत माँ के लिये कहते हैं। यह भीतर भक्त बुद्धि प्रतीक के। यह भीतर भक्त बुद्धि
(१२९) या 'नंद द्वार में ने ने उमड़ी सोलुन बाँटे। (१३०) यद्यपि 'यद्यपि' का पुत्रार्थ की भाँति
संज्ञा है। यह सचिया है। (१३१) तथा 'यद्यपि' का पुत्रार्थ की भाँति
बलि नमन माँ के लिये कहते हैं। यह भीतर भक्त बुद्धि प्रतीक के। यह भीतर भक्त बुद्धि
बलि नमन माँ के लिये कहते हैं। यह भीतर भक्त बुद्धि प्रतीक के। यह भीतर भक्त बुद्धि
के लिये (१३२)।

अर्थात् यद्यपि के अर्थ में कहा गया है। यद्यपि का अर्थ है कि—यद्यपि
नमन माँ के लिये कहते हैं। यह भीतर भक्त बुद्धि प्रतीक के। यह भीतर भक्त बुद्धि
यद्यपि का अर्थ है कि—यद्यपि

नमन माँ के लिये कहते हैं। यह भीतर भक्त बुद्धि प्रतीक के। यह भीतर भक्त बुद्धि
यद्यपि का अर्थ है कि—यद्यपि

१—यद्यपि का अर्थ है कि—यद्यपि
२—यद्यपि का अर्थ है कि—यद्यपि
३—यद्यपि का अर्थ है कि—यद्यपि

छठी [से] पच्ची] यवना छठे दिन होने वाले पूजा-कर्म का उद्देश्य भी है—'बाबर रोरी घालहु (मिथि) करो छठी की चार ।^१ ऐपन की सी पुठरी (घब) सजियनि कियो सिंगार । (१५८) । छठी वह पुष्प का उत्पन्न है । इस दिन माता और पित्रु को स्नान कराया जाता है । माता को साधारण खाना दिया जाता है तथा सोबर की सूत मढ़ी रहता । अन्न के छठे दिन धातु भी छोटी या छट्ठी नामक पूजाकर्म लिखा करती है । अन्न की बुझा सोबर [संयोमस्तु] के द्वार पर सोबर और नीचे न मजिया' [न स्मृति] रखा है और पित्रु के नेत्रों में काजल लगाता है । बुझा उसके लिये बरखाभरण मिठाई प्रितोने देना चाहिए लाती है ।^२ इसको नगर का बरखा माना भी रहता है । इस रूप में नगर अन्न का रंग के लिये हास-परिहास-पुष्ट भगवा भी चलता है ।

एपन^३ स्मि ह्व कण्ठे चामल का हल्की मिला वह ह्व पदार्थ है जिसमें मायनिक प्रवर्तों पर जोर यवना छठे दिन चालू है ।^४ गोपी चालि नहरक (६४) से चहरका छठ का बाध होता है । वह छठो का रात को सबसे अन्न न मना जाने माना पीठ है । इसमें भी नाली दी जाती है ।

मम-कर्म में राम-अन्न संबंधी वही पद है (१ ४६२) । इनमें हृत्पु-अन्न न मिलता हुआ चित्र है किन्तु चालू संबंध—'फूले छिरत चलोप्या-बासी मल न त्वापत नीर । परिमल होत है परस्पर चालू नैनन नीर । दल दान राखी न भूप कछु मड़ा नई नग हार ।^५ (४९) , यवना 'गार्थ' सदा परस्पर यवना रिपि अमियेक करई । नीर नई दसरथ के मानन सामय' पुनि छई ।^६ (४९१) तथा 'दिस है तें हीको नामो रतन-नमन-मनि-

१—सुलकी मोठा १ २ 'आमिक राम छठी महुल मठी किए नीर आमिनि गायन चलिपान पूजा मूलिकामनि लामि राखी अनि क । जो दन दूर्वा राइयत दित लामि बावन हाहिने नमते दिये ।

२—छं ही २४१ मर छकि पति छठी सुनमाली । रहत कोठ तों रनि बिहारी ।

३—हृत्प लो अ , व ०२ बाल ने कावम्बरी में सुतिवापुह के बर्तन में सोबर के बाहर जाने लम्बे का उल्लेख किया है । वह रंजीत कपास के काहों से चालूहने दिये गये थे ।

४—अन लोच साहिब व १४६ अब नगर बरख के लिये दुरता दीयो लाती है अतः समय दन में गाय जाने वाला एक प्रसिद्ध लोचमोठ 'जयमोहन मुघरा' है । इसमें नगर अन्न की आमी से नैन में 'जयमोहन नामक सारी तथा 'मुघरा' नामक लहना मांगी है और दक्षिणो-बया का प्रार्थन भी है । 'नौहिनी' आरि लोचमोठ हनु तथा प्रबंध से प्रचार के हैं ।

५—हृत्प ला अ व ७ राग्य भी के बिचहोसब के बर्तन में छोपली नित मुमन छादि कर एपन की पापें लपाने का उल्लेख किया है ।

६—मानन चान १६४ हाऊ येनु बतन अनि मृप विप्रह बहू बीगह ।

७—हृत्प ला अ व १४ बाल के समय में आबेर के पाठ तथा सायमान का बहुत प्रकार था । वह अनेक उल्लेखों से स्पष्ट है । निम्नलिखित हृत्प सायमानों द्वारा भी अपने-अपने चरण तथा आंगुली के अनुसार बराध्याय करने वालों अनेकों का परिचय मिलता है ।

बालक के समय के प्रसंग से सम्बन्धित सम्बन्धनी

१४

हीर वर प्रतीत हुए बिजली की रामकण्ठ राधिका । (४१२) । प्रतीत हुए होने के कारण राम के समय पर देख
 भयना 'टीका' के पार्श्व में प्रयुक्त किया है ।^१ इति-मुद्रा होने के कारण राम के समय पर देख

दूर ने नामकरण का भी संकेत प्रयुक्त किया है (७ २-७ २) नामकरण संस्कार का
 भयना 'टीका' के पार्श्व में प्रयुक्त किया है ।^१ इति-मुद्रा होने के कारण राम के समय पर देख
 दूर ने नामकरण का भी संकेत प्रयुक्त किया है (७ २-७ २) नामकरण संस्कार का
 भयना 'टीका' के पार्श्व में प्रयुक्त किया है ।^१ इति-मुद्रा होने के कारण राम के समय पर देख

२३१-अप्रमत्तान् आयुषा पादनी (७ १७ ७) [१] यह संस्कार भी सुनि
 निकलने की प्रतीति है—यह-नवम-नवम-यस्य सोरि कीर्ति देख कुली । (४२) यथा।
 १-मुद्रा नाम न कुली राशि गोविंदक सुनि चली । पाठी निरं सुनि महीर जलो।

१-मुद्रा की लीला १ २ ने ही होय प्रता प्रयुक्त होने की संभावना है।
 २-हर्ष ता य १५ १२ बाल में ही हर्ष-जगत् पर सारक नामक बालक का
 भी गुरु संज्ञाओं में प्रयुक्त का हर्ष के अन्वय में संकेत है—यह-नवम-नवम-यस्य सोरि कीर्ति देख कुली । (४२) यथा।
 ३-नवम-यस्य सोरि कीर्ति देख कुली । (४२) यथा।
 ४-नवम-यस्य सोरि कीर्ति देख कुली । (४२) यथा।
 ५-हर्ष ता य १५ १२ बाल में ही हर्ष-जगत् पर सारक नामक बालक का
 भी गुरु संज्ञाओं में प्रयुक्त का हर्ष के अन्वय में संकेत है—यह-नवम-नवम-यस्य सोरि कीर्ति देख कुली । (४२) यथा।

१-मुद्रा की लीला १ २ ने ही होय प्रता प्रयुक्त होने की संभावना है।
 २-हर्ष ता य १५ १२ बाल में ही हर्ष-जगत् पर सारक नामक बालक का
 भी गुरु संज्ञाओं में प्रयुक्त का हर्ष के अन्वय में संकेत है—यह-नवम-नवम-यस्य सोरि कीर्ति देख कुली । (४२) यथा।
 ३-नवम-यस्य सोरि कीर्ति देख कुली । (४२) यथा।
 ४-नवम-यस्य सोरि कीर्ति देख कुली । (४२) यथा।
 ५-हर्ष ता य १५ १२ बाल में ही हर्ष-जगत् पर सारक नामक बालक का
 भी गुरु संज्ञाओं में प्रयुक्त का हर्ष के अन्वय में संकेत है—यह-नवम-नवम-यस्य सोरि कीर्ति देख कुली । (४२) यथा।

विचार किया। इस संस्कार पर अपनी जाति विराटरी वालों का मोहन व मंगल-ग न के साथ नंद का पिपु को और खिलाने का वर्णन है—'नंद-परमि बज-बधु बुलाई ये सब अपनी पाति। कोठ ज्योनार करति कोठ बृत्-यन पटरम के बहु भाति प्रापु गए नंद सकल-महर घर स प्राए सब ज्ञाति। (७ ७)। महार से पहले बच्च को नहम-भुषाकर मने बरन पहनाए गये थे—'बसुमति उवति गृहमाइ काम्ह की पट भूपन पहिराइ। तन फटुसी धिर लाम बीतनी बुरा दुहुं कर-याइ। बरी जानि मुत मुन जुठरावन नंद बैठे स पोब। कनक-बार मरि बीर घरी न, ठार बृत्-मपु मा। मव से-न हरि मुन जुठरावन मरि उठी सब गाइ। (१००)।

यस भी बहुत कुछ इस प्रकार धर्मप्राप्त संस्कार सम्पादित किया जाता है। होम तथा पुन के बाद इष्ट-मित्र तथा बन्धुबान्धवों के भोजन का आयोजन होता है। मंगल-गान के साथ इसी प्रकार पिपु को बाल्य की बीर खिलाने पर लक्ष्मी बार धन खाने का उत्सव मनाते हैं। अधिकतर बाबा बीर के बच्चे में धनवा बीर या सोने की चम्मच कटोरी से पिपु को बीर खिलाते हैं। पिपु के माता-पिता को धर्मप्राप्तन का नेग देते हैं। दासनी तथा अन्यप्राप्तन दोनों सब धाम भी चले रहे हैं। यह संस्कार दात मित्रमने के पहले छे या छायें महीने में किया जाता है। बातों की रसा एवं सरी सरीर वृद्धि के लिये इसके बाद बीर-बीरे धन का धन्यास कराया जाता है।

३११—बरप गाँठि (७१२-७१४) का उत्सव भी मनाने की प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। बालक को स्नान के बाद मने बस्त्रानुपण इस दिन भी पहनाए गये थे—'धिर बीतनी बिठोना बीहीं धानि धानि पहिराइ जिबोस।' (७१२) यथा 'बाये बीरे बनाइ सुपन पहिरावो (७१३)। उत्सव की सुन बरी' पहले ही बालकों द्वारा निर्धारित की जा चुकी थी—'एक मुन घरी बराइ (७१३)। धर्म संस्कारों के समान स्थितियों का इस उत्सव में भी मंगल-गीत गाना प्रांगन की बंदन से बीगना तथा चौक [सं बगुच्छ-बठबक चौक] पुराना सामाजिक पदावली—'मघन बूब इस रोचन धमि कुन डार—मादि एकविठ करने का बर्णन हुआ है—'तनिनि की बुलाई मंगल-गान करावो। बंदन प्रांगन निपाइ, मुनिधनि चौकें पुराइ उमंगि धमनि धर्मद सो, मूर बजावो। (७१३) यथा 'गार्हाइ मंगल गान लीके मूर लीकी तन। धानंद मति हूपनि। कंचन-मनि बटिठ-बार रोचन धमि कुन डार विनिवे की तरखनि। (७१४)।

पहले प्रत्येक वर्ष दिन पर एक बोरे में गाँठ बांधने वाली की प्रथा थी। इसी प्रकार मानु सूचक वर्षों की गणना की जाती थी। इस प्रथा का परिचय इन पदां से प्राप्त होता है—'बज-जन-मोहन बरस-गाँठि की बीरा बीर' (७१२), यथा 'बरस-गाँठि-बुरावो' (७१३) तथा 'मनु बरस-गाँठि करति' (७१४)। इन प्रथा से ही 'बस-गाँठ' छन्द बना है। एक धर्म समताम्यक छन्द 'लालविह' भी बोला जाता है। कुछ संज्ञेनी महर्षि से प्रभावित सामाजिक-परिवारों में विदेशी पद्धति से बरगाँठ मनाने का रीज बन गया है जब केक बाल्या वर्षों की प्रतीक बनती हुई मोमबतियाँ बुझाया, गुणकामनाई देना कून बीर रेंग देना मंगल कामनाओं से संश्लिप्त छे काइ धेजना, भोज मान एवं नृप्य धारि। इन सभी विधि से बर्षगाँठ मनाने पर भी धार्मिक परिवारों में भारतीय प्रथा ही बन रही है जो मूर बलिज जपार से निवर्ती-बुनती है। बोरे में गाँठ बांधने की प्रथा मकर संक्रान्ति का प्रथम दिन है।

१—हर्ष लाल, पृ० ७२, रामायणी के विवाह के पहले सामान्य धर्मियों के मंगलचौक गाने का वर्णन है (बहुवरयोवहृणगाँठि सुतिसुप्रगादि मंगलानि गायन्तीधि)।

यथा है—'जाकी ध्यास करनत रस है गन्धर्व विवाह भित से सुनी विविध विवाह ।' इस विवाह में स्त्री-पुरुष स्नेहा से एक-दूसरे का चरण कछे से तथा त्रेम ही इसका धामार होता था । स्वयंवर (४८१०) की प्रथा पर भी प्रकाश डाला गया है । इसके अनुसार राजकुमारी निमन्त्रित राजाओं में से स्वयं चर चुनकर अग्रिमाल पहना लेती थी ।

विवाह विरिधत होने का जो उत्तम मगमा बाटा है एवं कृत्य होते हैं उसकी मात्र के समान ही सुरदास जी ने मंगनी (४२१७) तथा सगाई (४४१७) कहा है किन्तु यह विवाह वर्तन में न धाकर स्पुट प्रार्थनों में पाए हैं—'बैठ विस्पी कुबिजा की लोकी । सुरदास प्रभु लपुकि न देखी मंगनी लकी लकी की । (४२१७) धक्का हथलीं उनलीं कीन सगाई । हम प्रहीर धक्का हथबासी ये धनुपति बहुराई । यहाँ सवाई' धपकन के सामाख्य सर्व में भी बिवा का सफटा है । साथ इस लोकाचार के प्रसर पर प्रायः हर वक्त से बंधु के लिये वस्त्राभूषण और मेवा-मिठाई धादि छोटे हैं और बंधु के घर के साथ उन लोगों को भेंट देते हैं । सुरदास में विवाह के साथ इन कृत्यों का बंध नहीं है ।

विवाह-कृत्य के उत्तरता में तीन भाग दिए जा सकते हैं—१. सांगतिक उत्तरता, २. संस्कार विधेय, ३. परम्परागत सामाजिक कटिबान । साथ ही योगिनी उत्तरतामन मनोवांछित पति-प्राप्ति के लिये अनेक धत-साधन तथा देवी की उपासना करती हैं—'किन्तु प्रथम कुमारिकि ज्ञ परि हृदय विस्वात । मंद-मुठ पति केहुं लीं पूजि वन की धाम । विपी ठव परसाय सक्की धमो सबनि हुवात । (३९१२) ।

मुरसापर में तीन विवाह प्रमुख रूप से वर्णित हैं—१. राय-सीता २. कृष्ण-दाया तथा ३. कृष्ण-विमली । कृष्ण के साथ विवाहों में बाँधकारी उत्पत्तानामा विवाह (४४०८) तथा पंचपदरानी विवाह (४४११) के । प्रभुमन, धनिद्वय तथा साथ (४८१४ ४८१५, ४८२७) विवाह दीर्घक भी कुछ पद हैं । प्रथम तीन विवाहों का ही धार्मिक महत्व है ।

२४ —संस्कार की परिचामक धर्मशास्त्री में बंदनवार-बन्धन, धाखी तथा मंसलकमंडल धारणा, धीन प्रसूत कम कुल राना, धायन में बौक पुरवा, धारक [३० धर्म-एक बल पाव में धरात दुर्बा तिल यव धण्ड, पुष्पादि डालकर यह बल देवता पर चढ़ाने को ही धर्म्य देना करते हैं] बाट या बन्धोवना का विस्मयति-मामन बाट-बादन धादि कृत्य धर्म संस्कारों के समान ही विने जा सकते हैं । विवाह का मंडप (१९१०) धक्का मंडल (४४०९) धक्का 'करली बंध' एवं 'किंसलवत और नुलीं से धर्मपुत्र किया गया था । मंडप तथा लोरी [३

१ —सालन भात० २८६, 'मयल वलत धमेक बनाव । ध्वज फटाक पट बरन लुहाए ।

५ स टी २७३।४ १ 'बंदन बंध रबे बहूँ पाली । धानिक बिना बर्यह रिम राती । धर-धर बंदन रबे हुमाए । धावत नवर पीत धनकारा ।

२—५ स टी २८३।१ 'माही लीने का मयन लघारा । बंदनवार लाग लख लारा । साजा बाटधन क टाही । रतन बोक पूरा ठेहि बाही । बंदन कमल मोर बरि बरा । इन्ह नाम धानी धपधारा । धक्का २७३।४ 'रवि-रवि धानिक माही धावहि ।'

मुलसी रामलता गहू ३ ८ 'सावहि बाँध के मोड़व अनिवन पुरन हो । मजमुदुता होर अनि बोक पुराए हो । बन्धन रज बहूँ धोर नय्य तिहुमन हो । धानिक बाँध बराम बैठि ठेहि आसन हो ।

२१८

बपुर—देवी] बिनाह-संसार का महकमूय यंत्र है। नर बपु संसार के नीचे ही बैठे हैं। १२
माय भी बहनी-बंदी तथा फूल मालाओं के छाया जला है—'रबी बीरी घास बड़ा अं
बंन लगाए है। बौद्ध मुक्तहस्त पुराणी का हरि बैठे हैं। २ (४८४)।
बिनाह के ऊनमय बालमय का बरुन दल प्रकार दिया गया है—(४८२) तथा
कार बपु' (४८०१), प्रकटा रजि वाली बल स बर्त (४८२) तथा
बीपदु बरमसार मगोहद, कम कमल हरि कीर परमह।
मुचि मयल्ल कम फूल पर यंत्र पोलन बंन नील पुरल्ल।
मयल्ल कम फूल पर यंत्र पोलन बंन नील पुरल्ल। (४८०)
मयल्ल कम फूल पर यंत्र पोलन बंन नील पुरल्ल। (४८०)
मयल्ल कम फूल पर यंत्र पोलन बंन नील पुरल्ल। (४८०)

[illegible]

बोमिनि बुगारि' बरजिन सवा 'बमिनि (१५५) के साथ
 दुध व्यवस्थाओं की उत्पत्ति।
 ली। (१९६६)।
 दुध व्यवस्थाओं की उत्पत्ति।
 ली। (१९६६)।
 दुध व्यवस्थाओं की उत्पत्ति।
 ली। (१९६६)।

1-हमें तो बू ७२ पत्रिका
की बातें तथा आत्मना के रंग हुये तो
हो गये थे। २५७ विरहे जनक कबलिक के जेना। २६८
२-हमें तो बू ७२ पत्रिका
की बातें तथा आत्मना के रंग हुये तो
हो गये थे। २५७ विरहे जनक कबलिक के जेना। २६८

[illegible][illegible]

२४१ निमाह (१९५६) अमाह (१९६६ ४८ ५) [सं विवाह] अथवा पानिग्रहण (१९६) [सं पानिग्रहण] संस्कार बन्धविधि स सम्पादित होने का निर्देश भी कर्म में किया है।—'विध-विधि किपी अथवा विधि' (४८ ४) अथवा 'विध सने धुनि देर उचारण, कुवर्तिन भोगन वाए' (४९५) तथा 'बरे निमाम अखिर गृह मंदन विध के अभियेक करायो । सूर धमित धानम्ब बनकपुर सोइ सुकरीन पुरानमि गायी । (४९६)

पानिग्रहण संस्कार मात्र तो कुछ ही धर्म में पूरा हो जाता है किन्तु उसके स्वाम्य समारोह की सेवारी बंधु पक्ष बान महीनों में करते हैं। इलाह (१९६२ १९६) [सं० सुर्मम] ४८ अथवा घर [सं० बर] के पक्ष के लोग बरात (४८ ४) (सं बरपावा] लेकर निरिपठ विधि पर कुसहिनी (१९६ ४८ ३) अथवा कुसहिनि (१९६२) व बर उरस्थित होते हैं। बरात में धाने वाले घर के बंधु बांधव एवं इष्टमित्र ही बराती [सं० बरपाविक] (१९६) कहलाते हैं—मनमय लनिक भए बरती । (१९६) उग्रमेन और बंधुदेव के बरात उजाकर धाने का बणन है—'बने धानि बरात

२—४ तुलसी रामलालानुष्टु ५ १—'लोहारनि' 'तकोनि' अहिरनि' मोविनि' 'मसिनिया' 'वरिनिया' 'नरनिया' 'माउनि' आदि अनेक व्यवसायिकों का विवाह के अवसर पर उपस्थित होने तथा उनके अपने अपने निश्चित कार्यों का भरणपूर्व निर्देश है।

६—मानग बाल ३२६ 'बैरात बेहि मसुर धुनि गारी । लै लै नाम चरण की गारो ।

१—इंडिया एन्ड मोन द पार्लिनि वू ८५, ८६, पार्लिनि में विवाह का पर्यायवाची शब्द 'उपयमन' प्रयुक्त किया है जिसका अर्थ 'रु-करण (घर का बंधु को अपना बना लेना) का। विवाह अस्कार पार्लिग्रहण से पूरा होता था। पार्लिग्रहण का भी उपयुक्त नाम ही है। घर विवा के हाथ से बंधु का हाथ ग्रहण कर उसको जिम्मेवारी स्वीकार करता है। मनु के अनुसार विवाह अपनी जाति में ही होने से। काश्यायन ने शास्त्रानुसार विवाहिता बन्नी की पार्लिग्रहण विधि के कारण ही 'पार्लि-गृहीणी' कहा है। इस विधि के अनुसार विवाहिता न होने पर 'पार्लि-गृहीणी' कहा है। मनु के अनुसार कन्या 'प्रदान रूप में धनि को विवा द्वारा ही जाती की। पार्लिनि के अनुसार बन्नी' 'बन्नी' होती आश्रिते तथा वरतत्रति में भी 'अपूर्वा वति' 'कुवारी माया तथा' 'कुवारी वति का उल्लेख किया है। 'बन्नी' शब्द उसका वति के साथ मन्ने में साथ मने व बना है ('पार्लि-गृहीणी लपोये)। वति की सामाजिक स्थिति पत्नी की होती जाती थी जहाँ मन्नाम व की बन्नी महाभात्री और आचार्य की बन्नी आचार्य

१—हर्ष सां घ वू ७२ बाल में 'बर' तथा 'बधु' शब्द का प्रयोग है। ('बधु बरपोषग्रहणमर्णलि)

३—हर्ष सां घ व ८२ बाल में राग्ययो की कारण का प्रयोग है। आगे १६६ साल अंदर निचे दूरे का प्रयोग है। गीते सोने के साथ में अग्रतः लायी थे। सुदर्भा लक्ष्मी का प्रयोग आगे आराम मान या रहे।

संस्कार, शुद्धकर्मा तथा भावमार्ग

बनो कीटि छप्पन प्रति बनी। (४८०४) सम्यगी (१२१) से संकामी] का वस्त्रे
बनते घने का बिबल विमल पर में भी है—दात पकावत बने बजावत, वनवी होता की।
बारत के साथ इस प्रकार बाने की व्यवस्था भाव भी होती है—'संत और भिक्षु बाने बने
विमल मुकुम्भ'। (४८५) इसके पतिरिक्त उन समय से हुए हावी बीने एवं रब भी
बारत की बोना-मृदि करते है—'नव रब बावी बनाइ बंदर छन दाजि। (११६२)।
बर का बाहुन विधेय रूप से मुठमिल किया जाता है। वह उस समय सर्वहृद बोने व्यवसाय
पर जाता पाए। इसका संकेत मूर है किया है—'दुष्टि दावी बिना दावन बाव बलता भी
रही। बीन बलि बरज पकाव लवी छव मुछा लरी। (४८०४)। वृष की निरा की इसी
रब पर होती है—'बंदन के स्वंन बंदे हीट, संव की रावा भीटी। (११६५)।

मुकुम्भ तबे बजायुगलों के पतिरिक्त बर के बेड में और (११६६) तथा सेहरा
(११६२) ४८४) इस विधिपुत्र पुन वनन की पूचना से है—'सेहरा विर मुकुट बटन
कंड माला दाजई। हाव पहुँची हीर की नग बलि मुठरी आरई ॥' (४८०४)
मयवा 'बटन विर सेहरा मु' (११६२) तथा 'नोर मुकुट रीन नोर बनानी' (११९०)।
नोर तथा सेहरा बनाने का काम माली का है। विर पर मुकुट के समान 'नोर' होता है तथा
कैदरे पर पड़ी पुन मालाओं को 'सेहरा' कहते हैं।

इस संस्कार के साक्ष्य मिलि बनों में खान (११६६) निकलता—परी बज बु
वर विमली' मनुपरछ [से मनुपक एक भाव बही दो भाव बहव तथा की मिलाकर

- १—भावन बाल ११८ हाव मय स्वंन वायु जाई।
- १०२ हाव मवावीं कुंजर बर मकमि मयंन मिलाव।
- १२ लहुव राव बाजीह लहुगाई।
- मनकी बंमल १८ गट भाव बहव लहु जावक बल म्वायई
- २—व घ ही० २७१। = २ 'नोरि लवु हेतु वय देरी भावा बाव ठोकार।
- बोधु और बज विर हावु बैमि होई बसबाव।
- २७०। ७ बीरता रव बोने ल लावा मर बराव बोहल लव राजा। बावन भावन
- जा घाताक। लव मिलाव के बरहि बोहोव।
- १—हव ली घ ३ ८६ बर गुरुवा के विर पर मलिला पुली की वा
- लवा उनके बीच में पुली की लहरा बरिस्त है ('जलुन मलिका मु')।
- ४—हव ली घ ३ ८६ रावनी के विवाह की देरी बने से पुली की घा..
- मने ओ हुए बकारे मुद्र मंन कला रने से। विवाहमि के सिद्ध होई
- मुता भारोह के लीने निन रुत मयवर्न पुन बवा और मलिपय रानी हुई
- की। मने पुन में लवाहोव के लीने बीने भी रानी गई की। होम के बार
- रावनी और गुरुवा के लीने के बारों और भावरे पुली और लामोमि दी।
- विवाह बाव ली लमलि बर बर-बपु ने लाम-मपु को प्रमाण कर बातपु में
- प्रति किया।

मधुपर्क बनता है] और पूजन विधान में इसका स्थान है] (१९८६) मांवरि (१९८६) [सं प्रमण्यमधि परिष्कार] प्रमि बन्यन १९८६ १९६०) पानिमहन १९६०) प्रादि विशेष रूप से उल्लेखनीय है—अपर मधु मधुपर्क करि के करत धामन हाव । फिरत मांवरि करन भूपन अग्नि मगो उवाच ॥ त्रिय परे प्रमि कोर छोरे निकट ननर न सम । (१९८६) अथवा 'तब देत मांवरि कुंज मंजु प्रीति प्रमि हिये परी ।' (१७२०) तथा 'ता परि पानिमहन विधि कीन्ही । तब मंजु प्रमि मांवरि शोन्ही । (१९६०) । साग बाँवरो को 'शेरा' भी कहा जाता है ।^१ वर मधु द्वारा की गई अग्नि-परिक्षमा को ही 'बाँवरे' कहते हैं ।

सामाजिक के खास कुत्र व्योहार (४८ ४) अथवा लोक रीति (१९६२) पूरे करने की भी सूचना है—'बुधा बुधति बिनाइ कुत्र व्योहार सकल करावो । (४८ ४) अथवा 'बन की सब रीति यह, बरसाने व्याह । (१९६२) । विवाह-संस्कार के बार किसी के मनोबिनाय तथा हस्त-परिष्कार पूर्ण कुत्र कृत्य है जिन्हें भोज-गृहीत कह सकते हैं । उपर्युक्त पद्यों में उल्लिखित बुधा का विधान नवम-स्कन्ध के राम-सीता-विवाह में भी है—'दूगीकृत बुध बन निरनल मरि, धानी मरि बुधी को कनक को । केसव पूर सकल बुधति में हारे रघुपति, जिरी बनक की । (४९६) ।

द्वारे प्रमुख लोकाचार कंकन चार (१९६१) का दोनों विवाहों में सुन्दर वर्णन

१—पूजन के लोह धर्मों में मधुपर्क भी है— प्रासन स्वाम्य पाठमर्घ्यमावनीयकम् । मधुपर्क अप्समाम बलमावरणि च ॥ गन्धपुष्पे पूरपीपी नैवेद्य कर्त्तव्यं तथा ॥

२—पुलसी जानकी-मंगल १९९ 'होग लामी मांवरि'

३—मालत बाल ३२४ 'जयो पानिमहन'

४—पुलसी पावती-मंगल १९५ 'अरम है ननि प्रासन घर बैठाय ।

५—ब ल टी २८१ तैति गौंठि पिय जोरम अरन न होइहि पुटि २६५ ६

गौंठि बुलह बुलहिनि के बोरी । बुली जयत भी जाह न छोरी । केव जनहि पछित तैहि ठाई । कन्या तुला राति ने नार्ज ।

२८१ बुह नार्ज हीइ गाव सचारा । बाँव के हाव बीह बमाला ।

६— ३६-७ 'बाँव तुलज बुई मांवरि तैही साती पर मांठि सो ए' ।

७—पुलसी जानकी मंगल १९८, 'बुधा लेनावन कौतिक कीन्ह लयाविनु ।

८—हर्ष लं च ५ ७९ व्याह के कन्यों के लिये पुत्र की लक्ष्मियों के रंगने का बाण ने उल्लेख किया है ('ब्रह्महिक्रणोणा मृगमहाविष रंजयन्तीनि') । पु ८३ विवाह के पहले पुत्रवर्मा को जियों द्वारा कौतुक पुत्र में ले जाने का वर्णन भी मिलता है । यहाँ लोकाचार तथा हस्तोक्त जियों के परिहास की बर्चा भी है । बाण ने कौहवर का विवाह के पहले वर्णन किया है । पंचांग में यही प्रथा है तथा दुर्योधन में भी प्रचलित होगी । किसी मेरठ में उत्पन्न होता है । यहाँ जियों के बैरनाओं को बापना बाने ब्रह्माचार, विवाह कार्य के बाध होते हैं ।

संस्कार सुधारके तथा माधमपर्यं

मृत कर कहे, संक्रम नहीं होते। ताम-मिलाकर रत्न मल पर, कौमुद निर्दिष्ट होती सब
 तब कर शेर पुत्रे रघुपति के कर कौमुदिया मर्या माने। (४९६) यदवा वय
 मृतुम क्रमपरि ॥ बने इसी हो छोड़ि केहो जो सकल कोय के राह। के करि बोर करी किसी,
 के पुत्रो दधिकार पाह ॥ छोड़ु केनि कि मातुह पत्नी नमुनसि माह बुला। गहन सिद्धि
 पत्नर वें हरिह, नीरही छोड़ि संवारि। बुद्धिहि छोरि पुनह का दंडन, बोलि बवा
 बुजमल। कमल-कमल करि बरल्ल है हो। यदि पिता के मल। सब कवि कुल संधि ने
 मान, योग कंठीके मल। (१९६१) तथा संक्रम बोरवी हरिका बाम्यो मलर मिलत
 (५८६)। तेन क्यते समय बर-बनु के हाथ से संक्रम बोरवी प्रभा मान हो है। दोनों बोर की
 छोटी की दोनों में इसी बुद्धि बोर होई का ब्रह्मा ब्रह्मा से बाध लेते हैं। दोनों बोर की
 जिवा (प्रायः माती) इसमें बल बोर होई है ब्रह्मा ब्रह्मा से बाध लेते हैं। दोनों बोर की
 के बराब में इसका संकेत है। कमाया (मल संधि व संकेत रंग) जिवा बल होई है ब्रह्मा
 मल कायों में काम में मले है। मावकल इसी प्रकार बोर की कुछ मेल कोहर (एक
 काठरी जिन में कुछ हैवी देखा स्वर्णिम ब्रह्मा है) में सम्मिलित हैं जो बर-बनु का एक
 बीच की दो बरिवा मिलकर एक करना मरकी में पूरा मुहुरी में भरकर निकालना चाहिए।
 यह सभी कृत्य दो व्यक्तियों के एक-मल होने के प्रतीक रूप हैं। हर बर में किसी व किसी बर
 में यह लोकाचार वर्तमान है।

२४२—विवाह के समय दुल्हन के पूरा कपड़े की प्रभा का दान प्रसंगों में उल्लेख
 जा चुकी है। पूरा की प्रभा मावकल बोर-बोर के बल होई का पुरी है। विवाह के समय
 पंचकोय परिवारों में बाय भी बनु का मुल बर-बनु से मातुह पुरी है। विवाह के समय
 विवाह की भी है। इसमें सब दुल्हन गब बनु का मुल बर-बनु का दान होता बरका मातीबर्हि
 विवाहपरल्ल होई में मरकी एवं बायकी तथा बर-बनु का दान होता बरका मातीबर्हि
 है। तथा 'म्योलाबरी' भी उल्लेखनीय है—(५८४, ५८६) देवकी पिता बरि
 बरती है बरती मिहारी। यदवा 'मुक्ति-मुक्ति म्योलाबरी' पाई पूरा बुजमल।
 बाखीय हिरु परिवारों में प्रचलित विवाह तत्वयो बरिवा में दाहल (५७१)

१—मातल बाल १६ 'मुक्ति लोचन कल बरम छोरे।
 २—हर्ष लोचन ५ ५ 'मावकी के विवाह बर्तन में बाध ने कोठरी में
 बर-बनु के बर में कुछ हैवी-देखा स्वर्णिम करने का उल्लेख किया है।
 (अभिप्रेत्यमाशालोदेख)। विवाह-प्रसंगों में बायने मुननेन एवं बरमल तैयार
 बरम भी होता है (विवाह प्रसंगों में) बायने मुननेन एवं बरमल तैयार
 करने का उल्लेख भी किया है।

१—जुलमी बायबोलन २६ बरहि निदाबरी दिन-दिन संवत मुर मरी।
 ५ में टी २८६६ 'मावकी के विवाह बर्तन में बाध ने कोठरी में
 ६—हर्ष लोचन ५ ५ 'मावकी के विवाह बर्तन में बाध ने कोठरी में
 बायने मुननेन एवं बरमल तैयार

बानकी और पावती के विवाह का कवि ने मनोयोगपूर्वक विवरण किया है। सुरसागर में ७ स्त्रियुक्त सम्भावनी के प्रतिरिक्त तुलसी के इन ग्रंथों में प्रमुख ग्रन्थ कुछ मये नामों पर भी ध्यान आता है जैसे 'बरछी' (= धरवी 'बरदेवी') 'तिस' बहाना 'सगन' देना, धगवानी 'अनवासा' 'सुसम्मन' 'परिछन' 'नेवचार', कुशोरः नेवा कम्पावान, 'साम्बोन्धार' 'सिद्ध-बदन', होमसाभा 'सिलपोहनी' 'कोहवर', 'बहकीरि' आदि। 'मुख बिबरीनी' तथा 'बूधट' का उल्लेख भी है। कोहवर के 'बुधा' तथा 'कंकणाचार' के प्रतिरिक्त लीक के 'बगुप' से बर की शक्ति की विशेष्यपुत्र परीक्षा का उल्लेख भी है। सम्प्रतिष्ठित कर्मों से अधिक इन लोकवाचों का उस समय की प्रथाओं पर प्रकाश डालने के कारण प्रसिद्ध महत्व है।

जाम्बवी ने पद्मावती के घोषान कर्म छड़ी, तथा नमस्करण आदि का वर्णन किया है। छड़ी के दूसरे दिन पंडित का आना कम्पा का अधिक्य बत ना तथा नाम रखना आदि वर्णित है।^१ विवाह कार्य से संबंधित सम्भावनी में 'बर' 'बरोक' (बरच्छा) 'तिसक' 'बैमारा' 'मंभव-बार' 'सगन' विप्रभू' नेवठ' सुहाव' बला नाम वरु मंडप के निकट विछाला, 'बरछ' शरती, 'अनवासे [सं] अन्ववासाक' 'गकना' [सं] गमन—अकन—गाना] तथा 'बिबनार' आदि उल्लेखनीय हैं। बीने के बाल बुधाप पिता के बर न लौटने की प्रथा का अनुमान होता है। दावा की सुविचार्य न होने के कारण सरलता से मायके आना सम्भव न होना और फिर बहि दूरी अधिक हो उस ली कुच्छर ही होना।^२ बर बगु का एक दूसरे को बयमासा पहनाला प्रथमि में बल लेकर कम्पावान करना अन्वि-अन्वन आदि रूप भी वर्णित हैं।^३

४ तपोहार

२४६ सुरसागर में उत्काशीन कुछ प्रमुख तपोहारों और उनके मताने की पद्धति का विवरण भी मिलता है। पोषर्जन-पूजा दीर्घक महत्त्वपूर्ण प्रबंध के पहले ही दीपमाशिका^४ (१४२० २४३ १५१३) का वर्णन है। कृष्ण इस दिन मुरपति हम्ह की पूजा के स्थान पर पोषर्जन-पूजा करने का आग्रह करते हैं। दीपमाशिका वर्णन में मोक्षी और प्रबल से चौक पुरो कंचन की आशिका न दीपक बजाना पूजा की बलि-आवासी तैयार करना, बरों के द्वारों पर 'बावें सगना' (१४२० १४३ १४३६) तथा 'अजकू-बिबि' के सिधे पकवान और 'नेवक' एकत्रित करना (१४३४) आदि वर्णित हैं—आज दीपति विष्णु दीपमाशिका। पत्र मोक्षि के चौक पुराए बिब-बिब माल प्रवर्धिका। बर श्रुमार विरधि दावा पू बनी सकन इन बर्धिका। मलमल दीप समीप छीज गरि लेकर कंचन आशिका। (१४२०) बिबली के दूसरे दिन प्रप्रकृष्ट का उत्सव मगते हैं। बहु ब्रह्ममुनि में विशेष लोकप्रिय पत्र है। कृष्ण-मन्त्रिणों प्रववा विष्णु-मन्त्रिण न इसका विधेय आयोजन करते हैं। पोषर्जन-पूजा का प्रसंग से ही संबंध है। बिबिब नेवक तथा भोग्य पदार्थों का पहाड़ के समान ढेर था। सगते हैं और पोवर के बने पोषर्जन की तथा मो की पूजा होती है। इसके साथ ही तपोहार के उत्सवसमय वातावरण का रूप भी उल्लिखित किया गया है—

'पमठ ह्यठ गवाम हंसावठ पटकि-पटकि कर वासिका। (१४२७)।

१—ब स टी ५-५२।

२—प बी डी २७४ १७३।

३—ब छं टी २७३।

४—मुलतो पोता ७२ 'मलित श्रुपमाशिका बिलोकीहि द्वित करि मरप बनी।

उक्त कुसल धरन धए धर । कुमकुम कीच मणी धरनी पर ॥

नब मुरंग बाँसुरो बाँसै १ पकड़ एक एक मरि मारै ॥

इक से घावत हरव कपोमणि । इक से पोछति ललित पटोमनि ।

इक धरलवति, इक धरलोकति । नुबन बल देति इक बँपति ॥

मुसमल खरे सबे भिति देखै । दिनको तबनी तुन सम सेवै ॥ २ (३५१६)

धपवा 'मारो होरो रेत बिबावत १ बज में फिरत नौप-जग भावत ।

पूष बही के मारो कोष । कहूँ न हो हो हो हो बोंबे ॥

बनमनि में बाने पिचकारी । बाँधत केरें पाय बँबारी ।

छत्रनि में कूटति पिचकारी । रँगि गई बरकरि महस धटारी । (३५२)

या 'बिमत फागु कइत हो होरी ।

ऊत नापटी-समाज बिबावत इत मोहन हुलपर की जोरी ।

इहि बिधि उमंग बस्यौ रब जइ ठहूँ, मनु धनुराज धरोबर छोरी । (३५२९)

या 'केमत हरि ग्याल-सब फागु-रंग मारी ।

इक मारत इक ठाँठ इक भावत इक गावत, इक बाँधत इक पकत इक भावत मारी । (३५६)

या उठ जेरी बरे मार बाँसनि छत परी मार । (३५७)

धपवा 'आँखि धाँक मनमहि फरावा' । (३५११)

तथा 'यह छोटा धी धाँहि कौन को मारत मनसिब बान' । (३५१४)

तथा 'मालत कौन फाय में प्रसुता मन भाव्यो सो कोस्यो' । (३५३४)

आँखों में काजल मगाना मुशवियों का छपी रेत लकर^१ निक्कना तथा नाँठ जोड़ने की प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है । बेठों की मार का प्राय सभी पदों में मिलता है—^२

'कुसनि के कंबुक नौपसी कइत मकुटिया हल । (३५२५) ।

२४४ हामी पर नये लज्जामुपन पहनने का उल्लेख है—'नये बसन धामुपन पहिरत धरन सेत पटंबर कोटी' (३५२९) तथा फुलों के शृंगार का भी चित्रण है (३५३३) । होसी पर पल्ले जल बाने पीछो^३ धमारि (३५१३) भूमक (३५२३) तथा चाँचरि (३५०५) की व्याख्या संवीर के धमरपंथ की गई है ।

फरावा फरावा (३५१३) ममेबा-मिष्टान तथा बरन देने का जिक्र है : (फूल) फरावा दियो रत रज्जो पट भूपन मँहि (रह्यो) कास्यो, ॥ (३५३५) धपवा 'जगुमति धरि धुपमानु के फरावा हमरी बेहु । जगुमति हँधि सब सविनि ल्यों राधे लिंगी धोल । मेबा भिमि बहु

१—घोटा ७ २९ 'बाँझूँ मुरंग इक ताल केनु । छिटकहि सुपय भरे जलप रेनु ।

२—घोटा ७ २९ करें कूट निपट गई लाल ।

३—घोटा ७ २९ 'नर मारि परसपर धारि रेत ।

४—क को प्र १३ धपवा १ बरसाने की क्षिपा करत लुनी नौधी धपवा दसमी को मँह माँक क पुरवों को रँडे मारसी हँ । पुरप रज जोट से धपने की लोहे की धमों से बचाते हँ । इस प्रथा को 'हरवा' कहते हँ ।

५—मुलती घोटा ७ २ लिय छुरो रेत सोबें बिभाज । चाँचरि भूमक कहें बरन राग । तथा लोचनि आँखि कइत कइत । कइहि ५५ इहः ह बरा ।

स्नान पर इन छिद्रकन का रितान् हो गया है। होली के विविध लोक-गीतों एवं छपीतका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उत्तर प्रदेश क्लृप्त आदि में होली के मा मय वर्ष का प्रारम्भ भी माना जाता है। होलिका सम्बन्धी प्रत्येक लोक-कथाएँ प्रचलित हैं। सबसे अधिक लोक प्रिय हिरण्यकशिपु की बहुत होलिका तथा प्रह्लाद की कथा है। विद्या की देवी सरस्वती तथा विष्णु-मन्मथी-पूजन भी कहीं-कहीं होता है।

दीवाली तथा होली के अतिरिक्त वर्तमान समय के प्रत्येक प्रचलित त्यौहारों में बसहटा रक्षाभन्वन, शिवरात्रि रामनवमी जगन्नाथजी भैयादुल नवपंचमी या दुर्गा, वसन्त पंचमी तथा हरितामिका तीज आदि के नाम लिए जा सकते हैं। मुबनकाल में भी प्रत्येक यह सभी त्यौहार प्रचलित थे। उस समय भी बाँहों में एवं अग्निम बर्ग में बसहरे का महत्त्व था। साधारण बर्ग का मनोरंजन सबसे वे इन त्यौहारों और उत्सवों से ही प्रचलित होता रहा है। सावन के लोकगीत प्रायः पति-पत्नी और माई-बहन से सम्बन्धित हैं। इनमें ही झूले के गीत भी हैं। होली के समान हिरोले के अधिकारी गीतों का सम्बन्ध राजा-कुल तथा स्व की अन्य गणिकाओं से है।

जम्हरी ने जो होली जलने केने^१ तथा पदवाली^२ आदि के पक्षे बसन्त पंचमी^३ के उत्सव का भी उल्लेख किया है। दूर स्थिति लोक-गीतों का वर्तमान में भी निर्दोष हुआ है।

१—प स टी, १८६-१८७।

२—प स टी, १९२४।

३—प स टी १८३-१८४।

अध्याय ७
धर्म तथा दर्शन

१-दार्शनिक तथा धार्मिक शब्दावली

१-मनसि से संबंधित शब्द

२२-मूर्खता की प्रारम्भ में वास्तविक ज्ञान न पद निम्न है। बन्धन-संशय न प्रवेश करने के बाद सांप्रदायिक विद्वानों एवं विचारधारा का प्रभाव उनकी कल्पना पर पड़ता। स्वाभाविक ही था। बन्धन-संशय के अनुयायी होने के बाद प्रत्येक शब्दों का पुनर्निर्माण ही मूर्खता का लक्षण है। पुष्टिवादी या वास्तविकी द्वारा प्रभावित होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है। पुष्टिवादी या वास्तविकी का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है। पुष्टिवादी या वास्तविकी का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है।

प्रचलित शब्दों में बन्धन-संशय का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है। पुष्टिवादी या वास्तविकी का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है। पुष्टिवादी या वास्तविकी का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है।

मनसि से संबंधित शब्दों में बन्धन-संशय का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है। पुष्टिवादी या वास्तविकी का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है। पुष्टिवादी या वास्तविकी का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है।

मनसि से संबंधित शब्दों में बन्धन-संशय का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है। पुष्टिवादी या वास्तविकी का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है। पुष्टिवादी या वास्तविकी का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है।

१-इस अवस्था को धर्मशास्त्रों में बन्धन-संशय का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है। पुष्टिवादी या वास्तविकी का प्रभाव होता, मूर्खता के कारण ही इस अवस्था को मान्यता मिलती है।

(१११) । मिश्रण के प्रति उनके विचार साष्ट है— पवित्र पति कसु कसु न पावे
 ज्यों पूरे मीठे फल को उस संतरपत ही माने । सब विधि धर्म विचारार्थ ठाँव मूर सगुन पद
 माने । (२) । मूर से उनके विरह-रूप का भी बखन किया है— हरि कू की धारणी बनी
 (१७१) धर्म-भोगिनि निरखि स्वाम-स्वरूप । रझी बट-बट व्यापि छोई चोति रूप
 मय (१७) । उनके विचार से ज्ञान तथा कर्म मार्ग दुपकर हैं जिसमें मिश्रण की अपासना
 बढाई गई है । अग्र-गीत वाला पद्य इसका ही प्रमाण है । शोधियों के मन्त्र के नामों
 सुरवास की ने अपने विचार ही रखे हैं— 'मधुकर निरगुन ज्ञान ठिहारी ।
 दीपन तेज तपस्या यमों कार्य पल्लवु पारी । (४५४४) धर्म-वह बोकुम गोपाल-उपासी ।
 के बहक निरगुन के रूपी से सब बसत ईश्वर कसी । (४५४५) धर्म-धर्म पंथ परम
 कलिन योन वही नाहि । (४५१७) तथा 'ब्रह्म बन सकल स्वाम लउ-पारी । बिना पुनाम
 पौर जिहि माने ठिहि कहिये अविचार । (४५४६) ।

मूर ने इस प्रकार अपने इच्छे के को ही परमात्मा माना है । निर्देव तथा नीची
 सीमावर्तार सब उनके ही रूप हैं— हरि के रूप देख नहि राजा । प्रसन्न रूप कसु कसु न
 बाह । हरि पू के हिरये यह धारै । देखै सबनि यह रूप विचारै । (४६१८) धर्म-
 बसत पिता तुम ही हो ईश (४६१९) तथा 'परमाहंस तुम सबके ईश । बसत तुम्हारे पुन
 वसोच । तुम अखण्ड अविगत अविनाशी । परमानन्द छकल सुख-रासी । तुम ल
 परि हरयो चुक-बार । नवो-नवो तुम्हें बारम्बार । (४६१५) धर्म-अखल निर्जम
 निरकर अखल अविनाशी । सेवत बाहि बहै सेव मूर नामा रासी । बस स्वामन है तुमि
 परमा नर पीठार । मैं अखण्ड सब जगत् सब पारी मोहि बापी । मैं जगत् मैं ब्रह्मा मो
 विनु पोर न कोह । जो सीकै ऐसे सबै दाहि बरन नहि होह । मैं सबस सब को यही यह मन
 सहज मुबार । ऐसी जगत् मोहि नो, मन मामा तरि जाइ ॥ (४६२०) 'तुम जानत मोहि
 मन-कुटीरा मन कहाँ से मान । मैं पूरन अविगत अविनाशी माना सबनि मुसाए । (२११६)
 बुद्धि ब्रह्म का हो भंड है । जह बुद्धि में उद्यम सत् भंड है तथा जीव के सत्,
 चित । यह परमात्मा के बड़ीपुत्र है— कटी गोपाल के सब होह (२११७) धर्म-सावी के
 सब तीन सोह है, (२११८) । जोह में ब्रह्म के छ भूतों तथा परमात्मा का विशेषण है ।
 इसकी शक्ति से ही ब्रह्म को प्राप्त हो सकती है तथा संसार के प्राणायाम से मुक्ति ।
 जीव परमेश्वर मिले तथा उपासन है । निम्नलिखित पंक्तियाँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं—
 'मायुहि पुनर पापुही नारी पाठम ज्ञान बिना जब भूषा । परमानन्द तरहि मुख पावतु ।
 (४७१२) धर्म-सावना सेवन जीव सदा बिर बानी' वा एक माल है वेद है, विविधा नहि मार्ग ।
 सब निजो नरदेह से मैं यही न ठावै । (१७१९) तथा 'बट-बट' अनाइ बाह धर्मि ज्यों
 पदा बने उर माहीं । (४२२४) ।

२५२—उपल भी ब्रह्म का पद है तथा बहो इसका निमित्त कारण तथा उपासन कारण
 दोनों हैं । जगत् सब है क्योंकि ईश-निर्मित है तथा इसका मन भी ईश्वरप्राप्त है ।
 मूरधार में भी जीव तथा जगत् सम्बन्धो यही निजमल बर्णित है— 'ठीन लोह हरि बरि

(—गोत प ९, स्तोत्र ९, उपासीनवरातीनवरातों से पु कर्मसु ।
 २१—'पुनः सा पार्य यस्या सध्यात्मन्यथा पदा ।
 यथात्मन्यथापि भूतानि येन गर्भिर्न ततम् ॥

यस स्थान कमल-पत्र, जहाँ न निधि की बात ।' (३४१) तथा—'सुखा बलि ता बल की रख पीजे । (३४) । सामीप्य का धर्म है उनके निकट पहुँचना साक्ष्य उनके रूप वा होने का बोध है तथा साम्य है एकीभूत हो जाना । नन्धन सम्बन्ध में पाँचवीं तथा श्रेष्ठतम मुक्ति साम्य-समुत्पादनी मानी गई है । प्रथम बार प्रसर हुआ एक पहुँचायी है तथा पाँचवीं पूर्ण पुन्य तम एक । इस उत्तम अवस्था में धारणा पूर्वपुरुषोत्तम की सीमा में प्रवेश पाकर पूर्वात्म्य को प्राप्त होती है । इस अवस्था में येव इसलिये किया गया है क्योंकि प्रवेश से मानवानुभव नहीं हो सकता । सूर-वर्णित रास का मुख इसी प्रकार का है ।

पुष्टिमार्ग के चतुर्षु के प्रारम्भ तथा संक्षिप्त कर्मों का व्यवस्थापन से समन हो जाता है—
 किन्तु धर्म भाषों से कम-मुक्ति मिश्रणी है—'मायो ज्ञ, यो ज्ञन तें विनरे । एक कृपाव कलामय केसव प्रभु नहीं बीज धरे । (११७) प्रश्न—'जिन जिनहीं केसव उर पसी । जिन तुम न गोविन्द-कुछाईं सबनि प्रयत्न-रह पसी । (१२३)

पुरुषोत्तम का लीलाधाम ही 'योगोक्त' कहा गया है । इसका स्थान बैकंठ से उत्पन्न है । पुरुषोत्तम सर्वव्यापक है अतएव बोधोक्त भी । यह स्थान-विशेष नहीं है बरन् स्थिति-विशेष है । इस स्थान बीजा-धाम का ही व्यवस्थित रूप गुणात्मक तथा मोक्षमय है । इसीलिए ब्रह्मसूत्रि ब्रह्म की भाषा बोध-बोधिका, पद-पदों इस पदुना धारि धर्मों का विशेष माधुर्य माना गया है । सुरवास भी ने ही इसको बैकंठ से ऊपर स्थान दिया है—'तीन लोक तृण-सम करि लखत मन्थन-मन्थन कर जोए । बँधीबट, कुन्दात्म समुदा, तबि बैकंठ न बाँदै ।' (१४६) प्रश्न—'कुन्दात्म रज हूँ रहूँ ब्रह्म लोक न मुझाई कुन्दात्म ब्रह्म की महत् कसे बरन्वी जाइ ।' (१११) तथा—'कुन्दात्म दुख सता हूँबिसे' (१११४) ।

२१४—रास (१११७ १११५) [रास—मन्थन—रास तथा मन्थन का समूह ही रास है] । यह तीन प्रकार के भावे गए हैं—विषयमन्थ काव्यमन्थ तथा ह्यार्थ । मन्थन सम्प्रदाय में एक बीजा श्रेष्ठतम मन्थन मन्थनमन्थ प्रभाव प्रभाव भी माना गया है । सुरवास में इनका विशेष है—'मन्थनानन्द ही धर्म प्यारी । ब्रह्मानन्द सुख केन मिश्रारी । (४७१२) । 'रास' शब्द का अन्वय 'रास' [एकत्र मन्थन] से हो माना गया है । रास एक मुख्य विशेष है । सम्प्रदाय में रास साम्प्रदायिक धर्म में भी लिया गया है प्रभाव सम्प्रदाय देहाती रास-का भीष्म का उनकी मन्थन-प्रसारिणी-साधन-धर्मियों अवधि बोधियों के धर्म स्थिति बीजा का रासमय । रास के बार नेव क्रिये गए हैं १—विषय रास २—धर्मस्थिति रास, ३—मनुकराष्टमय रास (भक्तों का भावमय या मन्थनिक) ४—देहात्मक या देहिक रास (भक्तों द्वारा किया जाने वाला मुख्य विशेष) । सुरवास में रास का विस्तृत वर्णन है । इसमें निम्न रास तथा व्यवस्थित रास दोनों का एकीकरण है—'सुरास यदि विद्या नम देवत । धनि-धनि सुरास के स्वामी मनुमुद रासो रास ।' (१११२) प्रश्न—'मन्त्री माई धन-धन मन्थन धर्मिनि । नम धर्मिनि धर्मिनि नम मन्थन बोधि हरि-नम धर्मिनि । (१११६) । प्रश्न—'सुरासो धुनि बैकंठ गई । नारायण-कनका धुनि धर्मिनि यहि धर्मि हृदय गई । सूर निरति नारायण हृदय भूले नम निमन । (११८२) तथा—'सबन सुखो न कहूँ प्रवलाक्यो यह मुख लज ली कहाँ बँधी । (१०११) । रास ब्रह्मन्त रास तथा कर्मता वा नानुबन्धन की शक्तियों में से रास-रास की कल्पति

मन्त्र त्वां नमस्कृत्य जहो न विमि क्रो नमः ।' (३४१) तथा— तुवा चमि ता नन को रस पीजे । (१४) । सामीप्य का धर्म है उनके निकट पहुँचना सामान्य उक्त का रूप पा लेने का बोधक है तथा साधुज्य है एकत्रियुत हो जाना । अन्तम सम्बन्ध में पाँचवीं तथा छेष्ठतम मुक्ति सामुज्य-अनुकम्पा मानी गई है । प्रथम बार धरतर बहुत तक पहुँचती है तथा पाँचवीं पूर्ण पुण्यात्तम तक । इस उच्चतम अवस्था में धरता पुन्यपुण्योत्तम की लोना में प्रवेश पाकर पुनर्जन्म को प्राप्त होती है । इस अवस्था में वेद इसलिये किया गया है क्योंकि भवेद से मन्त्रानुयय नहीं हो सकता । सूर-वर्णित रास का मुख इसी प्रकार का है ।

पुष्टिमायैय अल के प्रारम्भ तथा संवित कर्मों का अवलम्बना से धमन हो जाता है— किन्तु धर्म भक्तों से कम-मुक्ति मिलती है—'मापी पू, जो कन रें विवरे । तत् कपाम कलाम्भ केव न प्रमु र्हि जीव परे । (११७) अथवा—'विम विवर्हि केव न रर नापी । विन तुम वे बोविद-दुसाई सबमि भमकनन पापी । (११९)

पुण्योत्तम का बोलावाम ही 'पोसोक' कहा गया है । इसका स्थान बैकठ से उच्चतर है । पुण्योत्तम सर्वव्यापक है अतएव बोसोक भी । यह स्वान-विशेष नहीं है वरन् स्थिति-विशेष है । इस नियम सीख-धाम का ही अवतरण रूप इन्द्रावन तथा मोक्ष है । इसीलिये वनप्रतिम वन की माया मोष-मोषिका पशु-पक्षी वृक्ष यमुना आदि वस्तुओं का विशेष महत्त्व माला गया है । सूरदास जी ने भी इसको बैकठ से ऊपर स्थान दिया है— तीन लोक वृत्त-धन करि सेवत नन्दनवन उर जोए । बंसीवद बुन्दावन वसुना, तबि बैकठ न जानै ।' (१४८) अथवा—'बुन्दावन रज हूँ रहीं बड़ा भोक न मुहार बुन्दावन वृक्ष की महत काने बरस्यो जाह । (१११) तथा—'बुन्दावन द्रुम मला हूविरे' (१९९४) ।

२५४— रास (१९५७ १९५५) [रास—धामन्य—रास तथा धामन्य का समुद्र ही रास है] । यह तीन प्रकार के माने गए हैं—विषयानन्द, कामानन्द तथा आनन्द । अन्तम सम्बन्ध में एक चौथा श्रेष्ठतम धामन्य मन्त्रानन्द अथवा प्रेमानन्द भी माला गया है । सूरदासर में इनका उल्लेख है—'मन्त्रानन्द हूँ भक्ति प्यारी । आनन्द मुख कौन बिचारो । (४७१२) । रास धर्म का सम्बन्ध रहूँ' [एकान्त आनन्द] से भी माला गया है । रास एक मुख्य विशेष है । सम्बन्ध में रास धामन्यप्रियक धर्म में जो लिया गया है अर्थात् अग्रकृत बह्मपाटी रास-रूप श्रीकृष्ण का उनकी धामन्य-प्रसरिणी-साधर्म्य-धर्मिणों अर्थात् धोपियों के साथ निवृत्त जीता का रासमूह । रास के बार वेद किये गये हैं १—विषय रास २—अवतरण रास, ३—अनुकरणान्तक रास (भक्तों का माधवप्रिय या मानसिक) ४—देहप्रिय या देहिक रास (भक्तों द्वारा किया जाने वाला मुख्य विशेष) । सूरदासर में रास का विलुप्त वर्णन है । इसमें निम्न रास तथा अवतरण रास दोनों का एकीकरण है— गुरपन बदि विमान नम दण्ड । पनि-बनि सूरदास के स्वामी बदभुज राधो रास । (१९६२) अथवा— 'मन्त्री माई धन-धन अन्तर दामिनि । धन दामिनि दामिनि नम अन्तर सोमिद हरि-वज दामिनि । (१९६९) । अथवा— मुरली धुमि बैकठ नई । नारायण-कमला मुनि दम्पति यहि रवि हृदय मई । सूर निरणि नारायण दण्डक भुने नैन निवेद । (१९६२) तथा— सवन मुन्यो न नहूँ धनभोक्तो यह मुख धन भी कही रंधी । (१७९१) । रास वरपत्न्य धन तथा कन्या या माधुर्यभाव की धर्मियों में से रास-रास की अनुभूति

मन्त्र स्वाम कमल-नख जहाँ न निशि की नास ।' (३४१) तथा—'सुखा भवि ता वन की रस पीये । (३४) । सामीप्य का धर्म है उनके निकट पहुँचना साक्षात् जगत्का रूप पा लेने का बोधक है तथा साधुज्य है एकीभूत हो जाना । वस्तुतः सम्प्रदाय में पाँचवीं तथा श्रेष्ठतम भुक्ति साधुज्य-अनुष्ठा मानी गई है । प्रथम बार अक्षर बहुत तक पहुँचती है तथा पाँचवीं पूर्ण पुरुषोत्तम तक । इस उच्चतम अवस्था में यत्ना पूर्णपुरुषोत्तम की सीमा में प्रवेश पाकर पूर्णतन्त्र को प्राप्त होती है । इस अवस्था में मेर इसलिये किया गया है क्योंकि अशेष से सम्बन्धानुभव नहीं हो सकता । सुर-वर्णित रास का सुख इसी प्रकार का है ।

पुष्टिमायैय भक्त के शारङ्ग तथा संवित कर्मों का अवलम्बना से समन हो जाता है—किन्तु धर्म्य मालों से कर्म-भुक्ति भिन्नती है—'मावी पू जी वन लें गियरे । तब कृपल कलामय केसव प्रभु नहीं जीव बरे । (११७) धरवा—'बिन बिनहीं केसव डर नामी । बिन तुम प बाबिह-नुसाई सबनि धमक-रव पामो । (११९)

पुरुषोत्तम का सीसाधाम ही 'योसोक' कहा गया है । इसका स्थान बैकठ से उच्चतर है । पुरुषोत्तम सबव्यापक है अतएव योसोक भी । यह स्थान-विशेष नहीं है बल्कि स्थिति विशेष है । इस स्थित सीसा-धाम का ही अवतरित रूप वृन्दावन तथा योसुक है । इसीलिये वृन्दाधुमि वृन्दा की मत्था बोध-बोधिका पधु-पसी वृन्दा यमुना अर्द्धि सगो का विशेष महत्त्व माना गया है । सुरदास जी ने भी इसको बैकठ से ऊपर स्थान दिया है—'तोन मोक वृन्दावन करि सेकत मन्दनवन तर बोधे । बंसीबट कुन्दावन जमुना, तनि बैकठ न जाने । (३४८) धरवा—'कुन्दावन रव हूँ रहीं ब्रह्म लोक न मुहाई वृन्दावन वृन्दा की महत कये बरयो जाइ । (१११) तथा—'कुन्दावन तुम मता हुजिये' (११९४) ।

२१४— रास (१९५७ १९५५) [रास—सत्त्व—रास तथा आनन्द का समुद्र हो रास है] । यह तीन प्रकार के माने गए हैं—विषयानन्द कामानन्द तथा ब्रह्मानन्द । वस्तुतः सम्प्रदाय में एक बीजा श्रेष्ठतम आनन्द मज्जनानन्द अथवा प्रेमात्मक भी माना गया है । सुरदास में इनका उल्लेख है—'भञ्जनानंद हमें बलि प्यारी । प्रह्वानंद सुख कीन बिचारी । (४७१२) । 'रास' शब्द का सम्बन्ध रास [एकलव्य धर्म] से भी माना गया है । रास एक मूल विशेष है । सम्प्रदाय में रास साध्यात्मिक धर्म में भी लिया गया है अर्थात् संप्राकृत देहपाटी रास-रूप श्रीकृष्ण का उसकी आनन्द-असादिगी-सामर्थ्य-वर्णितों धर्मात् बोधियों के साथ स्थित सीसा का राससमूह । रास के चार भेद किये गये हैं १—स्थित रास २—अवतरित रास, ३—अनुकूलरस्यक रास (भक्तों का मात्सर्यक या मानसिक) ४—वैद्ययक या वैदिक रास (भक्तों द्वारा किया जाने वाला मूल विशेष) । सुरदास में रास का विस्तृत वर्णन है । इसमें स्थित रास तथा अवतरित रास दोनों का एकीकरण है—'गुरपय बड़ि बिमल नय देहपट । पनि-पनि मुखराव के स्वामी धरभूत रास्यो रास । (१९९२) धरवा—'मानो माई पन-जन अक्षर बामिनि । पन बामिनि बामिनि पन अक्षर सोमिह हरि-नम भर्षिनि । (१९९९) । धरवा—'गुरसी भुनि बैकठ गई । नारायण-कमला भुनि दम्पति गई रवि हृदय गई । गुर निर्धन नारायण इकटक भूले नैन निवय । (१९८२) तथा—'सवन मुस्यो न बहूँ धरवायो यह गुण बब ली कहीं खँधी । (१७९१) । समय बहवत्प सत्य तथा कम्ता या मानुष्यभाव की भक्तियाँ में से रास-रास की अनुभूति

पानें तथा धवनें

(४) स्मरसाविकित—‘अथ देवीं हर्षि मयि कम्पदौ (१८१३) यवका ‘एक वीरि मुंनय
 मैं माई (४ ०२)। कण्डू-विशेष मैं राधा तथा बोरियों का यह भाव बखित है।
 (५) वास्यसाविकित—‘अथ येरे मुन-यमपुन न जिवारी। (१११)। विनयवरी में यह
 भाव मिलता है।

(६) सम्प्राप्तविकित—‘बाबू ही एक एक कर टारही। (१३४)। योप इसी भाव से बोल
 करते हैं।
 (७) कामसाविकित—‘नेवा हरि रंग-रूप कुम्हे रो माई (२८५५)। समोप-प्रेम के पर
 इस शब्द से अलङ्कार है।

(८) वास्यसाविकित—‘कल देव जगुनसि बुक पावे। (७४४)। यवोवा तथा मंद की
 प्रेम-शक्ति इसके अन्वय है।
 (९) आत्मनिवेदनाविकित—‘अथ मैं नाली बहुत उपाल। (१३३)। भाव अनात्मनि
 की बुधि नीचे। (१६ ७)। विनय तथा विरह संबंधी पर इस शब्द से हेके का चरते हैं।

(१०) सम्प्राप्तविकित—‘कबो हौ माई मन येरो। बंदी कुसंघ नंदनव के बहुरि
 न कीन्ही केरो। (४३४१) यवका। मन मैं रह्यो गहिमि ठोर। (४३५)। राधा तथा वीरियों
 का प्रेम इस बीया तक लुब्ध बाठा है।

(११) परम विरहसाविकित—‘(येरे) नैना निरखु की होति बई। (१८५४) यवका
 निरखि मिल बरखत नन हमारै (१८५३)। इतने बरखत-नाम का निरखु भी बा बाठा है—येरे
 कुंवर कण्डू निरख घन बुक बहाई भर्यो रहै। (१०४८)। यवका-नाम के बाव सब की यवका
 ३—अपराध
 इस यवका में अपराध का भाव हर समय रहता है—नहिं निरखति वह रति बज-
 माल। (१८२१) तथा जिवाण ही बाले तिल बाज। (१८२१)।

४—उत्सवता
 सुरदास को ये वीरियों की इस यवका का विषय क्या है। वह स्वयं कण्डूभास हो
 जाती है—‘कहा कहति नु गोहि रो पाई। (२२५६)। वह ‘रही सो की जगह लमया की
 यवका में वीरता को कहे कही है—‘आमिनो जगद्वी पुरन गेह। (२२५६)। बंदि-बन्धन विर पर धरे
 कति गुनगति गेह। (२२६८)।

२५७—सुरदास की प्रेम की विल बहुराई तक चले हैं तथा मिलने पलों में अन्का बसल
 किया है उन्का शिरो कब्यों में कोई नहीं कर पया है। यवका इसी यवकाओं पर प्रेम
 अन्कत पलों की यवका हुई है। उन्के राधा कण्डू पूरा नालन भी है। इसी विशेष, बुक-बुक
 की महिमा-वर्धन भी किया है—‘यमुनी यमुन ही में पायो। कम्पदि छज भयो उजियारो,
 छजुन केव बायो। ४ ७) यवका ‘अनुक-नरन बने विनु जिवा कहु केवें कोच पावे। (४२२७)
 तथा—‘बा मिल संत पाऊने दामल। योव कोटि यमल करे फल सेरो बरखत पावे। (१६)
 बरखत यमलदास में बुक कल का संभावना यमल बाटा है। इसमें संभाव की भावनायका नही
 यमली बंदी है। मुद्रक यमल में रह कर भी मति की का बरको है। यमली-रक्तय का अन्क
 यमलदास भावना के अनुसार किया गया है। यह सुरदास की का यमला मत नही यमलदा
 बहिष्ट।

जसा कि ऊपर कहा गया है, गुरु के उपास्य देव बास किछोर तथा लक्ष्म प्रकृष्टा बासे सीखमारी भीड़जन हैं। उनके मधुरा तथा द्वारिका नामे रूप की धीर उनका धार्मिक नहीं है। उन्होंने रामा के साथ उनके युगल-रूप की उपासना ही की है। भौतिक दृष्टि से यह गोवर्द्धन में स्थित श्रीनाथ जी के मंदिर में सेवा-कीर्तन का कार्य करते थे।

२—योग मार्ग से संबंधित शब्द

२५८—गुरुसागर के कुछ प्रारंभिक पदों तथा प्रमखीत प्रसंग के उद्धव-योगी संवाद में योग से संबंधित कुछ सम्प्रदायी मिलती है। इन पदों में योग के सिद्धांतों का स्मरण नहीं है। केवल कुछ पारिभाषिक नामों का उल्लेख मात्र है। योग का अर्थ [सं] पुनः जोड़ना है। जिन सार्वभौमिक एवं मानसिक सत्तों द्वारा प्रकृति बल-पूर्वक पराजिता से जोड़ी जाती है उसको ही योग कहते हैं।^१ अनेक प्रकार के योगों, जैसे—राजयोग ज्ञानयोग कर्मयोग तथा हठयोग में से यहाँ हठयोग से ही उद्भव है। हठयोग में शरीरों तथा रसायन को संयमित किया जाता है। उद्धव-योगी संवाद में प्रेम-भक्ति की ओर उन्मुख शिष्यों की उद्धव के इस सार्वभौमिक संयम वाले हठयोग के प्रति विपत्ति होना स्वाभाविक है—भक्ति विरोधी ज्ञान तुम्हारी (४७१२) यथा 'सांख्यि निहृते प्रेम की जीवन मुक्ति रसायन। (४७१३) तथा ऊनी योगहि ना धुरे धुरे तो प्रेम सज्जति। (४१४)।

अतएव इन पदों में श्री योग (३९४ ३८४४ ४ ३३) [सं योग] प्रायः हठयोग का ही बोधक है। परंतु यह है इसके घाट संग गाने हैं।^२ गुरुसागर जी ने अष्टांग योग (३९४) का ही उल्लेख नहीं किया है। किन्तु घाट संगों के नामों का निर्देश भी किया है—'भक्ति-यंत्र की ओर धनुषी। सो अष्टांग योग की कर। यम नियमासन प्राणायाम। करि ध्याना होइ निष्काम। प्रत्याहार धारणा-ध्यान। करे बुझाकि वासना भान। कम-कम ही पुनि करे समाधि। गुरु स्वाम भवि मिटे उपाधि ॥

यम तथा नियम^३ आचार-विचार संबंधी संग हैं। यम के अन्तर्गत अहिंसा अरु अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आते हैं तथा नियम में पवित्रता, संतोष लक्ष्म स्वाम्याम तथा ईश्वर प्राणिमान धारणक हैं। ईश्वर के प्रति बिना स्थित करने में ध्यान से ही सहमता मिलती है। इसमें धीरे की विभिन्न स्थितियाँ होती हैं। चित्तसंख्या में बीराधी वासनों का उल्लेख है जिसमें प्रमुख चार सिद्धासन, पद्मासन उद्गासन तथा स्वस्तिकासन हैं। गुरुसागर में पद्मासन (४३२८) [सं पद्मासन] को पचा है—'पद्मासन एक स्थित मन स्वाधी। नेत्र मूर्ति अन्तर्यामि प्याधी' (४९६०)। इन वासनों द्वारा धीरे के विभिन्न संग एकत्रित होते हैं।

२५९—प्राणायाम द्वारा वात-प्रसाध को संयमित करने का विधान है। गुरुसागर जी ने इनके नामों का उल्लेख किया है—रेचक (४३२८) कुंभक (४३२८) तथा पूरक (४३२८)। बाहर छोड़ी जाने वाली वायु रेचक तथा भीतर जाने वाली 'पूरक' कहलाती है। जो वायु

१—कछेर का रहस्यवाह पृ ३४

२—अज्ञान-योग दर्शन २—साधनपात्र गुण २९ 'यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समापनोपार्थम्य'।

३—इष्टिया एव नोल ह्वालिनि, पृ ३२३ योग की मुख्य धारणाओं में वास्तुनि ने 'यम' 'नियम', 'संयम' तथा 'योगी' पदों का उल्लेख किया है।

विषय धृति कुंडलिनी जाग्रत होती है तथा यही भीरे-भीरे ब्रह्मरन्ध्र की ओर बढ़ती है ।^१ ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्ररत्न-कमल तक पहुँचने पर मन तथा शरीर पर अधिकार प्राप्त कर योगी को सिद्धि मिल जाती है । कुंडलिनी ज्यों-ज्यों ऊपर जाती है योगी को विभिन्न धृष्टियाँ प्राप्त होती हैं ।^२ मनुष्य-शरीर में इस वायु है, इनमें से पंचवायु (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान) प्रमुख है । योगी इनको प्राणमयाम द्वारा ऊपर उठाता है—‘अथ अथराधन पौन’ (४१ c) अथवा परी पुकार द्वार गृह-गृह से सुनो सखी एक ओगी भावो । पवन सघावन भवन छुड़ावन रवन छाव योवर्त्त पम्पौ ॥ घासल बाँधि परम ऊरस चित्त बन्त न सिगहि कहा हित स्वायो । कन्क-वेदि कामिनि बजबाला, जोग धनिनि पहिने की बायो ॥’ (४१११) तथा—

घासन बैसन व्यान बारना मन घापोहल कीजै ।

पट वल अरु द्वावस वल निरमल अथवा बाप अपत्नी ।

त्रिकुटी संगम ब्रह्म द्वार सिधि, यों सिधि है बचपत्नी ॥ (४४८४) ।

सुषुम्ना नाडी में स्थित छः कर्कों में त्रिकुटी (४१४८) [सं त्रिकुटी] के प्राज्ञा-पञ्च को सिद्ध कर लेने से बड़ी से बड़ी सफलता मिलती है । इसको बाराहसी भी कहते हैं (इसके एव ओर द्वा बहणा के समान है तथा दूसरी ओर पिपसा धरी क समान) । सूर ने कात्सी का उल्लेख किया है—‘जि माहक निरगुन के उजो से सब बसत ईसपुर कासी ।’ (४५४१) । यहाँ ही विश्वनाथ निवास करते हैं । इन छः कर्कों के बाव ही कुंडलिनी वाम्बु-मुख में स्थित सहस्र-रत्न कमल या ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचती है । योग की यही चरम स्थिति है । यही ब्रह्म की स्थिति है । इसका रूप विष्णु () के समान है । इसमें स्थित चंद्र से सर्वत्र समुत्पन्न प्रवर्धित होता है जो मूल-धार चक्र के मूल द्वारा बह्य होता रहता है जिससे ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है । सप्तद् अनाहृत्^३ (४१४८) [सं अनाहृत्] समाधि की अवस्था में योगी को सुम्न [सं सुम्न] अथवा ब्रह्मरन्ध्र क सूक्ष्म-रूप आकाररूप में सर्वत्र होने वाला संगीत-नाद सुनाई देता है । इसके द्वारा उसका चित्त ईश चिन्तन में लब्ध रहता है—‘कहत हो अनबड़ी अनहृत् सुगत हो अपि जात ।’ (४५२) । ब्रह्म यहाँ निवास करता है—‘नैन नासिका अथ है तहाँ ब्रह्म की बस । अविनासी बिगड़े नहीं सहज मोहि परकास । अथवा हरि तजि मनहु अकास’ (४४११) । सूक्ष्म का हो समानार्थक ‘आकाश’ भी है ।

सूरसामर में उल्लिखित हृद्य-कमल से सम्बन्धित हृदय-स्थल पर स्थित रत्न बज्र क कमल से गन्धर्व है जिससे बार बार हैं । इसका नाम अनाहृत्-पञ्च भी है । योगी को इसके चिन्तन से भूत भविष्य-काल मानने की शक्ति तथा ‘विचरी’ (आकाश में कम्पना) शक्ति मिल जाती है ।

‘म पसाय मे योग-नाम्ना पर कुछ प्रकाश पड़ता है—‘हय धनि गोकुल नाम धराध्वी ।

१—य सं जी २ १।४.५, ६ ‘इसमें दुपार गुप्त एक नाँवो । अथवा पड़ाव बाद मुक्ति बाँकी । भेरी कोई जाह भोहि घाटी । जो से भेद चहै होइ बाटा । नष्टर सुरग बुद्ध अणपत्ता । तेहि म्हु पच कहौ तोहि पाहा ।

२१६।८ इतरी दुपार तादका सेपा ।

२—बहु, २१२।१, २ ‘सिद्ध अथ महि बैठे भाषी । सिद्ध पतक नहि लागे प्राँकी । सिद्धहि हाँ होइ नहि द्रव्या । सिद्धहि होइ न भूष मो माया ।

३—बहु २१२।६ गुण पर लब्ध घट्ट घट केरा । मोहि घट भोज घट नहि वेरा ।’

समाने का विधान है— बिहिं छिर केस कुमुम भरि मूँरे, केसैं मस्य बड़ ये । (४३१) धषवा—
‘बचन छेकि बिबुति पठावत’ (४१११) । बखों में खीर पुरातन (४१११), त्वचा-भृग
(४१ ८) धषवा कथा (४११२, १८४४) का स्थान है । कानों में कुम्भ के स्थान पर मुद्रा
(४१०८ ४१११) माटी की मुद्रा (४२११) पहनी जाती थी धषवा ‘कस्मीरी मुद्रा’ (४४११) ।
हाथों में ‘मिच्छा’ के लिए पात्र (४१११) धषवा क्षप्पर (४११२) धामत्यक था । यह मरिचक
का बनाया जाता था । इसके प्रतिरिक्त चमत्कार बिसाले के लिये योगी के पास दंड (४१)
भी रहता था । यह धामत्यक का बनाया गया छोटा डंडा था । प्रामः इन सभी वस्तुओं में सिंगी
(४१११) धषवा भृगी^१ (४१ ८) [सं भृग] का उल्लेख भी है । यह सीप का बना हुआ
छूँकने वाला एक बाण-विशेष था । मोनों को बानों को अटा रूप में रखने की प्रज्ञा थी—
तवन कहत संबर धामुपन गह नह मुठ ही कीं । अथ मस्य करि सीप अटा भरि सिक्कत
निरखुल कीकी (४११२ तथा—‘जो ये नठ हरि सुवननि गूँबी सीप अटा सम कीन परैवो ।
४२१७) ।

अधारी (४२२१ ४२११) एक प्रकार की टिकटी सी थी जिस पर घोड़ी बठ्ठे या
सोते थे—‘ऊनी भोज सिखावन प्राए । सिंगी भसव अधारी मुद्रा बै बधुनाथ पठाए । धषवा
‘भृगी, मुद्रा, मस्य अधारी हमही कहा सिखावत’ (४४११) । सेखी (४११२) या सेखी
(४११) योक्वियों की भासा को कहते हैं ।

परिशिष्ट

निम्नलिखित पद्यों धषवा पद्यार्थों द्वारा व्यंग्य की गई भावार्थों को एक साथ पढ़ने से
स्पष्ट बिग सामने आ जाता है । साथ ही इस संबंध में धोषियों की मन्त्र स्थिति पर भी प्रकाश
पड़ता है । उनका कृष्ण के प्रति प्रेम ही किंस बोध से कम बुझकर था—

(१) छिरि छिरि कहा सिखावत भोज ।

बचन दुधह मावत बलि तेरे, ज्या पवरे पर बीन ॥

वृ दी-भृग मस्य, त्वचा-भृग अथ धषवाधन पीन ।

हम धषवा महोरि सठ मधुकर, परि भालवि कई कीन ॥ (४१ ८)

(२) हम तो तबहीं तैं भोज लियो ।

रहित छेद सिरोच्छ सब तन भीरंड भसम पड़ाए ।

पहिरि मेखवा खीर पुरातन छिरि छिरि केरि छियाए ॥

भुति चर्चक मेति मुद्रावलि धषमि धषार धषारी ।

बरतन मिच्छा माँस कोमलिं भोजन पात्र पसारी ॥

बांधे बेनु फंठ छिनी पिय मुमिरि-मुमिरि हुन पावत ।

कछस बेंठ बंड डर डरत न गुनत स्वान दुःख धावत ॥

रदत नु पित उरस छिरि वन बीपिनि पिय धष राखि ।

बारक मानत कुटुम्ब जातरा, सोऊ धष न मुहति ॥ (४१११)

(३) ऊयो करि रहैं हम भोग ।

कहा एही बाव ऊयो देखि गोपी भोग ॥

१—व० घ टी , ११११, ‘क्या मने तेहि मसम मलीया ।’

२— वही ११११, ‘पिछराव जोगिह कर बाधा ।’

वसंत
 वीर होनी-मैस, मुद्रा कम-वीरी वीर ।
 मयम बड़ाह बैठी सड़क कंठा वीर ॥
 ने मरली नेत कपूर हाव ।
 बेहि बीनमया

विषय के लोकोपदेश, मुद्रा का प्रयोग
 विषय के लोकोपदेश, मुद्रा का प्रयोग
 विषय के लोकोपदेश, मुद्रा का प्रयोग

(५) बुद्धिमान ही कहि कहा बोव की समझी कहे
 बुद्धि विनी देर मुझी बेहि सीगल
 बसही हुरि दार निम्ना बेहि सीगल
 बुद्धिमान ही कहि कहा बोव की समझी कहे
 बुद्धि विनी देर मुझी बेहि सीगल
 बसही हुरि दार निम्ना बेहि सीगल

(५) एक समय हुरि मने हाथि बाधक होली ।
 सब केहे बाटी के पुत्रा मरुकर हाथ पठाए ॥
 सब केहे बाटी मने कर बरानि जाक होली ।
 सब केहे बाटी मने कर बरानि जाक होली ॥

[illegible]

३-**वार्षिक कृत्य**
 हिन्दु-समाज की वार्षिकता का अर्थ यह नहीं है कि वार्षिक कृत्य ही समाज का अस्तित्व है। वार्षिक कृत्य तो केवल एक साधन है, जिसके द्वारा समाज का अस्तित्व बनाए रखा जाता है। वार्षिक कृत्य के अभाव में समाज का अस्तित्व नहीं रहता। वार्षिक कृत्य के अभाव में समाज का अस्तित्व नहीं रहता। वार्षिक कृत्य के अभाव में समाज का अस्तित्व नहीं रहता।

१-य स टी १२६१२०१६०१।
(सोवियत एक बार है कोई।
कोबल तप लीं
नेवामी

॥ भगवा की सम...
 में आदि का उल्लेख किया जा...
 च टी १२६/१-७५०६१
 'कोमिनि एक बार ही कोई। गये वेत किमोमिनि होई।
 पवित्र नवल मोहन तप सीमे। करि प्योरा कथा कहे।
 निजु मरुति कदा देखा। ब्रह्म कौन बय न मनो।
 मुंदा कल्प देव न निर भीड। बय न पयई मरुति बने।
 पवन न पछुं बजा कदा। करी सो कवन पन कहं बरा।
 किमो लख नवाही करा। नवो नयन नयन सुनाव।
 नैव कक पारिडुं तिसि हरे, नुं दारल कन दाव ॥
 २६१५५, 'नवो नाथ बनि मायाई भी पोरसो सिद्ध'।
 २६१५५।

२-य स टी, २६४४५,
३-द्वि सां प्र, पृ १२।

कृपा से ही मित्र पायी है। भोजन के प्रारम्भ में धाराप्य को भोग सजाने की प्रथा इसी यन्त्र पर स्थापित की—‘पहिले महि भोग जयाजन पाव (५६७), यथवा ‘पहिले कृष्ण-हित ध्यात सवायो। (८६६) तथा—‘मनसा करि प्रभुहि अपि भोजन कर बटे। (५४)।

शेषठाणों की पूजा भी इसी प्रवृत्ति की परिचायक है। मुरखमर में सिवसंकर (१३५४) त्रिपुरारि (११८५) गौरीपति (११८४), महादेव (११८४) गौरि (४०६८; ४०६९) सिवगौरि (६६८) रवि (११८५) साखिभाम (८८१) इन्द्र तथा गोवर्द्धन-पूजा (१४१८) प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। शिव-पूजा का विशेष बोधियों द्वारा कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने की कामना को प्रकाशित करता है। वह ‘माखुर-पत्र-पत्र’ तथा ‘कमल-मुकुट’ लेकर धारणा करती है तथा ‘नेम-यम’ से रहती है—‘पीठे-नति पुर्वति बजनारि—महादेव पुर्वति मन बच करि मुर स्वाम की प्राप्त। (११८४), यथवा शिव ही विनय करति कुमारि। बारि कर मुख करति बसुति बड़े प्रभु त्रिपुरारि। छही पियु तप करति नीकै येह नेह बिसारि। (१८५)। फिर इस तपस्या का फल प्रबन्धों मिल जाता है—

‘सिव संकर हमकी फल होन्हो।

मुकुट पाव नाला फल पैवा, पटरस धपन कीन्हो। (१४१९)। इसी प्रसंग में रवि पूजन का वर्णन भी है—विनय संवत्त छोरि रवि ही करति है सब काम। हनहिं होहु ब्यामु बिल-मनि तुम मिथित संसार। (११८५) यथवा ‘रवि ही विनय करति कर बोरे। (११८६) तथा ‘नम सखित जुगती सब न्हाई। मन यन सविता विनय गुनाई। मूढ़े नन ध्यान उर धारे। कब-नानन पति होहिं हमारे। रवि करि विनय सिवहिं मन सीन्हो। हृदय मान्द प्रबसोकन कीन्हो। त्रिपुर-सवन त्रिपुरारि त्रिलोचन। गौरीपति पशुपति धप-भाचन। बरस-बसव अहि मूवन-बायी। जटा धरन सिर गंवा प्यारी। (१४१७)।

नवम स्कन्ध में सीता द्वारा सूर्य-विनयी का उल्लेख है—‘बई असीत तरनि समुद्ध छ बिदयीबी बोट भ्रष्टा। (५११)। यथोवा जो सूर्य का ध्यान करती है—सूर महारि बलिता ही विनयति भगो स्वाम की जोयी। (११२१)। यथोवा का पुनः-कामना के लिए

१—हर्ष ही ध, ग ३६, ३७ बालेइबर में सप्तवीं शती में ही शिव-पूजा का जन्म प्रचार था। बाद में इसका विस्तृत वर्णन किया है। (‘गूढ़े गूढ़े मन्वानपुत्रयत्न धरदपरयु’)। शिव-भक्त गुणगुल जतारते थे शिव को गुण स्नान करते थे तथा चिस्मफलतब चढ़ाते थे। श्रम्य सापधियों में स्वर्ण स्नपन-कलश, धर्मपात्र, पुष्पपात्र पुष्पपट्ट, यथिधरोय, बहामुष तथा मुखकोष धारि दिवलिग पर चढ़ाए जाते थे। मयुर-कला में कुमार काल से हो एकमुषी, चतुर्भुजी तथा पञ्चमुषी प्रिर्गलिक मिलने लगते हैं। गुप्तकाल में एकमुषी दिवलिग धार्मिक लोकप्रिय थे। पागुपत धीक-धर्म की यह विशेषता (परपर में ही मुख बनाना) ज्ञात होती है। फिर उन पर तोने क चीत चढ़ाए जाने सये किन्को ‘मुखकोष’ कहते थे। इसके धाये बाल ने धेरनाचार्य नामक महाधिय का वर्णन किया है।

२ १ ८, प्रथम दत्तात्रयी ईसा के बाद से बहुतो तथा पूरे उत्तर भारत में पागुपत धीका का प्रचार हो गया था।

नन्द द्वारा सालिग्राम (८५१) [सं० घातिग्राम] पश्चात् हरि-पूजा (८७४)^१ के बार्जुन-विस्तार कई वर्षों में (८७८-८९१) मिलते हैं। इन्हीं नन्द का घनान्न^२ कर यमुना त्रय भाटों में लाया कई घाटि पुष्प संग्रह कर चरण धोकर मण्डिर में जाना घनान्न^३ को भीष कर पात्र^४ धाकर दक्ष के फाड़ करना घाटि विहित है। (८७८) यह पूजा विधिवत् पौ बहुवांशि (८७८) को। यहाँ ही पण्ड बजाकर देवता को स्नान कराया तथा दक्ष व शंखन

को दृष्टि से भी इसका महत्त्व था। यहाँ की बनी मूर्तियाँ कीलाम्बी बाराणसी धाम्नी घाटि अनन्त स्थानों में भेजी जाती थीं। हिन्दुओं के प्रिय सभी देवी-देवताओं—जैसे त्रिवेद विष्णु ब्रह्मा शिव, सूर्य व त्रिपु, अग्नि कार्तिकेय सूर्य कृष्ण कामदेव दुर्गा, पार्वती तथा बोटों के बुद्ध, जनों के जोशीय तीर्थंकर आदि सबके स्वरूप निश्चित हो चुके थे। गुप्तकाल में इस मूर्तिपूजा का ही विकास हुआ। उसमें विवरूप विष्णु तथा महाविष्णु की मूर्तियाँ भी बनने लगी थीं। इनमें विष्णु के तीन मुख मिलते हैं—शीघ्र का साधारण तथा एक बाराह व एक मुर्तिह का। पीछे प्रथमेश्वर पर त्रिवेद सुष चंद्र अग्नि व वज्र आदि हैं। मध्यमस्तोत्र धार्मिक इतिहास में भी मयुरा बुधायन वैष्णव धर्म के प्रमुख कर्त्तृक थे। वैष्णव धर्म के चार प्रमुख उपग्राम थे—१ वैष्णव प्राचीनतम संप्रदाय वा। बुधायन का रंग लो का मंदिर प्रयाग वा। रामनृज ने इसकी नींव डाली थी। २ निम्बार्क—निम्बार्कचार्य ने नींव डाली थी। मयुरा के पास प्रभु होने पर प्रयाग मंदिर वा। ३ मन्मथार्क का माध्य संप्रदाय वा जो मयुरा भर में फैला था। ४ कर्त्तव्यसंप्रदाय—मोहम्मद में भीमाय लो का मंदिर प्रयाग था।

२—हर्ष का स १ १ १६, धार्मिक संप्रदायों में बाल ने गृहस्थ जीवन के बाद वानप्रस्थ में प्रविष्ट होने वाले 'वैद्यानर्यों' का उत्प्रेष किया है। उन्होंने भावस्त धर्म तथा पाँचरात्रों की व्युत्पत्ति के साथ साथ बहिक पत्तों को भी अपने धर्म में ग्रहण कर लिया था। बर्हिष्ठ तथा जनक उनके आदर्श थे। वैष्णव में भी बार भेद थे—भायवत पाँचरात्र वैद्यानर्य, तथा तत्त्वतः। पाँचरात्रिक चतु व्युत्पत्ति तथा उनमें से कुछ एकत्रिम्ब^५ कहे जाने वाले वासुदेव विष्णु, को मानते थे। छत्रपत्तों का प्राचीन नारायणीय धर्म था। वे विष्णु के द्वाय प्रकृतियों—बाराह, मुर्तिह आदि को भी मानते थे। मयुरा-कला में इन प्रकृतियों से संबंधित विष्णु की मूर्तियाँ मिली हैं। १ ११ पाँचरात्रिक संप्रदाय के लोग वासुदेव सर्वत्र प्रद्युम्न अर्निष्ठ तथा ब्रह्म (वैष्णव) की उपासना करते थे। इनमें से वासुदेव तथा सर्वत्र-पुत्रण प्राचीन था।

३—क भी १ १२ प्रथमा १३ अत्रिओं में पूजा के पात्रों में कोपर, लदा, बरलोवकी (ठाऊर भी को गहलाने को लाने को छोटी कटोरी) वंशपात्र (बरलामृत देने की चम्मच), परलो (वैष्णव देने की कटोरी) धारी (भयवज्र के विहातन के एक घोर रखते हैं) बगटा (पूजा के बस का लोहा), हुरता (धवन पिछने का) आदि उत्प्रेक्षणीय नाम हैं।

सकता है। विपत्ति टलने पर राम देने की प्रथा की ओर भी धर्म ने संकेत किया है। मन्त्र ब्रह्म के पाप से छूटकर जाते हैं तो यद्योहा धानस्थित हो बान करने का प्राणह करती है—

यत्न तो कुछन परो पुन्यनिर्ले^१ विजनि करो कुछ बन् । (१६ १) ।

पुण्य कर्मों का प्रभाव मनुष्य जीवन पर पड़ने की धारणा भी हमारे अनेक विश्वासों में से एक है। तोपस्वप्नों के माहुराह्य का उत्प्रेष विनय परो म है। स्वप्नों के माम म हस लम्बप में बरम्मा आ पुत्रा है।

२६७—अप-तप^२ भी धार्मिक कृत्या में सम्मिलित हैं। गोपिया की कृष्ण को पति-हव म प्राप्त करने की कामना इतनी तीव्र थी कि वे इसक सिध अप-तप, स्ना पूजा आदि सभी करती थीं—‘निम बरम तप साधन कोने’, ‘अत सापति नीके तन पारी। प्रात उठे अमुता तन पारें। सीत उठन कहु पद म तोरे ।, ‘पति के हूत नेम तप सारें।’ तथा माघ सीत की भीत म मर्ने। पटश्रुतु के पुन सम करि जाने। (१४१७)। इस प्रकार उहाँ क्षुण्ण में साधना माघ की ठंड के भी म डर दीन बार स्नान तथा निषाओं के अनुसार रहना तथा भद्रा पत्रक पोहू रखें जलमा म भोजन ग करना आदि उनकी उपस्था में वर्णित है—सीति भीति नहि कर्पत उही प्तिु त्रिभि कल जल छोरे। सीते-पतिपुवति तप सापति कछ रहति निव नेम। मोम-रहित निवि आगि अमुंवि अमुमति मुत के धेय। (१४)। मूर वर्णित गोपियों की यह उपस्था कर्मिबस्त वर्णित पावलो-उपस्था का स्वरण कराती है।^३ प्रजासिनी गोपिकाओं के तप तथा व्रत का ‘नीके कत कीम्टो तनु गारी। छत स्वामी बरि में विरवाये। (१४१७) वर्णन तो अनेक बार है ही साध ही कुछ विधेय कर्तों का भी उल्लेख है। इनमें एकादशि (१६०२) [सं एकादशी] के वर्णन-विस्तार मिलते हैं—‘उत्तम वक्त एकवति माई। दिविगत कत कीम्टो मन्तराई। निराहार जल-पाक विवर्जित। पापनि रक्षित पर्य-कल-पवित्र।’ (१६ ३)। निर्जन रहने के साथ ही मन्त्र ने दिन रात निरन्तर मारमय का अप किया तथा रात्रि जाग्रत में व्यतीत की। तदनन्तर वैव बन्दिर पाठम्बर से सुसज्जित कर पुत्रुप-माछ-भंडारी बनाई

१—इडिया एव गोम हु पातिलि पृ ३८७ पातिलि ने भी पुण्यकृत, ‘सुकर्माकृत’, तथा पापकृत आदि कर्मों के भेद किए हैं। ‘महापलक’ बयकर पाप कर्म के उल्लेख के साथ सुकृत्यों में ‘प्राज्ञा’, ‘आज्ञा’, ‘तप’, ‘त्याग’, ‘विवेक’, ‘धर्म’ छम’ वम आदि माने जाते थे। पातिलि ने ‘धर्म’ छम की दो प्रथों में प्रसुक्त किया है—१ धर्म-मूर्तों में दास्य आचार प्रथवा लक्ष्मीन सपाय द्वारा निर्दिष्ट नियमों के अनुकूल, २—धार्मिक प्रथवा नैतिक कर्म। अन्य विश्वास्तों में पातिलि ने आरोर के प्राकृतिक धिन्हों से भविष्य सुचना भविष्य-वेत्ताओं से गुप्त करते तथा कुछ दिन-रात गुप्त मालमा धावि का उल्लेख किया है।

२—इडिया एव गोम हु पातिलि पृ ३८६ पातिलि ने जी-^४ कृत्यों में अप (मर्तों को बार बार पढ़ना) ‘बाल्यायल’, ‘बलि’ आदि का उल्लेख किया है।

३—पुण्य के शीतल अथ भाले पय हैं—‘प्राप्तन स्वापतं पातमर्षमाधमनीयकम् ।
मनुष्यार्थमस्याल कथनाभरतानि च ।
पन्थुने कृपवीपी नैवेद्यं बान्तं तथा ।

४—कालिदास पुषारसंज्ञक बचम धार्य श्लोक २२, २६, २६ ।

ब्रह्मा था। राम्याधीन राजा सम्मिलित होकर उपहार भेंट करते थे तथा धर्म्य धर्मके प्रकार से उत्सव मनाते थे। धर्मधर्म यज्ञ भी बहुत से प्रारम्भ होकर एक वर्ष तक चलता था। इसका प्रधान ध्येय धर्म्य राजाओं पर धर्मिष्ठत्व प्राप्त करना था। एक घोड़ा बना के साथ छोड़ दिया जाता था। जो राज्य धर्मिष्ठत्व मानने से इनकार कर देता था उसका मुञ्च करना पड़ता था।

२६२—मूर ने सभी तीर्थ-स्थलों में यज्ञ का माहुरम्य सबसे धर्मिक माना है जहाँ विष्णु ने अपने सगुण रूप में अनेक नामाएँ कर सबको धर्मित धार्मिक दिया— कृष्णरत्न यज्ञ को महत्त्व काये बरम्पो बाह' मन्वा भूमावन रज ग्ग रक्षो इत्यनोक्त ३ गुहाइ' (१११) तथा बंशोबट भूमावन जमुना उजि बेकुठ न जाव। (१४६)।

जित्तय-यज्ञों में कवि ने नाम-महिमा को सधोपुष्ट संव्य करने वाले प्रचलित धर्मिक कृत्यों के ऊपर रक्षता है— गोविन्द भजन करो इहि बार। तंकर गारवती उपरसठ छारक मंत्र लिखी स्रुति द्वार। धर्मधर्म जगद्गो जो कीजे मया बनारस धर्म केसार। राम-नाम हरि कोऊ न पूजे जो तनु पाये बाइ द्वार। स'स बार जो बेनी परखी, चंदमन कीजे सी बार। (१४६) मन्वा जो सुख होत पुपासहि पाई। तो सुख होत न उप-उप कीमद, कोठिक लोदध श्रुति' (१४६)। कवि ने यही भाव धर्मित प्रदर्शित भी माना है— हे हरि नाम को आचार। सकल स्रुति धर्म मयत पामी इतोई पुत्र-छार। (१४७)।

इस प्रकार कवि की सम्प्रति में कर्मकाण्ड की उत्तरी परिभाषा नहीं जितनी कामना-हीन भक्ति भाव की है— जो जी मन कामना न पूरे। तो कहा बोम यज्ञ-यज्ञ कीमते बिनु कम तुल को कूट। कहा बनान बिजें तोरय के धर्म धर्म जग' पूरे। कहा पुरान पु पई पठारह, धर्म धर्म के पूरे' (१४२)।

२७०—सराध' (१६) [सं भाष्य] मन्वा नांरीमुख पितर (१४२) [सं भाष्योपुष्ट + पितर] भी एक धर्मिक कृत्य माना गया है। इसमें धाम्नामृतार पूर्वजों के लिए कृत्य किए जाते हैं। परिचित कथा में सराध' का उल्लेख है— जब सराध न कोऊ करे। कोऊ धर्म न मन में करे' (२६)। नांरीमुख भाष्य एक धाम्नामृतिक भाष्य है जो किछो धर्म कर्म के प्रारंभ में करते हैं—बेसे धर्मप्रधान उपमन या विवाह। पूररा भाष्य धाम्नामृत' है जिसे मृत्यु प्राप्ति सोक धर्मधर्म पर या बेने भी कभी कभी करते हैं। धर्मधर्म कथा धर्मधर्मधर्म में नम्र द्वारा इस कृत्य के करने का उल्लेख स्वाभाविक है— ठग म्वाह नम्र मय ठग. धर्मधर्म सोच हरे। (१४९)

४—अन्य विश्वास

२७१—मूरधमार में हिन्दु धर्मात्मा में प्रचलित कुछ तरकसीय धर्म-विश्वासों का भी निर्बंध हुआ है। इनमें से धर्म को बुद्धि मजर से धर्म को न लिए केहरि-नल, धर्मधर्म (७११ ७१६) पहलने की धर्म पहाते ही की बा कुकी है। धर्म पर टोना' (४४ २२ ४) [सं स्तक—उत्तर + क— मोहन मोहन, मंत्र धर्म टोना मंत्र तुम पर बारत' (२२ ४) कर देने में विश्वास था। धर्म धर्म के कथा धर्म से समधीत हो माता का कुराहि धर्म धर्म

१—ईशिया एक नील द्रु पाणिनि ५ ३८६ अष्टाध्यायी में 'सिन्धु' को ईशता माना गया है तथा भाष्य में मोहन कहे जाने वाली 'वाही' या 'वाहिक' कहलाते थे।

२—नांरीमुख भाष्य को 'काम्य' (पूर्वजों का प्राप्तिर्भाव लेना), 'धाम्नामृतिक' (तमूहि के लिए) मन्वा 'वृद्धि' भाष्य भी कहते हैं।

३—प सं० टी, ४४५।६ सिद्धा कावर्क पाणिनि टोना।

मते हैं। इसी प्रकार उदय के क्षण से पृथ्वी भूस्वाभय में पच्छे घट्टनों को देख सोय किसी पुन
मृषणा की प्रतीक्षा करते हैं। इस मृषी में 'बार बार घमि घाने सरानि' काल उद्गारन मानी'
(४ ७२) तथा 'भूज फरकट घमिया तरकडि कोउ मीठी बात मुनाबे (४७७२) तथा 'तो नू
उहि न बाह रे काव। जो गुमान पाकुन को घाने तो गुहं बहुभाग। बधि घादन भरि दोनी
देही, यह घंघन की पाव। (४ ७४)। इन घट्टनों से हो यह कृष्ण के घाने के समाचार का
निरूप्य कर भती है—स्वाभसुंदर को घायव जानिय से निरूप्य पर घाव। इस घट्टन को
यह मरोसो, नैननि हरस बिघाबे। (४ ७२)।

इच्छा सब वज के मोषों को कुकषय में मिलने का संदेह भेजते हैं तो बड़ी पहले से ही
बहु सोम पुन-समाचार को प्रतीक्षा कर रहे थे। घट्टनों में यही भी कोए का बोधना व नैन तथा
घरीर के घंघों का फड़कना प्रमुख कर से व्यंजित है—रामस बहुपहात मुनि सुदरि—कुच घुन
नैन घबर करत है, दिनहि घाव अंचल ध्वज डोली। (४ २४)।

घबरा—माफी घ बनहार भय। घंघन उ क मय होत बहुबहो करवत नैन छए।

वेई देखि सोच जिय घाने परय छगुन बर। (४७६)।

सहामा भी कृष्ण के पास जाने समय सगुन से ही घावराहित होते हैं (४८४५),
किन्तु यही इनकी मुचो नहीं हो गई है।

२७१—घट्टन घमिष्ट की मृषणा देने हैं। मुख्यतः में बहिष्ठ मृषी द्वारा उस समय
व -सामारन में प्रचलित इन निरुवाहों का अनुमान ही जाता है। 'काली-बहु-सीता तथा
बाललाल-गम-सीता के पहले माता पिता को सगुन घटना की सापेक्षा छोड़ से हो जाती है—
'महुर वैठ छदन भीतर, छेक बाह बार। (११४२) तथा—छीक पछि छी घावु सवारे।
(१२१३)। कालीबहु-गम्या के पहले घट्टन-सम्बन्धी (११५० १६) कई पद हैं। इनमें
'मंजारो घाने हू घाई, बार काव बहिष्ठ घम-स्वर (११५०) 'पठ पोरि छीक भई बाए,
बहिष्ठ घाव मुनाबत। फटकट छान स्वान हारे पर पररो करवत सराई। माने पर हू काव
उदम्या कुचघुन बहुतक पाई। (११५६)। प्रथम-स्वस्थ में भी कृष्ण को मृषु से पहले
मुबिष्ठर मादि अपसगुन देखकर मानी घुर्बटना से चिन्तित हो उठते हैं—येई कृष्ण घुरन

छेमकरी कह छेम बितेबी। स्यामा नाम मुत्तक पर देखी।

सम्पुष्ट घायव छि घब माना। कर मुत्तक बुह बिघ प्रदीना।

प छं डी ११३।१-२ 'घाने छगुन छगुनियां तका।—कवि कइ बिघास।'

बम्बकी द्वारा भी गई इस मृषी में बही, मयसी जस से मय कलघ, घोर, छर्प
के मल्लक पर अंजन का बैठना बाई घोर बीड़ता गुषा छिरन तेंदर व घने का
बाई घोर बोलना, सांड का घिरना पसुर, छेमकरी भील व मोमड़ी का बर्जन
तथा कुररी व लींघ पछी का बोलना आदि उल्लेखनीय हैं।

'घोडा मूमा' हजमोरेनि धम्या जाने करवना मुहूर्त बिन्तामरि पाषा
प्रक ब्लोक १ ४।

१—हर्ष सां घ ५ २६ प्रलाकरवर्धन की मृषु से पहले तथा हर्ष के सैनिक
प्रपाल से सगुनों में होने वाले घनेक घपल्लुनों की सगुनी मृषी से बालकालीन
बिहाराओं पर प्रकाश पड़ता है तथा मुर के समय में माने जाने वाले घपल्लुनों
से उनसे मुलना की जा सकती है।

मते हैं। इसी प्रकार उद्यम क ध्यान से पहले बुद्धावन में प्रणवे प्रभुओं को दण्ड भोज किसी पुत्र मूकना की प्रतीक्षा करण है। इन मूची में 'धार गार धनि माने सगुनि' काय जडावन लायी' (४ ७२) तथा 'भुज करकत धमिया घरकति बोड मोठे बाठ मुनाये' (४ ७२) तथा 'तो मु उडि न जाइ रे काय। जी भुजान गाकुम को धाने' तो हू हे बड़भाष। इति धारन भरि दोनों देही, धर प्रपन की पाय। (४ ७४)। इन उक्तुना से हो यह कृष्ण के धाने क समाचार का निश्चय कर सती हैं—स्वामसुंदर की धावन जानिय ये निश्चय पर धारें। इति सगुनि को यह प्रोसी, नेतनि घरस दिछार्ये। (४ ७२)।

कृष्ण जब वर के साथों को कुरुधन में मिलने का संदेश भेजते हैं तो वही पहले से ही वह जोध पुत्र-समाचार भी प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रभुओं में वही भी कोए का बोधना प नेन तथा प्रीत के प्रपों का कहना प्रमुख कन से योजित है—बायस बड़गहाठ मुनि सुंदरि—'भुज भुज नेन मगर करकत है जिनिहि पाव भनल ध्वज डोला। (४८६४)।

प्रवचा—साथी न बनहार भय। प्रवच उ क मन होत यहवही करकत मन पय।

बेई देखि छाव जिय धपने परस सगुन दर। (४८६५)।

सबामा जो कृष्ण क पाठ ज्ञान समय सगुन से ही पारवाचित होत है (४८६५), किन्तु वही इनकी मूची नहीं बा गई है।

२७१—प्रभुकुन प्रसिद्ध की मूकना रहे हैं। मूक्यावर में वसित मूची द्वारा उत सभय न—साधारण में प्रवसित इन विरहाओं का अनुमान हो जाता है। 'काली-बहु-नीला तथा राजाजल-गान-नीला के पहले मठा पिता को प्रथम पटना की धर्मका झोंक से हो जाती है—'महूर पैठ सबन मोवर, छेक बाइ मार। (११४२) तथा—छीक पटी ती मानु सवार। (१२११)। कालीबहु-बटना के पहले प्रभुकुन-सम्बन्धी (११५५ १६) कई पद हैं। इनमें 'मंजारे धाने हू धाई, बार काव बाहिर्न गय-रगर' (११५८) 'पठत पीरि छीक भई बाँट, बहिले बाव मुनामठ। फटकत जगन स्वान द्वारे पर सरस कर्तत सराई। माये पर हू काव जडावपी कुडमुन बटुन पाई। (११५६)। प्रवच-रसम में भी कृष्ण की मूचु से पहले बुधिमिर धारि अपसगुन दककर भावो बुधटना से चिन्तित हो उठते हैं—'रोई कृपम गुरप

छेमकरी कह छेप बिजेजी। स्वामा काय मुक्त पर देखी।

समुक्त धायक एधि मर मोना। कर मुक्कत बूझ जिध प्रवीना।'

प स डी ११३।१-२ धामे सगुन सगुनियाँ लाका।—कवि कहा विधात।'

कामपी हाप की गई इस मूची में वही मछली जल से धरा कतध, मोर धर्ष के मस्तक पर कंजल का बेंडना बाई धोर पीड़ता हुआ क्षिरन तीतर व मये का बाई धोर बोलना, ताड़ का पिछमाणा गापुर, छेमकरी बीस व मोमड़ी का वर्धन तथा कुररी व शीव पक्षी का बोलना धामि प्रसीधनीय है।

'भोमा मूया' बज्जोडिपि यम्या माये कररकका मुहूर्त चिन्तामणि पावा प्रक पलोक १४।

१—हर्ष धा प ५ १९ प्रकाकरवर्धन की मूचु से पहले तथा हर्ष के तैमिक प्रयास से कमुधों में होने वाले प्रलेक प्रपद्युनों की लम्बी मूची से बालकालीन विरहाओं पर प्रकाश पड़ता है तथा गुर के समय में जाने जाने वाले प्रपद्युनों से उनकी मुकना की जा सकती है।

आं निधनो निधि पाई । मन्तहि आनि प्रबालक काहिय उपवन बालि जवाई (१८७७)
 पत्था— मुनि हरि पाए ही किरका । (१८७८) तथा बहुरो भूमि न धाधि मना । मुनिहूँ
 के सुख न छति छरी मीर जयाइ भवा । (१८८३) ।

इत्यों ६ मनाबधानिक विद्वत्पन मं इन वा प्रकार क स्वप्नो की भी गिनती है—
 एक ता भविष्य का पूर्वावाच करने वाल तथा दूसरे समुत्त हुआमां को पूरे करने वाले तथा
 हर समय मस्तिष्क म रहने वाले विचारों क फलस्वरूप वाले बात स्वप्न ।

५—अथ सांप्रदायिक शब्द

२७५—नूरसावर म जहाँ तहाँ कुछ सम्प्रदायों क नामों का उल्लेख हुआ है । उनक नाम-
 मान ही मिलत है अतः यहाँ इनका संक्षेप म निर्देश कर देना अप्रासंगिक न हुआ ।

ओगी प्रथा आगिनि (१५५, ४ ३७ ३९, २६३) के सम्बन्ध म चलन बतला हो
 गया है, क्योंकि इनके सम्बन्धित अनेक शब्दों का परिचय मिलता है । उद्धव-नापी संवाद में
 विद्येय रूप से प्रेम भक्ति मार्ग के साथ योग-मार्ग की तुलना करने क वक्त में की गयी है ।

कपालिक (१५५) [सं० कपालिका]—‘जय जय जय जय माधव देवी । जा
 परतें बीतें जम-सेनो जवन कपालिक, जैनी । (४५५) । ॥ योग सम्प्रदाय क प्रत्यक्ष ही
 एक प्रकार से उसका उप-सम्प्रदाय सा था । कपालिक अपने एक कपाल रखने के कारण
 इस नाम से विख्यात हो गए । इसी पद्यों में जैनी^१ साधुओं का उल्लेख भी हुआ है ।
 विगम्बर (४१३६) का उल्लेख योग प्रसंग में हुआ है—‘जहं प्रबना कई बसा विगम्बर,
 मष्ट करी पहिचाने । जन धर्म को दो प्रबान दाखार्थ थी—स्वैताम्बर और द्विपम्बर ।

इनके अतिरिक्त आज प्रथा कर्म मार्ग के अन्य कुछ अनुयायियों के लिए साधारण धर्म
 में कुछ शब्द बैसे उपसी (५२६ ५३८) साधु (४५, ३५३२) गुसाई (१ ७)
 [सं० बोत्सामिन्] तथा स्वामी (५२) प्राप्ति मिलते हैं—‘उपसी तप करें जहाँ सोई
 बन भंडी । (५२६), प्रथा—‘रावन भेष बरुओ उपसी की वत्त में भिन्ना मेसी । (५३८)
 प्रथा ‘मेरी मन मस्तिष्क गुसाई । (१ ३), प्रथा—‘दिलक बनाइ जते स्वामी
 हूँ विपनि के मुख धोए । (५९) तथा ‘बेच बरि-बरि हूँसी पर-वन साधु-साधु कहाइ ।
 (४५) तथा साधु घसाधु न समझी हरि होरी है । (३५३२) । इस प्रकार कवि ने
 प्रामा कर्मनाड का उल्लेख किया है तथा मयवत्पजन ही अस्वरूप बतला है—‘बाद बिबाद
 जह-जह-साधन, विठहूँ बाइ, जगम अहकर्म । छोड़ पटल जलपीठ जजन में, अन्यास
 चारिहुँ फल पाव । (२३३) । धर्म में बाणी बहुत गुणाय (१५३) पर में साधुओं की

१—हर्ष सां प्र ५ ३६, भैरवाचार्य की वेदास-साधना में स्वर्गिक कुशल का
 उल्लेख है । इन कण्ठों साधुओं का सम्प्रदाय साधनों धर्मों में कपालिकों के साथ
 मिल गया था । भोरजनाथ ने इस सम्प्रदाय में प्रचलित भोमस्त क्रियाओं को
 हटकर सम्प्रदाय को ठीक करने का पाल किया था ।

२—हर्ष सां प्र ५ १ ११ २१ ५, १६१, हर्षचरित में उल्लिखित सम्प्रदायों
 में योग साधुओं का उल्लेख भी है । इन लोगों को निष्कार रहने वाला तथा
 सम्ये सम्ये कपाल करने वाला बताया गया है ।

का दर्शन

उम्मा तथा मरिचों के बीतन पर भी प्रकाश पड़ता है। बोलना' मात 'नुर' 'पछानव'
मात' 'वाक' 'कंटा बांधो' सिलक' धारि शरर इत बुद्धि से उलझे जाये है। एक अन्य पत्र
में भी ऐसा ही बिजल है—
भात सिलक सबनमि तुनवीरल खेते बांक बिए। (१७२)।
मूँहवो मूँह कंठ बनमास मुहा खेद बिए। (१७३)।

बासु का प्रयोग संतों के साधारण प्रय में भी किया गया है—'ना हरि भक्ति न
सासु स्यास न रसो बीकसी लटकै। (२६२)। संतों को भक्ति का साधन समझ लेने के
पक्षों न कवि ने उसको महिला का सुखगान किया है।
बावली ने भी एकलौत सप्रदायों का उल्लेख किया है। यह नामावली एकलौत
निर्वाह पर प्रकाश बालने के कारण महत्वपूर्ण है।

कोइ सिलेसर कोइ सम्पादी। कोइ रामजन कोइ मसबाली।
कोइ मझाज रंज लले। कोइ दिगम्बर बाकीह लले ॥
कोइ सरसवी सिद्ध कोइ जोगी। कोइ भिखव व बैठ बियोगी ॥
कोइ यहेसु नमय जसी। कोइ एक बाखे देवी सखी ॥
सेबरा सेबरा बनपरली सिज सायक दाबधूत।
मास्य धारि बैठ बाव, धारि मासमा नूत ॥

ਕਥਾ ੮

ਸਾਹਿਤ, ਸੰਗੀਤ ਅਤੇ ਨਾਟਕ

१-साहित्यिक ग्रंथ

[illegible]

२—साहित्यिक

पुस्तकी ज्ञप्ति है किनेहिशि मोसिकारों बर-बर्चित कुल-मर्वाता की विद्युत् कर डीठी है—कुल मर्वा बर की यात्रा नैवृत्ति गरी रही। (१६१८) राख-मीता के पक्षे धांवारिक धोमायो तथा कर्मों की यात्र विनाकार कुल मोसिकों की मेल में दुहा की परीक्षा से डेते है—रहित विधि बर यात्र बुनी। कप्त हाँच पक्षि करी पूबा क्हा तुम बिय बुनी। (१६१८) निर्वाच प्रम प्रमल कले पर ही उनको राखनीता धारा कुल बुल निकता है—घाय गरी बुनीति मन राबी। समवादिन सक्षिपि एक पायी बर-उपनिषत् राबी। (१६६१) अमर (१६६८) समता की राख-राख रंज हरि कीहायो भव गरी दृष्टाव्य। (१६६१) अमर कीत प्रवर्ग से की मोसिकों के कुल की बर-बर्चित है—बर्च-विद्युत्-कसार कलामय बर निर्दर कलका कडोर मोसिक सकेस ही यक्ष सिद्ध करता है—बर्च-विद्युत्-कसार कलामय बर निर्दर गाए। की है मोल मुक्त ह्यो क्को दूर त्याग बन गाए। (१६१९)। कुल-मर्वा बर (१६१९)।

१—कलम सम्प्रसार में बार प्रथम प्रकाश पाये थे वह (बाइबल-मैन संविदा तथा उपनिषद) सोदा कैराल सुन तथा मन्त्रम ।
२—दुसरी बोरा, १२४, भूमि मिथरुह २२४ वनि, निरुह वर पुन ।
मित्रवनि, ७ कैर-पुन, बहुत उबार ह ।
३—४० सं टी १ बार बारवे वनि वय मोहि पदा । रिश जलु साम
पावनन पादा ।
वही, ४२१२ कलम सो बार कैर वनि पुन ।, ४२१२ कैर कैर वय
बारवि ...

होम (६२२) तथा ब्रह्म धुना होना भी उल्लेखनीय है— ब्रह्म-समन-नयन पन तापि कोहो
बेद मुनी । (६४१) ।

वेद प्राचीनतम तथा अत्यधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । वेद शब्द का अर्थ 'ज्ञान' है ।
वेद पार है ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद अथर्ववेद ।^१ इनमें ऋग्वेद प्राचीनतम है । मुरसागर में
सामवेद का उल्लेख है । राम-जन्म पर बरारण के घर अथर्व वेदिक श्रुतियों में सामवेद पढ़ने
का निर्देश हुआ है— भीरु भई बरारण के वापन सामवेद पूज पाई । (४६१) ।

२७७ निगम (२०४ २१५) [सं० नियम] ब्रह्म का पर्यायवाची है^२ तथा इन्हीं
प्रसंगों में इसका भी उल्लेख हुआ है— निगम जाको सुखस पावत (२१५) । गोपियों के
मिथ्या बर्तन को नष्ट करने के लिए कपल रास क बीच समर्पण हो जाते हैं । उसके
पहले भावना का महत्त्व उनको समझाने का प्रयत्न करते हैं— 'भाववत्स्य सब पै रहीं निपमनि
यह बायो । (१७१६) । भ्रमरवीथ सीपक पर्वों में एक स्थल पर गोपियों बेटों द्वारा प्रसाह
योग के प्रति विरक्ति प्रकट करती हैं— बारिष जोग अपार प्रयम की नियम न पाहू सही ।
(४२२८) । ब्रह्मसंहिता को भी निगम कहा है ।

ब्रह्म के तीन प्रमुख भाग हैं—संहिता ब्राह्मण तथा उपनिषद् । इनके प्रतिरिक्त चौथा
भाग 'सूत्र' है—श्रौत-सूत्र (यज्ञ बलि धारि क नियम) गृह्य-सूत्र (संस्कारों के समय को
जाने वाली बतियों का विधान) धर्म-सूत्र (व्यक्ति के साधारण तथा धार्मिक जीवन संबंधी
नियमों का प्राचीनतम संग्रह) तथा कर्म-सूत्र (श्रौत गृह्य-सूत्रों को मिलाकर) ।

स्रुति अथवा भुक्ति (१०११ १४६) [स्रुति भुक्ति]—इसका भी उदाहरण-रूप
में उल्लेख है— 'वीरनि प्राप्त प्रकम भति लेखी' (२८४) अथवा (हरि) पठित पावन
वीरबन्धु, प्रनाबलि के नाम । संतत सब लोकनि भुक्ति पावत यह नाम । (१८२) तथा
'नोविद भक्त कपे इहि द्वार । संकर पारवती उपवेशत तारक मंत्र लिखी भुक्ति-द्वार' (१४६) ।
मनुष्य में सम्पूर्ण कपल के यज्ञोपवीत संस्कार के संबंध में कवि कहता है— जाके स्वास-उद्योस
मेव मैं प्रकट भए पति बार । तिन नामनी सुनी बच सी अनु बति प्रयम अपार । (१७११) ।
ब्रह्म-स्कन्ध उत्तरार्ध में कवि ने एक पत्र में वेद-स्रुति की है तथा उन्हें ब्रह्म कपी हरि के स्वास
से उत्पन्न बताया है— 'स्वासा वायु भए स्रुति बार । कदै सो भस्त्रुति या परकार' (४६१२) ।

१—इंद्रिया एक भोग द्रु पाण्डिति पृ १५६, अष्टाध्यायी में ऋग्वेद यजुर्वेद तथा
सामवेद की विभिन्न शाखाओं का स्थान स्थान पर उल्लेख है । पाण्डिति ने
'प्राच्यशास्त्रिक' अर्थात् 'अपर्वभूदय का अध्ययन करने वाला विद्वानों' का निर्देश
किया है ।

२—हर्ष सा म , पृ १४ बाल के समय में ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के गद्य तथा
सामवेद का बहुत प्रचार था ।

३—तुलसी, कविता ७ ८४ 'बीरक जयायो योग, भयति भक्तयो भोग नियम
निमोष है ते, केनि ही धरो सो है ।

‘उपनिषद्’—(१२१ २२११) [सं उपनिषद्]—‘उपनिषद्’ का अर्थ ‘निकट बैठना’ अर्थात् शिष्य का गुरु के निकट बैठकर धारणा परमात्मा का रहस्यालम्ब निकषण करना है। यह तथा उपनिषद् का प्रायः साधनात्मक उद्देश्य हुआ है— जय वेद उपनिषद् माने। (१२२) अतः मूल स्वामि तुम अन्तर्यामी यह उपनिषद् भाष्ये। (२२११)। यह वेद की शाखाओं का स्तन संबंधी भाष्य है जिनमें धारणा-परमात्मा आदि की व्याख्या की गई है। शास्त्रार्थों द्वारा किए जाने वाले यज्ञ बलि तथा उनके महत्त्व आदि पर भी प्रकाश पड़ता है।

२७२—पुराण (१७ १५७ १५) [सं पुराण]—वेद के साथ ही पुराण का भी उद्देश्य कवि ने किया है—जाति-पाति-कुल-कानि न मानन वेद पुराणनि साथै। अथवा ‘तुनिषत् कथा पुराणनि मनिका व्यास प्रजापति वारो। (१५७) तथा वेद पुराण मानवत मोठा सबको यह मः मार। (१५८)। दोष के संबंध में मुनिकर गाविषी भुंजना उठती है—साथे जोन सिद्यावन पाड़े। परमारण्ये पुराणनि साथे प्यो बनकारे टीड़े। (१२२२)।

पुराण^१ मठारह है तथा वेद व्यास द्वारा रचित माने गए हैं—ठाठे हरि करि भास्य जगार। इरो गहिना वेद-विचार। बहुरि पुराण मठारह किए।^२ वे तउ सांति न धाई दिए। (२३) इनका सम्यक् महाभारत में बाद का माना गया है^३ तथा इनमें बखिनि सभी प्रधान आत्मानों का आधार महाभारत है।

भागवत—(१० १३७ २२६) [सं भागवत] मठारह पुराणों में से सबसे महत्त्वपूर्ण मानवत पुराण ही है। भागवत सुनने की बहुत महत्ता है—भी भागवत सुनी गहि

१—इदिया एक जोस दृष्टांतिनि पृ २३७ एक सुत्र में पाणिनि ने ‘उपनिषद्’ शब्द प्रयुक्त किया है वहाँ यह ‘जो गुरु है’ के अर्थ में आया है। शीघ्र के विचार से भी पाणिनि उपनिषद् से परिचित थे।

२—हर्ष सा घ, पृ ५२ ५३, बाण के पुस्तकशास्त्रक तुहटि का कंठ मसुर वा तथा बहु निरय प्रति बाण पुराण की कथा सुनता वा (‘वचनान्द्रोक्ष पुराणं कथा’)। इस प्रसंग में बाण ने ‘पुस्तक’ शब्द प्रयुक्त किया है तथा प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थ किस प्रकार रखे जाते थे इसका भी निर्देश है। पुस्तक के लिए प्राचीन शब्द ‘ग्रन्थ’ वा। वैदिक साहित्य में कहीं भी ‘पुस्तक’ शब्द नहीं मिलता है। पाणिनिकृत अष्टाध्यायी तथा पर्ववर्ति के महारामाय में भी ‘पुस्तक’ का उल्लेख नहीं है। अमरकोश तथा अश्वघोष पीर कालिदास के काव्यों में भी नहीं आया है, अतः सम्भवतः बाण के समय के आचरण ही ‘पुस्तक’ शब्द किताबों के अर्थ में प्रचलित हुआ वा। पाँचवीं शती के मध्य में ‘पुस्तक’ शब्द के ईराण से अपनी जाया में आने की सम्भावना है। ईराण में बमड़े पर निशानें लिखी जाती थी अतः ‘पुस्तक’ शब्द का अर्थ ग्रन्थ हो गया। हय्यरी देश में आकर ही सौ वर्षों में यह साहित्य में भी प्रयुक्त होने लगा। पद्यतरी जाया में ‘पुस्तक’ शब्द आज का प्रयोग है।

३—प स टी ११३ ‘कतहूँ पठित पढ़ि पुराण। जयन पंथ कर करहि बचान्।

४—भाईन पृ १ २ बहुत कथन ने रामायण तथा हरिवंश पुराण के प्रारंभी अनुचारों का उल्लेख किया है। सभी प्रमुख प्रसिद्ध ग्रन्थ संप्रदाय के पुस्तकालय में थे।

गीता—(११६ २८६) [सं भयवर्गीता] वेद उपनिषद् के साथ नाम-माहुरण्य तथा प्रभु की वक्त-व्यसता की साथी गीता से भी की गई है — मोठा-वेद-भाववत् में प्रभु यों बोले हैं पाप । उन के निपट निष्ठ गुणिपत्त हैं मर रहत हों पाप । (१६६) ।

धनुन को कृष्ण शरा संवत्-रूप में गीता मिलने का उल्लेख भी मूर में किया है—
कह्यो हरि नू भी मोठा पायो । (१८६) । योगियां भी मोठा का उल्लेख करते हैं—
'समुपगत नहीं जान मोठा को मुकु मुगझनि धरे । (४१४८) । गीता महाभारत के भीष्मपर्व का ही एक भाग है । इनमें धनुन-कृष्ण संसार है । इसका निषय ज्ञान कर्म तथा भक्ति मापों से संबंधित है । पाप मोठा का धार्मिक धर्मों में धार्मिक उल्लेख स्थान है ।

२८१—सुमिति, सुमुति (१४८, २ ४ १२५) [सं स्मृति] जीवन-मरण के निर्देशन करने वाले धर्मों में इसका भी उल्लेख है — सुमृति-वेद मारण हरिपुर को ठाठें लियो मुनाई । (१८७) प्रकथा वेद पुराण सुमृति संतति को यह धापार मोन को ग्यों जल । (२ ४) तथा हरि स्यान डितिया नहि कोई, स्मृति सुमृति रंको सब जोई । (१४८) ।

स्मृति शास्त्र में हिन्दू धर्म के नियम दिये गये हैं । सांख्य (१७६३) सब शास्त्र को धारण रख्य भी प्रयुक्त हुआ है । यही इतिहास (१७६३) छर का भी उल्लेख किया जा सकता है । काम-शास्त्र का संबंध धर्म के सब में काम की पूर्ति में है तथा धर्मशास्त्र का राजनीतिक जीवन से किन्तु धर्म-शास्त्र का व्यक्ति के धार्मिक जीवन तथा मोक्ष से है । प्राचीन तम धर्मशास्त्रों में मौर्य नीतिशास्त्र धर्मशास्त्र (ई पू ३ से ३ तक) है । मित्यु धर्मशास्त्र एवं हारीत के धर्मशास्त्र के प्रतिरिक्त धर्म्य धीर भी धर्मक शास्त्र है । इनके बाद धर्मक स्मृतियों की रचना हुई । इनमें सबसे महत्वपूर्ण मनुस्मृति है । इनका वर्तमान रूप २ ई का माना जाता है ।

एतिहासिक धर्मों को संबंध करने की प्रवृत्ति प्राचीन काल से ही मिलने लगती है । प्रत्येक धर्म में यह अपने मूल रूप में है, जैसे जैन (तीर्थंकरों के संबंध में) तथा बौद्ध-धर्म (बुद्ध के संबंध में) । इसके बाद बाह्यवत् 'हपपरिण तथा कम्बुवत्त राजपट्टमिणी के नाम भी लिए जा सकते हैं ।

२८२—सांख्य (१ ४) । [सं सांख्य, सांख्य] यह प्रसिद्ध छ दशनों में से एक है—'मूर सकल पट वरसन वी हों बाह्यवत्त पण्डों । (४७४४) । मूरसावर में कस्मिन्वेद द्वारा सांख्य रचना का उल्लेख है—
कस्मिन्वेद सांख्यहि को पायो (१६४) ।
कस्मिन्वेद के प्रवर्तार वैकुण्ठि-कपिल संसार तथा सांख्य-वशात की प्रमुख बातें भी बखिउ हैं—'मम सकल जो सब बट नाम । मरण रही तजि उद्यम प्राण । यह मुख दुख कहु मन नहि

१—य सं डी, ४४१, 'राजा जीव पापुर्गस विद्या भा वेदन सी हैत ।
बार वेद छ वेदांग पुराण भीमाता न्याय, तथा परमार्थ इनको कपुर्गस विद्याओं में मिली हैं । ('पुराण न्याय भीमाता धर्म शास्त्रांगमिभिता । वेदा स्वप्नामि विद्यामां वर्गस्य च कपुर्गसा' ॥)

य सं डी ४५ १२ 'जला निहरी को राखी गुनी । 'कुनी' किसी शास्त्र या कला में पारंगत व्यक्ति को कहते थे । यह पारिभाषिक शब्द था । 'मानस' में भी इसी धर्म में प्रयुक्त हुआ है—मानस, भाग, ११६।७ 'पठ्यो कोल पुनी लिखु मानस ।'

२—कुमती, वेरात सदीपनी, कुमती-वेद-पुराण-भक्त, पुराण शास्त्र विचार ।'

संघीय तथ्या मूल्या

य संघीत तथा मूल्य
 है। माया सो गर मुक्त कहाने। (१६४)। फिर बार प्रबार की भक्ति—साधिका
 रमोमणी लोभुणी तथा दुखा के संघर्ष में बसाया गया है। इनमें दुखा भक्ति सबसे
 है जो मुक्ति की इच्छा का भी स्पष्ट कर देती है (१६५)। साक्ष्य के अनुसार हिन्दुधार्मिक माया
 सम ठाके पुन माती। ईश्वर की सत्ता नहीं माती है। माया ही परब माया परती। सत्-र
 साक्षी एवं प्रकृति से मिल है—आदि पुनर वेदन को कहत। तीनों पुन भाय नहीं रहत। ब्रह्म
 लक्षण सब माया माती। जब लय है किन न बहती गति बाह। उक्त मित रही एकही माह। ब्रह्म
 वेदन ब्रह्म पट है वा माई। ब्रह्म पुनर धनर सब बरना।
 वेदन ब्रह्म पट है वा माई। वेदन पुनर धनर सब बरना।
 सम की है जगत्पद मरना। वेदन पुनर धनर सब बरना।
 सम की है जगत्पद मरना। वेदन पुनर धनर सब बरना।
 सम की है जगत्पद मरना। वेदन पुनर धनर सब बरना।

[illegible]

२-वाद्य-यंत्र

२-वाद्य-यन्त्र

[illegible][illegible]

१—बूँद बूँद की १ बाँट-२ 'आजकाली व्याकरण' से
 'बूँद बूँद' का कौन सा अनुवाद है ?
 २—बूँद बूँद की १ बाँट-२ 'आजकाली व्याकरण' से
 'बूँद बूँद' का कौन सा अनुवाद है ?
 ३—बूँद बूँद की १ बाँट-२ 'आजकाली व्याकरण' से
 'बूँद बूँद' का कौन सा अनुवाद है ?

१-बूँटी १ बाउ-२ भाग
यों से बाल कट लें जो नाखुई वाले
३-४ टी ४८६५, ८ कवि को

१-१०० टी १००

—व त क
मो बाबा १७

मुरसावर में इन प्रधान प्रमर्मा में बाजा से संबंधित लहरावली मिलती है—१ कुरख-जगमोसब २ रास-सीमा ३ बसत घबरा पान उत्सव ४ बिबाह प्रमर्ग । इन पदों में बाजों के नाम एक साथ दिए गए हैं । कुरख को प्रिय मुरमी पर भी घनेक पदों की रचना हुई है जिसका उल्लेख घाने भी किया गया है ।

मुरसावर में घाजे (४८०५) घाजन (१२५) [सं बाघ] तथा साम (११२१) लहर बाघ यंत्रों के साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं । संवीरघाटों के अनुसार बाजे चार प्रकार के होते हैं—१ लु^१ (लार या लंगु बाने) २ मुविर (जा पामु के बजाव से बजाये जाते हैं, जैसे बांसुरी) ३ घामल घबरा घबनल (घमड़े से मड़े हुए) ४ घन (एक दूसरे पर बोट करके बजाये जाने वाले जैसे झंझ) । बाजों के यह ही भेद भी सरसता से किये जा सकते हैं—१ स्वर बाघ २ लाल बाघ । मुरसावर में मुर (१४८४) तथा घाल (११५४) का कई स्थान पर उल्लेख है ।

बाघवाजों से संबंधित नामावली की व्याख्या उपर्युक्त चार भागों में प्रत्यय-प्रसंग करने से सरसता होगी । प्रमुख नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

(क) लार वाले बाने—

२८४ बीन (१४८७) घाना (५१३, १४१) [सं बीछा] इस घेयी में लगे धातक महुलपूख तथा प्राचीन बाघ हैं— बाजी सांसि राय हम बुझे । (४६३८) । लंगु-युक्त बाजे के लारों को नाचन बिहराव जबा घबरा बोड़े के घालों वाली कमान से ढँकृत करके स्वर-भाषुम उत्पन्न किया जाता है । बीछा का बहान वैदिक काल से ही मिलता है । प्राचीन समय में बीछा के कई रूप प्रचलित थे । संवीर रत्नाकर में बीछा के बस नेर दिये गये हैं तथा 'संवीर पारिजात' में घाठ भेड़ । हेमचन्द्र के अनुसार प्रत्येक देवता की बीछा के नाम पुष्क-पुष्क थे । यह बीछा के भेद संभवत लारों की संख्या तथा लंगुरे के घावार एवं संख्या पर आधारित थे । घादि-मकहरी के (पृ २६८) अनुसार बीछा तीन छोटी वाली तथा किन्नरी दो लारों की होती थी ।

इन भेदों में से कुछ नाम मुरसावर में भी मिल जाते हैं, जैसे किन्नरी^२ (१४८१ १४८८) तथा मुरमंडल (१४११ १४१४) [सं स्वरमंडल]—'सुरमंडल घनकार' (१५१५) । किन्नरी बीछा का प्राथमिक सरस रूप था । यह बंठ बंठ तथा तीन लुंघों से युक्त एक लंब बान्नी होती थी । कमकता के संघट्टामय में इन दोनों बीछाओं को देखा जा सकता है । यों किन्नरी बीछा के भी कई भेद हो गये थे । इस बाघ का स्वर कोमल होता है । होली के उन्मास-मय वातावरण में मुर में अन्य बाजों के साथ किन्नरी का उल्लेख किया है—'बाजल बीन बांसुरी महुवर किन्नरी की मुहंभंग । घमूतमुहली भी सुरमंडल घावभ सरस उर्पंग ॥ लाल मुर्बंघ झंझ डफ बाजे मुर की उठति तरंग । (१५१४) घबरा 'झंझ घालरी किन्नरी रंजबीबी म्वाभिनि । (१४८१) तथा 'बाकल लाल मुर्बंग धीर किन्नरी की बोरी ।' (१४८८) ।

यहाँ किन्नरी का अर्थ 'किन्नरी' यथवा 'कन्नरी' नामक बाघ भी हो सकता है जो ब्रह्म के बहुत प्रशंसित है । यह त्रिकोणात्मक मोहों की जड़ का एक बाधा है जिसे ताहे की प्रकृति से

१—य सं टी १२७१७ लंत जितल सुमर घनतारा ।'

२—घाटबाघ बाघ पृ ७, बाइभिनि में किन्नोर नामक एक बाजे का उल्लेख है किन्तु इसका रूप अनिश्चित है ।

इस्य संगीत तथा नृत्य

ਪ੍ਰਸੰਨ ਨਾਮਕ ਰਾਜਪੂਤ
ਪ੍ਰਸੰਨ ਨਾਮਕ ਰਾਜਪੂਤ
ਪ੍ਰਸੰਨ ਨਾਮਕ ਰਾਜਪੂਤ

६। 'यदिमान' अष्टबाप
इसमें साठ

कहियो । (२५)

नाम पर भीख
२८५
... बीना

भी प्राचीन बाबा

उपम । पण्ड

१—प्रष्टपाव
२—प्रष्टपाव
बसीस

१-समष्टि का अर्थ
२-समष्टि का अर्थ
३-समष्टि का अर्थ

4-10-78

सुरसागर म इन प्रधान प्रयोगों में बाजों से संबंधित सम्भावनी मिलती है—१ कृष्ण-बामोत्सव २ रास-सीता ३ वसन्त अथवा फाग उत्सव ४ विवाह प्रसंग । इन पक्षों में बाजों के नाम एक साथ दिए गए हैं । कृष्ण की प्रिय 'मुरली' पर भी अनेक पक्षों की रचना हुई है जिसका उल्लेख प्राये ही किया गया है ।

सुरसागर में बाजे (४८५) बाजन (१२८) [सं बाध] तथा साध (११२१) उग्र बाध यन्त्रों के साधारण अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं । संघीतकारों के अनुसार बाजे चार प्रकार के होते हैं—१ तर् (तार या तंतु बाजे) २ मुषिर (जो बामु के बजाव से बजाये जाते हैं जैसे बामुरी) ३ धानज अथवा धवनज (जमके से मड़े हुए) ४ धन (एक दूसरे पर चोट करके बजाये जाने वाले जैसे धन्यम्) । बाजों के यह दो भेद भी सरलता से किये जा सकते हैं—१ स्वर बाध २ ताल बाध । सुरसागर में मुर (१४८४) तथा ताछ (१८८४) का कई स्थलों पर उल्लेख है ।

बाद्ययन्त्रों से संबंधित नामावली की व्याख्या उपर्युक्त चार बाजों में प्रसंग-असंग करने से सरलता होगी । प्रमुख नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

(क) तार वाले बाजे—

२८४ वीन (१४८०) वीना (५११, १५१) [सं वीणा] इस श्रेणी में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथा प्राचीन बाध है—'बाजी वासि राग हुम कुम्भी । (४८९५) । तन्तु-युक्त बाजे के तारों को माखन मिसराव तथा अथवा बोके के बालों वाली कमान से झटका करके स्वर-माधुर्य उत्पन्न किया जाता है । वीणा का वर्धन वैदिक काल से ही मिलता है । प्राचीन समय में वीणा के कई रूप प्रचलित थे । संघीत रत्नाकर में वीणा के बस भेद दिये गये हैं तथा संघीत पारिभाष में साठ भेद । हेमचन्द्र के अनुसार प्रत्येक देश की वीणा के नाम पुष्क-पुष्क थे । यह वीणा के भेद संभवतः तारों की संख्या तथा तंतु के प्रकार एवं संख्या पर आधारित थे । साहित्य-अकवरी के (पृ २९८) अनुसार वीणा तीन छोटी वाली तथा किन्नरी दो तारों की होती थी ।

इन में से कुछ नाम सुरसागर में भी मिल जाते हैं, जैसे किन्नरी^१ (१८८५, १४८८) तथा सुरमंडल (१५११ १५१४) [सं स्वरमंडल]—'सुरमंडल भ्रमकार' (१५१५) । किन्नरी वीणा का धार्मिक सरल रूप था । यह बंध रंध तथा तीन तंतुओं से युक्त एक ठोठ वाली होती थी । कमकता के संग्रहालय में इन दोनों वीणाओं को देखा जा सकता है । यों किन्नरी वीणा के भी कई भेद हो गये थे । इस बाध का स्वर कोमल होता है । होली के उत्सव अथवा रासरास में सुर ने अनेक बाजों के साथ किन्नरी का उल्लेख किया है—'बाजत वीन बामुरी महुषरि किन्नरि धी मुहर्षन । समुत्तुंडली धी सुरमंडल धानज सरस उत्पम ॥ ताल मूषम भूमि कज बाजी मुर की चठति तरंग । (१५१४) अथवा भूमि भ्रमरी किन्नरी रंमजीजी बामिनि । (१८८५) तथा 'बाजत ताल मूर्धन धीर किन्नरि की बोरी ।' (१४८८) ।

यहाँ किन्नरी का अर्थ 'किन्नी' अथवा 'किन्नी' नामक बाध भी हो सकता है जो इन में बहुत प्रचलित है । यह निकोशारमक मोहो की बड़ का एक बाधा है जिसे मोहो की बड़ से

१—य सं टी १२७७७ तंति जितस सुमर भ्रमकारा ।'

२—पण्डित बाध पृ ७, बाह्यमिल में निम्नो नामक एक बाजे का उल्लेख है किन्तु इसका रूप अनिश्चित है ।

साहित्य संदीप ठया मत्स्य
ही बबले है । इमे प्राय बहुरा नाक के घास बबले है । मल्लिम पक्षीस मे घास-बासी के
घास घामे ठया बोरी के उल्लेख से इस नाम के प्राय घास-बास का भी सम्यक् होता है ।
संजीव रत्नाकर ठया 'संजीव परिचाय मे किछरी का उल्लेख है । इको ही कायस
स्वर्णरत्न बीखा मे इकोइ मयका मल कोकिना कहा जा मकता है । इमे मि
स्वर्णरत्न द्वारा बहिन मल कोकिना से बीखा के जेठा म स्वर्णरत्न
ही बबले मे । इकोइ मयका बीखा बासीस का बीखा
मे पुंसी बासी इस बीखा मे मि
ही इको बीखा की
के पदमे

हासिय सँगीत तथा तन्त्र
ही बजते हैं। इसे प्रायः बहुरा नाच के साथ बजाते हैं। प्रलिय पर्व
वाच जाने तथा कोरी के उत्सव से इस नाम के प्रथम वाद्य-बाज का भी सम्बन्ध
सँगीत शलाकर तथा सँगीत परिचित में किशोरी का उल्लेख है।
स्वराज्य भीखा ने इककील प्रथम मल कोलिया कहा था क्या है।
भीखा प्रथम कार्तिकेश्वर द्वारा बंखन मल कोलिया के शेषा म स्वरज्यल नाम
था लकील का हुक्मे से बजाते थे। बरज्यल भीखा प्राचीन कभीखा की को
भी है। बरिनाल पार बरं न थी। इससे भी कोलिया की शोर मारे
मल्यार कविश्री द्वारा उल्लिखित है। कोलिया की शरी भीखा की शोर मारे
मल्यार तथा बाल नाम पर्व है। भीखा नामक वाद्य को पर्वने नामा बा
मल्यार तथा बाल नाम पर्व है। भीखा नामक वाद्य को पर्वने नामा बा
मल्यार तथा बाल नाम पर्व है। भीखा नामक वाद्य को पर्वने नामा बा

मन्त्राचार्य
का कड़ी का चुकने से हो
है। 'वित्तमय कर्मिणी' द्वारा वित्तमय 'वित्तमय' का
अष्टमय कर्मिणी द्वारा वित्तमय 'वित्तमय' का
है। इसमें छत वार तथा वारण पूर्व होये थे। हो पुर
मोली की धाकति होनी थी। शेषा नामक बाघ धाक की रक्षा
है। पुरबाव की मे शीक के वर-माधव का प्रभाव प्रकट पर भी पर
है। कर्कट शीक की धरिनी। एव शक्यी वाली मूय मोड़े नाहित हो
है। शक्य धम भी प्राय वध पाई है शीक शिरे की मधुरि तथा शीक के
का मलक बाघ। का उल्लेख भी होनी के बाबा मे हा है।
है। पुरबाव की मे शीक के वर-माधव का प्रभाव प्रकट पर भी पर
है। कर्कट शीक की धरिनी। एव शक्यी वाली मूय मोड़े नाहित हो
है। शक्य धम भी प्राय वध पाई है शीक शिरे की मधुरि तथा शीक के
का मलक बाघ। का उल्लेख भी होनी के बाबा मे हा है।

१. पुरावा
दूर न करणें होत
हरीदी। (१९७५)
बीज बळ के बाव यम भी
नाम पर भीज मयने हाने गोपा का भलक
१८६३ हुंवर (१४) [सं तुवर] को
सु-किर्तिर कामन वाग्नपूर के वामन में भी था । इसी की नि

[illegible]

२-प्रत्यक्ष
बलीय सार
एक वरासन पर्यंत यथा
आप्त बाध पृ १५।

ग्रन्थों में इसका निर्देश नहीं है और न धावकल वज्र में प्रयुक्त बाजों में यह मिलता है। पोपमे ने रावणहस्त वीणा^१ से मिलते हुए एक प्राचीन बाजे प्रमत का उल्लेख ध्वजम किया है। वज्र के कुछ लोगों के अनुसार यह सर्प के फन के प्राकार का स्वर-बाद्य है।^२

अन्त्री (४ ६२) अन्त्र (१५१३) [सं यंत्र] साधारण बाद्ययन्त्र^३ के घन में ही नहीं प्रयुक्त हुआ है, बल्कि वह एक बाद्य विशेष भी है। प्राग्नि-ध्वजरी में इसका बज्जन है। इसके बज्ज में दो घाबे लूबे तथा छोलह स्वर बिज्ज बजाए गए हैं। यंत्र में पाँच ठार होते थे। मूरसावर में अन्त्री (यंत्र-बाद्यक) तथा सोमरी शब्दों का उल्लेख है—‘हम पर काहे की मूर्च्छा ब्रजनारी। .. उलग मौढ क्यों कहीं सोमरी खल बुरे पर गरी। प्रब तो हाम परी अन्त्री के बाजव राव बुजारे। (४ ६२)।

(ख) वायु के बजाव अथवा फूँक से बजने वाले बाद्य

२८३ कुम्भ का प्रिय बाद्य-यंत्र होने के कारण मूरसावर में मुरली शीपक अनेक पर है तथा इसके बहुत से पर्यायवाची नाम मिलते हैं। मुरली का कम्प कम्प में भी चित्रित है जो वास्तविक विचारबाद्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। कुम्भ की प्रिय वस्तुओं में मुरली के सम्बन्ध में विस्तार से बताया गया है। पर्यायवाची शब्दों में बंसी (१२६९ ६ २) [सं बंसी] बांसुरी (१२९७ १२९८) [सं बंसीका] मुरली (१३३ ६ २) [सं मुरली] मुरखिका (१२७४) तथा बेनु (६ २) [सं बेनु] उल्लेखनीय है। बंसी तथा बांसुरी नामों से स्पष्ट है कि यह बाँस से बनती है। मूरसावर के कुछ मुरली पदों में (१८६४ १८७४) बाँसियों द्वारा उसके नीच बज में जल खेने पर बार-बार व्यंज्य है तथा मुरली-उत्तर शीर्षक पदों में (१६४५ १६५६) बंसी बजाने का बज्जन भी है। कहीं-कहीं इष्टदेव की मुरली को सुवद्य की और एतद्विहित बजाने का प्रयोग कवि नहीं रोक पाया है (८४५)।

बंसी फूँके हुए पीले बाँस से बनाते हैं जो इस संयुग्म से एक हाथ तक लम्बी और धा से ली छेद वाली होती है। उपयुक्त निम्न-निम्न पर्यायवाची नाम सम्भवतः लम्बाई के आधार पर रखे गए होंगे।^४

सहनाई (१४ ४७३) [अ सहनाई] शब्द के उद्भव से ही स्पष्ट है कि यह बाद्य विद्युत् मुसमसामी संस्कृति की देण है। सहनाई एक हाथ लम्बी सात चंदन की बनाई जाती है तथा इसमें घाठ छेद होते हैं। इसका बड़ा कम्प ‘नखरी’ नाम से प्रसिद्ध है। सहनाई शब्द ध्वजरी पर ब्रह्मा जाने वाला बाजा है जिसका कि मूरसावर से भी पता चलता है। राम का विवाह के बाद अजयपुरी लौटने पर सहनाई से ही स्वागत होता है और कुम्भ-जल के बाजों में भी उल्लेख हुआ है—‘पुरा निसान मूर्धन संज नुनि मेरि अर्ध सहनाई। (४७३)

१—अष्टाध्याय बाद्य, पृ १८।

२—य स डी १२७१३ (३) ‘वस्तुतः बाद्ययन्त्र पु रावणस्य बाद्य यन्त्रम्, संवीत रत्नाकर ६।३६६।

३—अष्टाध्याय बाद्य, ‘संवीत रत्नाकर में बार स्वर वाली बांसुरी को ही ‘मुरली’ नाम दिया गया है—‘मूरसावर विज्ज मुक्त मुरली आस्वादिनी’ (१, ७५४)।

साहित्य संगीत तथा नृत्य

बनना बाबत फल मिलान परबन्धि संघ मुख रहलाई। (१४)। इन पदों में ये सब और क्या बनता है कि बाब के समय ही ठहराई नपाये के साथ बवाई जाती थी। बाब भी बछेने' तथा बिबाह पति संसल घरघरों पर रहलाई की ध्वनि सुनाई देती है।

सबल घरका कटु (१५८४ १५९ ४८४) [सं संघ] (१११) [सं संघ] संघ और मिलान बाबो का निर्देश फल के विचारित कमोत्तर तथा बिबाह-पदों में है—करी हरि संघ बुझि बयो बई बिबिध दुहासे। (४ १)। भीषापुर बच य या उत्तेज है—करी हरि संघ बचने की प्रजा लव पनुर धुनि (४८१२)। इस प्रकार कप से बचान य। संघ बिधु के एक हाथ में सोपान माला बना है—'संघ बच घर मया पक्ष घर (१५९) घरका संघ बच नवा-पक्ष कपुपुत्र माला में कुछ धारण होने के पक्षे 'बचन बोमक' सेरी धारि के साथ संघ का उत्तेज है। साथ ही बिबिध नृत्तियों के ध्वनि सेनों के बचने का बचन है। संघ सगुरु से निकलता है। यों तो संघ से एक ही स्वर निकलता है किन्तु प्रयोग में इसकी मल्ला धुनि' बाओं में की है बिगड़े प्रमुल होता है कि इसके साथ धारणों भी बवाई जाती होती। किन्तु यह संघ बढ़ा होता होता। नाच-प्यो योमियों के पाठ पक्ष मुँह बाया बिरोध संघ मिलता है।

२८७ सिरी (१८४४) [सं गृहित-नय-सोम] यह बाघ पक्षों के बीच व बीना में कुछ धारण होने के पक्षे 'बचन बोमक' सेरी धारि के साथ संघ का उत्तेज है। साथ ही बिबिध नृत्तियों के ध्वनि सेनों के बचने का बचन है। संघ सगुरु से निकलता है। यों तो संघ से एक ही स्वर निकलता है किन्तु प्रयोग में इसकी मल्ला धुनि' बाओं में की है बिगड़े प्रमुल होता है कि इसके साथ धारणों भी बवाई जाती होती। किन्तु यह संघ बढ़ा होता होता। नाच-प्यो योमियों के पाठ पक्ष मुँह बाया बिरोध संघ मिलता है।

३८७ सिरी (१८४४) [सं गृहित-नय-सोम] यह बाघ पक्षों के बीच व बीना में कुछ धारण होने के पक्षे 'बचन बोमक' सेरी धारि के साथ संघ का उत्तेज है। साथ ही बिबिध नृत्तियों के ध्वनि सेनों के बचने का बचन है। संघ सगुरु से निकलता है। यों तो संघ से एक ही स्वर निकलता है किन्तु प्रयोग में इसकी मल्ला धुनि' बाओं में की है बिगड़े प्रमुल होता है कि इसके साथ धारणों भी बवाई जाती होती। किन्तु यह संघ बढ़ा होता होता। नाच-प्यो योमियों के पाठ पक्ष मुँह बाया बिरोध संघ मिलता है।

४८७ सिरी (१८४४) [सं गृहित-नय-सोम] यह बाघ पक्षों के बीच व बीना में कुछ धारण होने के पक्षे 'बचन बोमक' सेरी धारि के साथ संघ का उत्तेज है। साथ ही बिबिध नृत्तियों के ध्वनि सेनों के बचने का बचन है। संघ सगुरु से निकलता है। यों तो संघ से एक ही स्वर निकलता है किन्तु प्रयोग में इसकी मल्ला धुनि' बाओं में की है बिगड़े प्रमुल होता है कि इसके साथ धारणों भी बवाई जाती होती। किन्तु यह संघ बढ़ा होता होता। नाच-प्यो योमियों के पाठ पक्ष मुँह बाया बिरोध संघ मिलता है।

५८७ सिरी (१८४४) [सं गृहित-नय-सोम] यह बाघ पक्षों के बीच व बीना में कुछ धारण होने के पक्षे 'बचन बोमक' सेरी धारि के साथ संघ का उत्तेज है। साथ ही बिबिध नृत्तियों के ध्वनि सेनों के बचने का बचन है। संघ सगुरु से निकलता है। यों तो संघ से एक ही स्वर निकलता है किन्तु प्रयोग में इसकी मल्ला धुनि' बाओं में की है बिगड़े प्रमुल होता है कि इसके साथ धारणों भी बवाई जाती होती। किन्तु यह संघ बढ़ा होता होता। नाच-प्यो योमियों के पाठ पक्ष मुँह बाया बिरोध संघ मिलता है।

६८७ सिरी (१८४४) [सं गृहित-नय-सोम] यह बाघ पक्षों के बीच व बीना में कुछ धारण होने के पक्षे 'बचन बोमक' सेरी धारि के साथ संघ का उत्तेज है। साथ ही बिबिध नृत्तियों के ध्वनि सेनों के बचने का बचन है। संघ सगुरु से निकलता है। यों तो संघ से एक ही स्वर निकलता है किन्तु प्रयोग में इसकी मल्ला धुनि' बाओं में की है बिगड़े प्रमुल होता है कि इसके साथ धारणों भी बवाई जाती होती। किन्तु यह संघ बढ़ा होता होता। नाच-प्यो योमियों के पाठ पक्ष मुँह बाया बिरोध संघ मिलता है।

तबै का बनाया जाता था और जो एक साथ हो बनाए जाते थे ।

इस में प्रायः हिरण के सींग का बाजा पिपी तथा भय के सींग का विमान [सं विपाठ] अङ्गना है ।^१ मुरसापर में कच्छ के सिमोनों में भी इन दोनों बाजों का उल्लेख है—‘नोई बँत विमान बाँसुरी इबार घरेर सरेरे । सँ जनि जाइ पुछइ राबिहा कच्छ पिपीना मेरे ॥’ प्रथवा वेनु-विमान मुरसि-पुन को भी संक्षेप से बताया है । (४ ५७) । होली के बाजों में भी इनका उल्लेख है ।

तूर (१५८) [सं तूर] यह प्रायः धातु का बनाया है । विवाह के स्वागत के समय विशेष रूप से बजाने की प्रथा है । यह कई धाकार के बनाये जाते हैं । इसका ही वृत्त नाम ‘तुरही’ है । संस्कृत में कश्चो नाम मिलता है किन्तु सींग को धनुकवि नामो बखो नाम से जानी जाती थी । मुरसापर में कच्छ-बन्ध पर ‘तूर’ बजाने का बखान मिलता है—‘रसए मस मोहन नए (हो) घोपन बाँसुर ।’ (१५८) ।

बाणभट्ट ने बसन्तोत्सव के सिमसिसे में धनेक बाजों के साथ ‘तूर’ का उल्लेख भी किया है ।^२

महुवरि, महुवरि^३ (१४७= १४८४) [सं० महुवरी] इस बाजे का उल्लेख होली-बखन में ही है—‘हरि-संग सेमति है सब फाय । उक्त बाँसुरी बँत यह महुवरि बाजत ताल मुरंन ।’ (१४७=) प्रथवा महुवरि बाँसुरि बँत जाल रंग होती । (१४८४) । पद्मिना प्रसंग में कच्छ के संक्षेप में गोपियाँ कही हैं—‘तूर स्याम जानी बपुराई बिहि धम्माम महुवरि की ।’ (२१ ५) । प्रायः सँपरे इसको काम में लाते हैं । संस्कृत में इसको ‘तापसर’ कहते थे तथा इसके अर्थ प्रवर्तित नाम पुंजी^४ मिलीया तथा तुंजी^५ है । यह एक तुंजे से बनाया जाता है जिसके लोहे में शेर करके बाँसुरी के समान दो बाँस के टुकड़े लगे होते हैं ।

मुहवरग (१४८४) आठम बार मुहवरंग रंग सतोने री रंग रंजी आनिन । (१४८४) —यह मुँह से बजाया जाने वाला बाज है । इस में इसको ‘मुहवरंग’ भी कहते हैं तथा काम के नृत्य में मूर्च तथा मूर्ध के साथ बजाया जाता है ।^६ यह कच्छ-सका मनुसका का त्रिभुजा बाजा माना गया है । यह धातु का बनाया जाता है तथा इसका रूप त्रिभुज से मिलता है । अस्मत्त छोटा होते हुए भी यह अपने स्वर मधुर द्वारा सबका ध्यान आकर्षित कर लेता है ।

गामुख (१५ १) [सं] होली के बाजों में ही इसका उल्लेख है ।

(ग) घमड़े से मड़े हुए बाज

१८८ यह बाजे ताल-बाज के अन्तर्गत भी आते हैं । हाथ धरवा बड़ी आँख को चोट से

१—मध्यप्र भाषा पृ० २१ ।

२—प० स १ १८३:२, १४ ‘बाजे होत उक्त की मेरी । मँवरि तूर भाँस बहूँ डेरी । संम सींग उक्त संयम बाजे । बँतकारि महुवरि तूर लाजे । घोष कहा जेत बाजन पते । भक्ति नति सब बाजत जते ॥’

३—कच्छप्रभात ‘सुरसंभल, विनायक महुवरि जलतरंग मन मोहे ।’

४—मध्यप्र भाषा पृ २२, पं सं ५२७:४। ‘समीत-रत्नाकर’ के अनुसार महुवरी तीस प्रयवा सङ्गी से बनाते थे जिसकी लम्बाई अट्ठारह प्रमाण होती थी । ‘रत्नरत्नाकर’ में भी ‘महुवरि’ नाम प्रसिद्धित है । कच्छ के ‘महुवरि’ बजाने का सम्प्रदाय होने के उल्लेख से अनुमान है कि इसका मूल सुरभी होगा ।

५—इ को , प्र १५, पम्पा २ ।

साहित्य संदीप तथा नृत्य
पृष्ठ ६ ।

जबलि पैदा कल्ल
के बल में प्रभावित—
सूर्यरा, मि

संघीत तथा नृत्य

पञ्चाङ्ग (१५११)।

[illegible]

१५५५)। इससे साब हो रहा है।
 (१५५५)। इससे साब हो रहा है।
 १५५५)। इससे साब हो रहा है।

मुर्ख (१५०) का नाम है—रुद्राक्ष।

१-५ सं० टी ५२०। ५
यह सब नहीं मिलता। बिना किसी
कागज़ की सटी में यह सब प्रकृत है।
कागज़ का, ५ ५ पुनर्निर्माण का।
यह उल्लेख है।

—ड० श्री०, पृ० १५।

१-माइ
२-बाबियाल, ३-
४-१० सं दी [सं
५-बाब' 'बाबि

一、

इस मुरली स्तिकाती । (१५११) यह भी होसक के समान ही चमड़े से मढ़ा बाजा है । धार्मिक प्रसंगों के अनुसार यह पोखी लकड़ों का बनता था । संभवतः गुरकामोद वाचस्पत्य का रूप इससे मिलता हुआ था ।^१ तुमसी तथा बायसी ने पञ्जाब और आञ्ज' का साध-साध उत्प्रेषण किया है ।^२

२५६ तुलुमि (१४४) [सं] बरिह-काल के तास-बाजों में इसका उल्लेख हुआ है । यह तबने के समान जोड़ों वाला बाज है । छाटा गवाड़ा बाजु का बना होता है । इसको ही बज में मीराज—'मिस्त्र मिस्त्र' निर्मल निसान बज भेरि भ्रमर गुजार । बसबा बसोटी कहते हैं । वृषप गगाड़ा बड़ा होता है तथा दो लकड़ियों से बजाते हैं । इसके 'दमामा' या 'नक्कारा' [य नक्कारा] नाम भी प्रचलित थे ।^३ तुलुमि मौखिक वाद्य है, यद्यपि यन्त्रोत्पन्न विबाह तथा पूजा आदि के समय मस्तिष्क में बजाने की प्रथा है । कुम्ह-जाम पर देवताओं के तुलुमी बजाने का निर्देश कवि ने किया है—देवनि विवि तुलुमी बजाई सुनि मधुरा प्रकटे वादवपति । (१२४) । फाग के उत्सव में भी उल्लेख है—'तुलुमि बाई गहगही रंमसीबी आसिति । (१४५४) । तुलुमि 'घीसा' से मिलता हुआ वाद्य है ।^४

तुलुमी के साथ ही नखीरी बसबा सहलाई बजने पर मौखिक (२१५४) नाम से प्रसिद्ध है । वामसीला शीर्षक पर्वों में एक बरबार के लपक पत्र से मौखिक का भी बोध होता है—केतु बिपान संक बसों पूरा बाई मौखिक बाजा । इस उत्सव में राज-बरबारों में मौखिक बजने की प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है । वाचस्पत्य यन्त्रोत्पन्न बसबा विबाह-कार्य आदि के समय मौखिक बजने का रिवाज है । जनपदी बोली में मौखिक पुराना' बसबा बजना' भी कहते हैं ।

मेरी (१२२१) 'पुर बर-बर मेरि-मुरब-पट्ट-निसान बजे' (१४२) मेरी (१२४ ५०१ १५८) [सं मेर मेरी]—इस बाजे का उल्लेख कुम्ह-यन्त्रोत्पन्न तथा फाग में विशेष रूप से है । मेरी मुरब से मिलता-जुलता बाजा है, होल या गगाड़ा से नहीं । बज में एक लम्बी तुलुमी के समान बस्य यंत्र को भी 'मेरी' कहते हैं । विबाह के पहले इसको बजाने की प्रथा है । मुरसानर के 'मिस्त्र मिस्त्र निर्मल निसान बज भेरि भ्रमर गुजार' पद्यांश से उपर्युक्त

कर के अनुसार कुछ लोग 'म्रावज' को 'तुलुका' का पर्यायवाची मानते थे । म्हाबासी में मोखी' तथा 'तुलुका' दोनों के धर्म भिन्न हैं । पद्मराज तथा विभावली में भी 'म्रावज' तथा 'तुलुका' अलग अलग दिये गए हैं ।

धार्मिक (पृ २७१) से यथा जलता है कि म्हावज तथा तुलुका एक ही थे किन्तु यद्यपि काव्य में तुलुका का नाम नहीं मिलता है ।

१—सम्प्रदाय बाज पृ० १५ ।

२—तुमसी, पीता १२, यद्य बंदि पञ्जाब आञ्ज धार्मिक केतु बज तार । गुप्तर तुमि मबीर मनीहर कर बंजन धनकार ।

३—धार्मिक पृ ११ यन्त्रोत्पन्न ने राजकीय नक्काराबजाने में छठारह जोड़े 'जुमिया' बसबा 'बसाया' तथा बीस जोड़े नक्कारा (गगाड़ा) होने का वर्णन किया है । पद्मराज में तबल' यद्य नक्कारे का धर्म लुप्त है ।

४—पृ २११ तथा ४२७१ 'बसो' [या दमामा] का भी निर्देश है ।

५—परमार्थरत्न व 'इतह बाजे जाले बजत तुलुमि घीसा पावे ।'

वास्तविक संकीर्ण तथा मर्यादित
 वर्ग में भेजिए। उक्त प्रमाण होने का संकेत होता है क्योंकि इसकी जमीन भीरे से मिलती बसाई
 नहीं है। टांग-बाज भेरो का उपदेश यही बतल होता है— **जब भूमि एक धुनि बाँवे मनु**
बराबर भेजिए—मर्यादित निसान बन। (१४२३)
 मदन भेजिए। वास्तविक व अवक से मिलती है किन्तु बीच का बेरा पोने बाँव का
 होता है।
 निसान निशान (१४ ३६) कवि ने प्राक् मर्यादित तथा बराबर
 निसान की मुक्ता निसान के माह से की है— **नियत धन्य-निसान बन**
निसान की मुक्ता निसान के माह से की है— नियत धन्य-निसान बन। (१४२४)
 निसान निशान (१४ ३७) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४२५)
 निसान निशान (१४ ३८) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४२६)
 निसान निशान (१४ ३९) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४२७)
 निसान निशान (१४ ४०) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४२८)
 निसान निशान (१४ ४१) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४२९)
 निसान निशान (१४ ४२) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४३०)
 निसान निशान (१४ ४३) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४३१)
 निसान निशान (१४ ४४) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४३२)
 निसान निशान (१४ ४५) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४३३)
 निसान निशान (१४ ४६) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४३४)
 निसान निशान (१४ ४७) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४३५)
 निसान निशान (१४ ४८) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४३६)
 निसान निशान (१४ ४९) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४३७)
 निसान निशान (१४ ५०) बराबर व बाँव निसान धु मकर मुद्रा दे। (१४३८)

[illegible][illegible][illegible][illegible]

—सुपुत्रास, मरु
मयल भावत निगम
भास, ४ ४
४२।

१—मूल्य बाजत
२—मूल्य बाज, पृ ४
३—मध्यम बाज, पृ ४०।

रखता है। यह चंय से मिलता-जुलता है तथा उसी तरह बजाया जाता है। सूरसागर में होली के बाजों में इसका प्रत्येक बार निर्देश हुआ है—‘उफ की बुनि सुनि बिकल भई सब कोट न रहति पर भूषट्बायो’ अथवा ‘उफ बाजन लाने हेनो। जनहु बलहु जैसे तहें ही जहैं बेसत स्पाम सहेली। (१४८१ १४८२)। साथ ही कुम्ह-जगमोस्तब पर भी उल्लेख है—‘उफ-झंझ-मूर्ख बजाइ, सब नंद मनन गए। (१४२)।

रश्मि का महा मवाड़ा की गज में ‘उफ’ कहलाता है जो होली में चौपाइयों के साथ निकलता है।^१

उपंग (१४८५) [सं उपंग]—‘बोन मुरख उपंग मुरखी झंझ झलरि ठाल। (१४६४)। यह बाज भी गज के प्रिय बाजों में से है। होली के प्रचुर पर घास की उफ के समान उपंग बिछाई दे जाता है। यह उमक अथवा झोलक के समान होता है जिसका मिट्टी लकड़ी अथवा बालु का बना बेरा एक घोर मड़ा होता है। इसी घोर एक ठोट की बोरी लगी होती है जिसके सिरे पर बमड़े का टुकड़ा लगा होता है। इससे चोट करने से शक्ति विकसती है। बंगाल में उपंग का एक रूप ‘जमंग’ अथवा ‘जानंर’ मढ़री कहलाता है।^२ प्राग्नि-मकरी में इसे गरुड से बना बताया है। कुम्ह-जगमोस्तब की शिल्प कला में इस प्रकार के बाजे के बिजस से इसका अस्तित्व बसों शरी में होना निश्चित सा है।^३

कुम्ह-जगमोस्तब पर बाड़ घोर बाड़िनि संबंधी पदों का उल्लेख किया जा चुका है। इन पदों में इनके बुरका (१४६) [सं हुबुरका]^४ तथा डाड़ (१५५) बजाने की चर्चा है—‘बाड़िनि मेरी नाचे गावै ही हुं डाड़ बजावैं। (१५५) तथा ‘बाड़ो घोर बाड़िनि नाचै ठाड़ो बुरक बजावै हर्षि मसीस बेत मस्तक नबाह के। (१४६)।

(घ) धनवाज

१६१ यह बाजे ठाल-बाज है तथा प्रायः सभी प्रथम बाजों के साथ बजाये जाते हैं। इनमें केवल ‘जलतरंग’ ही स्वर उत्पन्न करता है। जलतरंग का उल्लेख अष्टछाप कवि कुम्ह बास ने किया है।^५ यह बाजे कंधे के बने हुए घोर बुद्धि-मधुर होते हैं। यों पीतल या लकड़ी के भी बनते हैं। सूरसागर में उल्लिखित इस बाज की बाज नीचे विवेच्य जा रहे हैं—

मूर्ख^६ (१४२) [प्रा मूर्ख] यह जोड़ी का बाजा है। इसके गोलाकार दो टुकड़े कंधे के बने होते हैं। वीरग पूजा प्रादि में बाज मूर्ख बजाने की प्रथा प्रचलित है। अन्वर बाइराह के भक्ताकाराने में तीन जोड़ ‘संज’ (मूर्ख) बजाये जाते थे।

१—अष्टछाप बास पृ ४२।

२—अष्टछाप बास पृ ४४।

३—अष्टछाप बास नृसिंहा पृ ९।

४—पं टी ३२०। ६, हुबुरक बाज उफ बाज ‘बंजीर’ : ९ यह दोनों घोर बमड़े से मड़ा हुआ बाजा है। बाजों के अनुसार ‘हुबुरका’ की लम्बाई एक हाथ होती थी। इसे कंधे से लटका कर बाड़िनि हाथ से बजाते थे।

५—कुम्ह-बास, ‘सूरमंडल सिनाक, मधुरि जलतरंग मन मोहै।’

६—पं टी ३२०। ६ बाजों के वर्णित कांस्थाल ही मूर्ख है। पुष्पो अन्तर बाज नृची में मूर्ख की बजाह कलात् का उल्लेख है।

७—प्राग्नि घ, पृ ११।

३—संगीत सवधो पारिभाषिक शब्दावली

२२१—रास-मोसा के घन्तवन प्रभावतया मुरली पर्वों में कुछ प्रारंभिक संगीत ज्ञान की सूचक गायनबोली का परिचय मिलता है। मुर में भी संगीत को कहा 'माना है—कता बसिदि संघोत "(१ ७१)। संघोत में गायन बज्जन तथा नृत्य दोनों की मिली होती है। भारत में प्रमुख दो पद्धतियाँ चल रही हैं—एक उत्तरभारत की दूसरी दक्षिण की कर्नाटक। मुसलमानी संघोत-कला का प्रभाव उत्तर में पड़ा था जिससे दोनों में कुछ अन्तर आ गया किन्तु दोनों का आधार एक ही है।

मुर में संगीत नाद ^१ (४६१३ १६६) अथवा शब्द (१ २७) से सम्मोहन का निर्देश किया है—'जही मंगल नाद-रस सारंग बधत बधिक दिन बान । (१६६) अथवा 'बंसी-नाद-स्वाव रस मन' मानन महि भुति एह । (४६१६) तथा मदन रजन की सुधि न रही तनु मुनव स्वर बहु कान । (१ २७)। नियमित तथा स्थिर धावोलनों द्वारा उत्पन्न ध्वनि को नाद कहते हैं। यह मधुर संगीत ध्वनि है।^२ मुरली-नाद के घन्तवत प्राम, तान तथा मूछना (१२७१) [सं] का उल्लेख भी हुमा है—मुरमिवा बाजति है बहु बान । सीनि प्राम इरुईस मूछना कोटि बनबास तान ॥ (१२७१) संघोत के साथ मुख तथा शृङ्ग स्वरों के समूह अथवा सप्तक (स रे ग म प ध नी) को ही प्राम कहते हैं। यह संघोत का आधार है। इन स्वरों के कलापूर्ण विस्तार को 'तान' कहते हैं तथा एक प्राम से दूसरे प्राम तक जाने में स्वरों का आरोह-अवरोह ही मूछना है। 'तान' स्वर 'तान्' [तानना] 'मातु' से आया है अथवा प्रार्थ स्पष्ट हो है। इसका मुख्य ध्येय वायन-वैशेष्य बढ़ाना है। 'क्याम' नामक पोथ में तानों का प्रयोग अधिक होता है। तान का उल्लेख होसो पर्व में भी अनेक बार हुमा है—तान तान^३ बजान बहो हरि होरी है। (१५१२) अथवा इक उबटति इक नृत्यति एक तान सेठि सपक^४ (१५ ६) तथा बाजति सब मधुर मुर गीरी । तान लेति रे रे मरुमरीरी (१५२२)।

सरगम (१०६६) अथवा मध्य सुरनि का निर्देश भी है—'सप्त सुरनि मुरली बाजति बुनि सुनि मोहै सुर-नर-नाम-नन " नृत्य करत कबट्य संगीत पद निरखि मुर रोम्य मल ही मन । (१७५५) अथवा 'नंद-नंदन सुपराई, बांसुरी बजाई। सरगम मुनी के साधि सप्त सुरनि गायी ॥ प्रवीण कलागत संगीत विषय तान भिताई। मुर साज्जब नृत्य बजाइ, पुनि मृदंग बजाई ॥ सकल कला गुन प्रवीण नबल बान भाई । (१७६६) तथा सप्त सुरनि में भेद बतावति नागरि कप-अनूप' (१७६२)। प्रत्येक राग में लगने वाली स्वरों की साम्यता एकता को ही सरगम कहते हैं। यह प्रत्येक रागों से हो सकती है। इसके अष्ट स्वर तथा राग का आग होता है। एक से स्वरों में आस्थाप^५ (१ ७१) की पर्चा भी है।

१—अप्यक्षय में प्र कपद गाने वाले कथावन्त^६ कहलाते थे।

२—य सं टी ४७१६ 'नाद बिलोब राग रस विषय लख प्रीति बिधि बीरु ।
प० सं टी १६१६ कतहुँ नाद छवत होइ भला । कतहुँ नाटक छेटक कला ।

३—संघोत छान्न, पृ ४।

४—मुसली गीता १ २ उपरीहू छंद प्रबंध नीत पद राग तान बजान ।

५—आर्जुन ने प्रातस्तिथान की प्रतिष्ठा बान की भेली में रक्खा है जिसको अब आलाप कहते हैं। पहले इन दोनों में थोड़ा सा भेद मानते थे। रत्नाकर के अनुसार रागों के सम्बन्ध में यह, अष्ट मन्त्र तार व्यास अष्टम्यास अष्टम्य बहुर्य, बाहम्य, प्रीतम्य आदि दत्त बतों का आग रखने पर तामन 'ताम-

वाहित्य संमेलन तथा मूल
 वाग 'आजस्य' पर भी उल्लेखनीय है—सिंह कुछ निर्गुन पवन बकि बिर रहू वाग
 समान्य बर गिरिपारी। (२८५)। आजाप एक प्रकार की वाग है। स्वरो का प्रत्यय का
 विस्तार वाग तथा विविधित सय का आजाप कहलाता है। इन दोनों से ही समीप व विस्तार
 राख (१५६, ३५६) [सं वाग] का अनेक उपपुत्र पदांशों के प्रतिरिच
 प्राय बोले थे स्वानों में भी हुआ है। वाग से समीप तथा मध्य में समय का परिमाण किया
 जाता है। वाग बाधों से आ पूरी प्रयोग विद्य होता है—एक कर निरंतर वाग (३५६)।
 मध्य के समय भी हाथ से ठालो बजा कर ठाक देने का उल्लेख किया गया है—'बाँने कर दे-
 ठाल' (१५६) अथवा नाचत महर मुक्ति मन कोल्ले आन बजावत ठारो। (१५६)।
 राख मध्य व म्हातार (२६८) की बजा है—छह मुबनि के मोह धपार। नाच। कुनर मिले
 म्हातार। यह एक ठाक विधेय है।
 बोल (३५५) का अनेक एक होली पद में है—मुक सतो बावही दीकु बिब
 बिब मोठे बोल। मोठ के खमरो के बाय ठालें बोने पर उनको बोल-ठालें कहते हैं। इसी
 (बोक-पनाप जो होले है। दूसरा में इसका बहुत महत्व है।

४—राग रागिनी

२६५—दूर ने छप्प द्वारा गुरली में धनेक राग-रागिनी बजाने का निबध किया है—
 'राग-रागिनी' प्रगत विद्या गोधो जा विधि रूप। सय मुनि के मेर बगालि नाबिर रूप
 मनुष्य। (२०६२) अथवा 'राग-रागिनि' मेलि बने सुनर मुंड मसार। (१५५६) तथा
 वैकुण्ठ कीर मन हरि कीन्तो नाग राग बजाव। (१५७६) हरि वृ. गुरभी पुनू
 धुनाइ मुरै दूर मेलि राग रागिनी, मभी ठाल उपबाते। (२०६१)।
 धुनाइ मुरै दूर मेलि राग रागिनी, मभी ठाल उपबाते। (२०६१)।
 बौदरी गई। उल्लेख राग रागिनी ठालें बा मानी गई है। (१५६२)। रागिनीवा की लखा कुछ के म्हा-
 संकीर्त-नाचमगुधार रागें बा मानी गई है। (१५६२)। रागिनीवा की लखा कुछ के म्हा-
 बलि बा राग रागिनी हरि होरी है। यह रागों की रसिना मानी गई है। पदमावत
 गुवार ठाल है गोर कुछ के म्हातार बलीव। यह रागों की रसिना मानी गई है। पदमावत
 म दन धा रागों के नाच तथा छापील रागिनीवा का उल्लेख है। दूर ने आ छापील रागिनीवा
 नाच कहलाया है।
 व व दी ५३८२। बोबामर केर सब कुनो। कपडि प्रमय बुद्धि कोकुनो।
 बुनो पारिभाषिक ठाल ना कीर निनो घमम अथवा दला में पारंम्य व्यसित
 के म्हा प्रमुक्त होता था।
 १—व सं दी ११६१७ 'मानुषे बोल गेलो कोकुनो। कोल्ले माळकास
 १—बैरवो कोपिधरबाब हिवोको बोलकावता।
 भी रागो मेरपयव राग पवलि कोलिता।
 १—य सं दी ५२७५ २५ प्रमय राग मैरो केह कोकुन। कोल्ले मेर मसार कोहप।
 बुनि मीनू। बलि द्विन्द्वेय राग किनू बाप।
 बुनि उरु सिरा राग सब निना। दीक कोकुन उठा बरि दिया। अयत राग
 बापुनि अल गुना। भी बापुनि छापील रागिनी।

६—नृत्य

२६१—नृत्य का उत्प्रेषण प्रमुख रूप से कृष्णकल्मस राससीमा तथा बसन्तोत्प्रेषण सीपक पक्षों में हुआ है। नृत्य (१४४) नृत्यति (१५ ८) तथा नाचति (१५१३) [सं० नृत्य] शब्द प्रायः नाचने के सामान्य अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। कृष्ण-जगन्तोत्प्रेषण पर मोक्षम नाचिर्मा का धारित होकर नृत्य करने का उत्प्रेषण मान कर लिया गया है—‘प्राग्द घटिषे मयी वर मर नरम अर्धोर ठावे’। (१४३)। साथ ही तामी बचाने का बखन भी है—‘नाचै कर रै रै ठाम’। (१४८)। छिनु कृष्ण के नाम-नृत्य का कवि ने कई पक्षों में सुन्दर विषय दिया है—‘हरि प्रपनै घायन कछु नाचत’ अथवा घायन स्वाम नचावही बसुपति नंदरानी। कामि-नाग प्रतंज ये ठरुह कृष्ण हाथ किया गया ठाव नृत्य भी उत्प्रेषणीय है—‘सर्वे जग है जमुना क सीर’ ‘संकम देठ घड़ीर’। होली के हुस्सड़ में सबका मत्त होकर यौवन की प्रमंभ में बह कर नाचने का विषय हुआ है, साथ ही ‘मुनक’ बजार ‘चाँचर’ घाबि लोक बीठो के पाले का निर्देश है—‘नाचति तखनि बास वष मोरो’। (१५१२) अथवा एक गावत एक मुस्त एक रहत मोहन’ (१५ ८)। चाँचर के संबंध में बताया जा चुका है कि यह बीठ-विशेष होने के साथ ही लकुट-नृत्य विशेष भी है।

रास-सीमा के मनेक पक्षों में नृत्य का विस्तृत बखन है। इसमें हाव-भाव धंभ संचालन पैदो का ठाम पर पटकना तथा गुपूर किंकिनी घाबि बुमबुर ध्वनि का चित्र उपस्थित किया गया है—‘मोह मोरनि नन केरनि वहाँ तै नहि टरे’। धंभ निरखि प्रगं सज्जित सई नहि ठहराह’। “इते पर हुस्तकनि गति-धवि नृत्य भेष प्रपार’। (१७१३) अथवा नृत्यत स्वाम स्वामा देठ। मुकुट-मटकनि मूकटि-मटकनि गति-मन मुख देठ ॥ कन्हूँ बमत मुगं गति छी कन्हूँ उचटत बीन। मोल कुंडल गड-मंडल जपल मैननि सैन ॥ (१७१५) तथा ‘पचा मोहन मंडल मोम’। मन्हूँ गिरावत चंदा सोम’। पय पटकत मटकत मट बाहु’। मटकत मोहनि हुस्त उझाह’। धंभल बंभल भुमका’। “मडित गंड प्रस्नेह कम’। बाजत भूपन मूर्धन’। गुपूर किंकिनि कंकन कुटी’। उपगत मिजित जगि माचुरी’। (१७१८)। एक स्वभ पर समीत हाथ भाक-प्रवृत्तन तथा भ्रमसार पर नृत्य करने का छेक है—‘धंभ प्रवनि के मेह प्रपार’। नाचति कुंवरि गिने भ्रमसार’। क्यूँ सई सवीत मै’। (१७२५)।

नृत्य के बोल की सूचक उल्लासनी यहाँ मिलती है—‘प्रागनि सौं प्राग नैन नैननि प्रेटकि खे, बटकीसी धवि रेखि लपटाठ स्वाम मन’। होहा-होही नृत्य करे, ऐमि-ऐमि धंभ करे, वा वा बेईं येइ उचटत है हरणि मन’। अथवा ‘जेनु मधुर पुनि बोलत बेइ बिह संपहि नाच नचाए’ (४२७५)। नृत्य प्रायः स्वर तथा ठाम का अनुगत बताया गया है धीर मंदग बाध पर किये जाने का कहीं कहीं निर्देश है—‘सुर ठास’ह मत्थ ध्याह, पुनि मंदग बचाई’। (१७१८)। यह मंडली-नृत्य भाष भी विशेष रूप से जग में प्रचलित है धीर बुम्बावन मधुर की राससीमा का विविष्ट स्वाग है। जग्याष्टमी के प्रवहार पर जग के प्रकट-वख विशेष रूप से कृष्ण-कला से संबंधित प्रमुख बटगारें स्थाव रूप में अथवा मोठ बाधन तथा नृत्य के साथ उपस्थित करी है।

बाध में रास का उत्प्रेषण किया है। संकर के अनुहार घाठ सोलह अथवा बटीस व्यक्तियों का मंडलीनृत्य ही ‘रासनृत्य कलाशा है’। बाध-वखित ‘रेख रजसारज्ज’ तथा मंडली

१—संकर, प्रष्टी बोध नृचानिसद् यत्र नृत्यन्ति नायकाः ।

पिडीभ्यामुत्तारेण तन्मुरा रासकं स्मृतम् ॥

साहित्य संदीप्त तथा नृत्य
माहि विदेयदाएँ उपर्युक्त मूल सर्वो पत्राओं में स्पष्ट रूप से विवृत है। गार्ड-ऑफ के
अनुसार माछी (कुश्केच भबदा गल जगपद) वालसी (गुबराउ व कठियावाड़)
कीछी (बिरन बैल या बरार) तथा भारपटी चार सेमियों के मूल होते हैं। बाब ने मटों
के भारपटी मूल को विदेयदाओं में एकका जलक किया है।^१

एक विनय पर में कीलन के साथ नृत्य करने से कीलन के विन्यासकों के पीछे
गाने का रूपक बोधा गया है। संश्रितों में कीलन के लिए एक निश्च कर बाने का प्रमुख कार्य
भी मिलता है। नृदास्य के संश्रितों में कीलन के लिए एक निश्च कर बाने का प्रमुख कार्य
मन्त्रवाचाय जो ने दूर को होय किया था। मन्त्रवाचाय के लिए एक निश्च कर बाने का प्रमुख कार्य
माहि उत्कालीन बरहियों का ज्ञान होना आवश्यक है। मन्त्रवाचाय के लिए एक निश्च कर बाने का प्रमुख कार्य
काम कोय को पश्चिम कोलना बंट विनय की मात। महा मोह के नृपूर बाबत निम्न
सम्बद्ध रसाङ्ग। अमनोमो मन भवो पक्षावज मात। महा मोह के नृपूर बाबत निम्न
बट भीतर गाना विवि है राब। गाना को कटि जेरा बोधी मोम-सिख विनी मात।
मोदिक बना काबि विजयई एक वन बुवि नहि काब। (१५४)। नृत्य पर कीलन मात।
करने वाली नदतियों (५१५७) का ज्ञान को कटि जेरा बोधी मोम-सिख विनी मात।
भी बहावा का बुका है। बाम्नी ने मट पुरीमि तथा बाब-बाबल के ज्ञान को बहावा
महा है (५५७१८-५१७१९)।

५६० अमान्य समय में संदीप्त पर पत्रवाचा प्रभाव भी पत्रा है। हासनीय पत्रति
में राज रासिकियों के घातक बाने को टीको बल रही है किन्तु बाबराब भीलों तथा बाब
बाबन में पत्रिजो देहों में प्रचलित संदीप्त टीको भी मिल गई है। इस प्रकार का निमब
भावक निमबट के संदीप्त में बहुत है बिहकी मोकविषया समरिष्य है। इसी प्रकार का
प्रभाव मूल पर भी बिहकी पड़ता है।

१—इस का प ५ ११ मट भारपटी सेमों में नृत्य कर रही थे। इस मूल
को पार्थ निमबदाओं पर दही मन्त्राव पड़ता है। मन्त्रोमन्त्र—कमूर ने दबकी
होसिक बहू है बिहकी एक मूल निमियों के सेरे के बीच में माफता है। मोब
के 'बराबरीकठानरट' में इनको से इन्कोसक मूल प्यारा गया है। इस
मूल का उद्भव मन्त्रोमन्त्र अथ इन्कोसिक मूलों से इन्को लय के मात मात
हुया होगा।

ਲੇਖ ਦਾ
ਪਸ਼ੂ-ਪਸ਼ੀ

के समय शीपरो की प्रवृत्ति ऐसी भी मानी 'मूगी सिंह बन बेटी' (२५१)। सस्मिणी कथा में भी उल्लेख हुआ है—सकल पुमान सिंह को मोहन बुरखल देखि छीन ले खाई।' (४७८८) प्रवृत्ति गृह कंठरा समाग सेव यह सिंहहु बाहि बनी' (१८१५)। कच्छ धीर राधा के स्नान-बर्तन में प्रायः कमर का उभाल सिंघ' (१४५१) हो है—कटि सिंह बिरोधी' (१८५१) प्रवृत्ति 'उपमा हरि उनु देखि मजानी। ...कटि निरखत केहरि डर माग्यो बन-बन रहे दुपई'। (२३७१) प्रवृत्ति 'बुद्ध कमल पर नमस्तर झीकत ठापर सिंह करत अनुपम। (२७२५)। मुख की सोमा का इस प्रकार बखान है—मनु सर्वकहि धंक पीछी सिंहिका के सुन। (८२)। बरबोला तथा सिंह की प्रसिद्ध कथा की धोर भी संकेत है—'ज्यों केहरि प्रसिद्धि देखि भी प्रापुन कून पद्यों। (१९६)।

सुगाख (४-१) स्पार, सि १२ (५७) [सं भुगाल] प्रवृत्ति जम्बुक (४७८७) [सं जम्बुक जम्बुक] के व्यर्थ जीवन का अधिकतर विनय परों में उदाहरण दिया गया है प्रवृत्ति मनुष्य-जीवन की निस्सारता बताने के लिए बर्णन है—'सूरदास प्रभु तुम्हरे मजन बिनु जैसे सुकर-स्नान-सिंघार। प्रवृत्ति या बेटी को गरम न करि स्पार काम विष लई। (२७)। तिसुपाल तथा कच्छ की तुलना सिंह तथा भुगाल से की गई है—करनि सिंह तुम्हरी बरी कैसे बपे सुगाल। (४८१) प्रवृत्ति हरि मुख जम्बुक पानिहि' (४७८७)।

बराह^१ (१६१ १६२) [सं बाघह] विष्णु के बाघहावतार का वर्णन कृतीय स्तम्भ में है—'तब हरि बनु-बराह मरि छावी (१६१)।

सूकर (४१) [सं सूकर] कुछ विनय परों में सूकर के तुल्य जीवन का चित्रण है—'उर भरसौ सूकर सूकर ली। (१५) मजन बिनु सूकर सूकर बधी। (१५७) तथा सो तन सूकर-स्नान-नीन ज्यों इहिं सुख कहाँ मिली। (१५६)। सुपर बहुत ही परा पशु माना जाता है।

रीछ (५८१) [सं गृध] राम की सेवा में वे—रीछ संनूर किसकारि जाये करन' (५८२)। सिंह तथा रीछ मनुष्यमणी पशु^२ है।

२—पालतू पशु

१ —यों तो प्रायः सभी बालक बंगली ही होते हैं किन्तु कुछ घर में पाले भी पा सकते हैं। इनमें से कुछ उपयोगी होते हैं तथा कुछ केवल शौक के लिए पाले जाते हैं। बन्दर की किनारी बंगली बालक के साथ पाले जाने वाले पशुओं में भी पा सकते हैं। कुछ लोग

१—५ सं टी १११५ 'यद्यपि सिंह रैकीह एक बाघ। यद्यपि बानि विमर्हि एक गधा।

२—५० सं टी १११५ 'केहरि छक पालन बन हरे।

३—हर्ष-का प ५ १११ सारथ्य लोग विष्णु की उपासना नारायण रूप में करते थे। महाविष्णु की मूर्तियों में बाराह या गृध रूप उनकी कल्पना ही थी। मनुष्य-कला की पुस्तकालीन मूर्तियों में ऐसी मूर्तियाँ भी मिलती हैं।

४—इतिहास एक मोल दु पाणिनि 'अभ्यास' (मात मन्त्र) पद्यों में पाणिनि ने सिंह व्यास कुछ अनेक विद्याल तथा इन पद्यों का उल्लेख किया है। रामजी बरानों में पाले जाने वाले कुत्ते 'कोलेयक [मात २२—कुत्तर] नाम से जाने जाते थे।

बैमवि मतिहि न पावत ।^१ (१२८३) यथा 'मृग त्रीणि तु धनंजय है । (३४२३) । मृग पशुमात्र के धर्म में भी प्राया है—'सकल जग मृग पैक पायक (१८४४)'^२ यथा 'सुनि जग मृग मौन करें' (१२४१) । कृष्ण की अनुपस्थिति पशुओं की कम दुखदायी नहीं थी—'ते न मृगा तुल चरत छहर परि भए रहत हस्त बाठ' (१८२) । प्रारंभिक पर्वों के भक्ति-माहात्म्य बर्णन में कुरंग की चर्चा है—'ज्यों कुरंग जग देखि भवनि की प्यास न गई यहूँ सिधि पायी । (३२३) ।

सारंग राज्य के अनेक धर्म हैं जैसे निठकमरा हिरण सेर हाथी कोकिल सारंग मयूर धारि । मध्यकालीन काव्य में 'सारंग' राज्य को वे कदम्बुरे पुरे पर बनाने की प्रवृत्ति मिलती है । सूरदास में भी कुछ पर इसी प्रकार के हैं, जैसे पर ३३ २७२१ २७२६ तथा ३६८३—'सारंग बिकल भयो सारंग में सारंग सुख सरीर । (३३) तथा पण्डित सारंग एक मन्त्रि । (२७२६) । यहाँ सारंग (हिरण) को संघोष से आकर्षित कर बहिक के पकड़ने की सूचना भी मिलती है—'जैसे मदन नाद-रस सारंग बहत बहिक किन बान' (१९६) । आकलन हिरण राज्य ही प्रायः सुनने में आता है ।

३ १—विचार विद्या (३११ ३५७) [चं विद्या विद्यासक] राज्य विनय पर्वों में उल्लिखित है—मन सुवा तन पीवर सिहि बाँक राखे बैठ । कास फिरत विचार तनु भरि बर करो सिद्धि लेत । (३११) तथा जैसे वर विद्या के मूसा खूँस निपय-बस बैसो । (३५७) । इन पंक्तियों से दोनों प्रकार की विस्ती का बोध हो जाता है—हमर-उमर बरों में बूमने वाली ओ पिछड़े में जाने हुए पक्षियों की बात में रहती है तथा बरों में पानी जाने वाली ओ बूढ़ों को मार मार कर जोनों को परेशानी से मुक्त करती है । अक्सर सोय विस्तिवाँ प्राय भी इसी उद्देश्य से पाल लेते हैं । कभी कभी लीक में भी सुन्दर विस्तिवाँ पाली जाती है । प्राय 'विस्ती' राज्य लड़ी बोली में तथा विचार' प्रादेशिक बोधियों में अधिक चलता है ।

उपमुक्त पछात मे मूसा [चं मूसा] राज्य की घोर प्यास जाता है । मूसा' राज्य बोधियों में चल रहा है किन्तु यों 'बूढ़ा' राज्य अधिक प्रचलित है । विस्ती तथा बूढ़े का वीर कुत्ते और विस्ती के समान ही प्रसिद्ध है । बूढ़ा जिस बना कर रहता है ।

कूकर (३५७) [चं कुकुर] तथा स्वान (३२५) [चं स्वान] राज्य इन पर्वों में अनेक बार प्रयुक्त हुए हैं—'हो गज बस्यो स्वान की नाई (७४) । कुत्त का द्वार पर कान रमकना अपसकल समझ जाता था—'कटकल लबन स्वान द्वार पर' (११५६) । उसकी टेढ़ी पूँछ से संबंधित मुहावरा है—'प्रकृति की बाँक धँस पटी । स्वान पूँछ कोड कोटिक बाँके सूधी कहुँ न करी । (४१४४) । 'मेरी मन मरिहीन बुलाई—जग करत स्वान की नाई' (१ १) 'कीर कीर कारण कुबुद्धि बड़ किसे सहत अपमाना' 'भजन किनु कूकर सुकर जेठो' (३५७) तथा 'स्वान सुख है बुद्धि सुन्दरी । बूढ़न काब सहत दुख पाटी । (२८४) धारि उद्धरणों से स्वान का घारे तिल मटकना तथा बर बर जाने के लिए पिछड़ी जाने की

१—कालिदास, कुमारसम्भव सर्ग ३ श्लो १३—

'जटासु तन्वीषु विज्ञानमेधियं विनीमहृष्टं हरितमङ्गनासु च ।

२—ईशिया एक नोन द्रु पाणिनि पृ २१८, २२१, अष्टाध्यायी में 'मृग' शब्द जमनी जानवरों के आवाज़ के धर्म में ही प्रायः प्रयुक्त हुआ है । एक नृम (११ ८१२) में हिरण Corvidae के धर्म में आया है । पाणिनि ने दो प्रकार के हिरणों 'अध्व' (antelope) और 'न्यल्ल' (gazelle) के नाम भी दिये हैं ।

मी है—'बुधम र्दं ब र्दो बरणि यकासत बल-भोहम-राम हरै—पाठ पकरि मुन सौ महि केर्यो नुत्त महि पधारणी (२ ०५) मुनी करतुति नृपासुर की— (२ १) ।

मैदुनि (४४६) [सं मैदु मैदु] का लक्ष्य-स्वल्प की पुष्टि-कथा में निर्येत हुआ है । यह मेद की तरह का बीपाया होता है ।^१

३—दूध देने वाले जानवर

१०२—इस सूची में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रनु (१२२) [सं० नेनु], सुरमी, सुरमि (१ १२१ १४१५) [सं० सुरमि] गोधन (५१) तथा गार्ई (५१ ५१) या गैया^२ (४) [सं० गौ—गावी—गार्ई—गाह—पाय] का है । विनय-पर्वों में प्रनु की वत्सलता का उदाहरण पाय तथा उसके बच्चे से कई जगह दिया गया है— वर गैया बच्चे के सुमिष्ठ उक्ति भारी । (४) । प्रविष्टा तथा वृष्टा कृषिणी पायों का भी वर्णन है । इन पर्वों में पाय बरामा उसका हृद्ग्रह^३ (५१) होना चाहिए भी उल्लिखित है—'पायी वृ, वह मेरी एक बाह । प्रब प्राब से प्रात-प्रावे गई, त पायवी चराह । यह प्रति हृद्ग्रहै हरकत है बहुत प्रमारन जाति । फिरति बेच-जन ऊब उछारति सब दिन सब सब राति । (५१) प्रबका पायी नेकु हटकी बाह । —ओम बर नव रस कानन इसे बरि न भयाह । गौत सुर प्रब भक्त सोचन सेत सीप सुहाह । ... (५६) । पाय के पीरों के नीचे के मान को सुर [सं चुर] कहते हैं । बच्चे के जन्म चाहिए संयत्त प्रसवों पर शास्त्रियों को चारों दान की जाती थी^४—'उहं यैवां गनी न जाहि, तदानी बच्चे बढ़ी^५ से चरहि जपुन के पीर हुनै हुन चढ़ी । सुर तबि क्य पीठि छेली छीप मड़ी । ते सीन्ही द्विजनि प्रनेक हरिष प्रसीध पड़ी । (६४२) । हिन्दू चर्य में 'गोदान' का दानो में ऊँचा स्थान है—'एकनि कौ गो-दान समर्थ' (६४१) । गाव का मारत में 'माठा या 'मया' का स्थान दिया गया है ।^६ पूजा के 'पंचगव्य' में काल पाय का मूत्र मोबर दूध बड़ी तथा भी सम्मिश्रित है । पाय के बच्चे को बच्चा [सं० बत्स] बच्चरु (१४४१ ५१) बच्चरनि^७ (१ १२५) या गो-मुत्त (१ ५१) [सं० बत्सक सं बत्सक—बच्चक—

किमा है । प्रविष्टि में 'गार्ईक' जाति का नाम भीर जोड़ दिया है ।

१—प्रकर्ष सं मेद के लिए 'प्रमि' शब्द मिलता है और 'प्रमिक' का अर्थ ऊन है । प्रम्वेह में 'उत्पाकतो' शब्द प्रकृत हुआ है ।

२—इ की प्र १, अथवा २ हेमचन्द्र ने प्राकृत व्याकरण में 'पायी' शब्द पाय के अर्थ में प्रयुक्त किया है । उपयोक्ता के कारण पाय वैदिक काल से ही पूज्य माली गई है । अन्वेषित तथा निर्बद्ध में उसे 'अग्न्या' कहा गया है ।

३—इ की प्र १ अथवा २ 'हरिषा' पाय हरी पत्तियों के स्तोमन में बीड़-बीड़ कर केतों में कुल जाती है ।

४—भाषा, नाम १६४ 'हाटक' हेतु वसन्त मणि, गुण विग्रह कर्तुं दीष्ट ।

५—मनुषी, पाय ३ प्र ४२ पाय की पूजा करने का उल्लेख मनुषी में किया है । मोबर से मूत्रि लोपने व गो मूत्र को पवित्र समझ कर पीने की चर्चा भी है ।

६—इ की प्र १, अथवा १२, नाम का सुरत पैदा हुआ घाता बच्चा 'उपरी' कहलाता है । उससे ठीक बड़ी 'बद्धिवा' होती है तथा बचान होने पर

(१२२६) । बग से नीटले समय कुम्ह के नली-बालन का बार-बार चित्रण मिलता है—
 बुम्हावन हैं बेनु-बूब में बेनु घघर बरे मावत । बिहरी (१२२१) सख से गायों के
 हपर-उपर मानन का धर्म ब्यवत होता है—गोर भई मुरसी सब बिहरी । मुरसी से माय
 तथा सख सभी पसु-पक्षी विमोहित हो जाते थे । मुरसी के इस प्रभाव का कवि ने कई पदों
 में बखान किया है—‘बेनु भूष तुल तबि रहे, बजरग न पीवत छीर । या मुनि बेनु मुनि
 बकिठ रहति । तुन बंछु नहि यहति । बजरग न पीवत छीर । बंधी न मन में बीर ।
 (१२४१) घघरा पसु मोहि मुरसी बिषकिठ । (१२४८) । कुम्ह के मधुर-मन पर उनकी
 प्रिय गायों की रखा भी बयनीय हो जाती है—‘क्यों इतनी कहिनी बाह । यदि इस गलत मई
 से तुम बिन परम बुझाये बाह ।.....जहाँ-जहाँ योरोहन कीन्ही सुकति सोई जलें । (४९८८) ।

बोहारण छीपक पदों में गायों के विभिन्न बच्चों पर आधारित उनके नामों का
 जल्सेब है—कारी गोरी, घौरी घूमरि सैं न नाम बुसावत । (१२३५) घघरा
 कजरी घौरी सेंदुरी घूमरि मेरी गैया । (१२८४) । इस दृष्टि से पद १ ११ बहुत
 महत्वपूर्ण है । इस पद में गायों के नामों की सूची दी है—घौरी घूमरि राती रौन्दी, बोल
 बुलाह बिन्हीरी । पियरी मोरी गोरी गैजो कैरी कजरी बेती । पुछही फुछही मौरी
 मूरी हाकि छिम्हई लेठी ।

दूध के दिसावले में कुम्ह का बकरी तथा घौरी का दूध प्रिय होने का किंकरी
 कई बार है—‘गौरी दूध घीरि है राखी’ (११९४) या नीटी दूध माह घूमरि की
 (१३४६)

दुग्ध-रोहन छीपक पदों में घार^१ (११३१) सख कई बार आया है । खान
 के समय बग से नीट ही हुई गायें घपन बन्ध को देखकर या स्मरण कर जो ध्वनि करती हैं
 उसको सूर ने हूंकति (४९८८) घघरा ‘रामति (१ ६८) कहा है—‘हूंकति नीन्ही
 गायें वा ‘रामति बाह बन्ध हित सुन करि प्रेम समगि बन दूध चुवावत । प्राय
 भी हूंकना ‘हुंकर’ या ‘रैभाना’ सख बोलने जाते हैं । महाभारत में भी ‘रैम्यमात्रा’ नाम
 का जल्लेब^२ है । ‘कुम्ह-बन्ध से गार् एक ह्विन हुई थी—‘प्रायः मगम बेनु, सबे कनु पस-
 केनु, रंमयी कमन-जल उलति लहर क । अंकुरित तब-पाव उकडि रहे जे बात बग बेसी
 प्रफुलित कविनि कहर के । (१८८)

गाय के जाने में तुन (१२४१) घघरा मुस (३३१) [सं० अर्थ] का ही प्रायः
 जल्लेब है । प्रायःकल गाव की हरी बस बराने के धावावा नाव [सं० गंध] में घुस जाती

१—कुं भी प्र १ अर्थात् २ बीरी = सख से स्वागत = काली कजरी = बिल-
 कजरी हरिया = हरी बच्चों के लिए खेतों में घुसने वाली मूरी, = बूरे रंग
 की लक्ष्मी = लाल रंग की बकरी = काली बच्चों वाली बकरी = सख पुच्छी
 वाली, कपिला = सीधी माय ।

२—कुं भी , प्र १ अर्थात् १ वैदिक संस्कृत (तै ज ७।५।१।१) में ‘प्रात
 देहि’ तथा ‘सायदेहि’ अथ प्रात तथा सायकाल कहने वाली धारों (वर्तमान अथ
 ‘घीटाई’ व ‘संवा’) के लिए प्रयुक्त हुए हैं । [अत ७।५।१। ‘साहस्रो वा एव
 अतवार जलाम् यद् वीः’] ।

३—कुं भी प्र १, अर्थात् २ महाभारत, विराट पर्व, बोधवृत्त पर्व ।

बर्छन है। यहाँ पर घनेक नाम एक साथ बिये गये हैं। उस समय बिन जानवरों तथा पक्षियों का माँघ बाते वे इसका भी परिचय मिल जाता है। इनमें 'घानर' (बकरा) 'मैका' 'हिरन' 'सगुना (एक हिरण) रोम्ह (मीलमाय) 'बोतर' 'मीन' (एक बारहूँछिहा) 'म्यैक' (साँबर) 'टीतर' 'बटई' (बटेर) 'मभा' 'घारस' 'कुंन' (कौन या कुर्मन) 'पुसारि' 'परेबा' 'पंभु' 'बेहा' (तोतर जातिका) 'मुबक' (बटेर जाति का) 'जमरगोरी' 'हारिस', 'बरब' 'कैम' 'बनकुजरी' 'जल कुजरी' 'बकना-बकई' 'पिबारे' (गिहू) 'नकट' 'मेरी' 'सोल' 'सिमारे' 'घारि'।

४ सवारी के लिए उपयोगी पशु

१ ४—इस सम्भावनी में दो पशु विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—तुरंग (१६१) [चं], हय^१ (१६६) [चं] अस्व^१ (विनय) [चं परब] बात्रि बाजी (२३ १६६२) [चं बात्रि] तुरी (४८ ४) [मं तुरंग] घषवा बाजी [छा बाजी—घरब बैल का नाम] तथा कुंजर (११३ १५११) [चं कुंजर—मछ हाथी] गजेन्द्र (४२६) गयद (४४४) [चं गजेन्द्र मछ हाथी] गजराज (११६४) राज (१७ २७ १६६ १८४१) [मं] मर्तग (२३६०) [चं] मैगछ (१ २) [चं मरकन मरकारिन] घषवा हाथी (११२) [चं हस्ति]—'कन्हूक कहीं तुरंग महापज ।' (१६१)।

इन दोनों का उल्लेख घेना के चार वर्षों तथा सवारी के साधनों के संश्लेष किया गया है। हाथी तथा उसके पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख विनय-पत्रों में बक-बाह काया (४२६ ४३३) के प्रत्ययत घनेक बार हुआ है—'होरि सुझायी हाथी' (११२) घषवा—'हा कस्नामय कुंजर टैर्यो च्छो नही बल बाजी' (११३) घषवा 'बुधित गर्यबुधि' बात्रि के प्राप्त उक्ति बाती। (४) या 'काह घसत यम की बल बुद्ध नाम बैल बाजी बुद्ध टार्यो' (१४) तथा 'बक-मोचन क्यो मयी घषवतार। (४२६)। कहीं कहीं निरंकुश मतवाले हाथी घोर मन का कम्क किया गया है—'माजी नू मन घषही बिनि पोष। पति घमल निरंकुश मैगछ किता-रहित भसोच। (१ २)। स्त्रियों की बाल का उपमान भी मर्तग ही है—'मंघ मंघ

कपरी के छोतक बे। 'बाबाल' तथा 'महाबाबाल' बकरी भेड़ें पालने वाले की कहते थे। 'अभि' घषवा 'बात्रि' भेड़ों के नाम थे।

१—य सं टी ३४१। 'अबर मैका बड़ प्री छोटे—नोट बड़े सब टोड़ टोड़ बरे। घबरे घबरे कुकड़ न बरे। कंठ परी बल घुरी रकत बरा होइ धातु। के घाएन तन पोखा बा प्री परखा धातु।

२—मावत बाल २६८, हय बय स्वर्ण साजहु बाई।

३५६, 'यम रच तुरंग बाल घक बाती। येनु घमकृत कामपुहा सी।

जात्यो , १७३ 'बाखी बास बात्रि यम हेल बलम बलि ।'

३—ईशिया एक नोन टु बात्रिनि पृ १४३ २१६, एक दिन में घोड़े द्वारा पूरी की पयी पाया को 'घाघनीन' कहा जाता था। 'घमन' तथा 'बाबन' घमन की मिलते हैं। क्रैटिप के अनुसार जेठ घमन कम्बोज दिगु तथा बाहु नीक ॥ घते थे। पृ २१८ हाथी को 'हस्तिन', 'नाम' घषवा 'कुंजर' नामों से पुकारा जाता था। बड़े लुंछ बासा 'घुरगार' कहलाता था तथा 'बिहस्ति' एवं 'बिहस्ति' ऊँचाई मोचाई के नाम थे। हस्ति-वत का उपभोग भी होता था।

लक्ष्मणा के पीर । नील सुरंग कुमैल स्वाम तेहि परदे सब मन रंग । बरन अनेक भाँति भाँति के बमकल बपमा ईन । (४७१४) ।

मौल [अ० बीन] बड़ाऊ बखित है—'मान जराइ बु छयमपाइ रहि देखत दुष्टि प्रमाइ । (४७१४) ।

कुम्ह-बिमल्लो बिबाह मे भी कुम्ह का बोड़े पर जाने का बखान है—'तुरी ठात्री सिता राजन^१ बपल बपमा भीहरी । जान जरित जराव पाकरि लबी सब मुक्ता लपी' ।^२ बीन [अ० बीन] बोड़े की पीठ पर पड़ी बमके की गद्दी को कहते हैं ।

पाकरि [सं प्रकर] बोड़ पर पड़ी झूल होती है ।

राजन [अ० राखिमाना] बाबूक [अ०] या बोड़े [सं कर] को कहते हैं ।

ठात्री [अ० ठात्री] घरब बेश के प्रसिद्ध बोड़ से ।

बोड़े की भाग (२३) [सं बला] का परिचय भी मिलता है—'बाएँ कर बाहि बाग' (२३) । इसको बाग रास [सं परिम] भी कहते हैं ।

पद्यावत (४६) से व्याह-बाह किस्मों के बोड़ों के संबंध में पता चलता है । उसमें 'लीन लीसे रंग का बाब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है । हाँमुब' कुमैल' 'हिनाई' 'मंबर' (भीरे के रंग का मुक्की) बाहि सुरसावर के बोड़ों से मिलते हैं । इसके अतिरिक्त 'समुंर' (बादामी) 'किमाह' (कमलोज़ लाल) 'इर' (इस रंग का बोड़ा दुर्लभ है) 'जुरंग' (लाल के रंग का या लीला कुमल) 'महुम' (महुए के रंग का), 'पर' ('रोएँ सऊर ब लाल) 'कोकाह' (सऊर) 'बोसाह' (बदन व पूँख के बाल पीसे) 'तुबार' (तुपार बेश का मध्यप्रदेश में लकों के एक कबीले व मुलस्वान से बाने वाले बोड़े कुपाह तथा मुत्तकाल में इस नाम से प्रसिद्ध व ।) बाहि लगे नामों पर भी प्रकाश पड़ता है । बाठ्यों लठी के पूँखों में घरबी सीतार का ठाँविक व्यापारी राम्पूट राजाओं के लिए बोड़े बाने लगे से धीरे धीरे लीरे उनके बिबेसी नाम भी प्रचलित हो गए । बाब ने भारतीय नामों का छाठनी लठी के पूँखों में उल्लेख किया है जैसे 'लोख' 'रयाम' 'रबेत' 'पिबर' 'हुरि' 'सितिर' 'कम्पाप' बाहि ।^३

एक दो स्वामी पर छट (३५७) [सं उच्छु] का नाम भी मिलता है—'सुरदास भमबंठ-बजल विनु मनों छट-बुप-नीछी । (३५७) । करम (६६) [सं]—'करम-कर पाकुरि'—छट बपमा हाथी दोनों बनों में धाता है । बाब छट पर अधिकतर तरकारी फल बाहि सामान लाकर गाँवों से नगर ग से बाते हैं ।^४ इसके अतिरिक्त पश्चिमी उत्तर प्रदेश में

१—प सं टी० ४५५।६ 'राजन नाम सिंह बसबाक' ।

२—हर्ष का अ० पृ १४३, बालकालीन बोड़ों के नाम में 'लबलकलापी' 'किकिस्सी' तथा 'लालो से पुनत 'पर्याय' बपमा लीन प्रचलित थी । यह 'लाल लारक' (खेरलाल) से लीयी जाती थी । लाली पूँख में प्युनई जाने वाली छोले की बलकी थी तथा 'लबलकलापी' नाम से लटकने वाली पुतलियाँ होती थी ।

३—प सं टी ४५। (३) ।

४—इंडिया एच मोन दू पासिनि पृ ३१३, 'कपू' तथा 'लीपूक' नाम छट्ठाध्यायी में उल्लिखित हैं । करम (छट का बपमा) 'नृ' 'लालक' कहलाता था, क्योंकि वहीर से बाँप कर लखा जाता था ।

कक्षप-रूप बारी' (४३५) । समुद्र-मंथन में इस रूप में उन्होंने देवताओं की सहायता की थी—'बासुकी नेति धव मंत्राचल रई कमठ मै धापनी पीठि भारी । (४३५) । इसके प्रति रिक्त धन्य स्फुट प्रसंगों में भी जहाँ पाई है—हरि जू की धारती बनी—कक्षप धव धासन धनुष धति बौहो सहस्र फणी । (१७१) धवना सुमट मनु मकर धव केस सेंवार ध्यों मनुष धव चम कूरम बनाई । (४८ १) ।

गज-ग्राह कथा में ग्राह के कई समानाधिकरण प्रयुक्त हुए हैं—गह (३३२) [सं० गह] मगर (१५३४ २४३६) [सं० मकर] तथा ग्राह (७ ५ २६) [सं० ग्राह] 'माधो जू धव ग्राह है छुड़ायो' (४४) धवना गह गह-सोस बीनी (४३२) । देवध्वि के ताप से एक वर्षा के ग्राह होने तथा अगस्त्य ध्वि द्वारा दिये भये ताप से राजा इन्द्रधनु के गजेन्द्र होने की यह कथा (४२६) विष्णु की भक्तवत्सलता को सिद्ध करने के लिये बार बार बताई गई है । कवि को कृष्ण की विद्यालय खाम-बख बाहुओं को देखकर बस से बाहर निकले मयरो का संदेह होता है—स्वाम बाहु विद्यालय केसर-बीरि विविध बनाइ । सहस्र निकले मयर मागो कूष खेलत बाइ ॥ (२४३६) ।

धावकल मयर' नाका' तथा 'धड़ियाल' शब्द प्रचलित हैं । मयर का ठिकार भी किया जाता है ।

बर्षा-वर्षण में विशेष रूप से बाबुर बाबर (१६२३ ११ १२१६) [सं० बाबुर] धवना मेढ़ा (१५३४) [सं० मंडूक] का उल्लेख हुआ है । वर्षा से प्रसन्न होने वाले बस मोर, पपीहा धारि के साथ साथ भी बाबुर का नाम सर्वत्र मिला जाता है—धव नावनि पुकार बाबुर सम, बिनीही कूर कर्नाई' (८२६) धवना बल बाबुर बलकार' (१६२३) तथा 'बाबुर मोर बकोर मनुष पिक बोसध धनुष बानी । (१६२३) । विरहिणी नोपियों को इन सब का स्वर धाराध के बिना शून्य के समान कष्ट होता है—बाबुर मोर पपीहा बानत कोकिल शब्द सुनावी ।

सुरदास प्रभु जी कहियो नैनलि है मर लायी ।^१ (१६१७) । साँप मेढकों को मक्खर का बता है—बाबुर बाए सेपनि' (१६२८) ।

पद्मावत में मेढा' शब्द मेढक के अर्थ में आया है । कुरंग का मेढक वा 'कूप मंडूक' शब्द संकीर्णता का भाव व्यक्त करता है ।^२

६—सर्प तथा अन्य रेंगने वाले जानवर

१ ब—साँप के पर्यायवाची शब्दों की भरमार है । विनय-पत्नों में स्फुट उल्लेखों के प्रतिरिक्त रूप-वर्णन पत्नों में उपमा के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया गया है । अक्षरार (१ ५)—[सं० धमजर] धर्मपदिक अर्थकर तथा विद्यालयक होता है । वह साँपों की जिन में सबसे अधिक बढ़ा है । अंतर्गत में एक ऊँची बास धवना धड़ियों की धाड़ में बिपकर ; सरलता से धपला ठिकार पकड़ लेता है तथा धावित ही निपस लेता है । फिर इसका १ बिन एक हिलता बुलना कठिन हो जाता है । ठिकार के बारों धोर रस्ती की तरह बिपटकर

१—य सं टी १४७१६, 'बाबुर मोर कोकिला पोक ! कर्छु मेढ बट रही न बीछ ।'

२—यही १४७१६ 'सर्प' न नाम कु धा कर मेढा ।

रही फनिग की मति क्वी' (४'११) 'मानों मनिधर मनि क्वी खोड़ की फल तर रूत दुपार। (१२१२)।

रूप-वर्णन शीघ्र पक्षों में राधा तथा गोपियों की बेखो पम्पना [सं०] प्रथा फनि [सं० फनिन्] के समान वर्णित है—'मनो रूधी पम्पन पीनन की सवि-मुख सुभा निहारि (२७३३) प्रथा करि प्रविष्ट प्रविष्टि न सह्य फल' (२७३५) तथा एक फनि (२७३) । बाल-नोपाम की बोटी भी नागिनि (७६३) [सं०] बीसी जात होती थी—'काइन मुहत्त म्हाबत्त वंई नागिनि सो मुई बोटी। (७६३) तथा तच्छ कच्छ की बाई महिराज का भ्रम करती थी—'मुदा देखि महिराज सवाने। (११७५)। सुगर भुव भो भुवनिनि का मान करानी थी—'नैन मीन भुवनिनो भुव' (२८३३)। काम भुवंगम [सं० भुवंगम] से बड़े जाने की प्रथा का विवरण कई स्थानों में है—'नदि संमार घबई भुवनिनि बसि मरन भुवंगम डंसी। (२७३३)। उन्हें विद्यावस्था में सम्झी जाती रीति भी नागिनि के समान जात होती थी—'पिम विनु नागिनि कारी राग। की कूई नागिनि उवति मुईया डसि उमती छै बाठ। (३५६)। पूतना की प्रथा साँप डमने को सो हो गयी थी 'गह मुरझाई परी मनी पर मनो भुवंगम झाई' (१७)। यहाँ भुवंग [सं० भुवंग] की भुव विमाने की प्रथा का पता चलता है—'कहा होत पयपान करावै बिस नहि तबत भुवंग। (११२)।

३१ —सरग शीप (११६१) प्रथा नागखोक (२६) [सं०] भी उल्लेखनीय है—'नागखोक की बाए'। नाग कबू से सरग तथा करप के बखस मान गए हैं। इनका निवासस्थान पाताल है। नागों के प्रविष्ट प्राठ कुल है—'बापुकि तच्छ कुलक कर्कोटक परम शंखचुड म्हापद्म और बलबल।

मुय्यरारी (१५४) बल-सप की कहते हैं। बिजावर-शाप-मोचन पर में मंत्र को साँप काँसे से को बटना है। जूनि धमिरा के शाप से बिजावर सप हो गया था। उसने कच्छ के बरख-स्पर्श से अपने पूव रूप को पा लिया। साँप के काटने को डंसी (२७३३) डसि (३५६) तथा झाई (१७) कहा गया है और साँप काटने पर मूर्च्छित होना तथा 'छहरे झाव (३५५) प्राप्ति का बखन है। साँप रिल न रूता है^१। साँप को प्रामीय बोली में कीड़ा कहते हैं।

भुव-उद्वार-कथा में गिरगिट (४५१७) [वलवति] का निर्देश है—'तनक बूकते विरगिट कीन्ही' तथा उरुदुदरि (४३२७) [सं० उरुदुदर] का गोपियों की विद्यावस्था के बखन में—'मई रीति हठि उरग उरुदुदरि जाई क्वी न जाठ (४५७)। गिरगिट छिपकली से मिलता जुलता है जो छटार का रंग बलवता रूता है।^२

१—य सं० टी, १४१२, 'सिज नाम मे बे घे उठा।'

२—य सं० टी ६०१३ विरगिट बंद करे दुख रिया।

जिन जिन राग पीत जिन रिया।'

३—य सं० टी, ४१६ 'कीन्हेति बहुत रूहि जनि मादी।'

गुपूर धीर किङ्किनी की सुलभा मराल धबका 'मराज-सोम' से धनेक स्मरणों में है—'मनो मधुर मराल सोना किङ्किनी-जम-राज' (३७) या 'गुपूर परम रसाम । मानहुँ जल कमल रस सोमी बैठे बाल मराल । (२४६) । कृष्ण बलराम को देखकर नीमकंठीर धीर मराल का भ्रम उनके बखों के कारण होता है । जलना यनि माहुँ सरस्वति संम उभय दुख कम मराल प्रब नीमकंठीर । (७७६) । गज के समान मराल या हंस की भी पास से उपमा ली गई है—'गज बलि मंड मराल बिरोधी' (३८५१) धबका मयल मई बलि हंसी' (२७४१) ।^१

हंस के संबंध में काव्य-प्रसिद्धि है कि वह मोती चुनता है—'जल तनि हंस चुने मुक्ता हल' (१८४८) तथा यह भी प्रसिद्ध है कि 'मानसरोवर छाँड़ि हंस लट काग सरोवर म्हाँ' । (३५६) तथा 'उड़ि धाए तनि हंस पाठ मनु मानसरोवर सीर के (२९८२) । प्रारमा का कपक हंस से प्राय भी बाँधा जाता है तथा मानसरोवर से परमात्मा का—'बा जल हंस लमी यह काया प्रेठ प्रेठ कह पावी । (७) धबका मुनि-मन-हंस-पञ्च-कुग बाँके बल उड़ि ठरव जाव । (६) तथा बलि सखि लिहि सरोवर बाहि । ...हंस जम्बल पंख निमल संम मसि-मसि म्हाँहि । मुक्ति मुक्ता धनबिने कम नहीं चुनि चुनि बाहि । (३३८) । इस प्रकार हंस अपने उन्नत बर्ण सुन्दर गति तथा कम व्यभि के कारण प्रसिद्ध है ।

३१९ सारस^१ (१९९९ २३७६) [सं] कम-सरोवर के निकट रहने वाले पक्षियों का बखल इस प्रकार है—'देखी माई कम सरोवर साखी । ... सारस हंस धीर सुक-सेनी बँजयति समतुल । (१९९७) । हंस के समान ही सारस जल में रहता है । सारस का शरीर चितकबरा धीर टोने व बाँध समी ली होती है । सारस का बोड़ा हमेशा साब रहता है । यदि एक की मृत्यु हो जाती है तो दूसरा फिर कभी बोड़ा नहीं बनाता ।^२ सारस का यह प्रेम प्रसिद्ध है ।

बक बकी (२३६३) [सं बक] बगुली (३५७) [सं बक + पोखक—बपोला—बमुसा] बजाक (२४२५) [सं] तथा बजाहक [सं बनाहक] शब्द विशेष कम से कृष्ण के कंठ में पड़ी मुक्तमाल के उपमान कम में प्रयुक्त हुए हैं—'त्याम हारम कमलुष की माना—मनहुँ बजाक पंक्ति मयजम पर.. (२४२३) तथा 'बनु बसपति मान मोठिन की' (३६३३) । उसकी रोमावली से भी बग पंगति का आभास होता है—'रोमा बली सुमग बक-पंक्ति बासि नासिक बूँड । (२३६३) । इस बखरख में बकों के एक पंक्ति में उड़ने के स्वभाव पर प्रकाश पड़ता है ।

कमि के अनुसार भयवत् मयज के शिवा मनुष्य-जीवन धीर पशु-पक्षियों के जीवन में कोई अन्तर नहीं रह जाता है—'बय बपुषी बय पीन-बीजिनी धाव जलम सिमी लैली ।'^३

१—प० सं टी ३२।३, 'कक सिक्को सारस लैमी । हंसबासिनी कोठिन लैमी ।

२—प सं टी ३२।३, 'हंस जो रक्षा लरीर महुँ बंख जरे तन बाक ।

३४७।६ 'जलजल बंजरि हंस बसि धाए । सारस बुराहि बंखन देकाए ।'

४—मानस ७९७ 'मोर हल सारस पारावत । यहाँ 'पारावत का अर्थ कम्बुतर है ।

५—प ६० टी ३३।४५ 'बैराह पंक्ति जो संघहि संवा ।

छेय पीठ राते बहु रंवा ।—

कुराहि सारस मरे हुलसा ।

अधिन हमार सुघहि एक पावा ।

११८—संजन (२४२८ १८३१) [सं०] यवना खंजरीट (१५२१) [सं०]
 छत्र प्रायः नेत्रों के उपमान रूप में प्रयुक्त हुए हैं—‘मातुं संजन विच सुख बंदू’ (२४१८)
 या ‘कमल बरन करन ई संजन मागी बुद्ध बरि’ (१८३१) तथा ‘खंजरीट मूय मोन
 मधुप मिमि’। संजन वन के निकट रहने वालों पर्यटन मूरो पीली तथा खाम बरों की छोटी
 सी बिड़िया है। यह प्रात्यक्षिक संबंध होता है। एक छत्र भी एक स्थान पर नहीं रह पाती है।
 मरा कवियों ने नेत्रों की अपभ्रंश का उपमान इससे ही लिया—‘खंजरीट घटि मूय बपस भए’
 (१८३१) यवना ‘रेखि री हरि के बंजन नैन’। संजन-मोन-मूयन अपभ्रंश, तर्हि पठ्यर
 एक संन। (२४११)।

पिक (११२ १८१०) [सं०] कायल (११२२ २८) तथा कोकिला
 (१८११) [सं० कोकिल] पक्षी वर्ण-वर्णन में विशेष रूप से चर्चित हैं—‘मोर पुकार
 पुकार कोकिला’ (१८११) ‘कल यवना कोकिल’ (११२२)। कोकिल की स्वर-माधुरी
 विमोक्षिनी श्रवणियों को प्रसन्न करता है—‘बातक पिक दादुर बकोर, ये बनें मिने हैं मोर’।
 (११४३)।

उनके धारात्म्य को वर्णन करने में भी प्राकृतता नहीं होती इसका क्या कारण हो सकता
 है—‘किन्हीं बम गरबत तर्हि वन बैसनि। किन्हीं उहि बैस बनि मय खांटे मरनि न मूय
 प्रवेसनि। बातक मोर कोकिला उहि वन बपकनि बनें बितेसनि।’ (११२८)। प्रायः भी
 धारात्म्यों में कोकिल का मधुर स्वर लोगों को वसन्त की सूचना देता है। एक कोकिल की
 धारात्म्य सुनकर दुसरी भी बोलने लगती है। वर्ण शीर्षक कुछ वर कोकिल की संबोधित किये
 गये हैं—‘कोकिल हरि को बोल सुनाउ’ (११५८) यवना सुनि री खली समुद्रि सिख
 मेरी। (११५९)। यह पक्षियों द्वारा प्रिय को संदेश देने का ढंग नया नहीं कहा जा सकता।
 कोकिला के स्वर-माधुर्य से ही कवि प्रायः नायिका की बाखी की तुलना करते रहे हैं
 बानी मधुर बालि पिक बोलति कवम करण बान (१०८४) यवना—

‘कटि केहरि कोकिल नम बानी सखि मूय प्रभा बरी।

मूय मूरी नैननि की सोमा बाति न पुष्य करी।

बपक-बरन बरन-कर-कमलनि बाकिल बसन तरी।

यति मरान बर किं बर-बनि बहि मूय करी। (५७)

छोटा-विमोच में राम-विमोच शीर्षक इस पद्यों से मध्यकालीन ब्रह्मिक उपमानों का
 अनुमान हो सकता है।

परेवा^१ [सं० पारवा] तथा कपोत (१२७७) [सं०] की उल्लेखनीय नाम हैं।
 ‘छिपर कपोत बरन ठा करन’ हरि बने कोर, कपोत मधुप पिक धारंग सुनि बिसरी।
 (१०८८)—बखन कृत-पदों में है। हिरोबा-शीपक पद (परि० ११) में कासिदी-उट के
 बखन में बनेक पक्षियों के नाम एक साथ दिये गये हैं—‘तई मास मुनिनी मूय बैठे मल प्रसि-
 मूय मूय। ईय-बक-बकोर बातक कीर कोकिल पूय। मुंय मुंय तई मोर निपय करन
 मुंय मुंय। हरिनि परेवा मूय पिकल कपोत मुंय-मुंय-मुंय। सोलहि भइगह मधुर बानी

१—य सं टी, प१५, ‘ऊह ऊह कोकिल-करि राखा। जो निपय बोल मुंय
 माखा।’

२—य सं टी० २४३, ‘बिरहि परेवा भी करनगही।’

११३, ‘विरहि परेवा धाम बर...।’

धमका सुबटा या सुवा (५६८२ १४) [सं शुक्र:] का उल्लेख विनय पत्रों में बहुत हुआ है। हरि-महात्म्य तथा बचन के लिए धम्य कथाओं के साथ नासिका-कोर कथा भी बार बार बचाने से कवि नहीं बचता— कीर पड़ावत नासिका तारी ब्याध परम पर पावी (१७) धमका 'सुवा पड़ावत नासिका तारी । (८) । सांसारिक प्राकृतियों के मोह तथा भ्रम को समझने का जो तरह तरह से कवि ने यत्न किया है— विषय भयी नसिनी के मुक ज्यों दिन गुन मोहि नह्यी (४९) धूरदास नसिनी को सुबटा कहि कीने बकर्यी । (३६२) धमका 'कतहुँ सुवा होत सेमर की घोंहि कपट न बचिबी । (५६) धमका ज्यों सुक सेमर फूल बिलोकत बात नहीं बिनु बाप । (१) तथा 'सेमर फूल सुरंग प्रति निरखत मुक्ति होत जग भूप । (१२) । नसिनी पर बैठते ही नास के भुक्ने से वह उड़्या बटकने लगता है और अपने चढ़ने की शक्ति को भूल जाता है। माया से भ्रमिष्ठ प्राणी को धमका भी ऐसी ही है। एक पर में 'सुवा धास्या का बोधक है— सुवा बलि या बन की १५ पीज। या बन राम-नाम प्रसिद्ध-रस झबन-पाव भरि भीजे । (१४) ।

कर्म-वर्धन में शुक्र नासिका का उपमान है— नासिका पर कीर बाण (१४५३) या नासिका शुक्र नैन खंडन कहत कवि सरमाई (२१७३) । धावकल ठोठा ठग्य प्रबिक बोला जाता है। बामीख बोली में 'सुवा' या 'सुधा' भी कहते हैं। तोसे की बोध सुम्बर होटी है। कर्म-वर्धन तथा बन के पशु-पक्षियों में कीर का बहुत बार उल्लेख है— 'ते धम बिपिन प्रवीर कीर पिक डोसन है बिलबात । (१८२) । मनुष्य बोधी के शब्द सीखने में पक्षियों में सबसे प्रबिक कुशल योगा पढ़ने का उल्लेख सूरदासर में है।

सारिका या सारी [सं सारिका] (१६९१) मैना को कहते हैं। पिंजरे में पाली जाने वाली बिकियाँ में शुक्र तथा सारिका^१ दोनों ही हैं—इंस शुक्र पिक सारिका^२ 'बूझै शुक्र-सारी (१७३६) ।

१२१—बकार^३ बकोरी (२७३६ २९६ ३८५६ [सं] का बक्र के प्रति अनुपम

१—नानस, बाल , ११३ 'शुक्र सारिका जानकी क्याय। कनक पिंजरन्हि राखि पड़ाय। प सं डी , २६१३ 'सारी सुवा लो रह्यह करहीं।' शुक्र-सारिका तथा तोता-मना का साथ-साथ उल्लेख प्रायः होता है। यह एक बुधरे के साथ धार्मिक-मान रहते हैं।

२—अतिवाह, उत्तरमेघ इलो २९, 'बुझैलो या मधुररसना सारिका पंकरास्या ।

३—हृष सा घ पु १८६, शिख्यप्रती के वधु-वस्त्रियों के बर्तन में बाल में धनेक नाम दिये हैं तथा प्रत्येक किस कार्य में निमग्न या यह कताता उनके स्वभाव पर भी प्रकाश डालता है—बते बकोर अपनी प्रचंडी की चोंच से कुम्पा है रहा था बलकुलकुटी कोटर में बैठी थी, यीरवा बच्चों को चढ़ना सिखा रही थी, सुरंड पक्षी पीसु फल खा रहे थे तोतों के लम्बे खरीझ व कटहन फुतर रहे थे। इनके प्रतिरिक्त कलमोच, लिपकली, रजु नेकले, कोबल वर तथा कम्बु धिरव मोलांडव मुन मोलबाय, मेड़िने हाथी, लेंकुए, सुपर, जूहे, धामिजप्रक तर्पया बन्दर तथा लजूर घाबि पक्षियों का भी बर्तन है।

हृष सा घ पु २७ बलोचली बली-प्रसंग में कुछ गूह-पक्षु-पक्षियों का उल्लेख राजभवन तथा धन्त-पुर बर्तन में आया है। इनमें पंजर-शुक्र-सारिका, गूहमधुर, हंसमिथुन, बक्राशक-सुपल, गूह सारको तथा भवन हसी उल्लेखनीय हैं। वधुओं में गूह-रिखका पंजरचिह्न तथा राजभवन कीनेवक नाम दिये गये हैं।

रे पापी तू पंखि पपीहा पिय पिय कर घबराति पुकारत । (३८५६) किन्तु कभी कभी कुछ की समझना निकट भी जाती है—'अनुत्त बिन बीबी पपिहा प्यारी । बासर रैन नाम नै बोलत भयी बिरह बुर कारो ॥ (३८५५) । पपीहे का रंग हल्का श्याम या मूरा होता है और चोंच धानी सी होती है । पपीहा तथा चातक को एक हो बताया गया है—भापु बुबित पर बुबित जानि भिय चातक नाम तुम्हारी । (३८५५) । काले पपीहे को ही चातक कहते हैं । इस पर मे इस बात का संकेत है । पर ३२५ में एक सान एक निष्ठ प्रेम सिखाने वाले इन सभी का चित्र किया गया है जैसे स्वाति-चातक^१ कमल-रवि भ्रमर घंमुख दीपक-पतक मीन बल परेवा-परेवी कुरंग-माव तथा पारसीय पत्नी का पति के प्रति एकांत प्रेम ।

क्यों वसंत तथा श्रवण स्फुट प्रसवों में प्रयुक्त कुछ और पक्षियों के बोरे से नाम उल्लेखनीय है जैसे इतर पैवर (३८२२) गररी (२२६८) मिल्सी (३८४६) [सं मिल्सी] तथा गद्गद्ग (परि १०६) । मिल्सी के लिए प्रायः अधिक प्रसिद्ध शब्द 'भीमुर' है । इसकी आवाज को प्रायः 'मनकारणा' कहते हैं । एक स्थान पर अरुही का नाम भी आया है—'क्यों भारत भल्ली के घंटा राखे पक्ष के बंट उरी । मुरखदास ठाहि डर काकी निधि बासर को बपत हरी । (४७७७) । यह सम्भवतः 'मारदास' [सं] नामक छोटी बिक्रिया है । महाभारत के युद्ध में धृति से डक जाने के कारण इसके घंटे को रक्षा की क्या है जो मग बान का मकड़ों की सहायता करने का एक उपाहरण है ।

कुछ कुक्कु तथा घंमुख समझे जाने वाले पक्षी भी हैं जैसे—

काग (२८६ ११५६ ४२ ६) [सं काक] या वायस (४३७१) [सं वायस] तथा गीघ गीघनी (२७ ३६ ३५७) [सं पूर्व युव] तथा उल्लूक (१ २४५२) [सं उल्लूक] । मुठक शरीर पर संवराने वाले पक्षु-पक्षियों का उल्लेख बिनय-पदों में अनेक बार है—मा बेही की परब न करिये स्वार काग निष डीही । (८६) प्रबवा 'मह उल-वति जनम फुटे स्वाग काग न बाह । (३२६) । कुक्कु होने के साथ ही कोए की आवाज भी कटु होती है ।^२ एक कोए के मरते ही बोरी बेर में सेकड़ों कोए जमा हो जाते हैं, फिर कुछ बेर बाद ही उड़ जाते हैं—'बरी एक सवन कुटुम्ब भित्ति डेठें स्तन विभाप कराही । जैसे काम काव के मुरें, कां कां कर बड़ि बाही । (३१६) । प्रपता स्वभाव कोन बोड़ चकता है, अत्यन्त हरि-विमुखों से भूर ही रहना प्रेयस्कर होता है—'बानहि क्य कपूर बुयाएँ, स्वाग नुबाएँ बंध । (३३२) । घंमुख लज्जनों में काव का बोलना भी है—'बाएँ काव बाहिने बर स्वर व्याकुल बर फिरि पाई । (११५८) तथा 'मावे पर हूँ काव उड़ानी कुमुदुन बहुतक पाई । (११५६) । कासियरमन के पहले इनका उल्लेख है ।

१—प सं टी २६।४ पिठ पिठ लाने करें पपीहा ।^३

३४२।१ पपिहा लत बोले पिठ पीम ।

२—कुसुमी बोहा १७ काँचि बाहू बास भिये पपीहा स्वाति जल ।^४

बोहा २२ 'सुनि भोवन बफोर सति राधव'

मानव , भयोध्या २१५ 'संपति धकई नरतु बक सुनि बापल खेलवार ।

तेहि भित्ति बादम पित्रा राखे ना मितुवार ।

१—प सं टी , २६।७ 'हुहुहुँ मोर सीहावन लाग्य । होइ कोटपुर बीताई कपय ।'^५

परतुष्टम व कमरणि कथा (४५२ ४५८) में छहस्रबाहु द्वारा कामधेनु पुरा में जाने का प्रसंग है।

ऐरावत^१ (१५६४ १६२१) [सं] इन्द्र का हाथी ऐरावत माना गया है—सुर कन उहित इन्द्र बज भावत । ध्वजस्त वरुण ऐरावत देवकी उत्तरि गगन तै वरुण बँसावन । (१५६४) धक्का 'उभ तिहि समय धाकि ऐरावति बजपति छौं कर जोरे । (१६२१) । रवेत बर्य का ऐरावत तथा कामनाधेनु दोनों समुद्र-मंथन में प्राप्त चौदह रत्नों में से—कामना धेनु पुनि सप्तर्षि की बई' 'ध्वरा पारिजातक धनुष मस्त मन्स्वेन से पाँच सुरपतिहि दीन्हें । (४३५) ।

गडङ्क (५७ १० १५ ४३१) [सं गडङ्क] वह विष्णु की सहाये है मत्त पक्षियों का राजा माना जाता है । नव-बाहु कथा में इसका उल्लेख सबसे अधिक है—नवह समेत सक्त वेनापति पाँचै मानै भावत । (४३१) धक्का धति कवन-कातर कवनामय पडङ्क की सुटकायी । (४३१) । नवह छपों का तनु भी माना गया है मत्तएव कामिनाग का भय उसके प्रति स्वाभाविक था (११६१) । हिम्बु बर्म के धनुषार पृथिवी हाथियों की सूइयों पर टिकी है जो मात स्थानों पर है । ऐरावत पूव में माना गया है । पृथ्वी के हाथी इन सबके हाथ उत्पन्न माने गये हैं ।

सेस (६२२ ६२३) [सं सेय' सेमनाम] विष्णु की सैया सेमनाम है—'सेम नाव के ऊपर पीछय' (२१५) । धनुषेव कम तिरु कृष्ण की पोडुन ले जा रहे थे उस समय विष्णु प्रवचन होने के कारण ही सेमनाम ने क्षमा कर वहाँ से उनकी रक्षा की—'सिप सहस फल ऊपर जायो मैं पोडुन की पायी' (६२२) । कल्पय विरय तथा सेमनाम के पृथिवी भारण करने की प्रसिद्धि है ।

फनपति (१६३) [सं फनपति] धक्का बामुकी (४१५) [सं बामुकि] की बर्षा थी है । समुद्र-मंथन में बामुकी की 'नेति' की । इति-कथा पर ही पूरी सृष्टि निर्भर है—बहुत पवन भरमत छवि बिलकर फनपति तिर न हुआई । (१६३) । यह फनप-पुन माना गया है तथा नाम के मात कुलों में से एक एवं सर्वराज है ।

तच्छक (१६) [सं तच्छक] पातालवासी एक विशेष नाव है । इसका पटो छित कथा में चित्र आया है—'विषी सप्त तिहि तच्छक बाह' (१६) ।

कपेसवा (४७ ४) [सं कपेसवा] वह इन्द्र के भोज्य का नाम है । द्वारकापुरी में कृष्ण के भोजन खेसने में इसका उल्लेख आया है ।

सुरसागर में उल्लिखित पक्षियों के नावों के अतिरिक्त अन्य कुछ प्रमुख नाम बुलबुल बया प्रकटा या पड़की कछुमोड़वा पीरीया म्हीन वतल तथा कुर्मन हैं । पद्मानाथ में इनमें से कुछ नाम मिल जाते हैं ।^२

१—प सं टी १६१५, 'सात सहस्र हस्ती किजली जिनि कथिलात परापति बली ।'

२—प सं टी, १६१२ 'बोलाहि पाहुक एवं पुनी ।...बही खी से महारि पुकरा ।

३७१, छोटिर मिय जो कांन है मितहि सुकरी बोस ।'

३५८ पीरी पडुक म्हु पिय कजळ । जो चितरोख न मोसर गाळ । बाहि गया पति पिय बँठलवा । करै नेछत सोई गौरवा...पियरि सिखोरि भाव जल्हा...।

१-वृक्षादि के सूचक साधारण शब्द

१—वृक्षादि के सूचक साधारण शब्द

१२५—पूरी तथा पूर्ण के अर्थ हैं। पूरा पदों में मन्त्राय एक ही अर्थ में प्रयुक्त है। पूरा पदों को सर्वोपनि कला या पद-पूजा (१२५) के अर्थ में प्रयुक्त है। पूरा पदों को सर्वोपनि कला या पद-पूजा (१२५) के अर्थ में प्रयुक्त है। पूरा पदों को सर्वोपनि कला या पद-पूजा (१२५) के अर्थ में प्रयुक्त है।

[illegible][illegible][illegible]

पूज्याचो श्री श्री होसा बाबा [१] पर्व निरति पत्ता विरले
 पूज्याचो श्री श्री होसा बाबा [२] पर्व निरति पत्ता विरले
 पूज्याचो श्री श्री होसा बाबा [३] पर्व निरति पत्ता विरले
 पूज्याचो श्री श्री होसा बाबा [४] पर्व निरति पत्ता विरले
 पूज्याचो श्री श्री होसा बाबा [५] पर्व निरति पत्ता विरले

१-य० छ टी, १९७१
 २-य० छ टी, १९७१

२-य च टी ३६३१० 'निराच' पर इह भवे मरता ।
 ३-य च टी ३६३१० 'निराच' पर इह भवे मरता ।
 ४-य च टी ३६३१० 'निराच' पर इह भवे मरता ।
 ५-य च टी ३६३१० 'निराच' पर इह भवे मरता ।
 ६-य च टी ३६३१० 'निराच' पर इह भवे मरता ।
 ७-य च टी ३६३१० 'निराच' पर इह भवे मरता ।
 ८-य च टी ३६३१० 'निराच' पर इह भवे मरता ।
 ९-य च टी ३६३१० 'निराच' पर इह भवे मरता ।
 १०-य च टी ३६३१० 'निराच' पर इह भवे मरता ।

३२२, 'पियारे
१६३०, बेल पासि बहि बरन
७४, बेल पासि बहि बरन
'बल पुल बकुल मूल धरे' ।
'भय करी मय द्वारे बाया ।
भित्तों मयलि निमो

(८८) । तबे कोमल पत्ते की किसलय (२७३४) [सं०] कहते हैं—'किसलय कुसुम कुंठ सम सामक' (२७३४) अथवा—'कर पल्लव किसलय कुमुदाकर बानि पल्लव मय कोर' (१७४४) । इसको कौपस' भी कहते हैं ।^१

३२६—मुरली का प्रभाव अथवा प्रकृति पर समान रूप से पड़ता था—'हम बेसी मनुष्य पुनः वन' । (१६०८) । फिर उसे 'कुम्भ का विषोग' क्यों न बतला—'बास पर, सोया नई, सब कुम्भिलाने फूल । पुरबास प्रभु तुम बिना उचते सब खर भूल' । (४५१२) अथवा 'बन मय तुन बनी वृक्षान गया प्यान बिसारे । (४०२७) । कुम्भ का साहचर्य प्राप्त करने वाले वृक्षान के लता वृक्षों का सीमात्म्य कौन न पाना चाहै—'बनि बंसोबट बनि बनुना तट बनि बनि लता तमास । (१६१२) अथवा 'वृक्षान ह्रम लता पूर्ववै । (१६१४) ।

कवि ने वृक्षों की शाखाओं की र पत्तों में बिजे पत्तियों का लेख संबंधी एक पर में बिज बोला है—'उपी व्यावर्तन ते छुटव लम उड़ि चलत तहाँ छिरि तकट नहि बास माने । बाह बन् ह्रमनि नै दुरत लोही मय, स्वाम-वन-रूप-वन में समाने । (२८१७) । मया तथा वृक्षों के संज्ञक स्वरूप आयाचार स्वाम कुम्भ (२७३६) [सं०] अथवा निम्ब (२७३४) [सं०] का कुम्भ टाका तथा बोपी प्रेय में भावपूर्ण स्थान है । मनुना-तट के वृक्ष तथा निम्ब उनकी धर्मित प्रेम-पूषा सीमाओं के साथी स्वरूप थे—'छाडे नव कुंजनि तर' (१४४७) 'नैनु निम्ब बना करि दाह्य । (३१८५) अथवा एक बीज कुंजनि में घाई नाना कुसुम सेह धर्मे कर दिए मोहि छो दुरत न जाई । (४०२) या 'मवल निम्ब नवल रस बोळ राजत है पल्लव रंज नीने' (२७३४) तथा 'बाहीबोरो प्राय कुन है निकटे रोहि रोहि की कई बल । (२७३६) । वृक्षों में रमण करने के कारण ही कुम्भ को कुंज बिहार (३४४६) कहा गया है । कुम्भ-विमुक्त बल की पोषिकाओं की जहाँ सीतल कुंज धर्म के समान बलता था 'बिनु गोपान बैरिनि मई कुंज' । उस में लता जगति उन सीतल धव नई बिपन व्यास की पुनै । (४६८६) ।

२—पुष्पों के नाम

३१७—प्रमुख पुष्पों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

१ करबीर (३६३२) तथा कुटल (३६३२) ये वसन्त समय के लोकप्रिय फूलों में गते हैं ।

कुसुम्भ कुसुम (३४८५) [सं०] पुष्प का उल्लेख रंगों में किया जा चुका है । बरगों में यह रंग उस समय बोगों की मिश्रता धीरे धीरे में भी देखे व कुसुम का रंग बताते थे—'है कुसुम मिश्रक के रंगभोजी ग्यामिनि । केसर को नी कुसुम कहते हैं ।

१—हंसी, प्र व अथवा २, धनीपङ्क क्षेत्र की धानीख बोली में इसे 'पीपी' को कहते हैं ।

२—इतिहा एक मोल द्वा बालिनि, द्वा २११, 'बुल' अथवा कहीं कहीं बलरुति का पर्यायवाची भी है । पर्यवसि ने वृक्ष के धारों 'मूल' 'स्वल्प' 'पल' 'पल्लव' का उल्लेख किया है । पालिनि ने 'वर्तु', 'पुत्र', 'कल' तथा 'मूल' प्रादि नाम की विशेषताओं पर वृक्षों के नाम रखने वाले का वर्तुल किया है जैसे 'धंखपुष्पो' । उनके विचार में वृक्ष तथा फल का नाम प्रायः एक ही होता था जैसे आमलकी वृक्ष का फल आमलकी ।

तथा माधवी (१५११) का उत्पन्न है ।

बेली (१७११) बेलिया एक मठा होती है जिसका फूल लाल होता है ।

चमेली (१५२१) की मधुर होती है तथा छोड़ रंग का फूल पाता है । इसको संस्कृत में 'जाती' अथवा मासती भी कहते हैं ।^१ यह चमेली तथा रामचमेली दो किस्मों की होती है ।^२ भार्गवे शकवरी में मासती का फूल चमेली के समान बताया गया है ।^३ मुरसागर में मासली (१७२३) नाम भी मिलता है । बेली-चमेली अथवा चमेली-चमेली नाम प्रायः साथ मिले जाते हैं । 'बेलि चमेली मासती बृम्हति हुम डारी । कुसुमों से सँघा सजाने का बर्खन इस प्रकार है ।—केशकि करना बेल चमेली फूलनि छत्र बिछाई । (२ २४) ।

जूही (१७११) जूहो (१७१३) [सं यूपिका यूपी] यह फूल भी श्वेत रंग का होता है । प्रबुलकृष्ण ने इसके तिसाला फूलने तथा बस के पेड़ से लिपट जाने का बखान किया है ।^४

१२५—केवड़ा (१५३५) इसका बहुत-सा झड़ू बल्ले की पत्तियों की तरह का होता है । इस झड़ू पर अस्थिरिक मीठे सुगन्धि वाली बालें पायी हैं । केवड़े का प्रक प्राक्कस जल तथा मित्रहमा में सुगन्धि लाने के लिए भी कामा जाता है । बसन्त ऋतु के फूलों में इसका उत्पन्न है—जहाँ कमल केवड़ा फूले वेतकी कनेल फूस फूलो मनु मासती बेलि । प्रबुल कृष्ण ने काढ़ों को सुगन्धित करने के लिए सुखा केवड़ा रत्न का उत्पन्न किया है । यह बखिख गुनघट मानवा व बिहार में अधिक होता है ।^५

निवारी (१५२१) का रंग फूल श्वेत क महीने में लवता है । इसको प्राक्कस 'निवाड़ी' भी कहते हैं । प्रबुलकृष्ण ने इसका फूल एक पत्र का बताया है जो रत्नबेल से मिलता-जुलता है । इसके एक साथ इतने अधिक फूल पाते हैं कि पौधा बक जाता है ।^६

सेबती (१५२१) [सं सेमती अथवा सं शतपत्रिका-समपत्रिका-सहस्रपत्रिका] सेबती छोड़ गुलाब] 'जाही जूही सेबती करना कनिधारी । बेलि चमेली मासती बृम्हति हुम डारी । (१७१३) । भार्गवे शकवरी को फूलों की सुन्धी में सेबती के संबंध में बताया गया है । इसकी प्राकृत गुलाब जैसी रंग छत्र तथा बार स छ तक पंखड़ियाँ होती हैं और गुनघट तथा बखिख में अधिक होता है ।

पाँवस (१५२१) बहुत पाँवस विपुल पंखीर, मिलि भूमक हो । प्रबुलकृष्ण ने पाँवस के संबंध में भी बताया है । उन्होंने इसे पाँव-स लम्बी पंखड़ियों का बताया है तथा इस जल को सुगन्धित करने की चर्चा भी की है । यह वर्ष भर फूलता है ।

खुमो (७५२१) खुमो मन्वी मोयरी मिलि भूमक हा । यह फूल वर्तमान समय

१—कालिदास उत्तरमेघ, श्लो १५ 'अथाश्वत्थां सममभिर्बर्जितां मालिनीनाम्' टीका, 'सुमयो मासती जाती इति ।

२—भार्गवे अ , पृ १७७ ।

३—भार्गवे अ , पृ १८५ ।

४—भार्गवे अ , पृ १७२ ।

५—भार्गवे अ , पृ १७५ ।

६—भार्गवे अ , पृ १७ ।

७—भार्गवे अ , पृ १७७ ।

८—भार्गवे अ , पृ १७६ ।

वर में लड़ाई करवाता है ।^१ यमुनाप्रभव ने भी 'गुह्यल' का नाम दिया है ।^२

सकुल (१७१७ १५२१) यमुना-तट पर स्थित फूलों में बहुल को भी स्थान मिला है— 'मधु मंजुल' बहुल तमास मिलि भूमक हो । (१५२१) । इसका वृक्ष नाम 'मौलिधी' या 'मौलधिरी' है । फूल पीले रंग का नमूदा या किन्तु सुगन्धित होता है । कवि प्रसिद्धि के अनुसार स्त्रियों के कुन्ने से पुष्पित होता है ।^३ धार्मिक ग्रन्थों में 'मौलिधी' नाम दिया गया है ।^४ पद्यावत में 'बोमधरि' [सं बहुलधी] नाम है (४७७१३) । कालिदास ने 'केसर' तन्त्र प्रयुक्त किया है ।

बहुधि (१७१३) [सं बहुला—इसायधी नील का पीला] 'बहुल बहुधि वट कवय वें ठग्री बजनारी ।

पद्यावत में प्रायः यही सब नाम मिलते हैं । वसन्त-जंघ तथा रत्नसेन-बिवाई-जंघ में अनेक नाम एक साथ दिये गये हैं । इसके धार्मिक नाम 'नामकेसरि' 'बुभाल' 'सुबरसन' 'सोन-बरर' 'सबररय' 'रूपमौवरि' 'सिनारहार' 'वरणा' 'पुलकानवी' आदि कुल मने नामों की ओर भी ध्यान जाता है ।^५ यह नाम धार्मिक ग्रन्थों की सूची में भी दिये गये हैं ।

१३ — भारतीय फूलों में सर्वोत्कृष्ट स्थान कमल का है ।^६ साहित्य विशालता तथा वास्तुकला सभी में कमल का चिह्नित स्थान रहा है । यह शरोवर में खिलता है । पत्त भी अत्यन्त आकर्षक मोल आकार के होते हैं जो पानी की सतह पर तैरते रहते हैं तथा फूल सीधी ईंधी पर पानी की सतह पर खिलता है । इसकी बड़ की परकरी बलती है जिसे 'मछीड़ा' कहते हैं तथा 'कमलपट्टे' को झुलकर मञ्जाना बनाते हैं । पत्ते को 'पुर्ल' भी कहते हैं । सास कमल भारत में प्रायः सब जगह होता है । श्वेत कमल या पुंछरीक काशी के आसपास और नीलमल सिन्धुत व चीन में अधिक होता है । अमेरिका तथा बम्बई में पीला कमल जगता है ।

सूरसागर में भी कमल को परम्परागत महत्त्व मिला है । काव्य की परम्परा के अनु-

१—कृ जी पृ १२ अध्या १३

२—धार्मिक ग्रं पृ १५२ ।

३— विकसित बहुल की पुर्णवृक्षकाल कवि-प्रसिद्धि ।

कालिदास, उत्तरमैत्र लो १५, 'रत्नसेनकवयलकिञ्चलपा केसररधात्र कामतः प्रत्यावली कुरवकृतेर्भाषणीर्महत्स्य ।

एक सम्पादक यह पद्य नामपादायित्वापी

कालिदासो बहुलमविरा बोद्धव्यमिति ।

मल्लिनाथ टीका 'अशोकमपुलवोः रत्नोपावतासर्गवृक्षविरि बोद्धव्यमिति अत्रिद्धि'

४—धार्मिक ग्रं पृ १७५ ।

५—'अथ केसरे बहुलो वसुलः' इत्यनरः ।

६—व सं टी, १५५। गुणि बोधहि तत्र फूल छहेली। जो बेहि आस पास रह बैली। कोह केवरा कोही अंघ नेवारी। कोह केमुकि मालति कुलवारी।...

तह काट। १७७— जिनी कर पडुनाबति नारी। हौं पिय बंजल सो कु ब नेवारी। मोहि जसि जहूँ सो मालति बैली। कवय सेवती चाँय बनेली।...

७—व सं टी० १७७। 'हौं पिय बंजल सो कु ब नेवारी।'

विष्णु ही तब मिलत मय उपहार। (११)। इस पद्यांश में बगोराय होते ही कमल के फूल बन्ध हो जाने की ओर भी संकेत है।

१११—पंकज (१४) [सं पंकज] धाराभ्य के बरछ-कमल सब दुःख दूर करने में समर्थ हैं—‘सूरदास तेई पद-पंकज विविध ताप-मुख-हरन हमारे। (१४)। गोपियों का प्रेम बूझ देखकर कवि उनका जीवन बन्ध समझता है—तैं पनि पुष्प गारि बनि तेई, पंकज बरन रहै फुलारै। (१६४१)।

बारिज (२७३१ २४३४) [सं] रूप-वदन-पलों में कमल का महत्त्व स्पष्ट ही है—‘कमल-नैन के कपल-वरन पर बारिज बारिज बारि। धक्का धावु लखी एक बाम नई सी।...इस-स्तु चितै छकुचि अंजन विही बारिज मुख पर बारि बई सी। (२७२१)। बारिज बल के बिना नहीं रह सकता। प्रेम में समिपता बढाने के लिए इसका उल्लेख किया जाता है—‘बारिज क्यी बल-हीन। (१७५६)।

पद्म^१ [सं पदं] बरछ-पद्म की बंधना में ही मनुष्य-जीवन की साधकता है—‘पद्म-बास सुबंन सीतल लेख पाप मसाहि। सदा प्रफुलित रहै, बल बिनु, निमिष नहि कुम्हिलाहि। (११८)। विष्णु की चार मुखाओं में से एक में पद्म माना गया है संख चक्र-गाथा-पद्म पद्मसुख मानन रे। (१४६)। अक्सर आने पर उनके कौमल कर धामुख की बारछ करने में समर्थ हैं—‘पालि-पद्म धामुख राखै।

सरोज (१७६४ २१६४) [सं] कृष्ण का मुख मानो खिला हुआ कमल है—मुख विकास सरोज मानहु सुवति-लोचन मुख। (२४११)। कृष्ण की लोभा का बखान बिमल-मर्मा म भी है—‘बाहु-मानि सरोज-कमल धरे मुहु मुख बेनु। (१७) अथवा ‘सेब बरन-सरोज सीतल’ (१७) तथा वहीं बरन सरोज सिहारे। सुन्दर स्वाम कमल-दल लोचन ललित बिम्वनी प्रान विबारे। ओ पद पद्म सदा छिब के बल सिधु-सुता घर तैं नहि छारे’ (६४)।

अरविन्द (२१ ३८८६) [सं अरविन्द] लाल अथवा नीले कमल को कहते हैं। कुछ पद बिलसी के प्रारंभ किये गये हैं—‘हरि हरि, हरि हरि, सुमिलन करी। हरि बरना-रविन्द घर बरी। (२१ २११) बल्के बकई का मिलन तो मिल में होता है किन्तु यदि भ्रमर के लिए बरना होकर जाती है—‘बसित सूर बकई मिसाप गिसि धनि कु मिले अरविन्दहि। सूर हयै बिन-पति कुसह दुख कइ कहै नोबिन्दहि। (१८८६)।

कंज (२५ ३ २१७४) [सं कंजम्] हल्का तथा टांचा के प्रति सजियां यह विचार प्रकट करती हैं—‘सुंदर स्वाम पिवा की जोटी...ई धनुकर जे कंज कसी के चतुर एउ महि जोटी। (२५२२)। भ्रमर फूल फूल पर मंडरता है किन्तु कमल का फूल बसे सूप बूबते ही अपनी पंखियों में बन्ध कर लेता है। ‘कर कंजलि’ (२५ १) का निर्देश भी है। मुकंज (१६१२) की पक्षना पावस जातु के फूलों में है।

अंजुस (२४५ ४१ ३ २६ [सं अंजुस अंजु = जल] अक्षरों की आदिमा के उपमानों में बिजुम नाम अंजुस कुसुम धाति के साथ अंजुस को भी रक्खा गया है—‘देखि छवि अक्षरनि की माली। किषी अक्षन अंजुस विष बँडी पुनरताई बाह। (२४५) अथवा ‘अमरे

१—ईशिया एक भोग हुआ पालिनि ए २१५ पुष्करादि पद्य में पदविनि ने ‘पद्म’ ‘अपल’ ‘विज’, ‘मृगाल’ धाति पर्यायों का उल्लेख किया है। प्रम्य उल्लेखनीय पुष्प कुमुद तथा ‘अकालिका’ थे।

‘हावस बन रतगारे बैलिकत बहु बिधि टेसू फूले । (१४७२) । पलाश बुध का नाम ‘डाक’ भी है । इसके फूल को ‘टेसू’ के प्रतिरिक्त ‘केसू’ भी कहते हैं ।^१ टेसू नारंगी रंग का घट्यन्त चित्ताकृत्य फूल है । फूल के नीचे की बड़ी काबो सी होती है । इसके फूलों से होसी खेतने के लिए विशेष रूप से पोसा रंग बनाया जाता है—टेसू कुसुम निबोड़ के रंगमीची ग्वामिनि । (१४८५) । ‘कनामत’ [सं कम्बावत] के बिनों में कापीर’ [सं काक-वसि] डाक के पत्ते पर देने की प्रथा है । धाईने फलवरी में भी ‘केसू’ नाम मिलता है ।^२

तमाख (७१२ २७१७ २७५) [सं तमाल] संयोग प्रेम के कई पक्षों में कुण्ड को तमाख तथा उस पर प्राकृत कलक-बेल से रचा की उत्पत्ति भी गई है—

‘म्ली पुष्प तमाल बेलो-कलक मुखा सिन्हाह ।

हृष्य बह्वह मुसुकि फूले प्रम कलनि मपाह । (२७१७)

अथवा ‘मानवु ठकन तमाल स्वाम तन सता मावली धंसी । (२७११)

तथा कलक-वसि तमाल अकम्भी’ (२७५)

और ‘व वावन व सिधु तमाल ये कलक-मजा सी गोरे’ (२५२२) ।

विनय पक्षों तथा बाह्य-वर्णन में भी कुण्ड के रूप को तमाल से ही तुलना की गई है—
करि मन नंद-नंदन ध्यान । सुखसरो से तीर मानो जग स्वाम तमाल । (१७) अथवा
‘नए साह धंभुटी नंत्राणी सुहर स्वाम तमाल । (११२) ।

अशोक (५१९) [सं अशोक] नवम-स्कन्ध में सीता का बंधन की प्रसंग-वाटिका में रहने का प्रसंग है—‘पुनि प्रायो सीता बहु बैठी बन अशोक के बाहि । (५१९) । अशोक की पत्तियाँ धाम के पत्तों से मिलती-जुलती हैं किन्तु किनारे लहरदार सी होती हैं । धाम के समान ही इसके पत्तों के भी बन्धनवार शुभ अवसरों पर बनाने की प्रथा है । अशोक बुध पर बैराग्य में सुनहले रंग का बीर भाता है तथा फल लिंबीरी के आकृति से मिलता है । कर्म-प्रसिद्धि के अनुसार किसी कर्मवती स्त्री के पाशाबाध से अशोक पुष्पित होता है ।^३ पूजा के निमित्त पंचपस्तकों में पीपल बरगद अशोक यूनन तथा आम बुधों के पत्ते रखे जाते हैं ।

कदम्ब, कदम्ब (१७ २ १०८८ १४१७) [सं] यमुना तट की सीताघाटों में कदम्ब बुध का महत्त्वपूर्ण स्थान है—‘प्रापु जड़े कदम्ब पर बाह कुरि परे बहु में धइएह । (११५७) अथवा प्रापु देखत कदम्ब पर बहि’ (१४ १) और वी छत्र बीर कदम्ब बहि बैठे हम बस मोह्य उबारो । (१४ १) तथा प्रापुन बैद्यो कदम्ब-बारि बहि बारो बै बै सवनि बुबावै ।’ (२ ५१) । कामिनी-वसन बीरहरण तथा पनवट सीताघाटों धारि महत्त्वपूर्ण प्रसंगों में कुण्ड का प्रिय बुध कदम्ब ही साध होता है । कदम्ब के फूल का नाम नीप’ [सं नीप] भी है—‘मछि बिस्तार मोप तह तामि ली ली जहाँ तहाँ बटकाए (१४ २) हिडोला सीपक पक्षों में भी इस शब्द का उल्लेख है—‘नीप-छाई जमुन तीर’ (१४४७) । कदम्ब का फूल इसके पीले रंग का बालदार सा होता है जो सत्यन भावों में पाता है ।

१—क को पृ १२, अध्या० ११ ।

२—धाईने पृ ११ ।

३—शानिदास उत्तरमेघ श्लो १५ टीका मल्लिनाथ पाशापातावशोक’ ।

४—एही श्लो २, ‘बुडवायो नवदुरवर्क आक कर्से शिरीष’ ।

टीकान्ते व लघुपदार्थ पत्र नीप’ बहुमत ।’

५ अन्य वृक्षों के नाम—

३३५ कुछ अन्य उल्लेखनीय वृक्षों के नाम यह हैं—

सेमर (१ • १०२) [सं शास्मलि] का उल्लेख विनय-पत्रों में छोटे के चक्षिक भ्रम में उल्लिखित में हुआ है। फल क माल रंग को देखकर यह प्रकटित होता है किन्तु यह निकलने पर निराशा ही प्राप्त होती है। साधारण मिथ्या धार्मिकों को बताने का कवि ने बार बार प्रयत्न किया है। प्रथम-स्कन्ध में ही सूत्र (१ २) [सं तुल्य = र्द्ध तुला = र्द्ध का वीषा] का उल्लेख भी हुआ है—'उक्ति वयो तुल्य वीषाय पायी। (१२९)। इनके बारे में पहले भी लिख किया जा चुका है।

आक-रई—(२५७३) [सं धर्क—धाक] धाक का वीषा छोटा सा होता है। फल सफ़ेद रंग का होता है तथा बत्ता तोड़ने पर दूध सा निकलता है। इसके फल से ही कई निकलती है। धकीषा-कठ (धावमसुखी कठ) क विन लिखी इसकी पूजा करती है।^१ अपने कुम्भ प्रेम के संबंध में योषिया कहती है हरि वरचन की साथ मुरी। उक्ति वयो तुल्य नैननि संय फर फूटे औ धाक-रई। (२५७३)। इसका वृक्ष नाम मवार है।

घसूरा (४६४) [सं घसुरा घसुर] एक विषाक्त वीषा है—सुरास प्रभु वरचन कारन भागी किस्मि हास्य काम। इसके फल का रंग काला तथा फल पोत होता है।

नीम—(१४४२) [सं निम] नीम के वृक्ष का फल 'निबोरी' (४२५२) [सं निम्बवपुषि] अत्यन्त कड़वे होते हैं—नीम लमाह घाम को खाने। (१४४२)। यद्यपि दास ताकि के कटुक निबोरी को अपने मुख चूसी है। यों नीम का औषधि रूप में प्रयोग होता है और निसेपत काल को कुछ बीमारियों में प्रयुक्त ही लाभप्रद है। इसकी बड़ी को 'बागेल' बनती है। नीम को कुछ लोग 'नीम' भी कहते हैं। मीठी पत्ती वाली नीम भी होती है।

बट (१७ ६ १ ५५, १७६१) [सं बट] बमना टट के वृक्षों में बटवृक्ष का उल्लेख है। खाक खाने के लिए पोषण सलाखों के साथ बट वृक्ष की खाया है। पसन्द करते हैं—'प्राप्त मकली में है मोहन बट की छाई (१ ५५)। टट पर रास का बर्खन भी है—'बंटी बट टट रास रख्यो है सब मोपिन सुककारी। (१७६१)। बट-वृक्ष सबसे अधिक विनाशकारक होता है। इसकी शाखाओं की लट्टें जमीन में घुस जाती हैं। घरों की लू तथा बृष से बट की शाखा पक्षियों की रक्षा करती है। बट वृक्ष की धामु बहुत होती है। वर्तमान समय का धार्मिक प्रचलित नाम 'बरयक' है। ज्येष्ठ की समावस्या (बरमावस) को बट वृक्ष की पूजा होती है।^२

३३६ घसुर (५१) [सं घसुर] कृत्य के अनुक्रम उसका फल बटाने के लिए कवि ने कई बार कहा है—'बोवत घसुर बाध फल चाहत बोवत है फल खाने (५१)। इसका फल पीसा सा होता है। यह वृक्ष कटीला होता है। बागों में विरहास है कि 'सिन्धारी' यद्यपि 'नीम' का मुक़ार बहुत के बने अनेक मिलने से उत्तर जाता है।^३ वृक्ष तथा घाम

१—क. जी, म, प्र १२ अध्या १३।

—प सं टी १५७३ 'काहुँ हाव परी निमकीरी।

२—क. जी, म १२ अध्या १३।

४—क जी, प्र १२, अध्या १३।

भाते है ।^१

कुस (१२१४) [सं कुस] यह एक पवित्र वृक्ष विरोध है । शबानस-मान-सीषा में वन बनने का वर्णन है—'बरत बन-बांस बरहरत कुस कांस, जरि चरुत है भांस घटि प्रबल बांसो । (१२१४) प्रपन्ना 'सटकि जात जरि जरि हुम बेसी पटकर बांस कांस कुस तास । (१२१२) । कुस के घासन के संबंध में पहले भी लिख किया जा चुका है ।^२ इसकी ही एक छिन्न वन के भास में पितरों का दर्पण किया जाता है ।

कवात्सी (परि० १६३) [सं० यवासक] 'सुर करम की बीर परोसी छिरि छिरि बरत कवात्सी । । कवासा छोटा सा कटोरा पीवा होता है जो बरनी में रो हठ-अप रखा है किन्तु बर्षा में गुरगुर जाता है । इस पर सज्जे कभिवां घोर जान फूल भाते है ।

गुआ (स्क १) [सं] या पुँपुपनि (विनय) [सं गुवा] का उल्लेख कृष्ण के शिष्यों तथा बंदर का घाय समझ कर फूलने के सिनसिने में किया गया है ।

तुमसी (१७ ६ १७१) यह एक सुर्ध्विपुस्त पत्ती वाला पवित्र पीवा है । इसके फूल को 'मंजरी' कहते हैं । यह पीवा पवित्र माना जाता है और अक्सर स्त्रियां वन बढ़ाती हैं । बर की तथा वन तुमसी' दो प्रकार की तुमसी होती है । रंभायुष में तुमसी की पत्ती बाली जाती है । 'नाम विश्वक कवननि तुमसीवक मेट रंक नियो । — (१७१) में वामु का निबध है ।

संजीवन (५६३) [सं संजीवन] नवम-स्कन्ध में हनुमान चरमक के प्रचेत होने पर इसकी बड़ से भाते हैं—'बीनापिर पर घाहि संजीवनि बीच सुपन बठाई । (५६३) यवना 'बीनापिर हनुमान सिखायो । संजीवनि की मेव न पाबी जब जब संत उखबी । (५६४) । यह कोई धौनिक बड़ी बूटी जात होती है ।^३

लताघोष में खर्वंग छठा (३५३५ [सं० लवंध लवंग] का उल्लेख किया गया है—'फूले बंधक बनेलि फूलि मर्ग लता बेसि सरस रछी फूल बास । फूली निबारी एलि मीनरी खेवति सुबेक संतनि दित फूल बास । (३५३५) । बिम्ब (१२७७) [सं] की प्रपन्ना प्रायः प्रचरें से ही नहीं हैं—'कपुति विहुम बिब बिछाने वामिनि प्रबिक डरी । (१२७७) । सरकारियों में भी 'कुनक' (१८३१) या किन्न का उल्लेख किया जा चुका है । इसकी लता पर परबल की तरह का हठ फल लगता है जो फूलने पर गाल हो जाता है ।

७—कल्पित पौराणिक वृक्ष

११४—इस शब्दावली में दो नाम विशेष कम से उल्लेखनीय हैं—कल्पवृक्ष (११४) [सं] [प्रपन्ना कल्पतरोवर (१६५६) तथा पारिजातक (४१५ परि

१—हर्ष सां पु १७२, वन-प्राप्त के घरों की बीबारें बेगुनोट (कटे बांस), वनघालि (नरकुल) तथा धरकांड से बनाई गई थीं ।

२—मानस प्रयोग्य , १६६, कुस तांबरी मिहारि सुहाई ।^४

३—इंडिया एज बोम टु वारिमि, पु २१३, धौनिक वन फूल में 'त्रिजला', तथा प्रमुखा प्रचलित थे । पर्यवलि से 'काही' का उल्लेख किया है ।

४—य सं० टी १ ६११ 'बिब सुरंग तावि वन घरे ।'

कालिदास उत्तरमेघ बली १६ 'तम्बी इयाया शिखरिदमला वनवनिना परीप्थी ।

खण्ड ११

गृहस्थी की उपयोगी वस्तुएँ

ही संस्कृत शब्द 'पाचामक' प्रयुक्त किया है।^१ कुछ स्थलों में कमक 'झरी' का उल्लेख भी है—'घोटास बल कपूर रत रचयी झरी कमक लिए प्रयोजनार्थ' (११३२)।

गागरि, गगरी (२ १७) [सं० बनरी-गगरी-बनरी] विशेष रूप से पनघट-बीमा में मयरी का प्रत्येक पक्षों में उल्लेख है—काहु को गगरी डरकावै। काहु की झुंड़ी फटकावै। काहु को गगरी परि छोरे। काहु के पित पित्रवत छोरे। (२ १७) प्रथमा 'बल हछोरि गगरी भरि गगरी जवहीं सीस उठायो। बरकी बनी जाइ ता पाछे छिर तें बट डरकावो। (२ २१) होसी में बोलने के लिए धागर में रंज भरने का उल्लेख है—एक लिए छिर सौंभे गगरी। (२४१)। यह भी किन्तु प्रथमा बाबु की होती है—'छोरी सब मटुकी सब मयरी। कृष्ण का भी को समझने का ईश चित्ताकण्ठ है—कदम-छिर तें मोहि बुलायो मड़ि मड़ि बावै बानवि। मटक विरि गगरी छिर तें सब ऐसी बुधि ठानत। (२ ८६)। घट (१४० २ २४) मयरी का ही दूसरा नाम घट भी है जिसे प्राक्कल अधिकतर 'बड़ा' कहा जाता है। पनघट-बीमा में ही घट का उल्लेख है—'घट मेरी जवहीं भरि वैही लफुटी उबहीं वैहीं' (२ २५) घट भरि विगी स्याम उठार। (२ २५) प्रथमा उच्चिपति बीच मटुकी घट छिर पर, हापर नैन बलावै। कुसत दीव मटकनि मक-बेसरि मंद मंद गति धाव (२ ५६) धारि पछोसों में पानी भरने और छिर पर गगरी रखकर बलने का भी स्वाभाविक विषय हुआ है। मंद मंद गति बलत धमिक लवि प्रयत्न रही कहिरि क' (२ ५८) गगरी घट भरि बनी ममकाइ' भी ऐसे ही विषय है। बड़ा कंचन का भी बताया गया है—'चंदन धनर कुमकुमा केसरि, बहु कंचन घट फोरि (१५८५)। धार्मिक चिन्तन-पक्षों में एक स्थल पर मनुष्य जीवन के संबंध में यह उक्ति प्रयुक्त हुई है—'बाबु भय-घट बल बनी छोरी' (१४८)। होसो में भी रंज से भरे घट से—'छिर बाबु रंज घट भरे हरि होरी है। (१५३२)।

पनघट-बीमा प्रथम कृष्ण-गोपी-राधा प्रेम के संयोग पक्षों में मधुरपूर्ण स्थान रखता है। कृष्ण को सैतानी से बह ऊपर ही ऊपर झुझावती है उमाहना लेकर बटोरा के पास जाती है किन्तु उनका प्रत्यक्ष प्रयुक्तिगत हो उठता है—'यह बीमा सब स्याम करत है बल-मुक्तिनि के हेत। सुर जवै जिहि भाव कृष्ण की ताकी सोह फल हैत। (२ ५०) प्रथमा राधा उच्चिपति मई बुलाइ। बनी बमुना-बलाहि जवै बनी सब कुछ पाइ॥ सबलि हक हक फलस मोहो सुरत पहुँचो जाइ। तहाँ देखी स्याम सुरहर लुँवरि मन हरपाइ। (२०५४) तथा 'मोहन दिन मन न रहै, कहा करी मारै (री) (२ १२)।

पानी भरने का स्थान पनघट (२ ७) पनघट (२ ५७) कहा जाता है—'गगरी गगरी ली पनघट तें जलो भरहि की धारै। बोधा बोधति बोधन मोलनि हरि के विरहि बुज। ठठकति जल मटक मुक मोरै बंकाहि भौह बलावै। (२ ५७)। घट (१५ १) शब्द भी प्रयुक्त हुआ है।^२ गगरी का बमुना घट पर बल भरने जाने का ही बखान है—'मुनहु सखी री बा बमुना तत। ही बल भरति घकेनी पनघट बही स्याम मेरी

१—हर्ष सां घ ५ बह रागयधी के निवाह के समय बाकगुह में एक कोने में कमक 'पाचामक' रखा हुआ था। पर्वत के तिरातुने पानी से भरा 'निद्राकण्ठ' था। उस समय निद्राकण्ठ की प्रथा थी। 'काहमरी' में बंधवस्तोत्र में बन्ध-पीठ के प्रयत्न-प्रकार में भी इनके रक्त भाव का उल्लेख है।

२—प स टी, ५६ १५, 'पनघट घट ईश भित्त ही ही।

मटुकी घीर माट सामान्यतः मिट्टी के ही बनते हैं किन्तु कुछ-कमोसस प्रसंग में सोने के माट का उल्लेख भी है—'कनक को माट साह, हरब रही मिसाह धिरकै परस्पर बस बस बाह के' (१५९)। होसी प्रसंग में भी साधारण तथा सोने के माट का परिचय मिला है—'छठहि माट कंचन रंग भरि भरि, सै घाई मिय जोरि' (१५११) यचना बस केसरि के माट परसैं (१५२) तथा 'कंचन माट भराह के रंग होरो। सीवै बरसी कमोर लाभ रंग होरो' (१५८४)।

कमोरी (८५१ ८८५ ९ २) यह भी बूब रही रहने का मिट्टी का पात्र है तथा मटुकी का समानाधिकार है। प्रत्येक साधन-चोरी सीबक घनेक पर्वों में इसका भी निर्वह हुआ है—'ठसरी भई यचनियाँ के दिव रीती परी कमोरी। (९०१) 'मिठ प्रति रीती बेबि कमोरी मोहि प्रति बपत फुमयो' (९१) यचना प्रापुन बई कमोरी मांयन हरि पाई ह्यौ पाठ। (८८८)। फल-बलन में भी 'केसर बरी कमोरी' का उल्लेख है।

बोहली (१११ २ २७) [सं० बोहनी] जिस पात्र में बूब पुझते हैं उसे बोहनी कहा जाता है। प्रत्येक मौ-बोहन सीबक पर्वों में बोहनी की चर्चा होना स्वाभाविक ही है—'कैसे बहत बोहनी बुदुबलि कैसे बहरा बन के बावहु' (११९)। कुछ की बोहनी भी 'कनक' की बतले का प्रयोगन कवि रोक नहीं सका है—'तनक कनक की बोहनी रै रै री पैबा। ताठ पुहन सीबन कही मोहि चोरी पैबा' (१२७)। प्रसीबक 'बेब को प्रानीस बोमी ने 'बोमी' [बोहनी] उक्त मात्र मो बन रहा है।^१

१४२ बुरु (८१) [सं० बुरुक] मोहन संबंधी पर्वों में मुख प्रक्षालन का जल चुक में रखने का निर्वह है—'होई बननी चुक बराए। तब कबु कबु मुख पसराए' (८१)। यह पानी रखने का एक छोटा बर्तन है।

कुन्डली (४६९) [सं० कुन्डिया—कुन्डिया—कुंडी—कुंडी] यह एक कटोरे की तरह का पात्र है। नवम स्कन्ध में राम-सीता-विवाह के समय कंकण-मोहन के अवसर पर सोने की कुंडी जल से भर कर रखने का निर्वह है—'पुंयीफल-मुठ जल मिरमल बरि घानी भरि कुंडी को कनक की।

कुंड (४५) [सं० कुंड] कुंडा या कुंड भी ताव की तरह का पात्र होता है। यह के मिमि बनावे गया यज्ञ-बैठ इसी प्रकार का विशेष पात्र है। मनु-धर्मसार में यज्ञ-कुंड से 'पुस्व' के निकलने की कथा है।

कर्मंडली, कर्मंडल^२ (११२) [सं० कर्मंडलु] यह पानी पीने का एक विशेष प्रकार का विद्यास होता है। यह लकड़ी मिट्टी या चासु का बना है। जब सामान्यतः साधु श्रम्यासियों के पास इस प्रकार का जलपात्र रहता है। सूरसागर में बह्म-वत्स-हरण में कर्मंडली बह्म का उल्लेख है—'बेबि मोप-मंडली कर्मंडली बिटी रह्यौ' (११२)। पुराणा का कर्मंडल काठ का बना हुआ बताया गया है—'हुतौ कर्मंडल बृह काटी को' (४८५७)।

१—बु को, पृ १ अध्याय ५।

२—हर्ष का घ, (चित ३) नीकईस्वर दीक्षा मधुरा से प्रसूत बोधिसत्व की पृति के हाथ में कर्मलपुष्प के समूह कर्मंडलु है। वैष्णव भक्ति के भक्त्यात्मक धिमावह पर अंकित वारायण पृति के हाथ में भी ऐसा कर्मंडलु है।

हर्ष का घ, पृ १९ विद्याकर मित के आश्रम में विज्ञानपात्र तथा चोकर वस्त्रों के साथ कर्मंडलु का उल्लेख भी है।

कटोरी, कटोरा (१०१४ १८३१ ४४३३) [सं करोटि करोट कटोर] यह नाम तरकारी तथा भी धारि रखने के काम में धातु भी पाते हैं—वायों बृत भरि बरी घेरी (१०१४) भरि घब घालन विविध जलन से (१८३१) । एक स्थान पर नाम में माने का ठेस रखने का भी वर्णन है—‘ये कथ कनक कटोरा भरि-भरि मेसठ ठेस फुसैम । ४४३४) ।

कचोरा (१८३१) कटोरे का ही समानार्थक है अतएव भी रखने का वर्णन है—बरत मुबास कचोरा नायी ।

प्रसीकड़ खेच की बोली में बेने को बोला भी कहते हैं । ‘बरिया’ सुन्दर भी पात्रों में आता है । बड़े से छोटा कुछ रखने का पात्र वहाँ दीपा या कमड़ा कहलाता है । चुपही या धर्म नाम कुंभो भी है । इसके प्रतिरिक्त मटुकी या कमोरी को ‘कचरी’ ‘चपटिया’ [सं भाविका] या हनुकी भी कहते हैं तथा दूध बमाने का पात्र ‘बमाननी’ कहलाता है ।^{१२}

३—अन्य पात्र

१४४—डकनियाँ (२२१८) [डाकना हि०] खिच-दान याचना माखनचोरी प्रसंग में दूध बही को डकने का भी वर्णन है—‘सुभय डकनियाँ डाकि बाधि पट बतन पधि घीकें वमुदायो । (२२१८) । पात्रों को डकने के काम आने वाली तरतरी या रकाबी ही डकनी कहलाती है ।

तट्टी (१८३१) ज्योत्नार संवंधी पात्रों में यह भी है—‘बरि तट्टी धारी बस स्वाई’ (१८३१) । इसको ही संभवतः धातु ‘तरतरी’ या ‘रकाबी’ कहते हैं ।

हठरी (१४२८) यह मकान से निघटा जुमटा मिट्टी का खिचोला होता है । दीपा-बनी की बत्ती-पूजा तथा भोजन-पूजा में ‘हठरी’ रखते हैं । बच्चे इनमें सिये बनाकर रखते हैं याचना इन्हें बीसों से भरते हैं । सुरदासर में भी दीपमालिका के वर्णन में उल्लेख है—सुरमी कान्हू बसाम् बरिफहि बस मोहल ॥३॥ हठरी । (१४२८) ।

१४५. तुलसी की सम्भावना में कुछ ऐसे शब्दों की ओर ध्यान आता है जो सुरदासर में नहीं मिलते हैं जैसे ‘करछुली’ ‘विल’ तथा लोड़ा’ धारि ।^{१३} परमात्मत में रत्नसेन ज्योत्नार तथा बाबराह भोज वर्णन में जाने के पात्रों की बर्णना है । रत्नसेन धारि का भोजन सोने की पत्तनों के ऊपर रखे हुए माखन-घटित सुवर्ण पात्रों में परोसा गया था । एक एक व्यक्ति के धार्ये ही छोटी कटोरियाँ रखी थी जो रत्नों से बड़ी हुई थी । इससे ध्येयना के धार्मिक का अनुमान भी कराया गया है । यहाँ आयसी में कुछ पिछ नाम जैसे खोरा ‘खोरी’ [या खोर खोरम = कचुला] तथा ‘यड़ ग्रन्’ [सं बड़बुल = टैंटीसार मोटा] का उल्लेख किया है । दोनों के पात्रों में जो एक बड़ी समानता है वह है धनका सोने का तथा

१—य सं टी ३६४१ संक्षिप्त वाणी जरे कचोरा ।’

२—यू भी पृ १ धर्म्या ६ ।

३—क भी पृ १२ धर्म्या १४ ठाकुर जी की गहलाने की छोटी बिलिया को धातु भी तट्टा’ या बरलोदकी’ कहते हैं ।

४—मुत्तरी बोझ ३२६ ‘लकड़ो बीबा करछुली सरय काज अनुहारि ।’

२६ , ओरहि सिलि लोड़ा करन जाने मटुक बहार ।

मनबीत निकामती है। मन्ने की ध्वनि के लिए धमरको^१ सगर प्रयुक्त किया है—‘क्यों क्यों मोहन ताबै ध्यो क्यों रई बमरको होह (रे)। तँसिये किंकिन-धुनि पग-पुनर, छाहूँ मिते मुर रोह (री)। (७९६) धमबा (एरी) धानब सीं बधि मन्ति बसोधा धमकि मन्तिनी भूये। निरुत साज ललित मोहन पय परत छटपटे भू में। (७९५)। लिखु कृष्ण कभी तो मृत्यु करटे है धीर कभी मां की मन्तानी पकड़ सेते हैं धीर वह बहमा फुससा कर धनको ऐसा करने से रोक्ना चाहती है—‘नर पू के बारे काण्ड छाकि रे मन्तिनी (७९१)। बज के घोष-मृहों का शिव भी चींभा है—बर बर पोनी बह्यो बिछोवै कर-कंज मंजवर। (१२३)। इन निरुत-प्रति के बोधन के बिचों में कहीं कहीं कवि उनके धलीकड़ कम को नहीं मूल पाया है—‘बब बधि-मन्ती टेकि धरे। धारि करत मटकी पहि मोहन बासुकि धंभु डरे। (७९०) धमबा जब मोहन करि गही मन्तानी। परत कर बधि माट नैति धित उबधि सैल बासुकि मय मानी। (७९२)।

माखन-बोरी में भी इस उम्र का निर्देश हुआ है—‘जरी मई मन्तिनी के सिंग रीती परी कमोरी। (१२३)। मन्ने की क्रिया को प्रायः मन्ति (७९४ ७९७) धमबा बिछोवै (१२३) कहा गया है। धावकज बड़ी ‘बिलोना’ [सं बिलोसल] धीर मन्ता’ दोनों प्रचलित हैं। मन्तानी लकड़ी का एक डंडा सा होता है जो बड़ी के पाज में पड़ा रहता है। इसके नीचे बंध होता है। बड़े पाजों में जब बड़ी मन्ते हैं तो रई में एक रस्सी भी बांधी जाती है। इसको ही सुरसाबर में नेति (७९६) [सं नेष] कहा गया है—‘धरि धानन मनि खंम निकट धरि, नेति मई कर बाह (७९८)। धावकज इसे ‘नेटी’ या ‘नेता’ कहते हैं।

माखन बोरी के पत्तों में छीकै (६५) सीकै (६११) धमबा सिक्कहुरै (६४५) [सं सिक्कक—धा सिक्कक—सिक्कक—सिक्का—सीक—सीका] का अनेक बार उल्लेख हुआ है। बोपियाँ हूब बहो तथा माखन छीके पर टोप कर जाती थीं किन्तु कृष्ण अपने सबाधों के साथ मने मने उपान्यों द्वारा बड़ी तक थी पहुँच जाते थे—‘बीरि बीरि बधि माखन मेरी मित प्रति पीवि रहे हो छीकै’ (६०५) धमबा ‘धान के काने बड़े ठब मिते छीके उतारि’ (६७) या ‘कज सीकै बधि माखन कायो’ (६११) तथा ‘धापु साह सो हय मानी धीरनि देव सिक्कहुरै ठेरि। (६४५) तथा ‘ऊजल बधि सीकै की बीनही’ (६४८)। सीका बीनाल पर टोपने का लोखे या रस्सी का बाज सा होता है। इसमें साधा भी रख कर टोप दिया जाता है। बाध-पराधों ने हवा मक्खी खाती है। साध ही बिस्ती कुल धानि बालबों से रखा भी हो जाती है। धावकज इसका उपयोग साम्म-जीवन में अधिक होता है।

पनबट-लोता तथा बधि-बान-बीला में बोपियों का बस या बड़ी की मटकी धमबा कसस धादि पाज धिर पर रखकर ने जाने से संबंधित अनेक पत्र हैं। इनमें ही हँडुरी, गिडुरी या गेंडुरी (१ १७२ १४२ ३५) के प्रचिन्न बस्ती है। यहाँ कृष्ण का उनकी मंडुरी धीन घेने का वर्णन है—‘काहु की हंडुरी फटकावै’ (२ २०) ‘भीकै देहु न मेरी पिडुरी

१—क बी ५ ६, अथवा ६, धान भी धलीकड़ की कृपक बोली में इस ध्वनि को ‘मुरक’ लुरकज’ धमबा ‘धमरा’ कहते हैं।

प्र १ अथवा १ धलीकड़ के कपक मन्तानी को बिलोमनी ‘मन्ती’ धमबा बलामनी’ कहते हैं। साराबाब में इसी को ‘मन्ता’ [सं प्रत्ययक] कहते हैं।

है—'कैसे से नौई पय बाधत कैसे मैया घटकावहु' (१०१८) । गो-बीह्न के पशों में कहीं कहीं इसका उल्लेख है । धनीपङ्क को इगलास तहसील में इसको 'मेमना' या 'लौमना' धनुष तहर में 'बंवा' तथा साशबाध में 'नोई' कहते हैं ।^१

डोर प्रकटा डोरी^२ तथा गुन [सं गुण] (१४५ १८७८ १११) का उल्लेख 'बकडोरी' तथा मुडीडोर (२४७१) नामक खिलौनों के साथ किया गया है बकडोरी की रीठ यह है, फिर गुन ही सी लपटाह । (४१५२) । मुडीडोर ज्यों (१८७८) तीरी । हिडोले की डोरी रेशम तथा सोने के तारों से बनाई गई थी—पंचरंज पाठ कनक भिम्बि डोरी (१८५) । साधारणतः डोर' धरबा 'डोरी' बाटीक किन्तु मकबूत सुत की होती है । पर्वत तथा बक की डोरी ऐसी ही बनाई जाती है । दिखाई करने के लिये [फा ठान] को भी प्रायःकल डोरा कहते हैं । मज्जमेध में लाने के लिए 'उत्तु लब्ध भिम्बि है । धनीपङ्क के जामीन जोय जानवरों को पानी पिलाने की रस्सी को डोर' [वेष्ट शर] कहते हैं । वहाँ डोर से मोटी रस्सी सेबू [सं रज्जु—श्रा मज्जु—सेबू] कहालाती है । सेबू पानी भरने की रस्सी को ही अधिकतर कहते हैं । पानी भरते समय बड़े की गरबन में पड़ी रस्सी का ऊँचा धाँज' प्रकटा 'फाँसा' [सं पास्तक] नाम से जाना जाता है ।^३

बट^४—प्रमक बु डूरी धुर्वम हू भी बट लट मज्जु मई (४ २२)—का उल्लेख भी किया जा सकता है । सूत (५४२) [सं सूत] प्रकटा सूतरी (४१ ८) की जहाँ लका खून तथा प्रमरबीत में है—सन प्रब सुत पीर-पाटवर से लंबूर बँधाए । (५४२) प्रकटा सुरासन कहुँ मुनीन देखी पीठ धूतये पोहूत' (४१ ८) । सुनरो' को ही प्रायःकल सुनमी' भी कहते हैं । यह सग प्रकटा सूत से कनी पछसी पीर बिकनी रस्सी होती है । बँधनवार, खाट के पायते प्रादि में इनका उपयोग होता है । हिडोला-बधन में रेशम बस्त्र का बधन है । हिडोले की डोरी अनेक रंगों के रेशम की थी—'बहु रंग रेशम-बकड़ा डोरी राम भडोर (१४४८) ।

१४८—उनुबाम-बधन-शीर्षक पशों में माँ का छोटादेप में कुञ्ज की साँटी^५ (१४८ १८१) [हि घट], खजुट (सं समुज) (१७४) प्रकटा बँध (१७७) [सं वेड्ड] या डूरी (१४७२) से मारने का बखन भी है—साँतिनि मारि करी पहुवाई, बिठवत काग्ह डण्डी (१८५) प्रकटा बब रज्जु सी करपाई बाँधे डूर-डूर मारी साँटी (१८१) या

१—बू जी , पृ ७ अध्या २ ।

२—व सं टी ५५७१८ 'मब को डारि नामि सेहि गई कड़ा लो बहि गुन बाँध ।

३—क जी , पृ ७, अध्या २ ।

४—क जी , पृ १ अध्या १ बीवरी के दो पूंजों को हुयेतो से ऐंठने को 'बंढ्या' कहते हैं । यह कटी हुई रस्सी डूहरी सिहरी करके 'मम्मे' प्रकटा लपटने पर रस्ता' कहलाती है । लोग लटों को 'मत्ते' के पुराने टुकड़े 'बटेड़ा' से उभेड़ कर निकाली लट ही बट' के नाम से जानी जाती है । यह ऐंठी सी होती है ।

५—व सं टी १८८११ 'जहुँ बिनि जान सोंटिग्रह केरी ।' सोंटिग्रह [बोंड निप हुए प्रतिहारी] केरगाही प्रतिहार राबा के प्रयाग बीमारिक होते थे । प्राचीन काल से यह पद कला प्राया या और भयमकालीन महुजों तथा बरबातों में भी इसकी प्रथा थी ।

रक्ता है। ऐसे ही चरों में रात का अंधकार भी शीघ्र वापक (१९८, १९९) [चं] से दूर होता है। शिरोम-स्पर्श के आत्मज्ञान तथा आरतों सर्वधी पर्वों में इसका उल्लेख हुआ है—‘तेस-तुस-पावक-मुट मरि मरि, बनी न बिना प्रकाशत। कहुत बनाइ दीप की बतियाँ ईंहीं धी तम नासत।’ (१९८) अथवा ‘मही सराय सप्त सागर भूत जातो सेत बनी। बहूत पूज पड़यन नभ अंतर अंजन बटा बनी। यह प्रताप दीपक सुनिरेतर लोक सकल भवनी।’ (१९९)। इन उद्धरणों में दीपक जलाने के लिए आवश्यक वस्तुओं में सराय तथा तैल अथवा घृत का उल्लेख भी है तथा तुल की जाती अथवा बतियाँ [चं बति बर्ती] का भी। आरती को प्राब कहा भी कहते हैं तथा दीपक को ‘दिया [दीपक—दीप—दीया—दिया]। कपास की कई से बनी बनाते हैं तथा दीपक के तेल या धी में वासकर जलाते हैं। तुल का उल्लेख बत्तियों की बनावट के सिनसिले में हो चुका है।

वंतुबनि दंतुबनि, बत्तीनी (२५८३ ११९५ १२१७) [चं दन्तपवन दन्तपवन] तथा सीसी^१ (१२१४) भी उल्लेखनीय उद्धरण हैं। प्रातः बत्तीनी के बाद माता बटोरा बोनो नामकों को कलवा बेठी थीं—प्रातः ही में बिपी जमाइ। दंतुबनि करि बु यए बोच बाइ। (११९५) अथवा ‘माता बुद्धिनि बत्तीनी कर बै जल आरी जरि ह्माइ। उत्तम विधि सौ मुख पहरावो सोवे बसल संयोधि।’ (१२२९)। आचमन नीम की हरी डब्दी की बत्तीन प्रथित प्रचलित है। गाँवों में अधिकतर यही उपयोग में आती है। बाँधों के लिए सामाजिक होने के साथ ही सरसता से प्राप्त होती है। अमरवीत में पारे की सीसी फूटन की बत्ती है—‘सीसी फूटि गई (१२१४)। एक विनय-पत्र में मन को ठोठा तथा शरीर को पिंजरा (विनय २५६) [चं पिंजर] बताया गया है—मन सुवा लल पींजर। सर्व काम्य में ‘कलस’ [= पिंजर] राज्य की बहुत मज्जा है। आदरी ने मंजूसा [चं मजूसा] ‘पिंजर पीर’ काही [चं कंठिका] राज्य प्रयुक्त किये हैं।^२ मंजूसा हाथी की अंबारी तथा कठबरे के धर्म में भी आया है।^३ काही लोने के पिंजरे तथा इसकी डब्दी का बर्तन भी है।^४ साधारण पिंजरा बोधे अपना बाँध आदि का बगता है।

१५१—बर की ग्रन्थ आवश्यक वस्तुओं में संवृत्ति, संवृत् (२५६२ २६३६) [चं संवृत्] है। राधा के मोसिधरी प्रथम में उनकी भी कहती है—‘संवृत्ति मरि बरे सो न बोरी पी।’ (२५६२)। नेत्र-पर्वों में भी इसका एक स्थान पर लिख है—‘कलस कुमुद मेनि मरि म पत्र संवृत् पट पटर् (२६३६) यह प्राब लकड़ी का बना हुआ होता है जिसमें दो बुन्दे व साँकरें लगी रहती हैं। इसीसे यह के बाँधों के मोल परा बड़े संवृत् को सिनका कहते हैं तथा उससे ओटे को ‘सिवृत् अथवा ‘संवृत्’। विष्णुन ही छोटा ‘सिवृत्तिया या संवृत्ती

१—पं. सं. डी, ११११, ‘बत्तीनी नीच नूच के पीसी।

अब नार जनु लायेज सीसी।

२—पं. सं. टी, ७७११ ‘जब पिंजर हुँत फूट परेवा’

७७१२ घालि मज्जा बोधे घाला।

१६८२ तारदूर लये की काँड़ी।’

३—५१४१५ ‘अमर कमल मंजूसा साथ पंजर भी डार।’

५५६१७ ‘बोले तिय मंजूसा लाजा।

४—५६८१, २ ‘हुँत कमल पिंजर हुँत घाला। धी संसिध वन बरत पखाना।

धो लोगहा बोने की काँड़ी। तारदूर लये की काँड़ी।’

कपड़ों की पत्र (४ ५४ ४ २ ४ ११) लेकर बुझावन पाते हैं—कपड़ा बसुदेव-देवकी तथा कुम्हार द्वारा लिखे गये। यह मूल को सुन्दर मौलिक कल्पना है। कुम्हार नंद बाबा तथा यशोदा की विनय पत्र सचार्थों को मैत्री भाव से तथा मोक्षियों को योग का संदेश देते हुए प्रभावेय से पूछ पत्र लिखकर भेजते हैं। अमरमोठ सीपक धंस पत्रों से ही प्रारंभ होता है। कुम्हार के प्रतिरिक्त कुम्हार भी पत्र भेजती है—‘कुम्हार सुगो जात सब ठगो महामहिं धिबी बुझाइ। अपने कर पाठी लिखि राखैहि, मोक्षि सहित बड़ाइ। (४ ६१)। वह अपनी स्थिति स्पष्ट करने का प्रयत्न करती है—‘हम पर काहें मुक्ति बनगारी। सार्थे भाम नहीं काहू को हरि की कृपा मिनारी। कुम्हार लिख्यो संदेश सबनि की सब कोन्ही मनुहारी। हीं तो बासी कंसराइ को देखी मनिहि बिचारो। (४ ६२) यवना ‘तबो यह राधा सौ कहियो... मो पर रिख पावति बिनु कारण मै हीं तुम्हरो बासी। फिर कवी व्यंग्य-संदेश भी भेजती है—‘नाहिं काहू तुम्हारे प्रीतम ना बसुबा के जाए। देखी बुद्धि आपनै प्रिय मै तुम भी कौन सुख बीन्है। ये बालक तुम मल आनिनी सबे मूँक करि बीन्है।। सूरदास प्रभु मुनि मुनि बाटें रहै मुनि चिर नाए। इत कुम्हार बत प्रेम गोपकनि कहुत न कहु बनि जाए। (४ ६३)।

मधुरा को घोर निर्दर बुद्धि लगाए मोक्षियों की पत्र पाने की प्रसन्नता पर उसमें लिखे संदेश से मानो घुसराघात होता है—‘पाठी मधुरन हीं तैं भाई। सुबर स्वास मापु लिखि पठई प्राइ सुनी पी भाई। अपने अपने बूढ़ तैं रोटीं लीं पाठी जर साईं... (४१ ४) प्रसन्नता निरन्तर अक स्वास सुगर के बार बार लावति लीं खानी। मोचन बल कामव मति मिलि कै लीं यह स्वास स्वास की पाठी। (४१ ५) या ‘लिखि माई बनगार की क्षाप। उबो बाबे जिरत तीस पर बाबत पाईं ठाप। उमटी पीठि नंद नंदन की भर भर भवो संताप। (४१ ७) घोर ‘ऊबो नीकी छांकी बीठी। मोनोनाब लिखो कर अपने यामें मोम बसीठो। (४११) तथा ‘ऊबो कहा करै लीं पाठी। बी बीं मल गुपान न देखीं बिरह बराबत छाटी।...बूढ़ पाठी लीं काहु मधुपुटी बहैं मै बसै मुखासी। (४११५)। बीच में पत्र मिसने पर बेपड़ी-लिखी स्त्रियों को बुझाते से पत्र पढ़ाना पड़ता है—‘बच मै पाठी पढ़न न भाई। सुबर स्वास साब लिखि पठई कोठ न बांनि सुगारै। (४१ ६)। आन्ध्रप्रेष में पत्र पढ़ना कितना कठिन होता है—‘नैन सबस कामव अति कोमल कर संपुटी अति ठाठी। परमै बरै, बिसोने भीषी बुद्धि माति दुःख छाठी। को बीषी ये बर क सुर प्रभु, कठिन मयन सर बाठी। (४१ ८)। इन स्थलों में विचारवत् के लिए अक यवना क्षाप ठग प्रकृत हुए हैं तथा पढ़ने के लिए बांनि (४१६ ४१ ९)।

अमरमोठ की भूमिका-रूप में इन पत्रों के प्रतिरिक्त खिसखी का कपड़ा को बाह्य रूप द्वारा पत्र भेजने का प्रयत्न है—‘हिज पाठी ले कहियो स्वागहि। (४७८६) या ‘पाठी रोको स्वास मुखानहि। (४७८७)। कुछ स्पष्ट प्रसंगों में लिखने के साधारण प्रतीक है—‘अमर बरनि करै हम लेखनि कम-सागर मति कोरै (४७५) यवना ‘कम-कायव बाबि देखी जो न मन पतिवाइ। अखिल कोकनि भटकै धायो लिख्यो मति न जाइ। (४१६) तथा ‘ले खियाँ छियाँ लिखि राखीं ये नंदमान कही॥ (४ ११)। अन्त (४१ ५) की चर्चा एक संयोग पर है ‘ज्याव नहीं प्रिय भावई, क्यों कहाँ ठगाने। (४१७५)।

३५५—मुसज (विनय) का उल्लेख रत्नों में किया जा चुका है । रसोई में काम माने वाली कुछ धारयक बौनों में 'बल्की' [सं बाली बलिका] बलनी' [सं बाबनी] तथा सुप' [सं सुप—सुप्य—सूप] 'विजबट्टा'^१ [सं तिला + बट्टक] तथा पटा-बलन' [सं पट्टक + बलन], 'संझासी' [सं संज्ञिका] धारि की कमी की ओर ध्यान जाता है जो सूरसागर की उल्लासनी में नहीं मिलते हैं । अलीगढ़ जेल की बोलो में इनको सामूहिक रूप से 'सौंज' कहते हैं । 'सौंज' शब्द धारय अनेक बार प्रयुक्त हुआ है । प्रायः अन्य छोटी छोटी किन्तु धारयक बरेलु बौनों में 'सुरी' [सं मुषिका] 'क्रेवी' [तु०] या 'कतरनी' [सं कतनी], सरीया बाजू धारि को भी बिना जा सकता है ।

५—बैठने तथा सोने के उपकरण

३५६—'अनिबर' की वृष्टि से सूरसागर से उद्धृत उल्लासनी सीमित है । यहाँ बोते से उद्धृत हो उल्लेखनीय है । बैठने के लिए आसन (५९५) [सं आसन] का उपयोग अधिक होता था^२ । प्रतिभि से सबप्रथम आसन ग्रहण करने का आग्रह किया जाता था—'अरवासान करि हूँ बर' (७३) । भोजन में अधिकतर आसन पर बैठ कर करते थे—'आसन बै चौकी घाँव भरि' (११४) । कुसासन (३४१) [सं कुस = पवित्र वृक्ष विशेष] अथवा कुस सावरी (५९५) पर बैठकर पूजा की जाती थी अथवा श्रद्धा मुनि बैठते थे । इसे प्रायः भी पवित्र समझते हैं—'कुस-आसन बै निर्गहि बिठापी' (१४१) । समुद्र तट पर सेतु-बंध के समक राम का इसी पर बैठने का निर्देश है—'कुस-सावरी बैठि हक आसन बाहर टीनि किया' । (५९५) । इसका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है ।^३

सकड़ी तथा बस्तुओं से बनी हुई ची कुछ चीजें व्यवहार में आती थीं । इनमें प्रमुख उल्लेखनीय नाम यह है—

चौकी^४ (१४) [सं चतुष्की अथवा चतुष्किका—चतुष्किका—चतुष्की—चौकी] इसका उल्लेख भोजन के सिलसिले में है । चौकी पर भोजन के पात्र रखने की प्रथा थी । यह चार पायों की छाठी सी संज्ञिका होती थी । इस प्रकार खाने का इन बस्तुएँ तथा कुबधत धारि में नहीं करी जाय थी ।

बैठकी (७२८) [हि बैठका] नव शासिधाय की मूर्ति बैठकी पर रख कर पूजा करते हैं—'देव महज बर्नहि लिपायी । पीक देव बैठकी बनायी । शासिधाय उहाँ बैठायी । सुप-पीप-नैवेद्य बढ़ायी । (१९२) । बाल-भोपाल मंत्र के मखिम्य आवन में मुठों बल्ले से प्रत्येक मछि में उनको आत्मा से कमल बैठकी का भास होता था—

'कमल-भूमि पर कर-मय आत्मा यह उपमा हक राजति ।

करि-करि प्रतिपव प्रतिमनि बसुवा कमल बैठकी सावति । (७२८) ।

२—मुतली बोहा , ५९ , कोरहि सिद्ध छोड़ा सबन, लाये घट्टक बहार ।'

२—इतिथ एव भीम द्व शास्त्रिणि ५ , १४४ अनिबर से प्रकर का था—आसन (बैठने के लिए), धायन (लेजने के लिए) । 'धायनप्रान' शब्द प्राणि 'सेनाप्रान' से मिलता है ।

३—अनुची भाग ३, पृ ४२ साधारण घरों में सोन कमोड पर बैठते थे । यह प्रथमः सकड़ी की बनी चौकी कुरसी, मेज धारिका उपयोग नहीं करते थे । यह सोन प्रायः कमोड पर ही एक कपड़ा बिछाकर सो भी जाते थे ।

४—हर्ष सां अ०, पृ ४५, बाए ने हर्ष के चौकी पर बैठने का वर्णन किया है ।

यह बिज बाध भी हर घर में देखा जा सकता है।

डोलना (६५५) [सं हिबोल डोलना = हिमना से] झूलने के कारण पानने को डोलना भी कहा गया है—'मे घायो बड़ि डोलना (हो) जिसकहाँ सूछहार' (६५५) । झटोना (६८७) [सं छट्वा + पोतजक] इनका उल्लेख सुशामा-चरित से संबंधित पद में है—'मुनी बांस नुत मुनी छटोना काहु को पखंज कनक पाटो' को । बच्चों की छोन की छोटी छोट को ही छटोना कहते हैं । यहाँ छटोने की पाटो बांस की बछाई गई है । सामान्य लारों की पाटो तथा पाये बांस के ही होते हैं परन्तु सुशामा की निर्धनता की ओर संकेत है । छटोने से बड़ी बहिया और उससे बड़ी छोट होती है । छोट या छटोने की पायेंते की रस्सी या झरबाइन छोसी होने पर घाव घनोमड़ जेब में 'झंवर झन्ना' 'झंगी' या 'झटोना' कहते हैं ।^१ झरबाइन की धोर का भाव 'पायंडा [सं पावान्त] होता है । बड़ी की घनोमड़ छोसी में छोट छटोना चौकी तक पट्टा घाबि को सामूहिक रूप से मानव' कहते हैं ।^२

पखक (४८४६ ५१६) पखंग (४८९१ २२६) पखिका (२६४६) [सं पखक पखक] प्राणि जगत् का अस्तेज धनेक पक्षों में गुणा है । यद्यपि बालक कृष्ण को पखग पर सुना देती है—'घाय अभी घृह-काज की छं नंब बुलाए' (६८४) अथवा 'अनु-मति मे पलिका पीड़ावति (५१५) । कृष्ण तथा पोपी संयोग प्रेम तथा अमरपीठ के पक्षों में भी निर्बल है—'घार नाम उनीवे प्रापुत पलिका पीड़ी पलोटिहीं पाह । अथवा स्वामा सबन बिसारि मजे पुर बंजस नारि पखंग । (४५६५) तथा पठुनाई बच को बनि माजन बड़ी पखंग पद तातो पानी । (४२५५) । सुशामा जब अपने बाल-सखा कृष्ण का दर्शन करते हैं तो वह सुन्दर पक्षय पर सेटे हुए से और अनिमयी बैर से हवा कर रही थीं—'पीड़े है परबंक परम हवि कमिनि और बुबाजन और (४८४६) । इनको भी आदरसहित सुबध के पक्षय पर बैठाया गया—'घावर करि मौरि ये ब्याए, कनक पखंग बैठाए' (४८९१) । पक्षय की छोले बाँटी की पाटी तथा पाए राजसी बैध में धाते थे । कुछ स्फुट प्रसंगों से यह उद्धरण लिए गए हैं—'पुण्य-प्रबंक परी नवजीवनि (५१६) अथवा 'टूटी छानि मेव बच बरसै टूटी पखंग बिछहरै' (२६६) । बड़ी छोट को पक्षय कहते हैं । प्रायः इसकी गुनाबट निबाड़ से होती है तथा पैताने और छिरहाने टेक लगी होती है जो प्रायः कम्पलक कटावों तथा प्राकृष्टियों से अलंकृत होते हैं । पक्षय का संबंध वनवालों से है । यह उपर्युक्त पक्षियों से भी स्पष्ट है ।^३

१—य सं टी , ५६६५५ 'पीनु लाहजे पाटी बांध ।

२—क बी , पृ ६, अध्या १ ।

३—क बी पृ ६, अध्या ५ ।

४—य सं टी , २६१४५ अमर रात बरोबा जाय ।

प्रो सुंद सुरेन बिजाय विष्णवा ।

देहि मंह पसंग सेव को बारी ।

का कहूँ देसि रबी सुखवासी ।'

५—अमरज, भाग १, पृ १७२ सुप्रसन्नालीन उषावर्ष में निबाड़ है पक्षय उपयोग में धाते थे । सम्य व्यवहार में धामे धातो बीजों में पीड़ी, भुंडा, लोड़े के स्टूल (सामान्य वर्ष में) तथा लकड़ी के बीजाम (बीजनों के बरों में) थे ।

कृष्ण १२

मनोविनोद तथा पाहन

१-मनोविनोद के साधन

१५८-एक मन्त्रालय पूर्वाह्न के प्रारम्भिक घण्टों में बास-बीताघों के विस्तारित में इच्छा के कुछ दिनों तथा बिनाओं का कई बगल बालक स्वाभाविक बल्य है। इन घण्टों में उस समय इन में प्रचलित बच्चों के मनोविनोद के विभिन्न साधनों पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

पासने में होने वाले खेलों (७२) द्वारा विद्युत् का ध्यान प्रदर्शित होता है। कुछ और बड़े होने पर सुनसुना (७८८) ही उनका मुख्य सिद्धांत है—बुराई का न ग पाव भी पान बहनाता है। इसको प्राक्कल सुनसुना भी कहते हैं।

कुछ बड़े होकर बालक इच्छा बल पर से सहायों के साथ खेलते हैं। यह कुछ लगे किन्हीं उनको विषय हो पाते हैं। इनमें और (१२८०) [सं. प्रकरण] बच्चों की प्रवृत्ति बड़ होरी (१२८० ८१) [सं. बाल बालिका] के नाम है—दो बीटा और बक रोटी। बार बहुत बार पर राखी कसिह लोक से उनके कोटी—बालिका की बोरी।

केवल काहु गेव की पोरी। तैह हुरि तैह सब बालक कर पीरा बकरीय की बोरी। (१२८०)। पीरा को प्राक्कल बहुरी कर ही कर बालक कर पीरा बकरीय की बोरी।

बिनामा होता है जो बोरी में बाल कर हवा में बने बीटा-बीटा कर खेलते हैं। इसकी रोटी ही 'बकरोटी' कहलाती है—(१२९१)। यह काट के बिनामा प्राक्कल की बच्चों को उनमें ही प्रिय है।

अन्य प्रकार का खेल भी है—बकरी (१२९०)।

(१२९०)। दो बिनामा रोटी बच्चों को अधिक प्रिय होती है—(१२९१) [सं. बाल बालिका]।

१३-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

गंगा कंडुक (१२९१)। बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

१४-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

१५-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

१६-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

१७-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

१८-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

१९-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

२०-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

२१-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

२२-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

२३-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

२४-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

२५-बकरी के बाहर खेलने की बोरी में गेंद (१२९१) [सं. बाल बालिका]।

(१) हुरि की बालिका बीताघ के खेल से ही बड़े हैं। कई सुताधार मेवाज में गेंद बाल कर छोटी से खेलते हैं। प्रारंभिक बालिका के अनुसार बालक के समय में यह खेल बहुत प्रिय था। ऐसा बालक है हुरि बाल १५ की १७ की को प्रवृत्ति में बीताघ या उनके बड़े के विषय प्रिय होता था।

प. वं. १०-१२९१५ बहुरी बीताघ प्रिय बल केला। होर केला रन हुरी बालिका।

—बीताघ मेवाज गोंद से बाले।

(२) होर = बंद [अ. पृ. १]।

प. वं. १० १२९१६ 'केला' बीताघ हुरी हुरी बाल बहुरी होर

(३) होर = बीताघ के बाल में होने दो बाले बिना से गेंद निकालते हैं।

(४) होर = बीताघ के बाल में होने दो बाले बिना से गेंद निकालते हैं।

(५) होर = बीताघ के बाल में होने दो बाले बिना से गेंद निकालते हैं।

बेसने का बखान है—‘बेसने वाले कुंवर कहाँ। कहाँ पोप निकल जाये। उहाँ बेस बाह।
 बेंब बेसत बहुत बगिहँ धानी कोठ बाह। (११५)^१ बीरामा की गेंब ममुना में बिरना
 कागिन-मान-कवा की भूमिका कही या सफरी है। बेंब बेसने का समाज धिक्का मिशठा है—
 ‘इक मारत इक रोकत बेंबहि, इक माना करि गाना रंब।—मकत ओ जाहि ठाहि सो मारत
 बेद घाफली दाह (११५१) प्रकवा ‘स्याम सबा की बेंब बनाई। बीरामा मुरि घंम बचाबी
 बेंब गरी कानीरह बाई। बाह मयो तब फेंठ स्याम की बेहु म येरी गेंब मंवाई’ (११५१)
 तथा बानि-भूमि तुम बेंब गिराई, घब पीरहू ही बनी कहाई। (११५१)। बेन में दाह
 प्रकवा दाँव का धर्म बारी’ का होता है।

बीरामा तथा बटा धाव के ‘पोलो’ से मिलता-जुलता खेल था। इारिका में भी
 बस्मिमी का पत्र मिचने के पहले कृष्ण के बीरामा खेलने का वर्णन एक पद में है—‘मम-मोहन
 खेलत बीराम। इारबरी कोट कंचन में रक्खी बहिर मैदान।^२—निकले सब कुंवर प्रसवारी
 उचैलवा के पोर। मोल सुरेंध कुमैठ स्याम तेंदि पर के सब मनरंग।—जवहीं हरि से गोह
 कुहावत कंजुक कर छी लाह। तवहीं बीचकही करि बावत हुनवर हरि के पाह। (४७८४)।
 इन्ह (४७८४) वर्तमान खेल’ के लिए प्रयुक्त होने वाला पारिभाषिक शब्द था। क्यावत
 ये खेलार, ‘मोरा’ (बीड़ बरजर करने वाला) तथा ‘कुटी’ शब्द अधिक विदेशी बने हैं। यहाँ
 बीराम के खेल का स्पष्ट वर्णन है। इारबरी का बीरामा बीड़े पर खेला जाने वाला एकही
 खेल है किन्तु बचपन का बीराम बटा सम्भवतः बेंब खेलने के धर्म में हो प्रयुक्त हुआ है—‘है
 बीराम-बटा बचन कर, प्रमु घाए बर बाहर। (१४११) प्रकवा सुबब बीरामा सुरामा ब
 घाए एक घोर। बीर सबा बेंदाह नीलै गोप-बालक-बु ब—बटा बरबी डारि बीनी से बने डरकाह।
 घाए बफनी बाठ निरकत खेल मज्जी बनाह। (८१२)।

३६—‘माठा उनके सब बिलीने राम को संभाल कर रख बेटी हैं। बच्चों के स्वभाव
 का किटना स्वाभाविक धिक्का है—

‘घेतति म्हरि बिलीना हरि के।

बानति टेह बाफने सुत की रोवत है पुनि गरि के।

परि बीराम बेठ मुरसी गरि, घब नीरा कज्जोरी। (११३)।

उनको यह भी मय है—‘वहँ यहाँ डारे रहत बिलीना राधा बनि छै बाह बुराई’
 (११३८)।

बेंब [सं वेतव] भी कच्छ क बिलीनों में था। धाव भी छोटे बालकों को बेंब था

१—सुमती बीठा बाल० १३, अनुम प्रका सितु संम ने खेलन छेहुँ बीराम।

२—य सं टी ३२८१ ‘होह बीराम परी घब पोह।

(१) अनुलज्जल ने मेवार्न अवका प्रयोग किया है। यह सुखी भूमि होती
 है जहाँ बीराम खेलना सम्भव होता है।

३—य सं टी० ३२२।२ ‘मोर्बन तुरी बड़ी छी राजी।

४—बड़ी ३२बा४ हल सो करी गोह ले बाड़ा। कुटी सुई बीच की कड़ा।’

(१) ‘गोह’ के लिए प्राचीन शब्द ‘गोडा तथा कंजुक’ थे। मुरतापर में इन शब्दों
 का ही प्रयोग है। वर्तमान खेल’ की ‘हाल’ कहते थे। इसमें से बेंब निकालने
 पर बाजी होती थी। अनुलज्जल ने इसका उल्लेख किया है। इसका भारतीय
 समानार्थक शब्द ‘कुटी’ था।

[illegible]

शर पाई लारी धारसी । कहे कनका को कनुर में निवा । का बोध हुआ कि सपना
 कनका का यह शब्द कनका को रंजितारी पदमें धारका में [शर पुराण] ।—एक पंक्ति में सपना
 कनका का यह शब्द कनका को रंजितारी पदमें धारका में [शर पुराण] ।—एक पंक्ति में सपना
 कनका का यह शब्द कनका को रंजितारी पदमें धारका में [शर पुराण] ।—एक पंक्ति में सपना

[illegible]

(२४) । यह सब भाव हो प्रकट हो रहा है। और वह ही
पूरा होता है उसको कभी नहीं छोड़ता । जोर का
तो हम को एकसाथ है वहीं "ओर ज्यादा है। जोर का
है कि वास्तविकता के जल की एक बौत बा—हम गरीबों
की समझ में आने वाली बातें हैं। जोर का ही भाव है।
जो हम को एकसाथ है वहीं "ओर ज्यादा है। जोर का

१-मुल्की कोश १४-
मुल्की की समझावणी में सर्व
विषय हैं। १९१६ कागज काट गया है कोरी।

कहा पु मोहि । (५३१) । इस प्रकार क्षम में बच्चों को सङ्गने व बिड़ने का स्वाभाविक विषय है—'बेसत में को काको गुसेया । सङ्गि करे तासो को खेसे रहे बैठि बहै तहै सब मीना' । (८६३) ।

१६२—तत्काल कृष्ण का प्रिय मनोविनोद बेनु (१२६५) मुरली (१३२) बंसो (१२६६) बांसुरी (अथवा १२६७) मुरझिका (१२७४) बावन वा । मुरली सीपक घनेक पक्षो की रचना हुई है । बल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार मुरली ब्रह्मा की उस धामप्रदामिनी शक्ति की प्रतीक है जो संसार से विकल्पित कर ब्रह्म तक पहुँचाती है । सूरदासर के घनेक पक्षों में मुरली का इसी प्रतीक रूप से वर्णन है—बांसुरी बजाइ भाये रंग छौ मुरारौ—बमुना नु बकिव यह नहौ सुनि सभायी । सूरदास मुरली है पीनि-सोक प्यारी । (१२६७) अथवा 'बंसी बनराज धातु घाई रन बीति (१२६८) अथवा जब तैं बंसी अवन परी । उसही तैं मन धीर भयो सखि मो तन-सुनि बिसरी (१२६९) । पक्षुपक्षो पायें तथा बमुना एक पर मुरली प्यनि क्य प्रभाव पड़ता है । विशेष धारमाछों की प्रताक राधा तथा मोपियाँ तो सांसारिक बंधनों को मूल कर सिखी बनी गायी थी—मुरली-मुनि मजन मुनय बवन रहि न परै (१२७०) अथवा 'बबहि बन मुरली अवन परी । बकिव भई मोप-कन्या सब काम नाम बिसरो । अथवा 'कल मर्दानि बेह की छाछा नैकहुँ नहौं डरी । (१२७१) तथा 'बसी बन बेनु मुनय बब बाह । मातु-पिता बाँधव पति नासत जाति कहां भकुसाह । (१२७२) । मुरली-ध्वनि का जादू ऐसा था कि वह धामपुष्प तथा शृंगार सब उलटते करने लगती थीं धीर धारा ध्य से मिलने की एक बाह ही बस रह जाती थी—'धैव धामरण उत्ति छाजे रही कसु न सम्हारि । (१२७३) गोविनि परम कंठ हरि बाग्यो लखी न ब्रह्म प्रभाव (१२७४) तथा 'अके पिता मातु है काकी काह हम नहि जाने (१३९) ।

इस प्रबंध में भी मुरली का महत्त्वपूर्ण स्थान है । मुरली के प्राकप्य से बोझ कर घाई धातुल मोपियों को यह परम-मार्गव मिलता है—रास रास मुरली ही तैं बाग्यो' (१२७५) । मुरली-माहारम्य घनेक पक्षों में वर्णित है—'मुरली नुनि बैकुण्ठ गई । गाधयन-कमला सुनि बंपति भति बधि हूबय भई । (१२७६) अथवा जब हरि मुरली नाब प्रकट्यो । बंपन बड़ बाबर बर कीन्हें पाहुन बल्लव बिकासी (१२७७) तथा 'बमुना उसरी बार बनी बहि, पवन बकिव सुनि बेनु' (१२७८) ।

योचारक-सीपक पक्षों में भी मुरली बजाने का वर्णन है—'बुन्याबन हैं बेनु-बुन्य मैं बेनु अवर बरे पावत ।

मुरली पर कृष्ण का विशेष प्रेम देख कर मोपियाँ कभी तो उसके सीमाध्य से प्रसन्न होती हैं तथा कभी सपली भाव से भ्रूजमाती है—मुरली कीज सुझत-फल पाए (१२७९) अथवा 'सखी री मुरली कीज कोरि । बिनि गोपाल कीन्हें अपने बस प्रीति सबनि की तोरि । (१२८०) अथवा 'मुरली भई सौति बजाइ' (१२८१) तथा 'मुरली हम पर रोप भरी । पंख हपारो धातुन धैरवत नैकहुँ नहौं डरी । (१२८२) तथा 'पाके मुल मैं जानति हौं' (१२८३) । मुरली उत्तर संबंधी कुछ पत्र (१२८४ १२८५) हैं—'मोपर बागिन कहां रिसाव । —मैं बंसुरिया बांस की बी सी भई बकुमीन—। (१२८६) अथवा—'मेरे कुल की धीर नहीं । पटरिनु गीध तथा बरपा मैं ठाढ़े पाइ परी—तुम जानति मोहि बांस बंसुरिया धमिनि बाप ई घाई । (१२८७) तथा 'सम कछिही बब मेरी सी । तब तुम बरत-सुना-रस विमछु मैं हूँ रहिही बेरी सी । अगिनि सुझाक (१२८८ १२८९) का उत्तेज है—

घोर' (१४४६) अथवा 'हंसति पिय संग सेति भूमक ससति स्यामस वाच । (१४४३)
 'भूमकि भूमक सेति वै तुमची मचै सचि केग (११४६) । भवकि' तथा भूमक भ्रंटा
 (१४४१)—'समिता विद्याया रेहि भ्रंटा' (१४४१) सेन को घाव पैगें बढ़ाया भी कहते
 हैं । तेज भूतने का यह रंग होता है । भूतने के साधन याने का भी उल्लेख है—'गान्धी गान्धी
 बूदनि बरवै मधुर मधुर बुनि मोरनी' (१४४४) अथवा 'एन रागिनी मेसि बावै (१४४६)
 मोर 'अत्र गणति कोठ हरपि भुलावति' (१४४२) ।

१६४—ब्रुध बितन पर्वों में नयनों तथा राजा-भीमर्तों के प्रिय सुरक्षणीय प्रचलित
 प्रसिद्ध खेल चौपटि, पासे^१ (६) [सं पासका] का कथक है । चौपट के हाथी हाँव के
 चौकोर मध्ये तीन टुकड़े को 'पाँसा' कहते हैं । इस दृष्टि से पद ९ महत्त्वपूर्ण है—'चौपटि
 जयत मङ्गे बुज बोटे । बुज पाँस कम चक चारि गति सारि न कबहुँ बीजे । चारि
 पसार विद्यानि मनोरथ घर छिरि छिरि निनि धानै—भानी बज बजसाइ प्रथम विधि आठ
 साठ-दस साँव । पोड़प-मुक्ति, बुजति बिज पोड़ब बरस निहारै ।—पीछ पिम कम चौबड़
 इस चारि पठे सर साँव । तेरह रतन कमक सचि सचि हावस घटन बरा बज साँव । गहि सचि
 रंज पयावि इपनि चकि रंज पयावसि ठानै । नी बस घाठ प्रकृति लम्बा बुज वरन साठ
 संधानै । चौक बराज बरे बुजिया बकि रर रचना रचि घारी । (६) । इसमें किसी
 या संख्या का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है तथा चौपट के कुछ पारिभाषिक शब्दों की धोर
 स्थान बना है । बाजी हारी (६) का अर्थ हारना है । बुजिठिर का चौपट में डौलवी
 तक को हारने की कथा है ।

जुझारी जुझा (२६)^२ [सं घूर्त] 'बुधा खेलत जहाँ जुझारी'—बुधा का

१—गुलबी पीता ७ १६ अति मजबूत कुट्ट कुट्टि कच बकि अचिक सुन्दर पाखी ।
 पट उड़त नूपन जगत हंसि हंसि अपर लकी चुलाही ।

२—इंडिया एज मोन टु पाकिनि ४ १६५, छतरंज के अतिरिक्त प्राकृत पर सेना
 जाने वाला एक और खेल का जो भारतीय चौपट से मिलता था । इसमें जाने
 होते थे । इस प्रकार चौपट को प्राचीन खेलों में गिना जा सकता है ।

५ सं टी ११२।१ 'खेल सारि पाँसा ती जानै ।

(१) चारि [सं चारि = पीठ] ११२।७ खेलों के हिवा' कच्चे बापू' 'रही न
 घाठ घठारु जाजा' 'सतरंज बरे' 'बुधा' 'बुधवारि' नचनेहु' 'सोसिया' यात्रि
 सतरंज के पारिभाषिक शब्दों तथा वस्त्रों का प्रयोग किया है ।

३—इंडिया एज मोन टु पाकिनि ४ १६१, १६२, अन्वेष से हो छतरंज का उल्लेख
 मिलने लगता है । अष्टाध्यायी में 'घूर्त' अथवा 'असघूर्त' नाम मिलते हैं ।
 जुझारी को 'घात्रिक' कहा गया है । घर्तबलि के अनुसार घूर्त की यात्रा वाला
 व्यक्ति 'घर्त-वित्त' या 'घर्त-घूर्त' था । कितन (जुझारी) प्राचीन वैदिक शब्द
 है । यह शब्द इसी धर्म में बौद्ध साहित्य तथा महाभारत (सप्तमर्ग) ५८।१ में
 मिलते हैं । अष्टाध्यायी तथा धर्मशास्त्र के अनुसार यह खेल घर्त तथा घर्तका
 से प्रकार से खेला जाता था । भरतुत के दृष्ट बिम्ब में घर्त चौकोर टुकड़ों के
 रूप में विधित है । संस्कृत साहित्य में 'अर्ध' का अर्थ बाँव रहा है बात यही ।
 वैदिक साहित्य में बात का ही अर्थ था । वाङ्मय के विचार से 'अर्ध' के कारण
 ही घूर्त बिम्ब खेलों में गिना जाने लगा ।

तथा अन्य विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिरिक्त परस्पर स्वीकार तथा बाह्यों धात्रि को भी बिना या सकृत् है। रंगमंच पर खेले जाने वाले नाटक पुराने समय चित्र-प्रदर्शनी तथा काम्य-रसास्वादन कलाप्रियता के उदाहरण हैं। मनोरंजन के नवीन साधनों में सबसे अधिक महत्व पूर्ण स्थान रेडियो तथा चित्रपट का है।

गीतों में बाह्य भी विशेष महत्त्व नहीं हुआ है। वही मोम बाज घांटा छोला भावक महाभारत रामायण-पाठ गीतों की सेवा स्वीकारों तथा परस्परों से ही प्रमुख रूप से अपना मनव्यसाध करते हैं। वही बच्चों के खेलों में कबड्डी मुकाबिली गेंद घोंकी धात्रि को बिना या सकृत् है। साधन के महीने में लड़कियों के झुने भी बिनाई है और गुड़िया के खेल उनको विशेष प्रिय होना स्वभावक है।

२—बाह्य

१६६—सूरदासीन कुछ सवारियों का ज्ञान भी उनके काम्य से होता है। स्वयं की सवारियों में उन्होंने बोड़े से नामों का प्रयोग किया है—रथ भयवा स्वयं (२६, ४ १ ४ १ २७) [सं०] तथा के बार धर्मों में प्राचीन काल से ही रथ का स्थान रहा है। देना संबंधी सम्बन्धों में इसके बारे में बताया जा चुका है। सूरदासीन के सभी युद्ध प्रसंगों तथा कर्मों में रथ का उल्लेख है ही इसके प्रतिरिक्त प्राचीन समय से ही भीमव मागरिकों की प्रमुख सवारी रथ की। राजा तथा सामंत हाथी व घोड़े की सवारी भी करते थे। सूर काम्य में मनुष्य नगर से जाने वाले कंस तथा कृष्ण के संरक्षक-बाह्यों बभ्रू तथा उद्यम के रथों का अनेक पक्षों में वर्णन है—‘धामसु पाह सुष्ठु रथ कर बहि, अनुपम सुरंग साज’^१ वृत्त बोहो। (१५५६) ‘यह नुनि रथ हाकिमियो नगर पदवी पाई। (१५६२) भयवा ‘अयो चित्तों बाह्य कर्म की उद्यम न रथ की धुरि। (१५७६)। बभ्रू रथ में बिलकर कृष्ण बनराम तथा नर धात्रि को मनुष्य ने बाटे हैं—‘केलि धुरि गयी रथ माई। बंद-नंदन के वनत सखी ही धुरि ली मिलन न पाई। (१६२५) भयवा सखी री बह देखी रथ बाट। कर्म-नयन कांछे पर पीठ बसन फहरात। (१६२६) और जब रथ भयी मनुष्य धनीचर नाचन धात्रि मनुष्यात। (१६२६) तथा ‘सब धामन गई तिहि बीसर, कहु रथ न गहरी। (१६२८)।

इस प्रकार बभ्रू का रथ अपने साथ रथ का कुछ तथा धात्रि लेकर जाता गया और वह इस धात्रि के पुत्र के धात्रि के कारण कुछ रथ भी न सके—‘बह चित्तवलि बह रथ की बंछनि जब बभ्रू की बाह गहरी। चित्तवलि रही ठही सी ठाढ़ी कहि न सकति कछु काम रही। (१६२२)। बुवाय फिर मनुष्य की धोर से रथ बाटे देख कर हवाम के धाने को

१—इंदिया एक मोल दु पासिनि, प्र २४५, सवारियों को अष्टाध्यायी में बाह्य या ‘बाह्य’ कहा गया है। यह दो प्रकार की थी—धूमि तथा जल की। जल के बाह्य को ‘जल-बाह्य’ कहते थे। धामसो के अनुसार इस-बाह्य ‘धरवाहन, ‘हर्म-बाह्य’ धात्रि नाम होते थे। पारिजति काल में भी रथ धात्रियों की सवारी थी। कई रथों को सामुद्रिक रूप से ‘रथ्या’ या ‘रथ्य-रथ्या’ कहा जाता था। पारिजति में रथ में कुते नामकों के अनुसार भी विभाजन किया है—‘धामर रथ’ ‘धीधु-रथ’ तथा ‘पारिज-रथ’।

२—य० सं० टी ४६।४ अनुमान के रथवाह—रथ के घोड़े को रथवाह कहा है। भाग ६, ब० ‘यव रथ सुरंग बिलकर कठोर।

मुद्राक्षेप तक बाते हैं। गाँव के लोग सकट में किस प्रकार गाते बजाते याबा पूरी करते हैं इसका स्वाभाविक चित्रण है—प्रपने प्रपन सकट साचि न मितन नबि भविनासी। कोठ बावत कोठ बेनु बजावत कोठ सतामत बावत' (४२०)।

इन प्रयोगों के प्रतिरिक्त शकटासुर-रथ इनके प्रसौक्यिक-वर्णन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है—सकट रूप बरि प्रसुर सीगही विरूपो महाराव सकटा संहारूपी (१८) समये सूर सकट पय टेमत (१८१)। सकट को बैल बीचते से तथा रथ को भविकरर बोड़े। सकट प्राचीन समय में सामान ले जाने के काम आता था। इसमें जो बैल बोटे बाटे वे उनको शकट कहते थे। प्रष्टाध्यायी में इसका उल्लेख है। परंतुलि ने इन गाढ़ियों के काफ़िले को 'शाकट-सार्थ' कहा है। शोध-साहित्य में इस प्रकार के पाँच ही यात्रियों के सार्थ के प्रमेक उल्लेख हैं। यह सार्थ पुरे हेतु न एक स्थान से दूसरे स्थान को 'वयिज' से जाने के साधन थे।^१

११८—राम की सवारियों में नौका, नाव^२ (१२, १८४ ४८९) [सं नौका] का उल्लेख राम-कथा में है—नौका ही ताहीं सै बाळें' (४८५) तथा येरी नौका बलि बड़ी विनुषनपति राइ। (४२९) तथा 'महाराज रघुपति इत छड़े तै कत गाँव पुराई (४८४)। राम की बरख-रथ से नौका की बेवर्ति कहीं प्रहिक्ष्या के समान न हो बामे केवट के इस भय का बड़ा वर्णन है। विनय-गर्भों में नाम-कपी नौका का बार-बार उल्लेख है—गाहि चितवन हेत सुत-रिय नाम-नौका भोर (१२)। संसार सागर में मनुष्य की बीकन-कपी नौका का खेवनहार प्रभु ही हैं। यह कल्प हमारे साहित्य में गया नहीं है।

नाव के प्रभाव को बेरी^३ (४२९) [स बेड़ा] पोत (४५५) [सं पोत] तथा बहाव (१९८ ३८१८) [स] भोर बोहित^४ (४२२८) आदि बल-बाहुनों का भी उल्लेख हुआ है—'सेनर बाकहि काटि के बाबी तुम बेरी। बार-बार बीपति कही, बीबर नहि मने। (४८५)। पोत तथा 'बहाव' प्रायः समानार्थक हैं। यह नाव से कहीं बड़े होते हैं तथा समुद्र यात्रा के लिए उपयुगी हैं। यहाँ असहि-कृष्ण न मिसने से यही बोध कराना पड़ा है—बसहि बकिज वनु कान पोत को कून न कबहुँ पावी री। (७५५) विनय-गर्भों में राम की तुलना बहाव के पक्षी से की गयी है—'येरी मन प्रगत कहीं तुम पावै। जैसे छवि बहाव की पक्षी छिरि बहाव पर पावै। (१९८)।

११९—बासु की सवारी में विमान^५ (१८१) का नाम दिया जा सकता है। राम-कथा में इसका उल्लेख है। राम आदि राजा के विमान पर बैठ कर प्रयोज्य करते हैं—

१—इंद्रिया एक भोग दृवांसिधि पृ २४८।

२—प सं टी १४५।७ 'भोर नाव खेक विनु बाबी।

३—बेड़ा बाबी या बहावों के समूह को भी बेड़ा कहते हैं। 'बेड़ा बार होना' भोर बेड़ा बर्बा होना' प्रसिद्ध मुहावरे हैं।

४—प सं टी, १४५।४ 'बोहित बीगु बीगु ने ताबु। १४७।२ बाबहि बोहित मन उपराही। सहज कोस एक पल महुँ काहीं। १४० (७) बोहित = बहाव [सं बोधित = बोहित] 'बोधि' नाव के बीजे के प्राय को कहते हैं। तामिल भाषा में भी 'बोदि' बहाव का एक प्राय विशेष है।

५—प सं टी १२२।२ सत्वा पुरुषावसिक्त बेवानू।^१, १२२।६ 'हीय रत्न पसारन भूसहि। बेकि बेवानु बैवता भूसहि।

शाखानुक्रमणिका

कमल	२६ १३३०३८८१	काकपण्ड	८५४६४
	२३७५	काग	३२२१२८६ ११५६ ४२ ६
कमला	३३२१३३८	कागव	३५५१३६१८ ४२११
कमरी	२७११०५५	कागर	३५५१३६१८, ४१११
कमल	२२२१३४	कावरी	१५५११ १४
कमोरी	३४११८८३ ८८ ६ ९	कावली	३८३ ७
करवीर	११५१२१४३	कावर	६५१४४२ २८३७
करवाण	२६११३४८२	कावी	२१६१२१४८, २८७४
करवली	६३१२३७२	करनिकार	३२७११७१३
करलफूल	५३१२८ ७ २८०८	करनि करना	३२७१३६३२ ३५२१
करनाडी	२६५१२७५८	कापण	२१३५८
करुनि	३१७१२७१३	कापी	२६५१३५ ५
करवीर	३२७१३६३२	कामना	२५३१४७७८
करम	३ ५१६६	कामनावेनु	३२७१३६४ ४३५, ३५
करीबलि	१२७१२८३१		४८ ६
करवाल	९७३१४८३६ ३६२२	कामवेनु	३२७१३६४ ४३५ ३५
	२७४७		४८ ६
करील	३३७१५२ १३२	कामरि	२७११ ७१
करवा	१३१११८३१	कामकर	११५१२१४६
करवा	१२७११८३१	कारी	१५१२३८८
करवार	२२३१४८३६ ३६२२ २७२२	कारे कोसनि	३७ १४८ ६
करवाम	११३१३७४७	कालिरी	१७४१३८ ६
कवच	३४ १३१ ३५ २ ५४	कालीपद	१७५११४१
कमि	१८५१३५५	कास	३३७१५२ २
कमिका	३२७१३६३२	कासी	२६०१४५५६ १७५१
कमिकाव	१८५१३५७		४ ३४ ४४८६
कमी	३२५१२५२२	किन्नर	२१७११ ३ ५४
कमी पाकर	१३३११८३१	किधरी	२८५१३४८५, ३४८८
कवेळ	१ ११८२६ ८३	किरीट मुकुट	७५३५८
कनेवा	१ ११८२६, ८३०	किशान	१ २१
कसीबी	११७१५२ १५३	किशमिष	१२१८३
कमपुष्प	३३८१३६४	किशलय	३२५१२७३४
कमपुणेवर	३२८१३६५६	कीट	३१११५४१
कमपीरी	१८२१४४३३	कीर	२१६१३६४ ३८२ ७६
कस्तुरि	३ १३	कुंज	३२७१२७२६
कसीटी	२१ १४९६३	कुटव	३२७१३६३२
कहार	१६२१४११	कुखर	३५०१११७
कहारि	१६२१४११	कुख्यास	२१६१३४

खर	३ १।११५८, ३३२ ४८ ३	पिखीरी	१५३।१ १४
खरब	१८३।१४२	पिखुरी	३४३।१ १७ २ १४
खरबुवा	१२६।१ १४		२०२५
खरिह	३ २।१२१८ १६१७ १३१।१ १४ १८३१	बंजुरी	३४३।२ १७ २ ३४ २ ३५
खरिका	३४६।१८३१	गुंसाई	२७५।१ ३
खरिहाल	१०२।१४२	जेंह	३३ १११५१
खवास	२१७।१४१ ४२३१	पोंह पाक	१४८।१ १४
खान	१३६।१ १४ १८३१ ३३	पंवा	१८०।७५३
खार्	२१५।४८८	पबिनि	१९१।१३६१
खावा	१५ ११ १४	मुंवा	३१७।१८ १
खादी	१ १।१८३१	मुनामनाम	७१।१ १७
खापरा	१२३।८१९	बंजकि	१८ १४१
खारिक	१२८।१२९, ८३	वांजीब	२२४।४६२७
खारे	१ १।१८३१	बंजुप	१४२।१५०
खिपनि	३५ १२२१८	मगरी	३४ १२ १७
खिर नाहु	१५१।८ १	मज	२१८।१४४ १४१
खिसीनी	३५१।७ २		३ ४।१७ २७ ३३१, १८५१
खीचरी	१५३।१८३१	मजराज	३ ४।११७४
खीर	१५८।८३३ ७३२ १८३१	मजेज	३ ४।४२९
खीरा	१२५।१८३१ १३१। १८३१	गप	१८३।२१४७
खुटिमा	५३।१०९३ ३२३१	पवा	२२३।४८३१ ४८४
खुटिबा	५३।१०९३ ३२३१	मरीय	३ १।११५८
खुटिबो	५३।२ १३	मलिका	१९३।१८२ ३४७१
खुनखुमा	३५१।७८८	मज	२१५।१४४, ५२
खुपि	५३।१०५७ १३७३	गदुनहार	१९ १३४४२
खुनी	५३।१०५७ १३७३	गईना	१९ १३४४२ ३५१
खुरमा	१४१।८ १	मजरी	२१५।१४४, ५२
खुंट	३४।३४१७	ममुधारे केस	२३७।७३२
खुपा	१०५।८२१ ८ १ १ १४	मयव	३ ४।४ ४५
खुप्पी	३२८।३५२१	मया	१७९।३४३
खेदिहार	२ २।१ ७	मररी	३२२।११५१
खेवनहार	१९ ११८४	मरी	१२३।१ १४
खेवट	१९ ११८४	मरुज	३२४।४, ७ १, ६५, ४३१
खोषा	१४५।८३१ ८ १	महमज	३२२।१११ १ १
		महम	५ १११ ८
ग		गार्	३ ११५३, ५१
गोठि कय	१९७।१८३		

बंदा	३१७।३८३५
बबर	२२८।२८७१
बकई	३२८।२३७ ८५१ १८५८
बकई-डोरी	३५८।८१
बकडोरी	३५८।१५८७
बकनाब	३२१।२३३७ २७५३
बक-मुहम्मद	२२४।४८३७
बकोर	३२१।२७३८ १५८, ३८५८
बकोरी	३ १।२७३८ १५८ ३८५८
बकौड़ा	८३।७३२
बकरीक	३१२।८३३
बहुरका	२३३।३५८
बहुरीमिनी	२२ १।३५८
बन	१ ८।१०१४ १५१
बना	१ ८।१ १४ १५३ १३५।३८३१
बनक	१ ८।१ १४ १५१
बनमलि	७२।१२४२
बनिका	५२।२ ५७ ७१५ ३१७।३८३५
बमेली	३२७।३७१३
बम्बक	३२८।३७१३
बाक	१८३।३२१२
बांवरि	२४७।३४७५
बाऊक	३६२।३५५ १८३
बावर	५८।५१ ७
बातूर	१८६।३ ८६
बाप	२२२।४७ ३८३७
बाबुक	३ ५।
बारि-महारब	२५३।३४८, ३५८ १४१८, ४७७८
बाबर	१ ८।१ १४
बिहारा	११२।८३८
बिबिडी	१३१।१ १४ १८३१
बिबोडा	१३१।१०१४ १८३१
बिठामि	२ ३।३

बिरहारा	११५।२१४५
बिरारी	१२८।१ १४
बिरिया	३१५।२३४
बिरोजी	१२८।८ ८
बीछी	३५३।५१ १३८, ४१ ७
बीर	३।२४७
बीर पुराण	२३२।४१११
बुटिया	८४८।२।७८ ७८३
बुटुकर	५८।१४७
बुरी	३३।१७८८
बुल	१३१।१ १४ १८३१ ३४५८ १
बुनरि	३१५।१ ११२
बुनरी	३१५।४
बुरा	३३।७ ७ ३५१८ ३४४
बुरी	३३।७ ७ ३५१८ ३४४
बाटी	८२।७८ ७८३
बाकी	६ १२१५८ ३२२८ ३५३ १२ १४
बोर	१८७।१८३
बोमना	४२।१५३
बोमिनि	१८१।१३८३
बोली	३३।२२७२
बोला	२१।३४८१
बीतमिया	४८।७२४
बीतनी	४८।७३४ ७ ७
बीपरि	३३४।३
बीसर	५७।२५८२
बीकी	३५३।१ १४
बीगान बटा	३६ १२३३ ८३१
बीर	५१८।१८७१
बीराई	१३४।१ १४ १८३१

ब

बबुर्ग	३१ १४३७५
बडो	२३३।३५८
बब	२१८।३५, १४४
बबो	२१७।४५७
बरी	३४८।३४७२

बहिरोरी	१५७।८ १	बुलबारा	१५३।१०१४
बही	१५५।१ ३८०८,	बुल	२३ ११
	१४ १७१८	बुलह	१४१।१६१२
बाबरी	३४८।१३१, १६०	बेबगिरि	२६४।परि १ ८
बाहज	२४२।४७१, ४८ १	बेब-मुक	१८५।७२६
बाई	११२।६५८	बोनिमाँ	३५०।८५६, ६५२
बाउ	३३ ११ ५१	बोहली	३४१।१ १३, १ २७
बास	१२४।८१६ ८३	बौनापिरि	१८१।५६४ ५६४
बाडिम	११८।५ ७	बाबस बग	१७ १३४७२
बाबर	२ ७।३२३ ३१, ३८१३	बापर	१८४।३५५
बापुर	३ ७।३१३२, ३१, ३८१३	बापास	२१७।१४१
बान	२६६।१३ ३	बापासि	१७२।८३ ८४
बाम	२१२।१५६ ३४८,	बापावती	१७२।८३, ८४
	१६७६ १७५	बारिका	१७२।४७८
बारि	१८८।१५१ २ १४	बारिकापुरी	१७ १२६८
बापी	१८८।१५१ १ १४	बिज	११६।३५२ २३८
बासी	२१७।१८१	बिंदु	८ १७ ८
बाक	२२३।१८८५		घ
बिपम्बर	१०५।११३६	बल्लुरा	३३५।४६५८
बिनमनि	१६४।१३८५	बमियाँ	११८।४२२२
बिम्बबान	२२४।५७	बनु	१११।३ ७ ४६७
बीठ	१७१।१३ ५	बनुपरि	१२२।४६२७
बीप	३५ १३७८, ३७१	बनुप	२२१।३ ७ ४६७
बीपक	३५ १३७८, ३७१	बमारि	२४७।३५१३
बीपमानिका	२४६।१४२ १४३ १५१३	बम्मिल	६१।३ ३३
बुकूस	६।३४५६	बम	१५३।४७७८
बुल	३१५।१ ६	बमान	६६ १४८५
बुलुमि	१३८।४६८	बमज	१२१।५५८, ५६३
बुपटि	४ १७	बमजा	७२१।५५८, ५६३
बुमपी	३३३।३४५६	बागु	२१ १३५१६
बुप	२१५।५१६	बाग	१ ६।२४७३, ४२२३
बुम	३२५।३८४५, ५०८,	बार	१४३।१ १६
बुम-बर्म	६।४८१	बारना	२६ १४८८४
बुलपी	७१।११३	पीबर	१६ १४८६
बुसापी	२६४।४ ३२	पुंसापी	१३५।१८३१
बुलहिनि	२४१।१३६ ४८ ३	मुवा	२२१।५५८, ५६३
बुप	१४ १८४८, ८१७ ७६४	मुप	१६७।१८३
	७६३ १४४।८४५, १३६।१५३	मुगु	३ २।३६२

पञ्चा	३५।२६८६	पत्तीपी	२५२।१ ११
पंगति	१३६।५११ १५३	पत्ताबन्नि	३२५।२४१४
पंथतरण	२३१।४५१८	पत्नी	३५३।४ ५४
पंथरंग	१२।३५२८	पद्मसाग	२५८।४१२८
पंथवटी	१७७।८१७	पद्मिमि	३२१।२७२६
पथी	१३५।८३	पद्म	३३१।
पथिक	२५७।४८४६, ५१६	पद्मा	२ ३।४८ ४
पथित	२२३।३५३२	पद्म	३ ६।२७३३
पद्मान	१४७।६१४ ८०८, ८२	पद्मवट	३४।२०५७
पद्मकीरी	१५४।१ १४ ८ १	पद्म	२८२।३४
पद्माबन्नि	२८८।३५१३	पद्मारा	३५२।
पद्मा	४३।६४६ ५५८, १६८६,	पद्मारा	१३६।८२६, १८६१
	३१ ३	पद्मिष्ठ	३४।२ ७
पद्मिमा	४३।३६७८	पद्मिष्ठ	२४१।१६६
पद्मी	३१५।८५	पद्मी	१५४।
पाक	१४८।८५७	पद्मिष्ठ	३२२।१२४ ३६५५,
पट	७।३ ४७४		३६५५
पटराणी	२१४।४२५६, ४२६६, ४२७		१४४।८ ८, १११४६
	४१३		१४।१ १४, ७६२८ २
पटकीरी	३५४।१ १४ ८ १	पद्मी	१४४।८०८, १११, ४६
पटवारी	१६६।१२५	पद्मकार	१ २।२ १
पटवर	७।३२३	पद्मना	१६६।६४७
पट्ट	२८२।३४२ ३५३२	पद्मवर	१३१।१८३१
पथिक	५३।३२१८, ७८७०१४	पद्मार्जुन	२५१।४६१५
पथिया पारना	१३।४१६८	पद्मार्जुन	२५१।४६१५
पटुका	४१।५११ ७	पार्थि	२१ १३६१४
पटुमी	३५३।३५, ३५५३	पार्थिव	२।३४२
पटोरी	८।२३११	पार्थिव	३१८।१२७७
पटोरी	८।२५३	पार्थ	२३३।४८६ ४६१३
पाठे	२२३।८५३	पार्थ	३५७।४८६३, २२६
पठवरा	१५४।१ १४	पार्थ	३८५।३ ७, १४४३,
पठा	३२५।८८, ८३		२८६३
पथ	३५३।३५३३	पत्तास	३३३।१ ८३
पथाक	२२१।३ २	पत्ताका	३५७।२३४६
पथास पथाबन्नि	१८३।३७, १६ २	पत्ता	२३ १४१३१
पथिया	३५३।४ ३३	पत्तानी	२३५।७ ३, ७०७
प्रतिहापी	२२७।१४४	पत्ताबन्नि	४५।३५१७
पथीवा	२२३।४८८५	पत्ताबन्नि	३३।३४१, ७३५, १३७४

३५३

[illegible]

बांसुरी ३३२/१२६७
 बासुकी ३२४/४३५
 बासम ३३८/७ ७
 बाह्मिदम ३१५/२१६३, ३५२८
 बिस्मिमे ३८/३३७३ २७७४
 बिटप ३२५/१३३ १६८३
 बिन्दु ३७/१३७२, ३६६४
 बिन्द ३३७/१२७७
 बिन्न म २ ३/७५८, ७ २ १४५७
 बिन्दुति ३३२/३८४४ ४३११,
 ४३०८

बिलार ३ १/३११, ३५७
 बिलाल ३ १/३११ ३५७
 बिह्व ३१५/३६४६
 बीज २ २/
 बीज २८४/३४८७
 बीजा २८४/५१६, ३५ ३
 बीरा ३३४/१८३१
 बीरी ६६/३३४३
 बीरे ५२/३२२६
 बीरे ५२/३४४६
 बुलाक ८ १११
 रघ ३२५/२७३४ ३६३८५५०८,
 ३४७२, ३४८८, ६३७

बेदी २४ ११६४ ५१ २४६३
 बेनु २८६/६ २, ३३२ १८३५
 बेनी १८ १/३४६ ८४७६६
 बेघा ३८३/१ १४
 बेला ३२७/३६३२
 बेनि ३२७/१७१३
 बेनी ३२५/२७३४ ३६३८,
 ५०८ ३४७२

बील ३ १/३३१ १८५
 बील १६४/४४०
 बील १६४/४१४७
 बीलमे ३५३/७६८
 बीलमीमल ७२/३४५
 बीलुठ १८३/३४६, ४८६, १७६२

बीतरि ५५/३६ २ ६३, ३५१६
 बस्या १६३/३५३१
 बोम २६३/६४२३
 ब्याज १८८/४ ४६
 ब्याप १६५/१७६
 ब्यापार १८३/२१४३, १६५
 ब्यापाटी १८३/२१४३
 ब्याल ३ ८४४२, ११७, ११७५
 ब्याह २४१/१६६१, ४८ ५,
 २४१/४८ ४

म

मेटा १३१/१८३१
 मीमीटी ३१२/३८६
 मीरा ३१२/१२४४, ३८५६,
 ३८४३ ३३६
 मीपी ३१२/१२४४ ३८५६,
 ३८४३ ३३६

ममगालव २५४/४७१२
 मठ २२ ११४४, ३६७३
 ४७६६ ४२३६
 ममल २१५/३६, १६ २
 मसम २३२/३८४४ ४३११
 ४३ ८

मसम मसम २३२/३८४४ ४३११
 ४३ ८

मंड ३३६/६३३
 भागवत २७७/३५, १५५ २२३
 भागन ३३६/७६६
 भाव १ ६/१५३ १ १४
 भाठ १६७/३४६

भाटा २८ १२३७
 भाति २२३/३६३१

मिळारी १६७/२१७
 मिळुक १६७/३५८

मिस्तिगि २२७/२५
 मुबाल २१३/३२२

मुबाला २१३/३२२
 मुजब ३ ६/२८४६, २३२

मनिमय अष्टिह्वार	५७।३३३	महुपरि	२८७।३४७८ ३४८४०
मनिमूपन	५ १२८५०, १३७३	३२२।परि ११०	
मयारि	३३३।३४५०	महुपरि	२८७।३४७८, ३४८४
मयूर चन्द्रिका	७५।७७२	महेरी	१५८।१८३१
मरकट	३० १३३२ ३३६	माखन	१२६।७३३, ७७६
मरकट	२ ३।१३५७		७८१, ७६५,
मराल	३१५।७७६, ३ ७,		१४ १७६४, ८२७,
	९४ ६, ३८५१		१४ १६४४
मराल लीला	३१५।७७६, ३ ७, २४ ६,	माखन रोटी	१३६।७८२
	३८५१	माखी	३१४।३८५८
मराला	३२८५३२१	माखन	१६७।४३२, ३४२,
मराला	३३३।३४५६		२१८।१४४
मराली	३२८५३३१	माखनकेनी	१८ १४५५
मराला	१३४।१८३१	माखनी	३२७।३५२१
मरकट	३ १३३२ ३३६	मनसरोवर	१८२।३५३
मनसगिरि	१२८।३३३ ३३	मर	३११।३४ २११८,
ममार्ह	१४४।१८३१		३४२, २१३
ममार	१६४।४ ५, १ ४६	माया	२५२।४५
मरुद	१६३ १३३८२, ३३५।३३६२	माया	१३०।४७१३
मरुबाह	३६ १३६१४	माय	२६४।३६८४
मस्त्रिका	३२८५३३३	माल	५३।३ ७
मसानी	३५७।	मालवी	३२७।१७१३
मठाह्व	२० ११६९	मालवई	२६४।३४४६
मसि	३५४।४ २१ ३६१८	माला	७८७०२२
मसि बिबा	८३।७३५	मालिनी	१६१।१३६३
महरी	१६६।१४२	माखी	१६१।३३३६ ३३३५
महराने	१७२।८३३	मानूर	३३३।१३८४
महरि	१६६।३३१	मिठाई	१४७।१५२३
महल	२१५।६४६, १३ २	मिथिलापुर	१७७।४८ ६
महसनि	२१५।६४६, १३ २	मिथीरी	१५७।१ १४
महादेव	२३४।१३८४	मिरन	३ १४६, ७, ३८४३
महाभट	२२ ११४४ ३६७३,		३८२
	४७६६ ८२३६	मिरन	२८८।३४८८, ३५ ८,
महापञ्च	२१३।४		३४३
महाभठ	१६५।४३५४	मिरन	११५।२१४३, २१४७
	३ ४।३६२१		१ १८, १८३१ ८ १
महिर	३ ३।१ ६४	मिरन	११५।२१४३, २१४७, १ १४
महीपति	२१३।२४ १३		१८३१, ८०१

एतन	२०४।३५३	रिष्यमूक पक्ष	१७८।५१२
एतन बटिठ	५।१७७८	ख	
एतामु	१३१।१८३१	संक	१७७।५३ ५४३
एतपायक	५२।३६४१	संकनक	१७७।५३६
एत हंकवेया	२२।४३, ३३३।४७५	संक दुग	१७७।५३६
एत	३३३।७६,४ ६ ४ १,२७	संका	१७७।५३,५४३
एतमुमि	२२१।२७ २७१,४२३६	संगुर	३ ५४
एतसवेठ	२२१।४८ १	सठवासी	१६७।१८३
एति	३३४।१३८५	सहगा	२१।४४
एतिठनवा	१७५।४ ३	सकुट	४५।२ २४ २ ५८, ३३१।६०५७ ३६८।६७४
एसाठन	१८३।३िनम	सज	२४१।१३८६
एसाम	३३४।१५६२	सट	८६।२३१८
एज	६१४।३ ३,१४१	सटकन	५६,७६।७१७,७२२
एजकुमारी	२१४।१७६२	सटुपिरी	८४।१३४ ७२३
एजपाट	६१४।३ ३ १४७	सठा	२ २ ३२५।३८५५
एज घमा	२१३।३ २ २५	सपसी	१६८।८५५,१८३१
एजमूय	२३८।१७	सपाई	२२ १६८२
एजा	२१३।१४४ ६७३ ४१६ ४२५६	सपम	१५ ८८ १
एजीव	३३१।२४२६	ससकर	२ १३६
एह	२१३।३५८,१५५,३७ ४	साहा	१८७ ३१
एहनिर्घमिरी	२६१।३५१३	साहु	१६१।८ १
एहठा	७५८।१८३१	सापसी	१४६।८५५,१८३१
एह	२७३।३५८, १४५ ३७१६	सावनमि बाहु	१५१।१ १४
एह	११३।१८३१	साम	१९।१३१२
एह	२१३।३५८,१५५,३७४	साव्हा	२३४।१ १४
एह	२५५।१३५७ १३५५	सिक्कर	२ ११४२
रिषा	२७७।१७६३	मुपुई	१५५।८५५,१ १४
रीघ	२६६।५८१	मुटा	१६७।१८३
रीठि	२५१।१३६३	मेका	२ १।१४३
रंज	२८८।३४, २५१३	मेकमि	३५४।१६५
रवे	२१ ११४३	मेकी करत	१८८।१६३
रेवक	२५६।४३२८	मीम	११५।२१४३
रोटी	१५५।७७७,१ १४	मीन	११७।१८३१
रोटी	१७।३४२	मीनी	१४५।७८५
रेसम	३।३५६	मीह	२११।२२०
		मीरो	११७।४०७०

[illegible]

समाधि	२५८४१४८	सारी	३१६।१७३८,
साम	२२३।४८ १		३४६४२, २११३
सर	३३७।३६१८,		१३६१, ३४१२
	२२२।४३४, ३७३,	सालन	१३ ११ १४, १८३१
	३५४।३६१८	साम्ब	१७४।४८ १
सरप	१८१। विमय	सालिग्राम	२३४।८८१
सरसम	२६३।१७३६	सायक	३ १२४४३
सरसू	१७८।४८८	सिमा	२३२।४३१२
सालिख	३३ १४४४	सिमी	१८७।३८४४
सरसौ	१३४।१ १४ १८३१	सिखरी	२८७।३८४४
सरस्वति	१७४।१८ २	सिख	२६६।३८५१
सपथ	३४३।३७१	सिपु	१८ १ विमय १७४।४८३७
सपथ	२७ १२६	सिद्ध, सिद्धिका	२६६।४२५, १७, ८ २
सरोज	३३१।३ ७, ६४ २३ ६४	सिद्धान्त	२१३१।१४१
सहज	२३ १४७१२	सिद्धार्थ	३४३।६४५
सहनाई	२८३।३४, ४७३	सिद्धार	१६६।६४७
सहर	१३६।३४७	सिद्धार	३३४।३४
सांकीरी	३५१।६४५	सिद्धांती	३१७।१७४४
सांख्यिक	२८२।३६४	सिद्धन्ति-सिद्धांती	३१७।३७
सांही	३४८२४८, ६६३	सिद्धरत्न	१५८।१८३१
सांति	३ ६।१	सिद्धो-सिद्ध	४४।१ ८४ १ ६३
साक	२ ११२४३	सिद्धारे	१२५।१५३
साक अवाधि	१४।३४८३	सिद्धार	२६६। ४७८७
साध	१३ ११८३१	सिद्धोपास	४४।१२ ४ २५५७
साध्वी	१४४८ १	सिद्धीमुख	३१२।१७४४
साधु	१४६।४७६८	सिद्धीपीठी	३३४।३६८
साध	१७४।४८ १	सिद्ध-सिद्धर	३३४।१२८४
साधु	२७४।३५३२	सींगरी	१३१।१८३१
साध	२८३।३५२३	सीकै	३४३।६११
	२३३।३५५६	सीप	१३१।१ १४
साधामुय	३ १५१३	सीरा	१३७।८ १ १४,
साध	३ १३३ २७२६		१८३१
सारणी	२२ १५८८, २७८,	सीसफूल	५१।२११३
	३३३।४८८, १७८	सीखी	३५ १३६१४
सारंग	२६४।१८३८	सुकुंज	३३१।३६३२
सारस	२३५।३५६, १११	सुक	३१६।३५, १ १ २,
सारथ	३१३।१३३७, २३७६		२३७३
सारिक	३१६।१७३८	सुक	१८५।२७३३

स्वाव	१ २।१८३१	हाथी	३०४।११२
स्वाव घस्वाव	१०६।१८६	हानि	१८०।३१०
स्वान	३०१।३९८	हाट	१८६।३१
स्वामी	२८५।५२	हाटफुरो	१७०।५३३
खीरी	२३२।४३ ८	हार	३१६।१ ६
ख		हारिण	३१६।१ ६
हंस	३१५।७६, ६, ३८५, ३५६	हाथ	३६ ४०८५
हसी	३१५।२०३३	हिमोप	३०३।३४५
हठरी	३४५।१४२८, २४६।१४२८	हिमोरना	३६३।१११३
हमिवार	२२२।३५२२	हिमोस	३६३।३४५
हमेव	५६।२१५८	हिवार	१८१।३४६
हम	३ ४।१३३	हीम	११५।२१४६
हम गम	३ २।३२२	हीर	२०५।४३२ १६३
हुर	११५।११४३	हीरा	२ ५।४३२, १६३
हरव	११६।१८३१	होम	२१ १३४२ ३५६,
हथी	११८ १८३१	होमि	३६१ ४ ३४३
हरिपुर	७२१।२८३	होम	१४६। १
हम	२ २।	होम	२७३।३२२ २३८।३२२
हमाहम	१३३।	होरी	१७३।३२२
हमिनापुर	१७५।४८३८	होरी	२४७।३४८४, ३४२
हमम-कमम	२५६।४७१२	होरी-गीत	२६५।३५२२

